सृजन स्मरण



अरे अब ऐसी कविता लिखो
कि जिसमें छंद घूमकर आय
घुमड़ता जाय देह में दर्द
कहीं पर एक बार ठहराय

रघुवीर सहाय

(1929 - 1990)



सूचना एवं प्रचार निदेशालय

फैज को समर्पित कलाकृतिया

123018
10/07/2015



विश्वजीत दास


राजकुमार
2010



[illegible]

पुस्तका [illegible]

[illegible] नद कंट्याल




आज बाज़ार में
पा-ब जौलां चलो
दस्त-अफ़शां चलो
मस्त-ओ रक्सां चलो
खाक-बर-सर चलो,
खूं-ब दामां चलो
फैज अहमद फैज
1911 1984
देवेन्द्र
2010



कमेलिया सुमन

खिले जो दरीचे मे आज हुस्न के फूल
तो सुबह झूम के गुलज़ार हो गयी यक्सर
फैज अहमद फैज

JYOTI CONSULTANTS

is a World's premier & reliable
Fertilizers and Fertilizer Raw Materials
supplier in India such as

12348
18/03/2010

MOP
DAP / MAP / TSP
Urea
Complex Fertilizers
Rock Phosphate,
Sulphur
Ammonia

Contact us for your requirement for the above

Jyoti Consultants,
A-2/133, Safdarjung Enclave,
New Delhi 1100029
Tel +91-11-26103321 / 26197045
Fax +91-11-26194439/ 26199621
E-mail jtc4@airtelmail in



संस्थापक
शिव वर्मा
संपादकीय परामर्श
शिव कुमार मिश्र
जुबैर रजवी
संपादक
मुरली मनोहर प्रसाद सिंह
चंचल चौहान
संपादकीय सहयोग
कांतिमोहन सोज
रेखा अवस्थी
जवरीमल्ल पारख
संजीव कुमार
कंपोजिंग सहयोग
अभ्यानन्द सिन्हा
आवरण
मनोज कुलकर्णी
इस अंक की सहयोग राशि
सौ रुपये
कार्यालय सहयोग
सुजीत कुमार
संपादकीय कार्यालय
42 अशोक रोड
नयी दिल्ली-110001
Email jlscentre@yahoo com
फोन 9212644978 9811119391
Website www jlsindia org
प्रकाशन संपादन प्रबंधन पूर्णत
गैरव्यावसायिक और अवैतनिक।
पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों
के अपने है जलेस की सहमति
आवश्यक नहीं।
सौजन्य-सहयोग
विचार न्यास

जनवादी लेखक संघ की केंद्रीय पत्रिका

नया पथ

123
10/2011

फ़ैज जन्मशती विशेषांक

वर्ष 24 अक्टूबर-दिसंबर 2010 अंक 4

अनुक्रम

लेख-आलेख

खड चार अदीबो की नजर मे

फैज़ के प्रति

यूं ही उलझती रही है ज़ुल्म से ख़ल्क़

ज़ुल्म और ख़ल्क़ के बीच चल रहे अतहीन सघर्ष की समझ रखने वाले एक महान रचनाकार ओर चितक के नाते फैज को उनकी जन्मशती पर याद करने का मतलब है खुद को इस टकहराट मे हस्तक्षेप के लिए तैयार करना। यो तो फैज की सृजन-यात्रा आज भी सपूर्ण लेखक-पाठक समुदाय के लिए बहुत ही प्रेरक और प्रासंगिक है।

पर हिदुस्तान के प्रसग मे, पाकिस्तान और हिदुस्तान के बीच मैत्रीपूर्ण सबध की जरूरतो के बारे मे कृश्नचदर की आत्मकथा *आधे सफ़र की पूरी कहानी* पुस्तक का हवाला देना जरूरी है। मई 1967 में फेज और कृश्नचदर दोनो सोवियत लेखको के एक सम्मेलन मे मास्को के एक बडे होटल के प्रीतिभोज समारोह में उपस्थित थे, जहा हिदुस्तान की अलग मेज थी और पाकिस्तान की अलग। दोनो मेजो पर दोनो देशो के अलग-अलग झडे लगे थे। दोनो देशो की मेजो के बीच 30 मेजो की दूरी थी। पुस्तक मे इस घटना को याद करते हुए कृश्नचदर बताते है 'यकायक मेरी और फैज की आखें चार हुई। वे फौरन अपनी कुर्सी से उठ खडे हुए, मे अपनी कुर्सी से। फिर हुआ यह कि मे अपनी मेज से हिदुस्तान का झडा लिये उठा और फैज अपनी मेज से पाकिस्तान का झडा लिये उठे और हम दोनो एक दूसरे की तरफ बढते हुए, मेजे पार करते हुए बीच की किसी मेज पर आकर रुक गये। उस मेज पर हम दोनो ने हिदुस्तान और पाकिस्तान के झडे साथ-साथ लहरा दिये ओर एक-दूसरे के गले लग गये। सारा हॉल तालिया पीटने लगा।'

फैज केवल भारत-पाक दोस्ती के समर्थक ही नहीं, पाकिस्तान मे लोकतत्र की स्थापना के सघर्ष के भी अग्रणी सस्कृतिकर्मी थे। सिर्फ यही नहीं, वैश्विक पूजी और साम्राज्यवाद के विरुद्ध सारी दुनिया के उत्पीडित देशो और जनगणो के मुक्तिसघर्ष के साथ एकजुटता का इजहार करने वाले कलास्रष्टा आर व्याख्याता के नाते भी उनकी जबर्दस्त भूमिका रही है। इसीलिए वे हमे प्रेरित करते हुए यह अपनी तरह से बता जाते है कि हकीकत और अपनी परपरा के प्रति हमे क्या रुख़ अख़्तियार करना चाहिए। निरतर लौ देने वाली इस थाती, इस विरसे और इस चिराग को हम भूल नही सकते ओर इस चिराग की लौ से नये-नये चिराग रौशन होते रहेगे।

आज की साहित्यिक-सास्कृतिक कार्यसूची को ध्यान मे रखकर ही हम लोगो ने फेज जन्मशती विशेषाक की योजना बनायी। इस सदर्भ मे एक खास वजह यह भी है कि हिदी पाठक-समुदाय के लिए उनके जीवन ओर सघर्ष से सबंधित कोई किताब है ही नही किसी भी प्रकाशक ने नहीं छापी। पत्रिकाओं ने छिटपुट ढग से कुछ चीजे छापी है। पर इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण प्रयास नवबर 1984 के अक के माध्यम से सव्यसाची के सपादन मे *उत्तरगाथा* के फेज विशेषाक द्वारा किया गया था। उसके

सपादकमडल के सहयोगियो म *नया पथ* सपादक मडल के तीन सदस्य भी उस समय शामिल थे और कांतिमोहन सोज ने तो उसम अग्रणी भूमिका निभायी थी। अत *उत्तरगाथा* के उस विशेषाक की कुछ महत्वपूर्ण सामग्री भी इस विशेषाक म शामिल कर ली गयी है। इस विशेषाक को भी *उत्तरगाथा* के उसी विशेषाक की एक कडी के रूप म देखना चाहिए।

अपने इस विशेषाक की सीमाओ का भी हम एहसास है। इस अक म हम एफ्रो एशियन लेखक सघ और उसकी पत्रिका *लोटस* से सबधित न तो कोई दस्तावेज प्रस्तुत कर पा रह ह और न एफ्रो एशियन लेखको के आदोलन के बारे मे कोई विश्लेषणात्मक आलख ही द सके ह। यह उल्लेखनीय ह कि एफ्रो-एशियन लेखक सघ की स्थापना के समय से ही अर्थात 1958 से फ्रेज उसस जुड़े हुए थे और कुछ वर्षो तक उन्होने बेरूत (लेबनान) से *लोटस* पत्रिका का सपादन भी किया था।

फ्रेज के व्यक्तित्व, चितन, सघर्षशीलता और उनकी शायरी के प्रति गहरा अनुराग रखन वाली हिंदी-उर्दू भाषी जनता की भावनाओ को हिंदी क वरिष्ठ और युवा रचनाकारो के आलखो और उनकी टिप्पणियो म पढ़ा जा सकता ह। यह पहली बार है,कि हिंदी के कवियो ने एक साथ एशिया महाद्वीप की इस मुखर क्रांतिकारी आवाज को याद किया हे और उन्ह अपनी रचनात्मक ऊर्जा का स्रोत बताया हे।

इस विशेषाक के लिए कुछ दुर्लभ सामग्री प्राप्त करने मे हमारी मदद विशष रूप से प्रो अली अहमद फातमी (इलाहाबाद), जुबेर रजवी, जहूर सिद्दीकी ओर के जी वर्मा(दिल्ली) तथा डॉ केवल धीर (लुधियाना) ने की हे, इन तीनो के प्रति हम आभार प्रकट करते है।

केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, लॉस एंजिल्स कैम्पस क तुलनात्मक साहित्य विभाग म प्रोफेसर आमिर मुफ्ती के प्रति भी हम शुक्रिया अदा करते ह, जिन्हाने न केवल अग्रेजी म लिखित अपना आलेख ही भेजा, बल्कि निर्वासन की पीडा पर एडवर्ड सईद की किताब का फ्रेज से सबधित अश भी ई-मेल के जरिये हमे उपलब्ध कराया।

इस विशेषाक के लेखको, अनुवादको ओर फ्रेज की जन्मशती पर अपनी कलाकृतिया रचने वाले कलाकारो के प्रति हम आभारी हे।

सोजन्य-सहयोग करने वाले मित्रो तथा विज्ञापनदाताओ के प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते है।

मुरली मनोहर प्रसाद सिह
चचल चौहान

खड एक

यादों के अक्स

आपबीती दास्तान—एक

फैज अहमद फैज

फ़ैज अहमद फ़ैज ने 7 मार्च 1984 ई को अपनी मृत्यु से आठ महीने पहले एशियन स्टडी ग्रुप के निमत्रण पर इस्लामाबाद के एक सम्मेलन मे बेबाक अदाज मे अपनी जिदगी के लबे सफर को जिस तरह बयान किया था उसे पाठको के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है जिदगी के इस सफ़र को पाकिस्तान टाइम्स ने दो किस्ता मे फ़ैज की सालगिरह के अवसर पर 13 14 जनवरी 1990 के सस्करण मे पहली बार प्रकाशित किया था। फ़ैज की इस आपबीती को साभार पुन प्रस्तुत किया जा रहा है।—स

मेरा जन्म उन्नीसवीं सदी के एक ऐसे फक्कड व्यक्ति के घर मे हुआ था जिसकी जिदगी मुझसे कही ज्यादा रगीन अदाज मे गुजरी। मेरे पिता सियालकोट के एक छोटे से गाव म एक भूमिहीन किसान के घर पैदा हुए, यह बात मेरे पिता ने बतायी थी और इसकी तस्दीक गाव के दूसरे लोगो द्वारा भी हुई थी। मेरे दादा के पास चूंकि कोई जमीन नहीं थी इसलिए मेरे पिता गाव के उन किसानो के पशुओ को चराने का काम करते थे जिनकी अपनी जमीन थी। मेरे पिता कहा करते थे कि पशुओ को चराने गाव के बाहर ले जाते थे जहा एक स्कूल था। वह पशुओ को चरने के लिए छोड देते और स्कूल मे जाकर शिक्षा प्राप्त करते, इस तरह उन्होने प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूरी की। चूकि गाव मे इससे आगे की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी, वह गाव से भाग कर लाहौर पहुच गये। उन्होने लाहोर की एक मस्जिद मे शरण ली। मेरे पिता कहते थे कि वह शाम को रेलवे स्टेशन चले जाया करते थे और वहा कुली के रूप मे काम करते थे। उस जमाने में गरीब और अक्षम छात्र मस्जिदो मे रहते थे और मस्जिद के इमाम से या आस पास के मदरसो मे नि शुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे। इलाके के लोग उन छात्रो को भोजन उपलब्ध कराते थे। जब मेरे पिता मस्जिद मे रहा करते थे तो उस जमाने मे एक अफगानी नागरिक जो पजाब सरकार का मेयर था, मस्जिद मे नमाज पढने आया करता था। उसने मेरे पिता से पूछा कि क्या वह अफगानिस्तान मे अग्रेजी अनुवादक के तोर पर काम करना पसद करगे, तो मेरे पिता ने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए अफगानिस्तान जाने का इरादा कर लिया। यह वह समय था जब अफगानिस्तान के राजमहल मे आये दिन परिवर्तन होता रहता था। अफ़गानिस्तान ओर इग्लैड के बीच डूरड संधि की आवश्यकता का अनुभव भी उसी समय मे हुआ और इसीलिए अफगानिस्तान के राजा ने मेरे पिता को अग्रेजो के साथ बात-चीत करने मे सहायता करने के उद्देश्य से दरबार से अनुबधित कर लिया। इसके बाद वह मुख्य सचिव ओर फिर मत्री भी नियुक्त हुए। उनके जमाने म विभिन्न कबीलो का दमन किया गया जिसके परिणामस्वरूप हारने वाले कबाइल (कबीला का बहुवचन) की ख़ास औरतो को राजमहल के कारिंदो मे वितरित कर

दिया जाता था। ये ओरत मेरे पिता के हिस्से म भी आयीं, नही मालूम उनकी सख्या तीन थी या चार। वहरहाल अफ़गानिस्तान के राजमहल म पद्रह साल सेवा देने के वाद वह तग आ गय आर उनका ऊव जाना स्वाभाविक भी था क्योंकि राजा के अफ़गानी मूल क कर्मचारिया को एक विदेशी का दरवार म प्रभावी होना खटकता था। मेरे पिता को प्राय ब्रितानी एजट घोपित किया जाता ओर जव उस अपराध के फलस्वरूप उन्ह मृत्युदड दिये जाने की घोपणा होती तो नियत समय पर यह सिद्ध हो जाता के वह निर्दोप हे ओर उन्हे आगे पदोन्नति दे दी जाती। लेकिन एक दिन उन्होने फकीर का भेस वदला आर अफ़गानिस्तान के राजमहल से फरार हो गये ओर लाहोर वापस आ गये लेकिन यहा वापस आते ही उन्ह अफगानी जासूस होने के आरोप म पकड लिया गया।

मेरे पिता की तरह फक्कडाना स्वभाव रखने वाली एक अग्रज महिला भी उस जमाने म डाक्टर क रूप मे दरबार से जुडी थी। उसका नाम हेमिल्टन था। उससे मेरे पिता की मित्रता हो गयी थी। अफगानिस्तान के राजा से उसे जो भी पुरस्कार मिला था उसे उसने लदन मे सुरक्षित कर रखा था। इस प्रकार जव मेरे पिता अफगानिस्तान से निकल भागे तो उसने उन्हे लिखा 'तुम लदन आ जाओ । इस आमत्रण पर मेरे पिता लदन पहुच गये ओर जव ब्रिटेन की सरकार को उनक लदन आगमन की सूचना मिली तो मेरे पिता को यह सदेश मिला कि चूकि अव तुम लदन म हो तो मेरे दूत क्यो नही वन जाते? मेरे पिता ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। आर साथ ही उन्हाने कब्रिज मे अपनी आगे की शिक्षा का क्रम भी जारी रखा। वही उन्हाने कानून की डिग्री भी प्राप्त की। मेरे पिता का नाम सुल्तान था इसलिए मै फारसी का यह मुहावरा तो अपने लिए दुहरा ही सकता हू कि 'पिदरम सुल्तान ब्रूद' (मेरे पिता राजा थे)।

कानून की डिग्री प्राप्त करने के वाद मेरे पिता सियालकोट लोट आये। मेरी आरभिक शिक्षा मुहल्ले की एक मस्जिद मे हुई। शहर मे दो स्कूल थे—एक स्कॉच मिशन की ओर दूसरा अमरीकी मिशन की निगरानी मे चलता था। मने स्कॉच मिशन के स्कूल मे प्रवेश ले लिया। यह हमारे घर से नजदीक था। यह जमाना जबरदस्त राजनीतिक उथल-पुथल का था। प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था आर भारत मे कई राष्ट्रीय आदोलन आकर्पण का केद्र बन रहे थे। काग्रेस के आदोलन मे हिदू और मुसलमान दोनो ही कोमे हिस्सा ले रही थी लेकिन इस आदोलन मे हिदुआ की बहुलता थी। दूसरी ओर मुसलमाना की तरफ से चलाया जाने वाला खिलाफत आदोलन था।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर परिदृश्य यह था कि तुर्क काम ब्रितानी ओर यूनानी आक्राताओ के विरुद्ध पक्तिवद्ध थी परतु उस्मान वशीय खिलाफत को वचाया नही जा सका और तुर्की अतत कमाल अतातुर्क के क्रातिकारी विचारो के प्रभाव मे आ गया जिन्हे आधुनिक तुर्की का निर्माता कहा जाता है। एक तीसरा आदोलन सिक्खा का अकाली आदोलन था जो सिक्खो के सभी गुरुद्वारो को अपने अधीन लेने के लिए आदोलनरत था। इस प्रकार लगभग छ सात साल तक हिदू, मुस्लिम ओर सिक्ख तीना ही अग्रेज के विरुद्ध एक साझे एजेडे के तहत आदोलन चलाते रहे।

हमारे छोटे से शहर सियालकोट मे जव भी महात्मा गाधी, मातीलाल नेहरू ओर सिक्खा के नेता आते थे तो पूरा शहर सजाया जाता वडे-वडे स्वागत द्वार फूलो से वनाये जाते थे ओर पूरा शहर उन नेताआ के स्वागत मे उमड पडता था। राजनीतिक गहमागहमी का यह दोर हमारे मन पर अपने प्रभाव छोडने का कारण वना।

इसी दोरान रूस मे अक्टूबर क्राति घटित हो चुकी थी आर उसका समाचार सियालकोट तक भी पहुच रहा था। मने लोगो को कहते हुए सुना कि रूस मे लेनिन नाम के एक व्यक्ति ने वहा के बादशाह का तख्ता उलट दिया हे ओर सारी सपत्ति श्रमजीविया म बाट दी हे।

स्कूल की पढाई का यही वह जमाना था जब शायरी मे मेरी रुचि उत्पन्न हुइ। इसके पीछे दो कारण थे। हमारे घर के पास एक नाजवान किताबे किराये पर पढने के लिए दिया करता था। मेने उससे क़िराये पर किताबे लेनी शुरू कर दीं ओर धीरे-धीरे मने उसकी ऐसी सभी क़िताब पढ डाली जो क्लासिक साहित्य से सबंधित थी। मेरा सारा जेब ख़र्च भी किताबे क़िराये पर लेने म खर्च हो जाता था। उस जमाने मे सियालकोट का एक प्रसिद्ध साहित्यिक व्यक्तित्व अल्लामा इक़बाल का था जिनकी नज़्मा को बडे शाक से सभाओ मे गाया और पढा जाता था। वहा एक प्राथमिक विद्यालय भी था जिसम म पढता था। वहा मुशायरे भी होते थे यह मरे स्कूल की शिक्षा के अतिम दिन थे। हमारे हडमास्टर ने हमसे एक दिन कहा कि मे तुम्ह एक मिसरा देता हू, तुम इस पर आधारित पाच छ शेर लिखा, हम तुम्हारे कलाम (गजल) को शायर इकबाल क उस्ताद के पास भेजगे ओर वह जिस कलाम का पुरस्कार का अधिकारी घोषित करेंगे उसे ही पुरस्कार मिलेगा। इस तरह मेने शायरी के उस पहले मुक़ाबल म पुरस्कार के रूप म एक रुपया प्राप्त किया था, जो उस जमाने म बहुत समझा जाता था। सियालकोट म दो साल गुजारने के बाद मने लाहोर के गवनमेट कॉलेज मे प्रवेश ले लिया। सियालकोट से लाहार आना रोमाच से भरपूर था। यू लगा जसे कोई गाव छोड के किसी अजनबी शहर म आ गया हो। उसकी वजह यह भी थी कि उस जमाने मे सियालकोट मे न बिजली थी ओर न पानी के नल थ। भिश्ती पानी भरते थे या फिर कुओ से पानी भरा जाता था। कुछ बडे घरो मे पीने के पानी के कुए उपलब्ध थे। हम सब ही उस जमाने म मिट्टी के तेल से जलने वाली लालटेनो की रोशनी मे पढते थे। यह लालटेन बडी खूबसूरत हुआ करती थी। सियालकोट मे मोटर कभी नहीं देखी। वहा के सभी अधिकारी बग्घियो मे आते जाते थे। मरे पिता के पास दो घोडा वाली बग्घी थी। जब मे लाहोर आया तो हेरान रह गया। यहा मोटर थी, औरते बिना बुर्के के नजर आ रही थीं। ओर लोग अजनबी पहनावे अपने बदन पर पहने हुए थे। हमार कॉलेज म आधे से अधिक शिक्षक अग्रेज थे। हमारे अग्रेजी के शिक्षक लेंघम (Langhom) थे जो बहुत कडे स्वभाव के थे, लेकिन शिक्षक बहुत अच्छे थे। मेने अग्रेजी के पर्चे मे 150 मे से 63 नबर लिये तो सब दग रह गये। कॉलेज म मेरा कद बढ गया। ओर मुझे यह सलाह दी जाने लगी कि मे इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा की तैयारी करू। मेने निश्चय कर लिया कि म परीक्षा म बैठूगा लेकिन मे इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा की तेयारी करने के बजाय धीरे धीरे शायरी करने लगा। इस परिस्थति के लिए कई कारण जिम्मेदार थे। एक यह कि डिग्री प्राप्त करने से पहले ही मर पिता का निधन हा गया ओर हम यह पता चला कि वह जो कुछ सपत्ति छोड गये ह उससे कही अधिक कर्ज चुकान के लिए छोड गये थे ओर इस तरह शहर का एक खाता-पीता खानदान हालात के झटके म गरीब ओर असहाय हो गया। दूसरा जो मेरे ओर मेरे खानदान की परेशानिया का कारण बना वह व्यापक आर्थिक सकट ओर मदी था जिसके प्रभाव से उस जमाने म कोई भी व्यक्ति सुरक्षित न रह सका। मुसलमाना पर इसका प्रभाव अधिक पडा चूकि उनम बहुतायत खेतिहर लोगो की थी। मदी का प्रभाव कृषि पर अधिक पडा था। नतीजा यह हुआ कि गाव से शहर की ओर पलायन आरभ हो गया क्योकि छोटी जगहा म रोजगार उपलब्ध कराने वाले ससाधन नही थे और ऐसे ससाधन पर प्राय हिंदुआ का कब्जा था। सरकारी नोकरी भी एक रास्ता

था लेकिन चूँकि मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र मे काफी पिछडे हुए थे इसलिए यहा भी उनके लिए अधिक अवसर नहीं थे। मेरे ओर मेरे खानदान के लिए यह जमाना राजनीतिक आर वयक्तिक कारणा से परीक्षा ओर परेशानियो का था। इस तनाव ओर सोच विचार को अभिव्यक्ति के माध्यम की आवश्यकता थी सो यह शायरी ने पूरी कर दी।

मेरी उम्र 17-18 साल के आस-पास थी ओर जेसा कि होता हे म वचपन से ही साथ खेलने वाली एक अफ़गान लडकी की मुहब्बत मे गिरफ्तार हो गया। वह वचपन मे तो सियालकोट में थी लेकिन वाद मे उसका खानदान आज के फेसलावाद के समीप एक गाव मे आवाद हो गया था। मेरी एक वहन की उसी गाव म शादी हुई थी। जव में अपनी वहन के पास गया तो उसके घर भी गया, वह लडकी तव पर्दा करने लगी थी। एक सुवह मने उसे तोते को कुछ खिलाते हुए देखा। वह वहुत ख़ूवसूरत लग रही थी। हम दोनो ने एक दूसरे को देखा ओर एक दूसरे की मुहब्बत म गिरफ्तार हो गये। हम छुप छुप क मिलते रहे ओर एक दिन जेसा कि होता हे उसकी कही शादी हो गयी ओर जुदाई का यह अनुभव छ सात वरस तक मुझे उदास करता रहा। इस अवधि में मेरी शिक्षा भी जारी रही ओर शायरी भी। स्थानीय मुशायरे मे तीसरी वार जव मुझे भाग लेने का अवसर मिला तो मेरी शायरी को काफी सराहा गया और इस तरह लाहोर जसे शहर की वडी साहित्यिक हस्तिया मेरी शायरी से परिचित हुई आर सवने मुझे अपना आशीर्वाद देना चाहा। म अव अच्छा खासा शायर वन चुका था।

यही वह दोर था जव उपमहाद्वीप मे उग्रपथ के पहले आदोलन का आरभ हुआ। उस आदोलन के प्रभाव हमारे कॉलेज के अदर भी पहुच रहे थे ओर मेरा एक अभिन्न मित्र जिसे वाद मे एक प्रतिष्ठ सगीतकार ख्वाजा खुर्शीद अनवर के रूप मे जाना गया, उस आदोलन का सक्रिय कार्यकर्त्ता था। वह बम बनाने के लिए कॉलेज की प्रयोगशाला से तेजाव चुराने के अपराध मे गिरफ्तार कर लिया गया। उमे तीन साल की सजा भी सुनायी गयी। वह कुछ समय तक जरूर जेल में रहा था लेकिन वाद में वह अपने प्रभावशाली पिता के रसूख के कारण छूट गया। मेरी वहुत सी जानकारियो का माध्यम वही था। वह अक्सर अपने आदोलन का साहित्य मेरे कमरे में छोड जाता ओर जव कभी म उसे पढता तो मेरे ऊपर जुनून सा छा जाता था, क्योकि मेरे पिता अग्रेजों के वफ़ादार और उपाधि प्राप्त थे लेकिन इतना जरूर हुआ कि मे उग्रपंथियो के आदोलन और उसके वहुत से राजनीतिक समूहो से परिचित हो गया। मेरे ऊपर उसका कोई गहरा प्रभाव नही पडा लेकिन वह सव कुछ मेर लिए महत्वहीन नही था।

तीन चार साल वाद मने पहले अग्रेजी म ओर फिर अरवी मे एम ए कर लिया और फिर मने शिक्षण का कार्य अपना लिया। उससे मुझे काफी सहारा मिला ओर खानदान को आर्थिक सकटों से उवारने म सहायता भी। इस अवधि मे मेरे कॉलेज के जमाने के दो साथी आक्सफोर्ड से मार्क्सिस्ट होकर लोटे थ। उनके अलावा उच्च घरानो के कुछ और लडके भी इग्लेड की यूनवर्सिटियो से कम्युनिस्ट विचार लेकर लोटे थे। उनमे से कुछ तो राजनीतिक दृष्टिकोण स व्यस्त हो गये कुछ ने नाकरी के चक्कर मे इस तरह के विचार का छोड दिया। लेकिन इसी टोली क नेतृत्व म साहित्य के प्रगतिशील आदोलन का आरभ हुआ। यह साहित्यिक आदोलन, कम्युनिस्ट या मार्क्सिस्ट आदोलन नही था। वेसे उसमे सक्रिय भाग लेन वालो मे कुछ कम्युनिस्ट भी थे आर मार्क्सिस्ट भी। असल मे प्रगतिशील आदोलन साहित्य म सामाजिक यथार्थ को वढावा देने से सवध रखता था ओर रूढिवद्ध हाकर कविता करने को वुरा समझता था। भाषा की कलावाजी भी इस आदोलन के लिए व्यर्थ थी। इस आदोलन के प्रभावस्वरूप यथार्थवादी ओर

राजनीतिक गीतो के चलन को बढावा मिला। इस प्रकार का साहित्यिक चलन यूरोप और अमेरिका मे भी फासीवाद विरोधी साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप म उभरा, जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक सरोकार वाले साहित्य का जन्म हुआ।

1932-35 के मध्य का यही वह समय था जब उस साहित्यिक, राजनीतिक आदोलन से मेरा जुडाव शुरू हुआ। मजदूरो, श्रमजीवियो और किसानो के आदोलनधर्मी गीत और राजनीतिक अभिव्यक्ति और नयी-पुरानी काव्य पद्धति के मिश्रण को लोगो ने सराहा और उन्हे पसद भी किया। जब 1941 मे मेरा पहला सग्रह प्रकाशित हुआ तो वह तेजी से बिक गया। फिर द्वितीय विश्व युद्ध की लहर आयी लेकिन हम लोगो ने उसका ज्यादा नोटिस नही लिया। हमारे विचार में उस युद्ध से ब्रिटेन और जर्मनी का सरोकार था मगर 1941 मे जापान भी उस युद्ध मे शामिल हो गया तो हमे कुछ आभास हुआ। क्योकि उस समय अगर एक ओर जापानी भारत की सीमा तक आ गये थे तो दूसरी ओर नाजियो और फासिस्टो के कदम मास्को ओर लेनिनग्राद तक पहुच गये थे और तभी हमने महसूस किया कि युद्ध से हमारा सबद्ध होना आवश्यक है। इसलिए हम फौज मे शामिल हो गये। मुझे याद है पहले दिन जनसपर्क विभाग के निरीक्षक एक ब्रिगेडियर के सामने मेरी पेशी हुई। वह आपैचारिक रूप से फौजी नही था, वह बहुत जिदादिल आइरिश था और *लदन टाइम्स* से सबध रखने वाला एक पत्रकार था। मुझे देखकर उसने कहा तुम्हारे बारे मे पुलिस की खुफिया रिपोर्ट कहती है कि तुम एक पक्के कम्युनिस्ट हो, बताओ हो या नही। मैने कहा मुझे नहीं पता कि पक्का कम्युनिस्ट कौन होता है। मेरा यह उत्तर सुनकर उसने कहा मुझे इससे कोई मतलब नहीं, चाहे तुम फासीवादी विचार ही क्या न रखते हो, जब तक तुम हम कोई धोखा नही देते, मै समझता हू तुम धोखा नही दोगे। मैने समर्थन मे सिर हिला दिया।

यही वह जमाना था जब ब्रिटेन और मित्र देशो के बीच सबध बहुत अच्छे नहीं थे। उधर महात्मा गाधी ने भारत छोडो आदोलन आरभ कर दिया था, जो पूरे देश मे आग की तरह फैल गया था। ब्रिटेन के सामने दो सकट थे। एक तो फोज मे लोगा की भर्ती आर दूसरे सरकार के विरुद्ध जोर पकडता हुआ जन आदोलन। ब्रिटेन की फोज के ब्रिगेडियर ने मुझसे इस आदोलन के विषय मे विचार विमर्श करते हुए पूछा तो मैने कहा कि ब्रिटेन अपने अस्तित्व के लिए भाग ले रहा हे, जापान ब्रिटेन के लिए एक वडा खतरा हे ओर अगर जापान तथा जर्मनी विजयी होते हे तो ब्रिटेन को सो-दो सो साल तक ग़ुलाम रहने का दश झेलना होगा, ओर इसका मतलब यह है कि हमे अपने देश को इस कष्ट से सुरक्षित रखने के लिए ब्रिटेन की फौज का हिस्सा वनकर लडना चाहिए। अग्रेज अपने लिए नहीं लड रहा है वह भारत के लिए लड रहा है। मेरे इस तर्क को सुनकर उसने कहा तुम जो कुछ कह रहे हो ये तो सब राजनीति है मगर इस तर्क को फोज के लिए स्वीकार्य कैसे बनाया जाये? मैने कहा कि इस विचार को फोज के लिए स्वीकार्य वनाने का तरीका वही होना चाहिए जो कम्युनिस्टो का ह। उसने चाककर पूछा क्या मतलब? मेरा जवाव था, हम कम्युनिस्ट एक छोटी टोली वनाते ह। फौज के हर यूनिट मे इस तरह की एक विशेष टोली बनाने के बाद हम अफसरो को यह बताते हे कि फासिज्म क्या हे आर उन्ह यह भी समझाते हे कि *जापान आर इटली वालों के इरादे क्या हे।* इसके वाद उन अफसरो से कहा जाता है कि वे उक्त टोली म बतायी जाने वाली वाता को अपने यूनिटो के सिपाहिया को जाकर समझाय और वताय। इस तरह हम इस रणनीति के तहत पहल फोजी अफसरा को मानसिक रूप स सुदृढ़ करत थ आर फिर उनके माध्यम से आशिक्षित सिपाहियो को भी एक दिशा देते थ। इस पद्धति का विराध भी वहुत हुआ।

वात वायसराय, कमाडर-इन-चीफ ओर फिर इडिया आफिस तक पहुची। मुझसे कहा गया कि म अपनी योजना को लिखित रूप म प्रस्तुत करू। अतत इस योजना को मजूरी मिल गयी आर हमने फिर 'जोश ग्रुप' वनाये जो वहुत सफल रहा ओर इसके परिणामस्वरूप मैं ब्रिटेन द्वारा सम्मानित किया गया ओर तीन सालो म कर्नल वना दिया गया। उस जमाने मे व्रितानी फोज मे एक भारतीय के लिए इससे ऊचा फोजी पद कोई ओर नही था। उस जमाने मे मुझे फौज की कार्य पद्धति ओर व्रितानी सरकार को जानने का अवसर मिला। मुझे पत्रकारिता का अनुभव भी उसी जमाने मे हुआ, क्योकि सभी मोर्चे पर भारतीय फोज के प्रचार का काम मेरे ही जिम्म था और म वहुत हद तक भारतीय फोज के लिए राजनीतिक अधिकारी (पॉलीटिकल कमिश्नर) का काम करने लगा। युद्ध की समाप्ति पर म फौज से अलग हो गया। उस समय मेरे सामने दो रास्ते थे या तो विदेश सेवा से सवद्ध हो जाता या फिर सिविल सेवा से। लेकिन मेने ऐसा नहीं किया।

यह वह जमाना था जव पाकिस्तान के लिए आदोलन ओर भारतीय काग्रेस का स्वाधीनता आदोलन अपने चरम पर था। मेरे एक पुराने मित्र जो एक वडे जमीदार भी थे ओर जो पजाव काग्रेस पार्टी के अध्यक्ष रहने के वाद मुस्लिम लीग मे आ गये थे मुझसे कहने लगे कि मै सिविल सेवा म जाने की इच्छा समाप्त कर दू क्योकि वह लाहौर से एक अग्रेजी दैनिक निकालने की योजना वना रहे थे। उन्हाने उस अखवार का सपादन करने का प्रस्ताव दिया जो मने स्वीकार कर लिया ओर मने जनवरी 1947 म लाहोर आकर *पाकिस्तान टाइम्स* का सपादन सभाल लिया। म चार साल *पाकिस्तान टाइम्स* का सपादक रहा। इसी अवधि मे पाकिस्तान ट्रेड यूनियन का उपाध्यक्ष भी मुझे वना दिया गया। 1948 मे नागासाकी ओर हिरोशिमा पर होने वाली वमवारी के वाद कोरियाई युद्ध भी छिड गया। इस बीच स्काटहोम से यह अपील आयी कि हम शाति-स्थापना के लिए आदोलन चलाये। उस अपील के समर्थन मे अमन कमेटी की स्थापना हुई और मुझे उसका सचालक बना दिया गया। अब म ट्रेड यूनियन, अमन कमटी ओर *पाकिस्तान टाइम्स* तीनो मोर्चे पर सक्रिय था ओर सक्रियता तथा कार्यशेली के लिहाज से यह बहुत व्यस्त समय था। उसी जमाने मे आई एल ओ की एक मीटिग मे भाग लेने के लिए पहली वार देश स वाहर जाने का अवसर मिला। मने सन फ्रांसिस्को के अतिरिक्त जेनेवा मे भी दो अधिवेशना मे भाग लिया और इस तरह अमेरिका और यूरोप से म पहली वार परिचित हुआ।

1950 मे मेरी मुलाकात अपने एक पुराने मित्र से हुई। यह जनरल अकवर ख़ान थे जो उस वक्त फ़ोज मे चीफ आफ़ जनरल स्टाफ नियुक्त हुए थे। जनरल अकवर ने वर्मा ओर कश्मीर के मोर्चे पर होने वाले युद्धा मे वडा नाम कमाया था। मे इस साल मरी म छुट्टिया विताने गया हुआ था। वहीं उनसे भेट हुई। वातो के दोरान उन्होने कहा कि हम लोग फौज मे है। उन्होने यह भी वताया कि जिन्होने कश्मीर मे हुई मोर्चेवदी का सामना किया हे वे देश की वर्तमान परिस्थिति से असतुष्ट ह ओर यह मानते हे कि देश का नेतृत्व कायरो के हाथो म है। हम अभी तक अपना कोई संविधान नही बना पाये। चारा ओर अव्यवस्था ओर वशवाद का चलन हे। चुनाव की कोई सभावना नही, हम लोग कुछ करना चाहते है। मने पूछा क्या करना चाहते हो? उनका जवाव था हम सरकार का तख्ता पलटना चाहते ह आर एक विपक्षी सरकार बनाना चाहते ह। मने कहा यह तो ठीक हे लेकिन उन्हाने मरी राय भी मागी। मने कहा यह ता सव फाजी कदम ह। इसम म क्या राय दे सकता हू। इस पर जनरल अकवर ख़ान ने मुझे अपनी गाष्ठिया मे आन आर उनकी योजनाआ के वारे म जानकारी लेने की वात कही। म अपने दो गेर फ़ाजी

दोस्तो के साथ उनकी गोष्ठी मे गया और उनकी योजनाओ से अवगत हुआ। उनकी योजना यह थी कि राष्ट्रपति भवन, रेडियो स्टेशन वगैरह पर कब्जा कर लिया जाये ओर फिर राष्ट्रपति से यह घोषणा करवा दी जाये कि सरकार का तख्ता पलट दिया गया है और एक विपक्षी सरकार सत्ता मे आ गयी है। छ महीने के भीतर चुनाव कराये जायेगे ओर देश का संविधान निर्मित किया जायगा। इसके अतिरिक्त अनगिनत सुधार किये जायगे। इस पर पाच छ घटे तक बहस होती रही ओर अतत यह तय हुआ कि अभी कुछ न किया जाये क्योकि अभी देश किसी भी ऐसी स्थिति से नही जूझ रहा है कि जिसके आधार पर जनता को आदोलित किया जाये। दूसरे, इस तरह की योजनाओ के क्रियान्वयन मे खतरो का सामना करना पडता है। उस समय पाकिस्तान के प्रधानमत्री लियाकत अली खान थे। किसी तरह इस योजना की खबर सरकार के कानो तक पहुच गयी। मै तो इस अवधि मे उन सभी घटनाओ को भूल चुका था कि अचानक सुबह चार बजे मेरे घर को फौजियो ने घेर लिया ओर मुझसे कहा गया कि मै उनके साथ चलू। मैने कारण पूछा तो मुझे जवाब मिला कि मुझे गवर्नर जनरल के आदेश से गिरफ्तार किया जा रहा है। चार महीने तक मुझे कैद रखा गया ओर फिर मुझे मालूम हुआ कि मुझे क्यो कैद किया गया। सविधान सभा ने एक विशेष अधिनियम को पारित किया ओर उसे रावलपिडी षड्यत्र अधिनियम का नाम दिया गया। उस अधिनियम के तहत हम पर गुप्त मुकद्दमा चलाया गया। अग्रेजो के जमाने से ही षड्यत्र सबधी कानून बडे खराब थे। आप कुछ कर नही सकते थे। अगर यह सिद्ध हो जाये कि दो व्यक्तियो ने मिलकर कानून तोडने की योजना बनायी है तो उसे षड्यत्र का नाम दे दिया जाता था ओर अगर कोई तीसरा व्यक्ति इसकी गवाही दे दे तो फिर अपराध सिद्ध मान लिया जाता था। सरकार ने अधिनियम बनाकर बचाव करने की सभी सभावनाओ को समाप्त कर दिया था। बनाये जाने वाले अधिनियम के तहत तो केवल सजा ही मिल सकती थी, भागने का कोई रास्ता भी नहीं था। यह मुकद्दमा डेढ साल तक चलता रहा ओर हममे से हर एक के लिए उसके पद के अनुसार भिन्न-भिन्न दड निश्चित किये गये। जनरल को दस साल, ब्रिगेडियर को सात साल कर्नल को छ साल ओर हम सब असैनिको को उससे कम यानी चार साल की कैद की सजा सुनायी गयी।

मेरी हिरासत का यही वह समय था जो रचनात्मक रूप से मेरे लिए बहुत उर्वर सिद्ध हुआ। मेरे पास लिखने-पढने के लिए वक्त ही वक्त था, फिर मुझमे शासको के विरुद्ध बहुत आक्रोश ओर क्रोध था, क्योकि मै निर्दोष था।

इसी अवधि मे मेरी शायरी के दो सग्रह, काल कोठरी के उस दौर मे तैयार हो गये। एक तो हिरासत के दिनो मे ही प्रकाशित हो गया था और दूसरा मेरी रिहाई के बाद प्रकाशित हुआ। जब आप को चार साल के करीब जेल मे रखा गया हो ओर बदी होने का दुख भी आपके हिस्से मे आया हो, तो निश्चित रूप से बाहर की दुनिया मे आपका मूल्य बढ जाता है। जब मै जेल से बाहर आया तो मुझे अनुभव हुआ कि मै पहले की तुलना मे अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय हो गया हू। मै दोबारा *पाकिस्तान टाइम्स* से जुड गया ओर मैने अमन कमेटी तथा ट्रेड यूनियन से अपने सबध फिर से स्थापित कर लिये। यह तीन चार साल का समय ऐसी ही गहमागहमी मे गुजर गया। पाकिस्तान मे वामपथी आदोलनो पर पाबदी लगा दी गयी। यही स्थिति तीन चार साल तक जारी थी कि देश मे पहला मार्शल लॉ लागू हो गया और पहली सैनिक सरकार स्थापित हो गयी, जिसका अर्थ था कि किसी भी व्यक्ति को बिना किसी अपराध के गिरफ्तार किया जा सकता है। उस समय के मार्शल लॉ ने एक अत्याचार यह भी किया कि हर उस

व्यक्ति को पकडना शुरू कर दिया गया जिसका नाम 1920 के बाद की पुलिस रिपोर्टो मे दर्ज मिला था। इस तरह जेल मे हमे नव्वे साल और अस्सी साल के बूढे मिले, कुछ की तपेदिक तथा अन्य बीमारियों के कारण जेल मे ही मृत्यु हो गयी। मैने लाहोर किला म डेढ महीने गुजारा और फिर चार पाच महीने के बाद मुझे रिहा कर दिया गया। मैने फिर *पाकिस्तान टाइम्स* के दफ्तर की ओर रुख किया और तब मैने देखा कि उसका दफ्तर पुलिस के घेरे मे था। मेरे पूछने पर पता चला कि *पाकिस्तान टाइम्स* पर फोजी सरकार ने कब्जा कर लिया है ओर इस तरह मेरी पत्रकारिता का अत हो गया। मै ऊहापोह मे था कि क्या करू। उन दिना एक अमीर वर्ग जो मेरी शायरी को पसद करता था, मेरी चिता से अवगत था। उन लोगो ने पूछा आप क्या करना चाहते हे? मने कहा मुझे नही मालूम तो किसी ने सुझाव दिया, क्यो न सस्कृति से सबधित कोई गतिविधि आरभ की जाये। मैने कहा यह अच्छा विचार है और इस प्रकार हमने लाहौर मे 'आर्ट कौसिल' की स्थापना की। कोसिल एक पुराने ओर टूटे-फूटे घर मे थी जो आज के आलीशान भवन जैसा आकर्षक नहीं था। कौसिल का आरभ हुआ और उसके भवन मे प्रदर्शनियो, नाटको ओर आयोजनो का ताता लगा रहता था। तीन चार साल तक यह गतिविधि चलती रही और मै इसी अवधि मे बीमार पड गया। पहली बार दिल का दोरा पडा। और इसी बीच मुझे लेनिन विश्व शांति पुरस्कार दिये जाने की घोषणा हुई। किसी ने मुझे फोन पर ख़बर सुनायी तो मुझे विश्वास नहीं हुआ, मैने जवाब मे कहा—बकवास मत करो, मे पहले ही बीमार हू। मेरे साथ ऐसा मजाक न करो। उसने उत्तर मे कहा, मेने टेलीप्रिंटर पर यह ख़बर ख़ुद देखी है, तुम्हारे साथ पुरस्कार पाने वालो मे पिकासो और दूसरे भी है।

जब मै स्वस्थ हो गया तो मुझे पुरस्कार ग्रहण करने ओर मास्को आने के लिए आमन्त्रित किया गया। मे मास्को के बाद लदन चला गया और लदन मे दो वर्ष तक रहा। मे लदन से लाहौर आने के बजाय कराची लौट आया। कराची मे मे मिस्टर महमूद हारून के निवास स्थान पर ठहरा। उनकी बहन जो डाक्टर थी ओर मेरी मित्र थी उन्होने मुझे लिखा कि श्रीमाती हारून बीमार है और आपको देखना ओर मिलना चाहती हे। मेरे आने पर श्रीमती हारून ने मुझे बताया कि उनका जो फलाही फ़ाउडेशन है उसके अधीन स्कूल, अस्पताल और अनाथालय चल रहा हे। उनके लडके के पास फ़ाउडेशन चलाने के लिए समय नही है क्योकि वह व्यापार तथा राजनीतिक गतिविधियो मे व्यस्त रहे है। अच्छा होगा कि फ़ाउडेशन की व्यवस्था मै सभाल लू। मैने फाउडेशन के स्थान पर उसकी गतिविधियो का निरीक्षण किया तो देखा कि वह गदी बस्ती का इलाका था, जहा मछुआरे, ऊट वाले, नशीली दवाओ का व्यापार करने वाले और आपराधिक गतिविधियों मे लिप्त व्यक्ति रहा करते थे। मुझे यह इलाका अच्छा लगा, ओर हमने इस क्षेत्र मे अपनी गतिविधि तेज कर दी। स्कूल को कॉलेज मे परिवर्तित कर दिया, एक तकनीकी सस्थान भी स्थापित किया ओर अनाथालय की भी व्यवस्था की। इस प्रकार कोई आठ साल तक मै शैक्षणिक और प्रशासनिक गतिविधियो से जुडा रहा। इस बीच 65 ओर 71 के युद्ध भी हुए। इन दोनो युद्धो के दौरान म अत्यधिक मानसिक तनाव से प्रभावित रहा। उसका कारण यह था कि मुझसे बार बार देशभक्ति के गीत लिखने की फरमाइश की जा रही थी। मेरे इनकार पर यह जोर दिया जाता कि देशभक्ति और मातृभूमि की माग यही हे कि मे युद्ध के या देशभक्ति के गीत लिखू। लेकिन मेरा तर्क यह था कि युद्ध अनगिनत व्यक्तियो के लिए मृत्यु का कारण बनेगा और दूसरे पाकिस्तान को इस युद्ध से कुछ नहीं मिलने वाला ह। इसलिए म युद्ध के लिए कोई गीत नही लिखूगा। लेकिन मने 65 और 71 के युद्धा

के विषय मे नज्मे लिखी, 65 के युद्ध से सबधित मेरी दो नज्मे ह।

बाग्लादेश युद्ध के जमाने मे मेने तीन-चार नज्म लिखी। लेकिन उन नज्मा की रचना म युद्ध गीतो का आग्रह करने वालो को मुझसे ओर भी निराशा हुई। परिणामस्वरूप मुझे सिध म भूमिगत हो जाना पडा। युद्ध समाप्त हुआ तो पाकिस्तान के दो टुकडे हो चुके थे।

चुनाव के बाद फोजी सरकार समाप्त हो गयी थी ओर भुट्टो के नेतृत्व म पीपुल्स पार्टी की सरकार स्थापित हो चुकी थी। उनसे मेरे अच्छे सबध थे—उस जमाने म जब वह विदेश मत्री थे और उस समय भी जब वह विपक्षी पार्टी के नेता थे। उन्हाने मुझे अपने साथ काम करने के लिए आमत्रित किया। मेने पूछा मेरा काम क्या होगा, तो उन्होने स्पष्ट किया कि मे पहले से ही सास्कृतिक गतिविधियो मे भागीदार रह चुका हू। क्यो न उसी क्षेत्र मे राष्ट्रीय स्तर पर कुछ काम करू। मने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और नेशनल कौसिल ऑफ आर्ट्स (राष्ट्रीय कला परिषद्) की स्थापना की। इसके अतिरिक्त मेने 'फोक आर्ट्स' जो अब 'नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ फोक हेरिटेज' हे, की स्थापना की। मे इन परिषदो की दख-रेख मे चार साल तक व्यस्त रहा कि सरकार फिर से वदल गयी। इस अवधि म मेरा गद्य ओर पद्य लिखने का क्रम लगातार जारी रहा। इसी अवधि मे मेरी शायरी का अग्रेजी, फ्रासीसी, रूसी तथा अन्य दूसरी भाषाओ मे अनुवाद होता रहा। जियाउल हक के शासन काल मे मेरे प्रभाव को नकार दिया गया। वेसे भी इस सरकार मे सस्कृति का महत्व पहले जैसा नही रहा था, मेने सोचा मुझे कुछ और करना चाहिए।

मै एशियाई और अफ्रीकी साहित्यकार सगठन के लिए कुछ-न-कुछ करता ही रहता था। उनकी गोष्ठियो में भी भागीदारी होती रहती थी। उस सगठन का दफ्तर काहिरा मे था जहा से उस सगठन की पत्रिका *लोटस* (*Lotus*) का प्रकाशन होता था।

कैप डेविड समझौते के बाद अरब के लोगो का यह अनुरोध था कि उसका दफ्तर काहिरा से कहीं और स्थानातरित कर दिया जाये। *लोटस* का मुख्य सपादक जो सगठन का सचिव भी था, उसकी साइप्रस मे गोली मार कर हत्या कर दी गयी थी। अब *लोटस* का सपादन करने वाला कोई नही था। इस समय एफ्रो एशियाई साहित्यकार सगठन का दफ्तर कहीं नही था। इस पत्रिका के सपादन के लिए मुझे आमत्रित किया गया और यह भी फेसला हुआ कि सगठन का दफ्तर बैरूत मे स्थानातरित कर दिया जाये। मे अफ्रीकी एशियाई साहित्यकारो के सगठन ओर उसकी पत्रिका *लोटस* से चार साल तक जुडा रहा और फिर हमे इससे फुर्सत मिल गयी।

बैरूत पर आक्रमण के एक महीने बाद मै किसी-न किसी तरह वहा से निकलने मे सफल हो गया और पाकिस्तान पहुच गया। यहा आते ही म एक बार फिर बीमार हो गया।

अब जो यह एलिस के बारे मे आप लोग पूछ रहे हे तो मै बताऊ। जब म कॉलेज मे पढाने लगा था तो जेसा मैने बताया, मेरे कुछ साथी आक्सफोर्ड से वापस लौटे तो वे मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक थे। उसी मे एक साथी जो मार्क्सिस्ट था उसकी पत्नी जो अग्रेज थी वह भी मार्क्सिस्ट थी। एक दिन उसने मुझसे पूछा, तुम उदास ओर निराश क्यो रहते हो, फिर स्वय ही बोली, तुम्हे इश्क हो गया हे क्या? तुम बीमार लगते हो। उसने कुछ किताबे मुझे दी ओर कहा कि उन्हे पढ़ू—उसने स्पष्ट किया, तुम्हारा दुख बहुत कुछ व्यक्तिगत ढग का है। जरा पूरे हिदुस्तान पर नजर डालो, अनगिनत लोग भूख और बीमारी के शिकार ह। तुम्हारा दुख तो उनकी तुलना मे कुछ भी नही हे। और तब प्रेम के विषय से मेरा ध्यान हट गया ओर मेने व्यापक सदर्भो म सोचना आरभ कर दिया। मेरी नज्म 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी

आपबीती दास्तान—दो

फैज अहमद फैज

हमारे शायरो का हमेशा यह शिकायत रही है कि जमाने ने उनकी कद्र नहीं की। हमे इससे उलट शिकायत यह ह कि हम पे लुत्फ़ो-इनायात की इस कदर वारिश रही हे, अपने दोस्ता की तरफ़ से, अपने मिलनेवालो की तरफ से ओर उनकी जानिब से भी जिनको हम जानते भी नही—कि अक्सर दिल मे हिचक महसूस होती है कि इतनी तारीफ़ ओर वाहवाही पाने का हकदार होने के लिए जो थोडा वहुत काम हमने किया है, उससे वहुत जियादा हमे करना चाहिए था।

यह कोई आज की वात नहीं है। वचपन ही से इस किस्म का असर ओरा पर रहा हे। जव हम वहुत छाटे थे, स्कूल म पढते थे, तो स्कूल के लडका क साथ भी कुछ इसी किस्म के तअल्लुकात कायम हा गये थे। ख़ाहमख़ाह उन्होने हमे अपना लीडर मान लिया था, हालांकि लीडरी के गुन हमें नही थे। या तो आदमी वहुत लट्ठवाज हो कि दूसरे उनका रोव मान, या वह सवसे वडा विद्वान हो। हम पढ़ने-लिखने म ठीक थे, खेल भी लेते थे, लेकिन पढ़ाई म हमने कोई ऐसा कमाल पेदा नहीं किया था कि लोग हमारी तरफ़ जरूर ध्यान दे।

वचपन का म सोचता हू तो एक यह वात ख़ास तोर से याद आती हे कि हमारे घर म ओरतो का एक हुजूम था। हम जो तीन भाई थे उनमें हमारे छाटे भाई (इनायत) आर वडे भाई (तुफेल) घर की ओरतो से वागी होकर खलकूद मे जुट रहते थे। हम अकेले उन ख़वातीन के हाथ आ गये। इसका कुछ नुकसान भी हुआ ओर कुछ फ़ायदा भी। फायदा तो यह हुआ कि उन महिलाओ ने हमको इंतिहाई शरीफ़ाना जिंदगी वसर करने पर मजवूर किया, जिसकी वजह से कोई असभ्य या उजड्ड किस्म की वात उस जमाने मे हमार मुह से नही निकलती थी। अव भी नही निकलती। नुकसान यह हुआ, जिसका मुझे अक्सर अफ़सोस हाता ह, कि वचपन के खिलदडेपन या एक तरह की मोजी जिंदगी गुजारने से हम कटे रहे। मसलन यह कि गली म कोई पतग उडा रहा हे, कोई गोलिया खेल रहा ह, कोई लट्टू चला रहा हे, हम सव खेलकूद देखते रहे थ, अकेले वैठकर। 'होता है शवो रोज तमाशा मेरे आगे वाला मामला। हम उन तमाशा के सिर्फ़ तमाशाई वने रहते, और उनम शरीक़ होने की हिम्मत इसलिए नही होती थी कि उसे शरीफाना शगूल या शरीफाना काम नही समझते थे।

उस्ताद भी हम पर मेहरवान रहे। आजकल की म नहीं जानता, हमारे जमाने मे तो स्कूल म सख़्त

फेज के काव्य सग्रह शामे शहरे यारा का आरंभिक गद्य भाग। —सपादक

इनके दो प्रभाव बहुत गहरे पड़े। एक तो यह कि [illegible] हमें [illegible] और [illegible]। दूसरा यह कि अपने दोनों [illegible] और उनकी [illegible] गुणगान और [illegible] मिला जो [illegible] दोनों और [illegible] में मिला और आज भी मिल रहा है।

सुबह हम अपने अब्बा के साथ फज्र की नमाज पढ़ने मस्जिद जाया करते थे। मामूल (नियम) था कि अजान के साथ हम उठ बैठें, अब्बा के साथ मस्जिद गये नमाज अदा की और फिर कुछ देर मौलवी [illegible] साहब निजामाबादी से जो अरबी फारसी के बड़े फाजिल (विद्वान) थे कुरान शरीफ का पाठ पढ़ा समझा। अब्बा के साथ कुछ देर [illegible] घर के लिए [illegible]। घर पर अब्बा बोला किया करते, हम लिखा करते। उस जमाने में उन्हें खुद लिखने में कुछ दिक्कत होती थी। हम उनके सेक्रेटरी का काम अंजाम देते थे। उन्हें अखबार भी पढ़कर सुनाते थे। इन सब कामों में लगे रहने का फायदा हमें बचपन में बहुत फायदा हुआ। उर्दू-अंग्रेजी अखबारात पढ़ने और खत लिखने की वजह से हमारी जानकारी काफी बढ़ी।

एक और बात यह हुई। हमारे घर से मिली हुई एक दुकान थी जहां किताबें किराये पर मिलती थीं। एक किताब का किराया दो पैसे होता। वहां एक साहब हुआ करते थे जिन्हें सब 'भाई साहब' कहते थे। भाई साहब की दुकान में उर्दू साहित्य का बहुत बड़ा भंडार था। हमारी छोटी-सी उम्र के विद्यार्थी-युग में जिन किताबों का रिवाज था, वह आजकल करीब-करीब नापैद हो चुकी हैं जैसे—तिलिस्म होशरुबा, फसानए-आजाद, अब्दुल हलीम शरर के नॉवल वगैरह। ये सब किताबें पढ़ डालीं इसके बाद शायरों का कलाम पढ़ना शुरू किया। दाग का कलाम पढ़ा। मीर का कलाम पढ़ा। गालिब तो उस वक्त बहुत ज़ियादा हमारी समझ में नहीं आया। दूसरों का कलाम भी आधा समझ में आता था और आधा नहीं आता था। लेकिन उनका दिल पर असर कुछ अजब किस्म का होता था। यों शेर से लगाव पैदा हुआ और साहित्य में दिलचस्पी होने लगी।

हमारे अब्बा के मुंशी घर के एक तरह के मैनेजर भी थे। हमारा उनसे किसी बात पर मतभेद हो गया तो उन्होंने कहा—'अच्छा, आज हम तुम्हारी शिकायत करेंगे कि तुम नॉवल पढ़ते हो स्कूल की किताब पढ़ने की बजाय छुपकर अंट-शंट किताब पढ़ते हो।' हम इस बात से बहुत डर गये, और हमने उनकी बहुत मिन्नत की कि शिकायत न करें, मगर वह न माने और अब्बा से शिकायत कर ही दी। अब्बा ने हमें बुलाया और कहा—'मैंने सुना है, तुम नॉवेल पढ़ते हो।' मैंने कहा—'जी हां।' कहने लगे—'नॉवेल ही पढ़ना है तो अंग्रेजी नॉवेल पढ़ो उर्दू के नॉवल अच्छे नहीं होते। शहर के किले में जो लायब्रेरी है, वहां से नॉवेल लाकर पढ़ा करो।'

हमने अंग्रेजी नॉवेल पढ़ना शुरू किये। डिकेंस, हार्डी और न जाने क्या-क्या पढ़ डाला। वह भी आधा

समय म आता था और आधा पल्ले न पडता था। मगर इस पढ़ने की वजह से हमारी अग्रेजी वेहतर हो गयी। दसवीं जमात मे पहुचने तक महसूस हुआ कि वाज उस्ताद पढाने मे गलतिया कर जाते है। हम उनकी अग्रेजी दुरुस्त करने लगे। इस पर हमारी पिटाई तो न हुई, अलवत्ता वो उस्ताद कभी खफा हो जाते ओर कहते–'अगर तुम्हे हमसे अच्छी अग्रेजी आती हे तो फिर तुम ही पढाया करो, हमसे क्यो पढते हो।'

उस जमाने म कभी-कभी मुझ पर एक ख़ास किस्म का भाव छा जाता था। जेसे, यकायक आस्मान का रग वदल गया है–वाज चीजे कहीं दूर चली गयी हे धूप का रग अचानक मेहदी का सा हो गया हे पहले जो देखने मे आता था, उसकी सूरत विल्कुल वदल गयी हे। दुनिया एक तरह की पर्दए-तस्वीर के किस्म की चीज महसूस होने लगती थी। इस कैफीयत (भावना) का वाद मे भी कभी-कभी एहसास हुआ है, मगर अव नही होता।

मुशायरे भी हुआ करते थे। हमारे घर से मिली हुई एक हवेली थी जहा सर्दियो के जमाने मे मुशायरे किये जाते थे। सियालकोट म पंडित राजनारायन 'अरमान' हुआ करते थे, जो इन मुशायरो के इतिजामात किया करते थे। एक वुजुर्ग मुशी सिराजदीन मरहूम थे–अल्लामा इकवाल के दोस्त, श्रीनगर मे महाराजा कश्मीर के मीर मुशी, वह सदारत किया करते थे। जव दसवीं जमात मे पहुचे तो हमने भी तुकवदी शुरू कर दी, ओर एक-दा मुशायरों मे शेर पढ दिये। मुशी सिराजदीन ने हमसे कहा–'मिया, ठीक हे, तुम वहुत तलाश से (परिश्रम से) शेर कहते हो, मगर यह काम छोड दा। अभी तो तुम पढो लिखो, ओर जब तुम्हारे दिलो-दिमाग मे पुख़्तगी आ जाये तव यह काम करना। इस वक्त यह महज वक्त की वर्वादी हे।' हमने शेर कहना वद कर दिया।

अव हम मरे कालेज सियालकोट मे दाख़िल हुए, और वहा प्रोफेसर यूसुफ सलीम चिश्ती उर्दू पढाने आये, जो इकवाल के मुफ़स्सिर (भाष्यकार) भी है। तो उन्होने मुशायरे की तरह डाली। आर कहा–'तरह' पर[1] शेर कहो। हमने कुछ शेर कहे, ओर हम वहुत दाद मिली। चिश्ती साहव ने मुशी सिराजदीन से विल्कुल उलटा मशविरा दिया आर कहा–फोरन इस तरफ तवज्जुह करो, शायद तुम किसी दिन शायर हो जाओ।

गवर्नमेट कॉलेज लाहोर चले गये। जहा बहुत ही फाजिल और मुश्फिक (विद्वान ओर स्नेही) उस्तादो से नियाजमदी हुई। पतरस वुखारी थे, इस्लामिया कालेज मे डॉक्टर तासीर थे, वाद मे सूफी तवस्सुम साहव आ गये। इनके अलावा शहर के जो वडे साहित्यकार थे–इम्तियाज अली ताज थे, चिरागहसन हसरत, हफीज जालधरी साहव थे, अख़्तर शीरानी थे–उन सबसे निजी राह-रस्म हो गयी। उन दिनो पढानेवालो और लिखनेवाला का रिश्ता अदव (साहित्य) के साथ-साथ कुछ दोस्ती का-सा भी होता था। कॉलेज की क्लासो म तो शायद हमने कुछ जियादा नही पढा, लेकिन उन वुजुगो की सुह्वत और मुहब्बत से बहुत-कुछ सीखा। उनकी महफिलो मे हम पर शफक़त[2] होती थी, और हम वहा से वहुत-कुछ हासिल करके उठते थे।

हमने अपने दोस्तो से भी बहुत सीखा। जव शेर कहते तो सबसे पहले ख़ास दोस्तो ही को सुनाते

---

1 दिये हुए साचे पर

2 स्नेहयुक्त आशीष की भावना

थे। उनसे दाद मिलती तो मुशायरा म पढ़त। अगर कोइ शेर खुद पसद न आया, या दास्ता न कहा, निकाल दो, तो उसे काट देत। एम ए म पहुचन तक बाक़ायदा लिखना शुरू कर दिया था।

हमारे एक दास्त ह ख़्वाजा खुर्शीद अनवर। उनकी वजह स हम सगीत मे दिलचस्पी पेदा हुइ। खुर्शीद अनवर पहले तो दहशतपसद (क्रांतिकारी) थ, भगतसिह ग्रुप म शामिल। उन्ह सजा भी हुइ, जो वाद में माफ़ कर दी गयी। दहशतपसदी तर्क करके वह सगीत की तरफ आ गय। हम दिन म कॉलज जाते ओर शाम को खुर्शीद अनवर के वालिद ख़्वाजा फीरोजुद्दीन मरहूम की वेठक म वडे वड उस्तादा का गाना सुनते। यहा उस जमाने के सब ही उस्ताद आया करत थ उस्ताद तवक्कुल हुसन ख़ा, उस्ताद अब्दुल वहीद खा, उस्ताद आशिक अली ख़ा, आर छोटे गुलाम अली ख़ा वगरह। इन उस्तादा क साथ क आर हमार दोस्त रफीक गजनवी मरहूम से भी सुह्वत हाती थी। रफीक़ ला-कॉलेज म पढ़त थ। पढते तो खाक थे, वस रस्मी तोर पर कॉलेज म दाख़िला ले रक्खा था। कभी खुर्शीद अनवर क कमरे म आर कभी रफीक़ के कमरे मे वेठक हो जाती थी। गरज इस तरह हम इस फन्ने-लतीफ (ललित-कला) से आनद का काफी मोका मिला।

जब हमारे वालिद गुजर गये तो पता चला कि घर म खाने तक को कुछ नहीं ह। कई साल तक दर-ब-दर फिरे ओर फाकामस्ती की। इसम भी लुत्फ आया, इसलिए कि इसकी वजह से 'तमाशाए-अहले-करम'[3] देखने का वहुत माका मिला, खास तार स अपन दोस्ता से। कॉलेज म एक छोटा-सा हल्क़ा (मडली) वन गया था। कोयटा के हमारे दोस्त थ, एहतिशामुद्दीन ओर शेख अहमद हुसेन, डॉ हमीदुद्दीन भी इस हल्के मे शामिल थे। इनके साथ शाम को महफिल रहा करती। जवानी के दिना मे जो दूसरे वाकिआत होते ह वह भी हुए, ओर हर किसी के साथ हाते ह।

गर्मियो मे कॉलेज वद होते, तो हम कभी खुर्शीद अनवर ओर भाई तुफ़ेल के साथ श्रीनगर चले जाया करते, ओर कभी अपनी वहन के पास लायलपुर पहुच जात। लायलपुर मे वारी अलीग ओर उनके गिरोह के दूसरे लोगो से मुलाकात रहती। कभी अपनी सवसे वडी वहन के यहा धरमशाला चले जाते जहा पहाड की सीनरी देखने का माका मिलता, आर दिल पर एक ख़ास किस्म का नक्श (गहरा प्रभाव) हाता। हम इनसानो से जितना लगाव रहा, उतना कुदरत के मनाजिर (सीन-सीनरी) आर नेचर के हुस्न को देखने परखने का नही रहा। फिर भी उन दिनो मेने महसूस किया कि शहर के जो गली मुहल्ले ह उनमे भी अपना एक हुस्न है जो दरिया और सहरा, कोहसार या सर्व-ओ समन से कम नही। अलबत्ता उसका देखने के लिए बिल्कुल दूसरी तरह की नजर चाहिए।

मुझे याद है, हम मस्ती दरवाजे के अदर रहते थे। हमारा घर ऊची सतह पर था। नीचे नाला वहता था। छोटा-सा एक चमन भी था। चार-तरफ वागात थे। एक रात चाद निकला हुआ था। चादनी नाले और इर्द गिर्द के कूडे-करकट के ढेर पर पड रही थी। चादनी और साये, ये सब मिलकर कुछ अजब भेद भरा-सा मजर वन गये थे। चाद की इनायत से उस सीन पर भद्दा पहलू छुप गया था और कुछ अजीब ही किस्म का हुस्न पैदा हो गया था, जिसे मेने लिखने की कोशिश भी की हे। एकाध नज़्म मे यह मजर खेचा हे जव शहर की गलियो मुहल्लो ओर कटरो मे कभी दोपहर के वक्त कुछ इसी किस्म

3 पैसवालो की कृपा का नाटक
(गालिब का शेर हे वनाकर फकीरा का हम भेस गालिव/तमाशाए-अहले करम देखते हे)

का रूप आ जाता है जसे मालूम हा काई परिस्तान ह। 'नीम शब ,
खामुशी के बोझ से चूर', वगैरह उसी जमाने स सबध रखती ह।

एम ए म पहुचे तो कभी क्लास म जाने की जरूरत महसूस हु
किताबे जो कोर्स मे नहीं थीं पढ़ते रहे। इसलिए इम्तिहान म का
लकिन मुझे मालूम था कि जो लोग अव्वल-दोअम आते ह हम उन
उनस कम ही क्यो न हो। यह बात हमार उस्ताद लाग भी जानते थे
डिकिन्सन या प्रोफ़ेसर कटपालिया थे, लक्चर देन का जी न चाहत
लक्चर दो, एक ही बात है। अलबत्ता प्रोफसर बुख़ारी बड कायद
थ। प्रोफसर डिकिन्सन के जिम्मे उन्नीसवीं सदी का नसूरी अदब
दरअस्ल काइ दिलचस्पी नहीं थी। इसलिए हमस कहा—दा-तीन ल
लायक लडक हमारे साथ थे, उनसे भी कहा—दा-दा तीन-तीन लेक्च
वगरह क बार म कुछ पूछना हो तो आके हमसे पूछ लना। चुनांच
गय थ।

शुरू-शुरू म शायरी के दौरान मे, या कॉलेज क जमान म ह
शायर बनग। सियासत वगैरह तो उस वक्त जेहन म बिल्कुल ही न
(आदोलनो) मसलन कांग्रेस तहरीक, खिलाफत तहरीक, या भगत
तो जेहन मे थे, मगर हम खुद इनम स किसी किस्म म शरीक
शुरू मे ख़याल हुआ कि हम काइ बड क्रिकेटर बन जाय,
था और बहुत खेल चुके थे। फिर जी चाहा, उस्ताद बनना चाहिए
कोई बात भी न बनी। हम क्रिकेटर बन न आलोचक और न मिश
होकर अमृतसर चल गये।

हमारी जिदगी का शायद सबसे खुशगवार जमाना अमृतसर ह
तो कई इस वजह से, कि जब हम पहली दफा पढान का मौका
विद्यार्थियो से दोस्ती का लुत्फ़, उनस मिलने और रोजमर्रा की र
ओर उन्ह पढ़ाने का लुत्फ़। उन लोगो से दोस्ती अब तक कायम
सजीदगी से शेर लिखना शुरू किया। तीसर यह कि, अमृतसर ही
सूझ-बूझ अपने कुछ साथियो की वजह स पदा हुइ, जिनम महमूदु
मे डॉक्टर तासीर आ गये थे। यह एक नयी दुनिया साबित हुई।
निवर्सीज' की एक अजुमन (संस्था) बनी, तो उसमे काम किया, त
सगठन म काम किया। इन सबसे जेहनी तस्कीन (मानसिक बौद्धि

यादों के साये

एलिस फैज

यह बात लगभग नामुमकिन है कि किसी ऐसे व्यक्ति के बारे मे ओपचारिक आदर-भाव के साथ बात की जाये जो चौबीस साल तक रगे-जा की तरह साथ रहा हे—एक ऐसा व्यक्ति जो मेरा पति हे।

फैज पर लिखते समय जाती बाते ओर साथ झेले हुए अनुभव विचित्र आकर्षण की तरह दामने दिल को खीचते हे। लेकिन जब यह चुनने का प्रश्न उठे कि क्या लिखू तो वही बात चुननी चाहिए, जो दूसरो के जीवन पर अपने प्रभाव की मुहर लगा सके, दूसरो के दिलो को यू छू ले कि उनका स्पर्श मुस्कान आर मुक्त हसी को जन्म दे सके, यही नही, बल्कि जो बाते आसुओ के सीमाचल तक पहुचा दे।

मै विगत दिनो की ओर देखती हू मेरी निगाहे अनिवायत बदीगृह के दरवाजे से होकर विगत तक पहुचती है। जेल के ये साल हमारे सम्मिलित जीवन मे एक अवरोधक अतराल की तरह नजर आते हे। मगर इन बरसो ने हम दोनो को वह कुछ दिया हे जो किसी तरह भी हम हासिल नही कर सकते थे, चद साल, जिनमे घुटनिया चलती हुई एक बच्ची छोटी-सी लडकी बन गयी, जिनमे एक लडकी धीरे-धीरे नोजवान महिला बन गयी, जिसमे जीवन के एक अचानक मोड की तरह 'किसी' के सर के बालो पर सफेदी छाने लगी, ओर किसी चेहरे पर झुर्रिया आहिस्ता-आहिस्ता अपना जाल बुनती रही। जेल के दरवाजे अवरोधस्वरूप हमारे बीच म थे, लेकिन उन दरवाजो म दाखिल होते हुए, उनसे निकलते हुए जजीरो की झनकार और तालो मे कुजियो के घूमने की आवाज के साथ जजीरो-बडिया से बधे ये दिन अपने पीछे पीछे हर्ष और आनद से भरे-पूरे क्षण लेकर आये अविश्वसनीय रूप से मानो आचल मे फूलो का उपहार लिये, ये क्षण। मे उन दिनो के गम बल्कि गमो की बात नहीं करुगी। क्योकि मोत (और गम) ने अपनी इच्छाए हम दोना को सापी हे। मे तो खुशी के क्षणो की याद ताजा करना चाहती हू, ताकि सूरज की रोशनी से ये बीते हुए क्षण जगमगा उठे हालाकि मै जानती हू कि साये भी उतने ही प्यारे होत ह।

जब माच की एक सुब्ह को फेज ने मुझे ओर सोते हुए बच्चो को खुदा हाफिज कहा तो मेर सामन सबस पहला और सगीन मस्अला यह था कि चार सो रुपये मासिक की आमदनी से घर को केसे चलाया जायेगा। न चाहते हुए भी उदास दिल से हमने शफीउल्ला के अलावा दूसर पुराने नोकरो को अलग कर दिया, शफीउल्ला, जो अब भी हमारे साथ है। सहज-स्वभाव, अपनापे की मूर्ति, फेज की सोतेली बहन हमार साथ रहने के लिए आ गयी ताकि वह बदले हुए हालात म जिदगी बसर करने मे मेरी मदद कर सके।

पहली चोट हमारे वच्चा पर पडी। क्वीन मेरी कॉलज से उनका नाम कटवाकर कन्याज मिशन स्कूल म दाखिल कराना पडा। मुझे ता इस वात का अदाजा वाद म हुआ कि यह फसला हमारा वच्चिया क लिए कितना लाभकर सिद्ध हुआ। मुनीजा अक्सर मुझे वुरा भला कहती 'जव अव्वा यहा थ ता मर पास एक आया थी। स्कूल म झूल थ, चकरघिन्नी थी, तरह-तरह क खल थ ।' अपनी नयी परिस्थिति म उस फर्श पर वठना पडता था। लेकिन प्रार्थना पद्धति क नय रूपा न उसम एक अजीव सा वाद्धिक मानसिक उत्साह पेदा कर दिया था मेरी ननद की आपत्तिया के वावजूद वह रात का साने स पहले अपने घुटना पर झुककर, सज्दे के लिए आधी झुकी सी भाव-मुद्रा म, 'आस्मानी वाप' (परमेश्वर) की स्तुति विगडी हुई ओर किंचित हास्यास्पद सी उर्दू म करती। एक रात जव वह अपने स्रष्टा स विनती करने मे लीन थी आर हम उसे सुलान के लिए प्रतीक्षा कर रहे थ उसन कहा—'आर आस्मानी वाप तुम जा हेदरावाद जेल म हो, जल्दी से वापस आ जाओ।' जव हमन अपनी घुटी हुइ हसी पर कावू पा लिया आर मुनीजा की शेप प्रार्थना सुन ली, तो उसे विस्तर म लिटा दिया। फिर उस (अर्द्धनिद्रा की दशा म) यह कहते हुए सुना 'वाजी वहुत जल्द सव कुछ ठीक हो जायेगा।'

जेल मे मुलाकात की इजाजत मुद्दता की प्रतीक्षा के वाद मिलती ह, आर हर मुलाकात की याद (अगली मुलाकात तक) हम सीने म लगाय रहते। अगली मुलाकात तक हर पिछली मुलाकात की एक एक निगाह, एक-एक शब्द, अग-परिचालन की एक एक गति का हृदय आर मस्तिष्क म परम निधि के समान सुरक्षित रखते। ये मुलाकात दो-तीन महीन म एक वार होती। हर मुलाकात के लिए हम सिध मरुभूमि के विस्तारो को पार करना पडता। य यात्राए थका दने वाली थीं। आर फिर उस थकन पर खर्चो का वोझ। जेलर हर मुलाकात की निगरानी करता। खास तार पर मेरी मुलाकात की निगरानी, क्याकि मुझ 'सभावित जानकारिया का माध्यम समझा जाता था। हम मुलाकात क उन क्षणा को हलकी फुलका घटनाओ आर मित्रो के सदेशो से मधुरतम वनाते, ताकि उनका वाझ सुखानुभूति के तले दव जाये।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक मुलाकात क माके पर जव म एक कहानी सुना रही थी हमारा जेलर उस कहानी की दिलचस्पियो मे या गुम हा गया कि जव सतरी आर जेलर की ड्यूटी का वक्त पूरा हो गया, तो उसने दूसरे जेलर से कहा 'भाई थोडी दर ठहर जाओ। म इस कहानी का अजाम ता सुन लू।'

मित्रो ने मुझसे अक्सर पूछा कि भला किसी गेर की मोजूदगी मे वाते केस होती होगी। दो दिला की मुलाकात क दरमियान किसी तीसरे की मोजूदगी। हर वात सुनता हुआ आदमी। सच पूछिए तो हम अक्सर किसी आर की मोजूदगी का एहसास ही कव होता था। हा कभी-कभी दरमियान का पर्दा अपनी मोजूदगी से मुलाकात को तग कर देता था, ओर जेसे शुरू शुरू म जेलर साहव मरे ओर फेज के दरमियान वेठने पर इसरार फर्माते थे।

फेज की गिरफ्तारी आर उनके अवेध एकात कारावास (म अवेध इसलिए कह रही हू कि एक नियत अवधि से अधिक किसी व्यक्ति को एकात कारावास की यातना म वाध रखना अवेध है) के तीन महीने वाद म अपनी दोनो वच्चियो के साथ उनसे मिलने लायलपुर जेल गयी। हम सुपरिन्टेडट के कमरे मे पहुचा दिया गया। उसने मेरा नाम पूछा। मने बता दिया। फिर उसने हम तीना को देखा। मुझे अव यह महसूस होता है कि शायद उस क्षण हम वहुत अकेले मायूस, चिताकुल ओर वुझे वुझे नजर आ रहे थे

मानो हमारे चेहरे हमारी मानसिक भावस्थिति के आईने बन गये हो। सुपरिन्टेंडेंट ने मुझसे पूछा—'आपकी यही दो बच्चियां है?' मैंने उसे बताया कि 'यही बच्चियां हमारी पूंजी है—हमारी जिंदगी का हासिलजरब (गुणनफल)। उसने झिझकते हुए सवाल किया—'कोई लडका नही है?' मैंने नकार में गर्दन हिलायी। उसने एक आह भरी एक लंबी आह। फिर मेरी तरफ देखा और कहा—'कैसे अफसोस की बात है। कैसी अफ़सोसनाक बात। ' उसके लहजे से मुझे यह एहसास हुआ जैसे अब किसी बेटे की मां बनना मेरे मुकद्दर में नही, जैसे मेरा सुहाग लुट चुका हो।

और जब फ़ैज कमरे मे दाख़िल हुए तो दोनों बच्चियां दौडती हुई उनकी गोद में समा गयी। मुनीजा ने जैसे बुडबुडाते हुए कहा—'अब्बू। 'वो कहते थे कि आपके हाथ और पैर काट डाले जायेंगे।' 'वो' कौन थे, यह मुझे कभी नहीं मालूम हो सका। लेकिन उस क्षण जब हमारी (मेरी और फ़ैज की) निगाहें एक-दूसरे से मिलीं तो हमें मालूम हुआ कि बेयक़ीनी (भविष्य के प्रति निराशा) के अनुभव और भय के बीच हम ही अकेले नहीं गुज़र रहे थे।

हैदराबाद तक हमारे सफर का मतलब था—अधिक मुलाकात। उन मौकों पर हम (स्वर्गीय) सुहरवर्दी के साथ ठहरते, जो मुलजिम की कानूनी पैरवी कर रहे थे। सलीमा और मुनीजा सुहरवर्दी साहब से जैसे बेसाख़्ता प्यार करने लगीं, और उनसे निकट आती गयीं। सुहरवर्दी मरहूम बच्चियों के लिए नृत्य संगीत की धुन पर 'वाल्ट्ज' करते—गोल घेरे में नृत्य। एक दिन सलीमा ने अपने सर को झटकते हुए कहा—'आज मैं नहीं नाचूंगी। लेकिन मुनीजा फौरन उछल कर खडी हो गयी। सुहरवर्दी साहब ने अपना हाथ आगे बढाया, और पुरानी दुनिया के शिष्टाचार का मूर्त नमूना बनकर, जैसे नृत्य की फर्माइश करते हुए किंचित झुके। मुनीजा ने एक युवा महिला की तरह झुककर उस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। सुहरवर्दी साहब का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा और वह दोनों कमरे में एक आहिस्ता और मद्धम-से फ़्रांसीसी अंदाज के शाहाना नृत्य (minuet) में तन्मय हो गये। बाद में सुहरवर्दी साहब ने गाडी में सिंधु नदी तक चलने का प्रस्ताव पेश किया। और फिर दरिया की मौजों पर कश्ती चलाते हुए उन्होंने हमें एक पंजाबी लोकगीत सुनाया, जो लडकियों को पहले से याद था। यह सब कुछ कितना आनंदप्रद था। लेकिन जब हम यह सोचते कि यह कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली व्यक्ति कल सुब्ह न्याय की प्राप्ति के लिए जेल की चारदीवारी के अंदर अपना संघर्ष शुरू कर देगा, तो हर बात अर्थहीन और अप्रासंगिक मालूम होने लगती।

'दरबारे-वतन में जब इक दिन '

यह फैज की अत्यधिक प्रिय और लोकप्रिय कव्वालियों में से है। मुझे हैदराबाद की एक ईद याद है जब अधिकतर बंदियों के परिवार एक ही स्थान पर इकट्ठा हो गये थे। शोख रंगों के रंगारंग और भडकीले कपडे पहने हुए इतने बच्चे वहां जमा थे जिन्हें देखने वाला यह भी भूल जाता कि बिना किसी अपवाद के उन सबके बाप ऐसे अभियोगों में पकडे गये थे जिनके आधार पर सरकारी वकील मृत्युदंड तक की मांग कर सकता था।

ईद की उस पार्टी में यह कव्वाली जिस जोश, चाव और तेज धुन में गायी गयी, उसकी कल्पना भी एक मुश्किल काम है। और जब कव्वाली ख़त्म हुई तो उस वक्त तक तमाम बच्चे, बीवियां और

माए—सभी इस कव्वाली मे शरीक हो चुकी थीं। सबके हाठा पर यही बोल थे

'दरबारे-वतन म जब इक दिन सब जानेवाले जायेगे'

हम सबने निहायत पुर-तकल्लुफ दावत का प्रबध किया। ओर जब हम 'घर' यानी डाकबगल वापस पहुचे तो बच्चिया ने कहा—'ऐसा खाना तो हमने बहुत दिना से नहीं खाया था। है ना, अम्मी?'

खाने की बात पर मुझे एक दिलचस्प वाकिआ याद आया। यह उन दिना का वाकिआ हे जब फेज को सजा दी जा चुकी थी, ओर वह अपनी कंद की मीआद मटगोमरी जेल म पूरी कर रहे थे। मुनीजा ओर सलीमा ने अपने अब्बू को खत म लिखा —'हम आ रहे ह। आप दोपहर के खाने के लिए कोई अच्छी चीज जरूर पकाइयेगा।' हमे एक साथ दोपहर का खाना खाने की इजाजत दे दी गयी थी। जब हम लाग मटगोमरी जेल पहुचे तो नाइब सुपरिन्टेन्डेन्ट लोधी साहब ने मुनीजा से कहा —'तुम्हारे अब्बू ने यकीनन तुम्हारे लिए कोई खास चीज पकायी होगी।'

'आपको केसे मालूम हुआ?' मुनीजा ने पूछा।

'मने तुम्हारे खत म पढा था।' लोधी साहब ने जवाब दिया।

जेल के अधिकारीगण निश्चय ही चिट्ठी-पत्री की जाच करते थे। मुनीजा उठकर खडी हो गयी ओर बोली—'तो क्या तुम मेरे खत पढते हो?'

'हा।' लोधी साहब बोले।

उफ! बदतमीज कही के।'

मै नही कह सकती कि यह वाक्य सुनकर लोधी साहब पर क्या बीती। लेकिन मुझे यह अच्छी तरह याद है कि उनके चेहरे पर उस वक्त कैसे भाव छा गये थे। चेहरे का रग उड गया था। बेचारे लोधी साहब!

जब 1959 के शुरू महीनो मे मार्शल ला के अतर्गत फैज फिर जल के मेहमान बने तो लाहौर जेल से वह लाहोर किले मे भेज दिये गये। मेने उनसे मुलाकात के लिए प्राथना पत्र दिया। सी आई डी के अधिकारियो ने जानबूझकर झूठ से काम लिया। उन्होने इस बात से अपनी अनभिज्ञता प्रकट की कि फज लाहौर जेल से किले मे ले आये गये हे। चुनाचे (इस जानबूझकर बोले गये झूठ की वजह से) मैं लाहौर जेल गयी ओर वहा पता चला कि फेज तो वहा से जा चुके हे। ओर जब मेने मुलाकात के लिए दोबारा प्रार्थना-पत्र दिया तो मे गुस्से के मारे सचमुच उबल पडी थी। आखिरकार म अपनी बूढी सास के साथ लाहौर किले पहुची। फेज को उनकी कोठरी से बुलाया गया। उन्हे देखते ही मुझे अदाजा हुआ कि या तो उन्हे शेव करने की इजाजत नही दी गयी या उन्हाने खुद ही दाढी बनाने का कष्ट नहीं उठाया। उनके चेहरे से पता चलता था कि उनके पिछले चौबीस घंटे खुशगवार हर्गिज न थे।

मने पूछा—'तुमने नाश्ता किया ह?'

फेज ने मुस्कराते हुए जवाब दिया — हा।'

क्या?' यह था मेरा दूसरा सवाल।

'ओ ! एक बन, एक प्याली चाय।' फेज ने जवाब दिया।

'बन्' का शब्द सुनते ही म जेसे बारूद बन गयी। जसे किसी ने बदूक की लबलबी पर हाथ रख दिया हा। मेरे स्वभाव म यह परिवर्तन क्याकर हुआ? इसका जवाब मुझ भी कभी न मिल सका। लेकिन शायद उस वक्त 'बन्' एक अथपूर्ण चिन्ह बन गया था। एक सकेत उन तमाम अन्याया दुख-दर्द,

अपमान, धोखा-फरेब और झूठ का था, जिनका मै गत कई महीने से शिकार थी।

मै क्रोध से उत्तेजित होकर जेलर की तरफ पलटी और चीख उठी 'तुमने मेरे शोहर को बन् दिया! सिर्फ बन्!' जेलर का मुह खुला। मगर मैने उसे एक शब्द भी कहने का मौका न दिया। म फिर बरस पडी 'तुम क्या जानो! उन्होने अपनी जिदगी मे कभी बन् नही खाया। तुमने बन् ही तो कहा था? बन्! बन्!'

बेचारा गरीब आदमी कुछ न बोला। लेकिन अपने आवेशपूर्ण भाषण के बाद मने एक अजीब-सी शांति अनुभव की। ऐसा सतोष जिसे कोई नाम नही दिया जा सकता। उस क्रोधावेश से भरे समय के एक घटे बाद जब मै घर गयी तो मैने अडा, मक्खन, डबल रोटी से एक टोकरी भरी और जेलर के नाम एक पुर्जा लिखकर भेज दिया कि 'नाश्ता इस किस्म की चीज को कहा जाता है।'

बाद मे 'बन्' के वाकिए पर हम दोना बेतहाश हसा करते थे, ऐसी हसी जो खत्म होने को ही न आती थी। क्योकि, लाहोर के किले की-सी काल-कोठरी मे केद आदमी के लिए 'बन्' का महत्व ही क्या था! लेकिन शायद उस समय उस 'बन्' का महत्व उस लबे ओर थका देनेवाले एकाकीवास और खोखलेपन से जुड गया था जो भविष्य के पर्दे मे छुपा हुआ था।

मेरी सास ने मुझे बाद मे बताया कि मेरे पुरजोश भाषण को सुनकर वह यह समझी थी कि फेज को शायद किले मे यातना दी गयी थी जिस पर मै बिगड रही थी।

फैज से (विभिन्न जेलो में) मिलने के लिए हम अक्सर रेलगाडी मे सफर करना पडता था। हम लोग तीसरे या दरमियाने दर्जे मे सफर करते थे। इसलिए बच्चिया को साथ के यात्रियो से बात भी जरा जियादा ही करनी पडती थी। (ऊचे क्लासो के मुसाफिर-तोबा! कसे रा बा-कसे कारे न बाशद![1]) सलीमा से जब कोई पूछता कि उसके माता-पिता कौन ह और क्या करते ह, तो वह झिझक जाती थी। एक ऐसे मोके पर मने उसे यह कहते सुना (उसका चेहरा सुर्ख हो गया था-क्योकि उसे सफेद झूठ से नफरत थी)—'अब्बू हैदराबाद म काम करते है।' मुनीजा उसकी तरफ मुडी ओर गुस्से म उसके हाथ पर हाथ मारती हुई बोली-'चल! झूठी कही की! वह जेल मे हे।'

कुछ दिन हुए मुझे एक कापी मिली, जिसम जेल से फैज की वापसी के बाद तक के वाकिआत है। इतने दिनो की गेरहाजिरी के बाद हमे एक बार फिर फैज को अपनी घरेलू जिदगी का हिस्सा बनाना था—हमारी घरेलू जिदगी, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्थान पर एक विशुद्ध आर सुदृढ मातृसत्तात्मक व्यवस्था बन गयी थी! हम इस कापी को 'एकता याजना (वन यूनिट प्लैन) कहते थे ओर हममे से हरेक का नाम पाकिस्तान के किसी भूतपूर्व प्रात के नाम पर था। इस 'एकता' मे एक भानजा भी शामिल था। हमारा काम ओर जिम्मेदारी यह थी कि पुरानी ओर नयी आदतो म और घर के नये सदस्यो के साथ आपसी मतभेदा का फेसला करे—घरेलू जिदगी को बेहतर और सुखद बनाने के लिए।

हम हर सप्ताह एक मीटिग करते थे। शिकायते पेश होती थी, आर उनके हल ढूढे जाते थे।

अब म इस कापी पर नजर डालती हू तो ऐसे वाक्य ओर याददिहानिया नजर आती हे

'मे कुछ सहेलिया को चाय पर बुलाना चाहती हू। क्या इसकी गुजाइश निकल सकती हे?

1 किसी को किसी से कोई मतलब नहीं।

'हमे घर पर सालगिरह (वर्षगाठ) की पार्टी करनी चाहिए।'

'अब्बू को बालरूम डांसिग सीखने की मश्क जरूर करनी चाहिए।'

'नसीर को अपनी अल्मारी के खाने खुद साफ करने चाहिए।'

'अब्बू को एक दिन मे तीस से जियादा सिगरेट नही फूकने चाहिए। अगर वह नहीं मानेगे तो म यह शिकायत कापी पर पाच मर्तबा लिखूगी।'

'घर पर जब कोई दावत हो तो बडो के साथ बच्चो को भी बुलाया जाये।'

कभी-कभी 'सीमाप्रात' की तरह मुनीजा आदोलनकर्त्ता बन जाती और शोर मचाती। उसकी जिदगी म यह नया अनुशासन शाति के साथ नही आया। फेज 'सिध' थे, क्योकि सलीमा कहती थी –'अब्बू तो सिध से ही तअल्लुक रखते ह।' और मे 'बलूचिस्तान' थी, शायद इसलिए कि कभी-कभी म दूसरा के लिए असुविधा का कारण बन जाती। हमारे आर्थिक साधन सीमित थे, आर माग बढती जा रही थीं। ओर हमे बहुत-सी अच्छी चीजो की सीमा बाधनी पडती थी–(आसान उदू म 'राशनबदी') और यह सीमाबदी उस वक्त तक आवश्यक थी जब तक फेज जेल से लोटकर दोबारा काम शुरू न कर देते। लकिन जल्द ही हमारा लोकतत्र सफल हो गया। ओर कुछ ही अर्से बाद हमारा घर ऐसे ढग पर चल रहा था जेसे घर का सरपरस्त इस घर से बाहर कभी गया ही न हो।

उर्दू से अनुवाद शमशेर बहादुर सिह

एक हौसलामंद दिल की आवाज़

अलेक्जेंडर सुर्कोफ

1962 मे सरे वादिए सीना का रूसी अनुवाद प्रकाशित हुआ। इस रूसी सग्रह की भूमिका उसके अनुवादक और फैज की शायरी के प्रेमी और विद्वान अलेक्जेडर सुर्कोफ ने स्वय लिखी। इस भूमिका को पहले तो रूसी से उर्दू मे सहर असारी ने प्रस्तुत किया था अब इसे हिंदी मे गोबिद प्रसाद प्रस्तुत कर रहे है।—स

मता ए-लोह ओ-कलम छिन गयी तो क्या गम है
कि खूने दिल म डुबो ली है उगलिया मेने
जया पे मुहर लगी है तो क्या, कि रख दी है
हरेक हलकए-जजीर मे जवा मैने

मास्को मे दिसबर की सर्दियो की एक शाम को जिदगी मे पहली वार फैज के इस जोशीली शायरी न मेरे दिल म बेचेनी पेदा कर दी थी। 1954 ई का साल रूखसत हो रहा था ओर बर्फ का एक तूफ़ान पुश्किन के सुरमयी वुत के आस पास सुरीली आवाज मे गा रहा था। पहरेदार सिपाही चोराहो पर खडे सर्दी से काप रहे थे। मास्को के एक गर्म ओर आरामदेह फ्लेट म पूर्वी सोवियत के मित्र लोकतांत्रिक राज्यो के शायरा ओर सुदूर पूर्वी भू-भाग से आये हुए मेहमानो की महफिल मे हिदुस्तान के शायर अली सरदार जाफरी एक अनजानी जवान के शेर लगभग गुनगुनाने के अदाज म पढ रहे थे। शेर सबके दिलो मे जादू जगाते जा रहे थे। इन शेरा मे मुहब्बत के नाजुक जज्बो की कसक थी, जेल की तन्हा कोठरी म कद इनसानी तमन्नाआ का गम था ओर एक इकलाबी का भडकीला आक्रोश भी था। ये शेर फेज अहदम फेज क थे जा हमारी वातचीत मे शामिल न हो सके थे ओर मास्को से वहुत दूर मटगोमरी जल म तन्हाई के रात दिन वसर कर रहे थे। इसी लम्हे शायद वा सलाखो से बाहर का दृश्य दख रहे होग, वो चमकते सितारो से भरे आसमान को तक रहे होग या फिर शायद अपने होसलामद तपत हुए दिल की गहराई म जन्म लेने वाले मिसरे (पंक्तियां) मन ही मन दोहरा रहे हाग।

तीन महीने वाद—वक्त वही था जो मास्को म पिछली सर्दिया की हवाओ की मोजूदगी म था—मन एक वार फिर ऐसे शेर सुन जो दिल का अपनी तरफ खींच लते ह आर उनकी अनुभूतिया की ऊजा से ही मानी की मंजिल तय होने लगती ह।

उस वक्त मे देहली मे था। मार्च शुरू ही हुआ था। सियाह आसमान पर वेशुमार सितारे झिलमिला रह थ आर पृष्ठभूमि मे सदावहार दरख्त रात की धुध म खडे नजर आ रह हो। लाल किले स वहुत दूर ओर सगीन दीवारा के साय म गाडिया खामोशी स गुजर रही थी आर रिक्शा छलावा की तरह भाग रह

थे। वो सब उस जगह की तरफ आ-जा रहे थे जहा बिजली के लट्टुओ से रौशन विशाल, रगारग पडाल, हरियाली और बेशुमार रगीन फूलो से लदे हुए अनजान पेड अपनी बहार दिखा रहे थे।

पडाल मे एक मुशायरा हो रहा था। एक के बाद दूसरे शायर माइक्रोफोन पर आते रहे और मुशायरे मे जान पडती रही ओर फिर अली सरदार जाफरी ने चद ऐसी नयी नज्मो को सुनाया जो मटगोमरी जेल के तन्हा कमरे की उदास ओर रगीन दीवारो की कैद मे लिखी गयी थीं।

अब फैज वहा अपनी कैद का पाचवा साल गुजार रहे थे।

रग-बिरगे पडाल मे अचानक सन्नाटा ओर कापती हुई चुप्पी छा गयी। हर लफ्ज साफ सुनायी दे रहा था। एक-एक लफ्ज दिलो मे उतरता चला जा रहा था और ऐसी जगहो पर जहा शायर के शेर एहसास की गहराई मे डूब जाते ओर फिर आक्रोश की प्रतिध्वनि बनकर उभरते तो जेसे सारा पडाल एकदम जाग उठता ओर गायक की आवाज के साथ बडे जोशो ख़रोश से दाद देने लगता।

उस वक्त मे फ़ेज अहमद फ़ैज के बारे मे क्या जानता था?

यही कि अपनी जनता को औपनिवेशिक शासन की गुलामी से आजाद कराने की जद्दोजहद में वो जवानी के जमाने से ही पूरी लगन के साथ शामिल है। मुझे मालूम था कि दूसरे महायुद्ध के जमाने मे फासिज्म से अपनी घृणा की अभिव्यक्ति के लिए वो विदेसी एग्लो-इंडियन फौज मे एक अफसर बन गये थे और जग के बाद कर्नल की हैसियत से कार्य मुक्त हुए। वो एक पुरजोश पत्रकार थे जो औपनिवेशिक शिकजे और स्थानीय आकाओ की गुलामी से अपनी जनता को आजाद कराने के विचारो को बढावा देने के लिए दिलो-जान से सक्रिय थे।

फैज अपने राजनीतिक लेखो ओर एक नि स्वार्थ क्रातिकारी की हैसियत से अपनी सरगर्मियो के जरिये पाकिस्तान के बेहतरीन राष्ट्र सपूतो के कधे से कधा मिलाकर बेगर्जी और जोशो-खरोश के सा' जद्दोजहद मे व्यस्त थे। प्रतिक्रियावादी इस बेमिसाल शायर की सत्यनिष्ठा और शब्द शक्ति से भयभ। थे। इसलिए अकेलेपन की यातना ओर जबरदस्ती बेकारी का शिकार बनाने के लिए उन्होने मटगोमरी और हैदराबाद की जेलो मे फैज को पाच साल की लबी कैद के लिए मजबूर कर दिया। लेकिन शायर की जिदा ओर जीवन म जान फूकने वाली दिल की धडकनो पर पथरीली जेल की अधेरी रात हावी न हो सकी और न कद के दिनो की सवेदनशून्य और घनी ख़ामोशी उनके नगमो पर कोई चुप्पी लगा सकी।

जेल की सगीन दीवारो मे से भी उनके होसलामद दिल से वो नगमे बेताब होकर निकलते रहे जो जनता, जिदगी ओर मादरे वतन की मोहब्बत से भरे हुए थे। उनके नगमो के पेरो की सरसराहट पाकिस्तान और चद दूसरे मुल्को की सरजमीन पर सुनायी देती रही ओर लाखो इनसानो के दिलो को गरमाती रही।

आख़िरकार प्रतिक्रियावाद का अधेरा ओर इकबाली शायरी की रोशनी की जग मे शायरी ही कामयाब आर फतहयाब रही। खतरे ओर वो भी मोत के लगातार खतरो से भरे हुए पाच साल की कैदोबद की मुसीबत खत्म हुई ओर देशभक्त शायर आजाद हो गया। एक बार फिर अतीत की तरह, बल्कि उससे भी ज्यादा जोश आर उत्साह के साथ इस जद्दोजहद को जारी रखने के लिए जिसकी ख़ातिर उसन अपनी जिदगी भेट कर दी थी, शायर अपना काम करने लगा। अपने हमवतनो के लिए, तमाम कौमो के बीच दोस्ती को बढावा देने के लिए आर तमाम इनसानो के लिए शांति का माहोल पेदा करने के लिए और अब जग खायी जजीरो आर हथकडियो की गिरफ्त से आजाद होकर वो ज्यादा ताकत आर जज्बे की

सच्चाई के साथ अपने जोशीले और भडकीले नगमे फ़ज़ा मे बिखेर रहा है।

1958 ई की पतझड ऋतु के बाद ताशकद मे अफ्रो एशियाई लेखको का मशहूर सत्र हुआ जिसमे फ़ैज ने सशक्त लीडर की हैसियत से शिरकत की। वहा उनसे पहली बार मेरी मुलाकात हुई। उस शायर से मुलाकात हुई जिसकी कल्पना मे अपने दिल मे बसाये हुए था।

फ़ैज के लिए वो पहले के मुकाबले उदासी का जमाना था। पाकिस्तान म हुकूमत का तख़्ता उलटकर गैरलोकतांत्रिक शक्तियो ने शासन सभाल लिया था।

मास्को मे साहित्यकारो की सस्था के एक कमरे मे हम बैठे हुए थे। हम दोनो नज्मे पढ रहे थे और रूसी जबान मे फ़ैज की नज्मो का एक सग्रह प्रकाशित करने के बारे मे बातचीत कर रहे थे। फिर इत्तिफाक से हमारी गुफ्तगू का रुख नज्मो से हटकर उस वक्त की सियासत की तरफ हो गया।

तो फिर निकट भविष्य मे आपका क्या इरादा है?

फ़ैज ने अपनी सियाह आखो से, जिनकी गहराई मे कुछ उदासी थी, मेरी तरफ देखा। लेकिन उनके होठो पर हल्की सी मुस्कुराहट मोजूद थी।

'बस पहले तो मै लदन जाऊगा, वहा अपने चद दोस्तो से मिलूगा जो अभी-अभी पाकिस्तान से आये है। उसके बाद जाहिर है कि म कराची, लाहौर, अपने वतन वापस चला जाऊगा ।'

'लेकिन आप जानते है कि अब वहा ।'

उनके होठो के किनारो पर वही हल्की सी मुस्कुराहट थी।

'जाहिर है कि इस सूरत म तो मुझे वतन ही वापस जाना चाहिए।'

'तो फिर जेल यकीनी है ।'

'शायद और अगर किसी बडे मकसद की ख़ातिर इनसान को जेल भी जाना पडे तो जरूर जाना चाहिए।'

'लेकिन अगर जेल से भी बदतर कुछ हो तो ?'

शायर ने खिडकी से बाहर की तरफ देखा जहा बाग के बीचोबीच तोल्सतॉय की मूर्ति थी, सर्द और उजडे हुए आसामन पर नजर डाली। मुस्कुराहट बदस्तूर मोजूद थी। कुछ पल ठहरकर उन्होने अपने ख़ास अदाज मे आहिस्ता से कहा –

'अगर जेल से भी बदतर कोई चीज हुई ता फिर यकीनन बुरा होगा। लेकिन तुम जानते हो जद्दोजहद बहरहाल जद्दोजहद है ।'

ये था उनका शातिपूर्ण लेकिन विश्वास से भरा हुआ जवाब।

मै अपनी जिदगी म ऐसे बहुत से लोगो से मिल चुका हू। उनमे से बहुत से निडर बेबाक और साहसी भी थे और अपनी जिदगी के मकसद को पूरा करने के लिए जानो दिल से अपने कामो मे डूबे रहते थे। वे हर किस्म की यातना, यहा तक कि अडियल मोत को भी बर्दाश्त करने का होसला रखते थे।

फ़ैज में ये धेर्य और सहनशीलता और यह भरोसा, यातना सहने का माद्दा मोत से लडने की बदौलत पेदा हुआ है। एक ऐसी मोत जो जद्दोजहद के लिए अपने को भेट कर देने वाला के लिए निश्चित होती है।

फिर भी मुसीबतो की आखों मे आखे डालकर देखने की जो जुरअत फेज मे थी उसने मेरे सारे वजूद (अस्तित्व) को डगमगा दिया।

फेज की शायरी का तर्जुमा करने की गरज स मने उनका एक एक मिसरा वडे गोर स पढा। मेरी कोशिश यह थी कि जहा तक मुमकिन हो अनूदित मिसरा म लय सुर ओर उनकी भावुकता ओर हासलामद दिल का जज्बा वरकरार रहे। इस कोशिश मे न सिर्फ उनके शेरा का भावनात्मक उतार चढाव जिसे दूसरी भापा में रूपातरित करना लगभग असभव हे, वल्कि एक जावाज शायर ओर इनसान का शातिपूर्ण ओर स्पप्ट धेर्य मेरी रूह म गूजने लगा। शायर, जिसने एक इकलावी की हैसियत से खुद अपनी जिदगी को एक नगमे मे ढाल लिया ओर अपने नगमे को जद्दोजहद का एक प्रभावशाली हथियार वना लिया हे। जद्दोजहद की मजिलो से गुजरते हुए पूरव क एक प्रतिप्ठित प्रगतिशील शायर फेज अहमद फेज के इन नगमो को सोवियत पाठको से परिचित कराते हुए मुझ वेहद खुशी हो रही हे। अध्ययन के दारान फेज की शायरी मे कैद की यातनाओ की अनुभूति भी होती है जिससे दिल उदास हो जाता है। लेकिन फिर भडकीला जोश ओर जज्बा इस अनुभूति पर छा जाता है। अधेरे का रूपक उनकी शायरी मे वार वार आता हे। लेकिन वो शेर ज्यादा रोशन हे जिनमे शायर के वतन पर उदय होने वाली सुवह की पहली किरणो का स्वागत किया गया ह ओर अध्ययन करने वाला यकीनन महसूस करेगा कि आजादी की मुहब्वत ओर शायर के मुसीवतजदा वतन को असल शायरी किस तरह एक अदाज और एक रग मे ढाल देती हे।

अनुवाद गोविद प्रसाद

रूदादे-कफ़स*

मेजर मुहम्मद इस्हाक

रायलपिडी साजिश केस मे चार साल तक जेल के साथी रहे मुहम्मद इस्हाक का यह सस्मरण फैज की रचनाशीलता को अपने ढग स आलोकित करता है। यद्यपि यह सस्करण 'जिदानामा' का आमुख या प्राक्कथन है पर यह मूलत जेलजीवन की डायरी है। —स

कीमियागर बगुस्सा मुर्दा ब रज
अब्ला अदर खराबा याफ्ता गज।

(सोना बनाने की कोशिश करने वाला कीमियागर अपनी नाकामी के कारण आने वाले गुस्से की तकलीफ़ को बर्दाश्त न कर सका ओर मर गया। लेकिन मूर्ख को (अपनी खुशकिस्मती से) खडहर मे भी खजाना मिल गया।)

फैज साहब की किसी रचना का प्राक्कथन लिखने का सौभाग्य एक खज़ाना पाने से क्या कम हो सकता है, लकिन इसकी कठिनाइयो का एहसास मुझे उस समय हुआ जब लिखने बेठा। कहते हे पुराने जमाने के राजे-महराजे जब किसी दुर्भाग्य के मारे सफेदपोश की परेशानिया बढाना चाहते थे तो उसे एक हाथी इनाम मे दे दिया करते थे।

मामला बिल्कुल ऐसा ही तो नहीं है लेकिन एक सीधे-सादे फौजी आदमी के लिए फ़ैज के कलाम के बारे मे कुछ लिखना काफ़ी परेशानी का कारण हो सकता है। ओर फिर एक किसान ओर खासकर उपनिवेश के किसान के बेटे की तरबियत ही क्या होती है। देहाती स्कूलो की तालीम ओर वह भी अधविश्वास और अज्ञानता के घिनौने साये तले। ऐसे माहौल मे जिसमें गरीबी ओर साधनहीनता के सोजन्य से लिखने की जगह हल की लकीर सीधी रखना, ढोर-डगर की निगरानी करना और बैलो के लिए चारा लाना अधिक सम्मान की नजर से देखा जाता है, जहा हर नयी चीज, हर नये ख़याल का घृणा के साथ मजाक उडाया जाता है, जहा दुनिया का ऊचे से ऊचा खयाल ओर पवित्रतम भावना दो बीघे जमीन के पैमाने से नापी जाती है, मेरी तालीमी पृष्ठभूमि ऐसी ही थी। साहित्य ओर कला जब मेरे गुरुजनों के बस की ही बात नहीं थी तो मे उनको कैसे छू पाता। किताबें जीवन का हिस्सा नहीं थीं, केवल इम्तिहान पास करने का साधन थीं। लाइब्रेरिया विद्वज्जनो की सगत, इल्मी बहसे, मुशायरे, ड्रामे, सगीत, नृत्य, आर्ट

* जेल की कहानी

गेलरिया, म्यूजियम—सब गायब। और चारो तरफ साम्राज्यवादियो और उनके देसी एजटा के आर्थिक बोझ तले कराहती हुई जनता।

ऐसी रूखी-फीकी तालीम के बाद आठ-दस साल की फौज की 'साहब बहादुरी' न रही सही कसर निकाल दी। वहा का तो बाबा आदम ही निराला था आर *'काले लोगो' की अपनी भाषाआ को अपने* दश मे ही देशनिकाला मिला हुआ था या उनकी हैसियत अग्रेजी जबान की लांडियो-बाँदिया की सी थी। जेल के चार साल इस लिहाज से लाभप्रद रहे कि एकाग्रता से पढाई का मौका मिल गया। सोन पर सुहागा यह हुआ कि दो एक प्रोफेसर भी साथ ही काबू मे आ गये।

जिदानामा (जेलवृत्तात) का प्राक्कथन लिखने के बहान म अपना जीवनवृत्तात लिखन का इरादा नहीं रखता। म समझता हू कि किसी रचना की सही जाच उसी समय हो सकती ह जब शायर के स्थान और क्षमताआ को पूरी तरह समझ लिया जाये। इसमे कोई शक नही कि मे चार साल स कुछ ही महीने कम दिन-रात फेज के साथ रहा हू। यह लबा समय हमन जेल के एक ही अहाते मे पास पास स्थित कोठरिया मे गुजारा, सैकडा बार सुबह सवेरे सबसे पहले एक-दूसरे के मुह लगे हे, अपनी खुशिया और गम आपस मे बाटने पर मजबूर रहे। जेल के बाहर आदमी सेकडो लोगो से रोज मिलता है—मिलता न भी हो, देख जरूर लता है। कई तरह की आवाज सुनता है, बीसिया दृश्यो से वास्ता पडता ह। किसी से नफरत ह तो कन्नी काट के निकल सकता ह, किसी से मुहब्बत ह तो मुलाकात की राह ढूढ लेता है या उनकी तलाश मे जी बहला लेता है। जेल मे आदमी की मर्जी उससे छीन ली जाती है आर उसकी गतिविधि सीमित कर दी जाती है। वहा का ससार दो चार केदी, दो-चार पहरेदार, कुछ कोठरिया आर कुछ दीवार, एक-आध पेड, एक-दो गिलहरिया, आधे दर्जन के करीब छिपकलिया ओर कुछ काए ओर दूसरे परिंदे होते हे जिनमे महीनो, बल्कि सालो तक कोई बदलाव नही आता। मुझे इस छोटी सी दुनिया म फेज साहब के साथ लगातार चार साल तक रहने का मौका मिला है। लेकिन इस लबी सगत के बावजूद जरूरी नहीं कि मे अपने विषय के साथ पूरा इसाफ कर सकू। एक अधा इस ब्रह्माड की रगारगी मे जीवन गुजार कर भी रगो का अदाजा नही कर सकता। कई लोग अच्छी-भली नजर रखते हुए भी कइ रगो को नही पहचान सकते। रेडियो प्रोग्राम सुनने के लिए ताकतवर रेडियो स्टेशन ही नही चाहिए, रिसीविंग सेट भी त्रुटिहीन हाना चाहिए।

यहा पर *जिदानामा* (फैज का तीसरा सकलन) की नज्मा और गजलो पर टीका टिप्पणी करने का उद्देश्य नहीं, फिर भी शायर के साथ के सस्मरण में उनकी चर्चा जरूरी है। फेज की गहरी सवेदनशीलता का वर्णन मेरे बस की बात नहीं है। असर लखनवी क शब्दा म, 'फैज अहमद फेज की शायरी तरक्की की सीढिया तय करके अब उस चरम बिंदु पर है जिस तक शायद ही किसी दूसरे प्रगतिशील शायर की पहुच हुई हो। कल्पना ने रचना क जोहर दिखाये हे आर मासूम जज्बात को सुदर आकृति दी है। ऐसा मालूम होता है परिया का एक झुड, एक जादुई फजा मे उडने मे इस तरह तल्लीन ह कि एक पर एक परिया टूटी पड रही हैं और इद्रधनुष की छवि लिये बादलो से सतरगी बारिश हो रही हे । हर कोई अपनी योग्यता के अनुसार इस सवेदना को महसूस कर सकता हे। म सिर्फ यह चाहता हू कि अपनी *समझ के अनुसार गिनी चुनी नज्मा की पृष्ठभूमि का बयान कर दू।* इतना याद रहे कि सही अदब अपनी पृष्ठभूमि की सीमाआ को तोडकर बहुत आगे निकल जाता है। फैज की शायरी को अपने पस मजर के साचे मे सीमित करके देखना जुल्म ह। इसलिए मेरे प्रयास को एक साइन बोर्ड से ज्यादा महत्व नहीं

देना चाहिए। आगे रास्ता सबका अपना-अपना है, आर अपनी-अपनी हिम्मत।

फ़ेज साहब 9 मार्च 1951 को कैद हुए ओर अप्रेल 1955 म रिहा हुए। इस तरह उनकी केद के दिन चार साल से कुछ ऊपर बनते ह। इस अर्से मे वह पहले तीन महीने सरगोधा और लायलपुर की जेलो में क़ेदे-तनहाई मे रहे। इसके बाद जुलाई 1953 ई तक हदराबाद (सिध) जेल मे रावलपिडी साजिश केस के अन्य केदियो के साथ रहे। जुलाई 1953 मे हम सबको छोटी-छोटी टुकडियो म बाटकर लाहार, मटगोमरी, मच्छ (बलूचिस्तान) ओर हैदराबाद की जेलो म भेज दिया गया। फ़ेज साहब के लिए, मेरे ओर केप्टिन खिज्र हयात के साथ मटगोमरी सेट्रल जेल का चयन किया गया। लेकिन वह चूकि इलाज के लिए कराची चले गये थे इसलिए कही 1953 मे जाकर हमारे पास मटगोमरी पहुचे। यहा से हम इकट्ठा रिहा हुए।

मुझे फ़ैज साहब की गिरफ्तारी के कोई तीन महीने बाद मई 1951 में बदी बनाया गया था, इसलिए खल्के-खुदा (जन साधारण) की सरगोशिया सुनता रहा। उन दिना फेज साहब के साथ उनके दोस्ता ओर प्रियजनो को मिलने की इजाजत नही थी, न वे किसी से पत्राचार कर सकते थे। उनके बारे म तरह तरह की अफ़वाहे फली हुई थीं और केद में उनके साथ व्यवहार के विषय म अजीब-अजीब हृदयविदारक किस्से मशहूर थे। जब पहली बार उनसे हेदराबाद जेल म भेट हुई तो जाकर सुकून मिला। वही मुस्कराता ललाट, वही चमकती हुई आखे, वही गोतमी मुस्कुराहट जिसका नूर सब तरफ़ फेल रहा था—आर फिर वह दुनिया को जीत लेने वाली मुहब्बत जिससे उनको जानने वाले परिचित ह।

जेल एक तरह का जादुई शीशाघर होता हे जहा सूरतो की नही बल्कि सीरतो (स्वरूप) की छवि अद्भुत शक्लें बनाकर प्रकट होती हे। किसी का मिजाज झगडालू है तो वह हर किसी से लडाई मोल लेने की चिता मे होगा, कोई कायर स्वभाव का हें तो वह गाबर के कीडे की तरह हर समय सिर छुपाने की धुन मे होगा। कोई निराशावादी हे तो वह हर अच्छी-बुरी खबर म अपने दिल टूटने की वजह ढूढ निकालेगा। किसी को कोई सनक है तो यह दीवानगी की हद तक बढ जायेगी। स्वभाव मे कमीनगी और तग-नजरी विशेषत फलती-फूलती हे ओर छोटी-छोटी बातो पर अपने साथियो आर जेलवालो से झगडे हो जाते हें। इसकी एक वजह तो यह है कि इनसान की सारी कायनात जेल की चारदीवारी म सीमित कर दी जाती ह ओर जिसकी वजह से सोच विचार ओर दृष्टि मे तगी आ जाती हे। दूसरा कारण है कि इनसानो पर हैवानी बदिशे लगा दी जाती है। कोठरी मे बद करना, एक परिसर मे केद कर देना, बेडिया पहनाना, प्रियजनो ओर मित्रो से मिलने पर पाबदिया, विवशता का आलम—ये सब चीज केदिया के दिल पर सूई की नोक का काम करती ह। जेल के कुछ अफ़सर भी केदियो के दिल तोडने के मोके ढूढते रहते हे आर कैदी के आत्मसम्मान ओर मान को ठेस पहुचाने मे खूब दक्ष होते हे, अगरचे यह बात सबके बारे मे ठीक नही।

इन हालात मे एक आदमी कैद होकर अपना रोजमर्रा का व्यक्तित्व कायम न रख सके तो कोई अचरज की बात नही। कमाल तो उन लोगो का है जो जेल जाकर भी वजेदारी कायम रख सकते ह। जिन लोगा को मे जेल जाने से पहल जानता था उनम फेज साहब ही ऐसे थे जो प्रत्यक्ष रूप म टस से मस नहीं हुए। लेकिन आम लोगो की तरह तबीयतो का बोझ कम करने के लिए लडाई-झगडे, दगा फसाद और इसी प्रकार के दूसरे सेफ्टी-वाल्व इस्तेमाल न करने से फ़ेज साहब पर जो मानसिक ओर शारीरिक दबाव पडा वह उनके दोस्ता से छिपा नहीं रहा। शायरी गनीमत थी जिसके द्वारा ये दिल का

गुवार निकाल लिया करते थे, लेकिन शायरी स्वय दिलो जिगर के ईंधन पर जीवन पाती है

जो हम पे गुजरी सो गुजरी, मगर शवे हिज्रा[1]
हमारे अश्क तेरी आकवत[2] सवार चले।

हैदरावाद मे मुकदमे के दोरान वीतने वाले दिन भी अजीव थे। तीन महीना से टोडी किस्म के लोग अख़वारो, इश्तहारो, जलसो, जुलूसो मे हमे गोली का निशाना वनाने की माग कर रहे थे। कई अख़वारा ने 'गद्दार विशेपाक' निकाल दिये थे। कुछ ऐसा माहोल पेदा कर दिया गया था कि मुल्क में स्वतत्र स्वभाव रखने वाला हर आदमी यह समझने लगा था कि उसको भी साजिश में धर लिया जायगा। चारा तरफ एक दहशत ओर भय की फजा थी ओर हमारे रिश्तेदार आर दोस्त हमारी जानो से हाथ धो वेठे थे। लेकिन जेल के अदर हमारी अपनी हालत यह थी कि हम मानो पिकनिक पर आये हुए ह। सव तरफ़ हसी-मजाक था, कहकहे थे, उम्मीद थी, होसला था। कव्वालिया होती थी, स्वाग भरे जाते थे, इसकी एक वजह ता यह हो सकती है कि हमे अपनी रिहाई पर पूरा भरोसा था ओर दूसरी वात शायद यह हो सकती हे कि एक वहुत वडे ख़तरे के सामने आदमी आम तोर से दो ही रास्ते पाता हे—या तो उल्टे पाव भाग उठता है या मुकावले की ठान लेता है। अंतिम वात की भी आगे दो सूरत होती ह। चुनाचे हम मे कइ एसे भी हागे जो कठिनाइयो की भयावहता के सामने काप-काप कर हस रहे थे और कुछ ऐसे भी थे

इश्तेकत्ल गहे अहले-तमन्ना मत पूछ
ईदे नज्जारा है शमशीर का उरिया होना

(गालिव)

(अपने कत्ल के समय कत्ल होने की आकाक्षा रखने वालो की ख़ुशी का कुछ न पूछो। जव उनके सामने तलवार को नगा किया जाता है तो यह उनके लिए अपने इष्ट के दर्शन जेसा प्रसन्नतादायक होता ह।)

यह स्थिति सिर्फ हैदराबाद (सिंध) की ही विशिष्टता नही थी, लाहोर मे हम जो चद दिन रुके थे, वहा भी हमारी यही हालत थी। चुनाचे लाहोर की वर्ड वुड वैरक्स मे पुलिस को सोपे जाने के कोई पाच मिनट वाद ही, मई 1951 मे गिरफ्तार होने वाले सातो फोजी अफसर, जफरुल्लाह पोशनी के नेतृत्व म फुजूल किस्म के फ़ौजी कोरस अलाप रहे थे। (इस तरह की बेजरर बेहूदगिया की छोटे फोजी अफ़सरो को खास मौको पर इजाजत होती हे)। लाहोर जेल की एक घटना याद करता हू तो अव भी हसी आ जाती है। यहा हमे वम केस वार्ड मे रखा गया था। (यह वार्ड भगत सिह ओर उनके साथियो के लिए खास तौर पर तामीर किया गया था)। इसके आगन मे एक वारादरी सी है जिसके दरवाजो मे लोहे की मजबूत जाली लगी हुई है। रात को हम यहीं सोया करते थे। एक दिन सोने की तैयारी मे थे कि एक बूढा सतरी जाली से लगकर अदर झाकने लगा। खिज्र हयात ने पूछा, 'बाबा! तुम्हे हम केदी दिखायी देते है?' उसने कहा, 'जी हा जनाव। खिज्र हयात बोला, 'लेकिन वावा हमे तो तुम केद मे नजर आते हो।' इस पर बूढा सतरी पहले तो वोखला सा गया, फिर इतने जोर से हसने लगा कि हम भी हसते-हसते लोट पोट हो गये। एक नशा था जिसमे सव मगन थे

---

1 वियोग की रात

2 परलोक

जो तुझसे अहदे-वफ़ा उस्तावर रखते है
इलाजे गर्दिशे-लैलो-नहार रखते है।

(अगर तुझसे वफादरी की प्रतिज्ञा की है, तो फिर रात ओर दिन (समय) की गर्दिश का इलाज करना भी जानते है।)

लाहौर ही का एक ओर लतीफ़ा याद आ गया। एक दिन हमे रिमाड के लिए अदालत ले जाया जाना था। ख़बर मिली कि सैयद सज्जाद जहीर भी साथ जायगे। जेल के वडे दरवाजे के अदर पुलिस की केदियो को ढोने वाली गाडी खडी थी। हम वहा रुक गये ओर सैयद साहब का इतजार करने लग। इतने मे फासी की कोठरियो की तरफ़ से सफेद शलवार कुर्त्ता पहने सिर पर जिन्ना केप जमाये, एक भारी भरकम, जीवन से सतुष्ट व्यक्ति आता नजर आया। हम आपस मे कानाफूसी करने लगे कि क्या यही सज्जाद जहीर हो सकता है। हममे से उनके साथ किसी की भी जान पहचान नही थी। कुछ लोगो का ख़याल था कि कम्युनिस्ट वदसूरत पाशविक प्रकृति के इनसान होते है। दाय-बाये पिस्तोल लगाते हे, पेट पर कटार वाधते हे। वडी-वडी मूछे ओर खूख़्वार आख रखते हे और उनकी वातचीत का विपय कत्लो गारत के सिवा कुछ नहीं होता। सज्जाद जहीर चूंकि पाकिस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेट्री थे, इसलिए इन लोगो के ख़याल मे उनके मुह से हर सास मे आग निकलनी चाहिए थी ओर उनको इस क़िस्म का काइया इनसान होना चाहिए था कि डुबकी लगाये तो जेल से बाहर चला जाये। यह व्यक्ति जो नर्म चाल, पाक नेन नक्श ओर एक अदद आलिमाना तोंद लिये हुए था सज्जाद जहीर केसे हो सकता था। हमारे ये साथी अपनी राय पर कुछ ऐसे अडे हुए थे मानो यह उनके धर्म का हिस्सा हो। चुनाचे हम सबने यह मान लिया कि य सज्जाद जहीर नही हो सकते—कश्मीरी बाजार के शेख़ होगे या पुलिस के कोई ख़िज्र सूरत एजेट। इसलिए अदालत तक के पूरे सफ़र मे हम गुमसुम बैठे उनकी तरफ कनखियो से देखते रहे। अदालत मे जब ये खडे होकर गरजे कि, जनावे-वाला पद्रह दिन हो गये ह और मुझे अभी तक नहीं वताया गया कि मे किस जुर्म मै गिरफ्तार किया गया हू। यह विल्कुल वेहूदा वात है।' तो हमे यकीन हो गया कि वे सज्जाद जहीर ही हे। रिमाड के लिए हम जज साहब की कोठी मे ले जाया गया था। वहा पुलिस गार्डो ओर गाडियों की इतनी गहमा-गहमी थी कि कोठी की ऊपर की मजिल मे बहुत से लोग तमाशा देखने के लिए जमा हो गये थे। जियाउद्दीन ने इशारे से मुझे बुलाकर कहा, भई ऐसे बैठे हो जेसे मवेशी चराने आये हो। सीधे होकर बैठो, कालर ठीक करो, जरा-जरा मुस्कुराओ। देखते नहीं हो, पब्लिक देख रही है।' आर खुद भी तनकर ऐसे बैठ गया मानो तस्वीर उतरवाने आया हो। एअर कमोडोर जजुआ से मेरी पहली मुलाकात वहीं हुई। उन्होने हाथ मिलाते वक्त मेरे हाथ को इस फुर्ती से निचोडा कि अब तक याद है।

हैदराबाद मे अदालत की इमारत जेल के अदर थी। अदालत का वक्त आठ से वारह बजे तक होता था। हफ्ता ओर इतवार के दिन खाली होते थे। शाम के वक्त कभी-कभी हमारे वकील मशविरे के लिए आ जाया करते थे। बाकी वक्त हमारा अपना होता था। एक ही अहाते मे सबके लिए जगह नहीं थी। इसलिए फ़ेज साहब, मुहम्मद हुसेन अता, जनरल अकबर ख़ा, ब्रिगेडियर सादिक खा कर्नल जियाउद्दीन, कर्नल नियाज मुहम्मद अरवाब, मेजर हसन ख़ा, केप्टिन जफरुल्लाह पोशनी, केप्टिन ख़िज्र हयात—ओर मै, एक अहाते में रखे गये। और सैयद सज्जाद जहीर, जनरल नजीर अहमद, एयर कमोडोर जजुआ, आर ब्रिगेडियर लतीफ़ ख़ा को एक दूसरा अहाता दिया गया। वेगम अकबर खा के लिए अलग व्यवस्था थी।

खाने का वदोवस्त हमारी तरफ था। हम जहूर अहमद ओर आदिल खा दो कदी निहायत अच्छा पक्रान चाले मिले हुए थे आर खाने की व्यवस्था एक वाकायदा आफिसर्स मेस की तरह थी जिसका सेक्रट्री समय-समय पर चुना जाता था। शाम के वक्त वॉलीवाल आर वेडमिटन भी हमारे अहाते म ही खले जाते थ। इस तरह इन मिली-जुली सरगामिया का कद्र यही अहाना था। मुशायरे, क़व्वालिया, ड्रामे आम तोर से यही होते थे। सेयद सज्जाद जहीर वाले अहाते म हम छुट्टी के दिन की सुवह जाया करते थे जहा कॉफी ओर विस्कुट स आवभगत होती ओर अदवी व सियासी वात होती थी।

मिर्जा सोदा के (मुलाजिम) गुचं की तरह फेज साहव की वयाज (शायरी की कापी) उठाने का काम मेरे जिम्मे था। जव वे मुशायरे की महफिल की तरफ या सज्जाद जहीर के यहा जाते तो म नाट वुक उठाये पीछे पीछे होता। दूसरे मित्रगण जव हम इस तरह जुलूस म चलता दखत थे तो चारा तरफ खुशी की लहर दोड जाती, इसलिए कि जेल म फेज साहव क ताजा कलाम का वरूदे मसूद (पवित्र आगमन) जश्न से कम नही हाता था। ओर फिर जिस अदा से हम चलते थे, वह भी प्रसन्नता की एक अच्छी खासी हास्यास्पद स्थिति होती थी। फेज साहव धीमे धीमे मुस्कुराते हुए, शरमाये स चलते थे, ओर म एक लठेत जाट की तरह गर्दन अकडाये, नाक आसमान की तरफ उठाये, लोगा के सिरा के ऊपर से देखता हुआ चलता था ओर जव तक फेज साहव के तशरीफ रखने पर, निहायत अदव से लेकिन एक आनवान क साथ वयाज उनकी खिदमत म पेश नहीं कर देता था, मुस्कुराता तक नही था। मिया गुचा आर मुझम इतना फर्क जरूर था कि मिर्जा सादा जव किसी वात पर नाराज हुआ करत थे तो गुचे को सिर्फ कलमदान आगे बढाना होता था, वाकी मिर्जा खुद भुगत लिया करते थे। यहा सूरत यह थी कि फैज साहब तो हमशा से 'वा दुश्मना मुरव्वत, वा दोस्ता मदारा' (दुश्मना के साथ कृपालु ओर दोस्तो के साथ सत्कारशील) क कायल रहे हे आर किसी के सामने उससे नाराज नहीं होते, ओर गुचा द्वितीय उन दिना दोस्त, दुश्मन सवके सिर काटने का हर वक्त तैयार रहते थे।

हेदरावाद मे फेज साहव, म ओर अता साथ साथ के कमरा म रहते थे। म आर अता उनके हर मूड से परिचित हो गये थे। शेर कहने का आलम होता तो फज साहव खामोश हो जाया करते थे। अलवत्ता उठते वेठते गुनगुना चुकने के वाद इधर-उधर देखने लगते। हम भाप लेते थे कि श्रोताओ की जरूरत हे। चुनाचे हम दोनो कइ काफ़्रसा आर लगातार सरगोशियो के वाद मोके की मुनासवत का अदाजा लगाकर, गुरु नानक देवजी के भाई वाला ओर मदाना की तरह, हुजूरे शायर पहुच जाते थे ओर इधर-उधर की हाकने के वाद गजल या नज्म की माग शुरू कर दिया करते थे कि अब बहुत अर्सा हो गया हे आर लाग क्या कहेगे, वगरह वगैरह। अगर नज्म या गजल तेयार होती थी तो एक आध शेर सुना दिया करते थ वर्ना हुक्म होता कि भाग जाओ। हम समझ जाते थे कि दस इकार म इकरार छिपा ह, ओर वात फेला दी जाती थी कि

मानी की सरजमी पे नजूले मरोश हे

उनके आस पास शोर-शरावा, दगा फसाद लडाई-झगडा हर मुमकिन हद तक वद कर दिया जाता था। फेज साहव ने वहुत नाजुक तवीयत पायी हे। पडोस म तू तू म म हा रही हो दास्तो म तलख़ कलामी हो यू ही किसी ने त्योरी चढा रखी हा उनकी तवीयत जरूर खराव हा जाती हे ओर इसक साथ ही शायरी की केफ़ियत काफूर हो जाती ह। जा लाग अता का और मुझ जानते ह व दिल हा दिल म मुस्कुरा रह

हागे कि ये हजरात जिनको शायरी देख पाये तो नम्र (गद्य) म मुह छिपाले, फेज की तबीयत पर क्योकर बोझ नहीं बनते थे। इसका भेद फेज साहब ही खोल सकते है।

हेदराबाद मे क़रीबन हर पखवाडे मुशायरे की महफिल जमाने का रिवाज हो गया था। यह मुशायरा कभी 'तरही' होता था, कभी गैर-तरही[3]—और सभी को इसमे हिस्सा लेना पडता था। *दस्ते-सबा* (फेज का दूसरा सकलन) म निम्नलिखित पंक्तियो पर कही हुई गजले मोजूद है

1 जिक्रे-मुर्गाने-गिरफ्तार करू या न करू
2 आज क्यू मशहूर हे हर एक दीवाने का नाम
3 देखना यो निगहे-नाज कहा ठहरी हे
4 वगरना हम तो तवक्को ज्यादा रखते हे

फेज की गजल 'वही है दिल के कराइन तमाम कहते हं', हसरत मोहानी की एक गजल पर कही गयी हे।

मेरे जेहन मे फैज साहब की जेल की शायरी के चार रग हे (या मूड कह लीजिए)। पहला रग सरगोधा ओर लायलपुर की जेलो मे उनकी तीन महीनो की क़ैदे-तन्हाई का है। वे बहुत मुश्किल दिन थे। कागज, कलम, दवात, किताबे, अख़बार, ख़त सब चीजे मना थी। उन्होने इस तरफ़ इशारा भी किया है

मता ए-लोह-ओ-क़लम छिन गयी तो क्या गम है
कि ख़ूने दिल में डुबो ली ह उगलिया मने
जबा पे मुहर लगी है ता क्या कि रख दी हे
हरेक हलक़ए-जजीर मे जबा मने

सिर्फ़ एक शम्सुद्दीन थे जो नवाबो, जिनो, भूतो, देवा, परियो,आमिलो (प्रेतात्मा बुलाने वाले, झाड फूक करने वाले) ओर मामूलो से अपने सबधो के किस्से सुनाकर फेज साहब का जी बहलाया करते थे।

हैदराबाद मे तो फ़ेज साहब उनके जिक्र से भरपूर थे, आजकल भी अक्सर याद करते रहते हे। इस क़ैदे-तन्हाई का उनपर असर हुआ था कि हेदराबाद पहुचने पर वे अकेले रहने से बहुत वहशत खाते। अपनी-अपनी कोठरियो के अलावा एक हॉल भी हम दिया गया था। हमे इजाजत थी कि जहा चाहे अपना बिस्तर जमा ले। हम अपने-अपने कमरे मे रहना चाहते थे लेकिन फैज साहब हॉल म रहने की जिद कर रहे थे। कहते थे कि तुम्हे मेरी तरह तन्हाई में रहना पडता तो दास्तो की सगत की क़द्र होती। लेकिन उनकी यह हालत ज्यादा देर नहीं रही ओर कुछ अर्से के बाद वे अपने कमरे मे चले गये। अब उनका ज्यादातर वक्त हमे अपने कमरे से निकालने मे खर्च होता था।

फैज साहब कहा करते थे कि उन दिनो उनकी तबीयत में बहुत जोरों की आमद थी ओर तरह-तरह के मजामीन (विषय वस्तु) सूझ रहे थे। उस दोरान का कलाम कुछ तो उनके जेहन से उतर गया, जो बच गया वह सब *दस्ते-सबा* मे निम्नाकित मे समाविष्ट हे

---

3 तरही मुशायरे म शेर की एक पंक्ति दी जाती है जिसकी जमीन और वजन मे काफिया रदीफ के मुताबिक गजल सुनानी होती है। गैर-तरही मुशायरे में शायर को स्वतत्रता है कि कैसी भी गजल सुनाये।

1 मता ए-लौहो-कलम
2 दामने-यूसुफ
3 तोक़ो-दार का मौसम (पहला हिस्सा)
4 तेरा जमाल निगाहो म लेने उट्ठा हू
5 तुम आये हो न शबे इतजार गुजरी है
6 तुम्हारी याद के जब ज़ख़्म भरने लगते है
7 शफ़क की राख मे जल बुझ गया सितारा ए शाम

कुछ कलाम ऐसा भी है जो सिर्फ़ सीना-ब सीना चल सकता है, और जिससे फैज साहब सिर्फ विशेष दोस्तो को नवाजते है।

उनकी शायरी का दूसरा रग हेदराबाद का है। यहीं हम हर तरह का जिस्मानी आराम मिला, जा जेत मे मुमकिन हो सकता हे, मयस्सर था 'गोशे मे कफ़स के मुझे आराम बहुत हे।' की सी हालत थी कि बाहरी आराम व आसाइश के पर्दे म हजारो हसरतो का ख़ून और लाखो तमन्नाआ का कब्रिस्तान था। हमारे ख़िलाफ़ कई आपराधिक धाराए ऐसी लगी हुई थीं जिनकी सजा मौत थी। इसके साथ अपनी सफाई पेश करने की सहूलते बहुत हद तक हमे मिली हुई नहीं थी। लेकिन हमने समझ रखा था कि

दर बयाबा गर बशौक़ो-काबा ख़ाही जद कदम
सरजनिशहा गर कुनद ख़ारे मुगीला गम मख़ूर।

(अगर कावे (इष्ट) की जुस्तजू मे तू बीहड म कदम रखे और अगर ऐसे मे बबूल के काटे तुझे (चुभकर) चेतावनी दे तो इन कठिनाइयो से परेशान न हो जाना।)

और वक्ती तौर पर शोर-शराबे, हा-ओ हू, गाली गलोज के जरिये आने वाले ख़तरो की आहट को दबाये हुए थे। डेढ-दो बरस तक हमारी बातचीत का विषय सिर्फ़ 'फतेह' (विजय) रहा। मुझे याद नही पडता कि मेरे सामने किसी ने कभी शिकस्त का जिक्र किया हो। हम समझते थे कि ऐसा जिक्र एक बार शुरू हो गया तो ऐसे नही रुकेगा। हम फेज के उस मशहूर उदाहरण पर अमल कर रहे थे कि जब बचाव की सूरत न रहे तो धावा बोल दो। चुनाचे शुरू दिन से हम अदालत के अदर अपनी सामर्थ्य अनुकूल बोलते रहे। फ़ेज साहब ने इसमे बहुत कम हिस्सा लिया। लेकिन हमे रोका भी नही। वे अपना जोश और बलबला अपनी शायरी मे जाहिर कर लिया करते थे

फिर हश्र के सामा[4] हुए एवाने हवस[5] मे
बेठे है गविल-अद्ल[6], गुनहगार खडे हैं
हा जुर्मे वफ़ा देखिए किस किस पे हो साबित
वो सारे ख़ताकार[7] सरे दार[8] खडे हे

4 कयामत की तैयारिया
5 लालसा का भवन
6 न्याय वाले
7 मुर्जिम
8 सूली चढने को तैयार

यही जुनू का, यही तोको दार[9] का मोसम
यही है जब्र[10] यही इख़्तियार[11] का मौसम
कफ़स है बस मे तुम्हारे, तुम्हारे बस मे नहीं
चमन मे आतिशे-गुल के निखार का मोसम
बला से हमने न देखा तो और देखगे
फ़रोगे गुलशनो सौते हजार[12] का मौसम

हुई हे हजरते नासेह[13] से गुफ़्तगू जिस शब[14]
वो शब जरूर सरे-कूए यार[15] गुजरी हे

हमारे दम से हे कूए-जुनू[16] म अब भी ख़िजल[17]
अबा ए शेख़ो-कबाए-अमीरो-ताज शही[18]
हमी से सुन्नते मसूरो-कैस[19] जिदा हे
हमी से बाकी हे गुल दामनी-ओकज-कुलही[20]

ऐ ख़ाक नशीनो[21] उठ बेठो वा वक्त करीब आ पहुचा है
जब तख़्त गिराये जायगे जब ताज उछाले जायगे।

इज्जे - अहले - सितम[22] की बात करो
इश्क के दम-कदम की बात करो

देखने वाले देखेगे कि दस्ते सबा के दूसरे हिस्से मे जोशो-ख़रोश का वह आलम नही हे जो पहले आधे हिस्से मे हे। इसकी एक वजह तो यह हो सकती हे कि कुछ समय मुकदमे की सुनवाई हो चुकने के बाद हमे यह उम्मीद हो चली थी कि अगर अदालत की कार्रवाई मे दिलचस्पी ले तो शायद बहतरी की

9 फासी और सूली
10 दमन
11 प्रभुता
12 बहार और बुलबुलो के चहचहे
13 उपदेश देने वाला
14 रात
15 प्रेयसी की गली के पास से
16 दीवानगी की गली
17 शर्मिंदगी
18 धर्मगुरु और धनवान की वेशभूषा और बादशाहो का ताज (जो धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक वर्चस्व के द्योतक है)
19 मसूर और मजनू की परपरा जिन्होने अपने ध्येय के लिए जान दी।
20 दामन को फूलो से भरना और तिरछी टोपी रखना अर्थात महरबानी और आत्मसम्मान
21 जमीन पर बैठने वाले
22 अत्याचारियो की नाकामी व मजबूरी

काई सूरत निकल आये। इसलिए साच-विचार ने दीवानगी की जगह ले ली थी। इसकी दूसरी वजह उनके भाइ की दुखद मौत थी। वे हेदरावाद उनसे मिलन आये थे ओर अपने एक रूहानी पेशवा की तरफ से उनकी रिहाई की खुशखबरी लाये थे। अभी हेदरावाद मे ही थे कि 18 जुलाई 1952 ई की सुबह को नमाज पढते हुए इस दुनिया से कूच कर गये। फेज साहब को इतना सदमा हुआ कि महीना तक नीम-मुर्दा हालत मे रहे। एक दिन तो चारपाई से उतरते हुए बेहोश होकर फर्श पर गिर पडे। आवाज सुनकर म आर अता भागे भागे आये ओर जमीन से उठाकर बिस्तर पर लिटाया। यह घाव अभी तक भरा नही हे, यद्यपि उन्हाने अपनी आदत क अनुसार उसे 'केमुफ्लाज' कर लिया हे।

फज साहब की 'केमुफ्लाज' करने की आदत भी अजीब हे। कई बार ऐसा हुआ कि सिग्रेट खत्म हो गयी लेकिन इसक वजाय कि साथिया से माग ल, वकरारी दूर करने के लिए अहाते क चक्कर काटन शुरू कर दिये। इस वेकरारी को पहचानने म हम काफी समय लगा। उनको छिपकालियो स बहुत घिन आती थी, मेरा खयाल हे, डरते थे। एक दिन हम सब बरामदे म चारपाइया डालकर सोने की तेयारी म थ कि फेज साहब ने अचानक उठकर इधर-उधर चक्कर काटने शुरू कर दिय। अता की चारपाई पास ही थी। उसने सोचा कि दाल म कुछ काला ह। हाथ की तरफ देखा तो सिग्रेट सुलग रहा था। फज साहब की नजरो का पीछा किया। देखा कि उनकी नजरे बार बार छत की तरफ उठ रही थी। वे चारपाइ के पास आते थे ओर आगे निकल जाते थे, और घूम कर फिर यही क्रिया दुहराते थे। अता ने छिपकली को देख लिया आर उठकर फज साहब की चारपाइ एक तरफ कर दी।

तीसरा रग कराची का हे। जहा फेज साहब दो महीन के लिए ठहरे। दरअसल यह रग दूसर आर चाथ रग की दरमियानी कडी हे। कराची अस्पताल म फज साहब जेल के मुकाबले जरा आजाद माहौल म रहे। दोस्ता के साथ बिना किसी परेशानी के मुलाकात हो जाया करती थी। वहा उन्हे इन्ही वजहो से आजादी की नेमता का बडी तीव्रता से एहसास हुआ। इस शदीद एहसास के बाद जब वे मटगोमरी आये ता कद का एहसास भी शिद्दत पकड गया और उनकी शायरी मे जाहिर हुआ। इसीलिए उन्होंने कराची आर मटगोमरी म लिखी हुई गजला ओर नज्मा के सकलन का नाम *जिंदानामा* (जेल-वृतात) प्रस्तावित किया था।

कराची म फेज साहब न अपनी शाहकार नज्म 'मुलाकात' लिखी। इस नज्म का पहला बद अक्टूबर 1953 म मटगोमरी म आकर पूरा हुआ था और दूसरा ओर तीसरा नववर मे। इसे कराची म लिखी इस लिए बता रहा हू कि य इसके 'जरासीम (कीटाणु) कराची से लाये थे। इन नज्म मे उस बिन जल मछली की तडप ह जिस पर जानलेवा महरूमी (वंचित होने) के बाद कुछ पानी छिडक दिया गया हो आर वक्ती सुकून के बावजूद उसे इस बात का शिद्दत से एहसास हो कि थोडा सा पानी जो मिला हे, सूखने वाला ह। यह नज्म दर्द की इतहाइ शिद्दत के साथ इतहाई सुकून भी दर्शाती हे। इसमे ईमान व यकीन की जगमगाहट भी हे इसम इनसानी हासले, इरादे और बुद्धिमत्ता का राग भी गाया गया हे। ऐसा हौसला, अज्म ओर हिकमत जा सिर्फ आज के इनसान की विशिष्टता ह जो धरती माता पर बेहद मजबूती से कदम जमाकर तारा पर कमंद फक रहा ह ओर चाद पर शवखून (धावा) मारन की फिक्र में हे जा पानी हवा, दरिया, समदर बिजली, बारिश आर ब्रह्माड की दूसरी परिया ओर देवा पर विजय पा चुका ह, या पान वाला हे जिसक सकटा, हजारा साला के दुखा आर जख्मा के ढर आज क्रिया आर ऊष्मा का स्रोत बन हुए ह।

फ्ज साहव की जेल की शायरी का चोथा रग मटगोमरी का हे। यहा हम लगभग हैदरावाद की सी सहूलतें मिली हुई थी। जेल क प्रवधक भी अच्छे दिल वाले थे जो जेल के अनुशासन विल्कुल भी न तोडने के वावजूद हमार दिल नही टूटने देते थे। उनम से कई अच्छी रुचिया रखते थे जो हमारे साथ अदवी छेडछाड जारी रखते थे। एक साहव का तो एसा ढग आता था कि उनके आन के चद ही पलो वाद फेज साहव तूती की तरह चहकने लगते थे आर मालूम होता था कि दुश्मना ने उन पर कम वालन का वस इल्जाम ही लगाया हे। इन साहव को चिरकी स लेकर मिर्जा गालिव तक सव शायरो के कुछ न कुछ भले वुरे शेर याद थे ओर उन्होने तीर्थराम फीरोजपुरी के नॉवेलों से लेकर सआदत हसन मटो की कहानियो तक सव कुछ पढ रखा था। वे आते ही सलाम दुआ के वाद शुरू हो जात आर फज साहव का ध्यान आकृष्ट न होने की परवाह किये वगर यहा से वहा, वहा से कही आर, कुछ न कुछ कहते रहते। यहा तक कि फेज की कोई ऐसी रग छिड जाती कि गुस्से म या मोज म आकर उनसे कुछ कह विना न रहा जाता।

मटगोमरी म फेज साहव को अपनी वीवी, वच्चियो ओर दूसरे दोस्ता रिश्तेदारा से मुलाकात म भी आसानिया थी। दिल वहलाने के लिए हमने अपने अहाते के अदर एक फुलवारी भी वना ली थी जिसका सिलसिला वढते-वढते सारे जेल मे फेल गया था, वल्कि जल के वाहर भी लागा को फूला की पनीरी मुहेया की जाती थी। फ्ज को फूला का शाक इतना था कि उन्होने विलायत स अपनी खुशदामन (सास) आर एक दोस्त के द्वारा फूला के वीज मगवाये। फूल एक वढने, फलने फूलने की चीज है। उनसे जेल म खूव जी वहलता हे, ओर कोई न कोइ नयी सूरत पेदा हा जाती हे। इसक अलावा आदमी केद का एक-एक दिन गिनने के वजाय मोसम गिनने लगता हे, जो लवी से लवी कद म भी उगलिया पर गिने जा सकते हे। साथ ही नजर भविप्य पर रहती ह कि आने वाले मोसम मे फूल लगाने के लिए क्या-क्या वदोवस्त करना हे और पिछली गलतिया को दोहराने से वचने की क्या सूरत हे।

लेकिन इन सव वाता के वावजूद मटगोमरी मे फेज साहव को केद का वहुत शदीद एहसास था। इसकी एक वजह तो यह थी कि हेदरावाद से तव्दीली पर यारो दोस्तों से जुदाई का कलक था—एक तरह से भरा घर उजड गया था। दूसरी वजह मे वयान कर चुका हू कि कराची म जरा अधिक आजादी की फजा के वाद केद का वोझ ज्यादा कप्टप्रद हा गया था। सव से वडी वजह शायद यह थी कि निकट भविप्य म रिहा हो जाने की उम्मीद का जो नन्हा सा चिराग अव तक जलता रहा था, वह अव खामोश हो चुका था, और शुरू-शुरू की कदे-तन्हाई का रग एक हद तक वापस आ गया था। दर्दो-गम का तूफान उमड पडा था। अव व जेल की दीवारा, दरवाजो, सलाखो पहरेदारो को गार से देखने लगे थे। पहल वाहर की दुनिया के साथ कल्पना का सीधा सवध था अव उसे भी जेल की दीवार फाद कर अदर आना जाना पडता था

हम अहले-कफस[23] त हा भी नही हर राज नसीमे सुव्हे वतन[24]
यादा से मुअत्तर[25] आती ह, अश्का से मुनव्वर[26] जाती हे।

---

23 पिजरे के क्दी
24 वतन की सुवह के ठडी हवा
25 सुगधित
26 रौशन चमकदार

इस शेर म नसीमे-सुब्हे वतन की दीवारो को फादने की सरसराहट साफ सुनायी दे रही है और उसका हिज्रा नसीब (जिसके भाग मे बिछोह है) केदी को जेल वालो की नजरो से वच बचाकर यादो का तोहफा देना और उसके आसुओ की सौगात ले जाना भी नजर आ रहा हे।

जब तक सोहनी कामयाबी से चिनाब पार करके महीवाल से मिल लिया करती थी, उस वक्त तक उसके जहन मे चिनाब की लहरो और घडे के पुख़्तापन की एक अदृष्ट कल्पना थी। उसका सारा ध्यान महीवाल पर केद्रित रहता था कि वह केसा होगा, केसे मिलेगा ओर जाते वक्त दिल पर क्या गुजरेगी। जब वह कच्चे घडे की बदौलत दरिया मे डूबने लगी, उस वक्त उसकी नजरे यार की कुटिया पर थीं। लेकिन कोई वक्त ऐसा जरूर आया होगा जब पूरी तीव्रता के साथ उसे दरिया की हस्ती का एहसास हुआ होगा, और कच्चे घडे की चिकनी मिट्टी हाथो मे महसूस करके पक्का घडा भी याद आया होगा। ओर जब वह महीवाल की खातिर अपनी जान बचाने के लिए हाथ-पाव मार रही होगी तो एक लम्हे के लिए महीवाल का ध्यान भी जहन से उतर गया होगा। हैदराबाद के कयाम के दोरान फैज की कल्पना बाहर की दुनिया के साथ बहुत मजबूती के साथ जमी रही। जेल की जिदगी ने यह रिश्ता और भी मजबूत कर दिया था। *दस्ते-सबा* के अत मे फैज साहब की दो सुदर नज्म 'जिदा की एक शाम' और 'जिदा की एक सुबह' इसकी गवाह है। यहा उन्होने जेल के डरावने दैत्य की भयावहता का पूरा पूरा नक्शा खीच दिया हे। लेकिन उनके मुख पर अपमानजनक मुस्कुराहट हे ओर उन्होने आनद विनोद के ऐसे स्रोत निकाल लिये हें जो जेल के देत्य की कार्यपरिधि से वाहर है

दिल से पेहम[27] ख़याल कहता है
इतनी शीरीं[28] हे जिदगी इस पल
जुल्म का जहर घोलने वाले
कामरा[29] हो सकेगे आज न कल।
जल्वा गाहे विसाल[30] की शम्एं[31]
वो बुझा भी चुके अगर तो क्या?
चाद को गुल करे तो हम जाने।

गोया फिर ख़्वाब से बेदार हुए दुश्मने-जा
सगो फौलाद से ढाले हुए जिन्नाते गिरा[32]
जिनके चगुल म शबो-रोज है फरियाद-कुना[33]
मेरे बेकार शबो रोज की नाजुक परिया।

27 लगातार
28 मीठी
29 कामयाब
30 मिलन की जगह
31 दीपक/शमा
32 भारी दैत्य
33 रोते फरियाद करते हुए

अपने शहपूर[34] की रह देख रही है ये असीर[35]
जिसके तर्कश मे है उम्मीद के जलते हुए तीर

कराची के कलाम के वाद ये तिलिस्म टूट गया ओर मटगोमरी म जेलखाना अपनी पूरी भयावहता के साथ रूवरू आ गया। चुनाचे उनके दर्दे-दिल ने दुनिया भर के असीरो के रजो गम को अपने अदर समो लिया था। कीनिया के वाशिदो पर जनतत्र और आजादी के दावेदारा के हाथा असीम अत्याचार आर उनके अपने वतन की कठिनाइया फज साहव के लिए हृदयविदारक वनी हुई थी। वे अफ्रीकी ओरता के नुमाया कारनामो से विशेपत प्रभावित थे। कई वार ऐसा महसूस होता था कि व पाकिस्तानी नही रहे, अफ्रीकी वन गये है। उनकी नज्म 'आ जाओ एफ्रिका' इसकी द्योतक है।

'हम जो तारीक राहो म मारे गये' रोजेवर्ग जोडे की वेमिसाल कुर्वानी से प्रभावित होकर लिखी गयी। यहा वह मरते दम तक इसानियत के भविष्य, इकलाव का मुहब्बत, या उनके साथ अपनी वफादारी जतलाते रहते हे। इस नज्म की सार्वभौमिकता अजीवो-गरीव है। इसने सदियो को पाटकर हर जमाने और हजारा मील की दूरी तय करके, हर मुल्क के शहीदो को एक पंक्ति मे खडा कर दिया हे। यह नज्म कर्वला, प्लासी, श्रीरगापट्टम, मिदूकी, झासी, जलियावाला, किस्साख़ानी, स्टालिनग्राद, मलाया, कीनिया, कोरिया, तिलगाना, मराकश, त्यूनिस, सभी से जुडी मालूम होती हे, ओर तेहरान, कराची और ढाका की सडको पर दम तोडते छात्र, मराकश, त्यूनिस, कीनिया और मलाया के ख़ून मे लथपथ मुजाहिद, सव एक ही उत्साहवर्धक नारा दोहराते सुनायी देते है

तेरे कूचे स चुनकर हमारे अलाम[36]
आर निकलगे उश्शाक[37] के काफिले
जिनकी राहे-तलव[38] से हमारे कदम
मुख़्तसर[39] कर चले दर्द के फासले।

हम मटगोमरी मे ही थे कि ईरानी देशप्रेमियो को जेल मे गोली का निशाना वनाने का विस्तृत वृत्तात अमरीकी पत्रिका *टाइम* म छपा। साथ ही उनकी कत्लगाह मे ली गयी तस्वीर भी थी। सादी आर हाफिज के वतन से फेज साहव को ख़ास मुहव्वत हे। कई दिन बेचेन रहे ओर अत मे उनकी वेचेनी 'आख़िरी रात' के रूप मे जाहिर हुई। *यह नज्म उस विचार और कल्पना की तर्जुमानी करती हे जो केदी के जहन* म उस रात गुजरते हे जिसकी सुवह को उसे शहीद होना होता है। इसानियत की राह मे हुए ख़ून के करिश्मे देखिये कि शहीद कहा-कहा और किस-किस रग मे नये रूप धर लेते है

कुश्तगाने खजरे तसलीम रा
हर जवा अज गैव-जाने दीगर अस्त

---

34 पक्षी के डैने चिडिया के पख
35 कदी
36 झडा परचम
37 प्रेमी
38 चाहत का रास्ता
39 छोटा

(क़ुबूलियत के ख़ंजर से कत्ल होने वाला को गव से आने वाली हर बात एक ओर जान मिलने की तरह है।)

फज साहब की उस जमान की मानसिक स्थिति की पूरी-पूरी तर्जुमानी अगर कोइ नज्म करती हे ता वह 'दरीचा' हे।

मटगोमरी से दातो के इलाज के सिलसिले मे कोई तीन सप्ताह के लिए माच 1954 मे हमे लाहार आना पडा। लाहौर से फेज साहब को कुर्वान हो जाने की हद तक मुहब्बत हे। वे लाहार आना बिल्कुल पसद नही करते थ। कहने थे, दिल पर वाझ पडेगा। यहा आक़र लाहौर का पानी पिया, उसकी फजा मे सास ली, लाहार की आवाजे सुनी और लाहार के कई गामो, माझो से, खत्मे-नवूवत की तहरीक़ के सिलसिले म जेल आये हुए थे, मुलाकात हुई ओर वह दिलदोज नज्म 'ऐ रौशनियो के शहर' सामने आयी जिस पर कोई शहर जितना भी गर्व करे कम है।

फज साहब के दिल मे लाहार आर लाहोर वाला के प्रेम का जोश एक बार पहले भी उमड पडा था। जब 1953 मे लाहार के गली-कूचे उसके वेटो के खून से रगीन हो गये थे। 'लाहार के नाम' अभी तक अधूरी ह।

मटगोमरी मे उनकी शायरी के बारे म मेरी और उनकी काफी वहसे हुआ करती थीं। म कोई न कोई वात कहता रहता था ओर उनको जवाव दिये वगेर चारा न था। शायर ओर मायर वाला मामला था। फरारी का रास्ता एक ही था कि सरकार के आगे सिर झुकाकर मुझसे निजात पाते। इसका सवाल ही पैदा नहीं होता था। लिहाजा मरता क्या न करता। आजकल भी मजाक मे कहा करते है कि *जिदानामा* के *जिदानामा* होने मे तुम्हारी 'वहावियत' को भी दखल है।

फेज की जेल की शायरी मे वतन की मुहब्बत के चश्मे हर तरफ फूट रहे ह। वे जगह-जगह अपने देश ओर देशवासिया की खस्ताहाली, कौम के आत्मसम्मान के सस्ते होने, लोगो की गरीबी, जहालत, भूख ओर गम को देख-देखकर बुरी तरह तडप रहे हे

निसार म तेरी गलियो के ऐ वतन कि जहा
चली है रस्म कि कोई न सर उठाके चले
जो कोई चाहने वाला तवाफ को निकले
नजर चुराके चले जिस्मो-जा वचाके चले

कई वार कुछ ओर नही बनता तो खयाली पुलाव पकाने लगते हे ओर जेल की काल-काठरी म बैठकर भी धूल-धूसरित, परेशाहाल लेला-ए-वतन को बना सवरा देखना चाहते हे

बुझा जो रोजने जिदा[40] तो दिल ये समझा हे
कि तेरी माग मितारो से भर गयी हागी।
चमक उठे ह सलासिल[41] ता हमने जाना हे
कि अव सहर तेरे रुख पर विखर गयी होगी।

---

40 जेल का रोशनदान
41 बेड़िया

वतन की मुहब्बत इस तरह उनके रोम-रोम म बस गयी है कि अब उसको दूसरी मुहब्बता से अलग करके देखना नामुमकिन हो गया हे

चाहा ह इसी रग मे लला ए वतन का
तडपा ह इसी तोर स दिल, उसकी लगन को
ढूढी हे यु ही शेफ़ ने आसाइशे मजिल[42]
रुख़्सार[43] के ख़म म, कभी काकुल[44] की शिकन[45] म।

जेल म न जाने क्या बात थी कि हम सबका देशप्रेम जोरो पर था। सुबह-शाम पाकिस्तान का जिक्र होता रहता था। बेबसी ने मिजाजा म चिडचिडापन पेदा कर दिया था। कभी बेहद गुस्सा आता और कभी राने को जी चाहता था। हाथ-पर तो नाकाम कर दिय गये थे लेकिन दिलो-जा पर आफत आयी हुई थी।

1951 मे जब हिदुस्तान के पाकिस्तान की तरफ आक्रमण के इरादा की खबरे छपी तो हममे से उन अफसरो ने जो अब तक माजूल नही किय गये थे, हुकूमत को दर्खास्त दी कि पाकिस्तान की हिफाजत म हमको भी जान लडाने की इजाजत दी जाये, खास तोर पर जबकि हर एक को कश्मीर म हिदुस्तानी फोजो से लडन का तजरुबा हे। दर्खास्त म स्पष्ट कर दिया गया था कि हमारा मकसद मुकदमे से जान छुडाने का नही। हम गवनमट से इसके सिवा कुछ नही चाहते थ कि हगामी हालात के दारान मुक़दम को मुल्तवी कर दिया जाये। यह कोई स्टट भी नही था, इसलिए कि हम मालूम था कि हिदुस्तानी फोजा के कधा स कधा मिलाये हिदू सभाई आर अकाली दरिंदे भी होग, आर मगरिबी पाकिस्तान स भागन का कोई रास्ता भी नही था। हमारी दर्खास्त रद्द कर दी गयी। बहरहाल, जमाना खरे-खोट की तमीज जल्द या देर से कर ही लेगा

नजीरी काश बनुमाई कि दर सागर व मयदारी
कि पेशे-जाहिदा कद्रे गुनहगारा शुवह पदा

(ऐ नजीरी काश यह दिखायी देता कि तेरे प्याले मे कितनी शराब है। गुनाहगारो की कद्र व अहमियत तो धम का पालन करने वाला के सामन ही पेदा होती ह)

हिदुस्तान ओर पाकिस्तान का जिक चल निकला हे। जेल म फज साहब अक्सर अपने हिदुस्तानी दोस्ता को याद किया करते थ। उनमे कई एक लाहौर क रहने वाले थे। कई अन्य वर्षो तक पजाब म रह चुके थे। मोलाना हसरत मोहानी, रशीद जहा, साहिबजादा महमूदज्जफर, असरारुल हक मजाज, मख्दूम मुहीउद्दीन, अली सरदार जाफरी, पडित हरिचद अख्तर उपेद्रनाथ अश्क ओर उनकी बेगम, मुल्क राज आनद, कृष्ण चदर डाक्टर अशरफ, जोश मलीहाबादी, फिराक गोरखपुरी ओर दूसर कई लोगो का जिक्र मने इतनी बार सुना ह कि महसूस करता हू कि उनके साथ एक अर्से से जान पहचान हे, हालाकि उनम से मे किसी एक को भी निजी तार पर नही जानता। सज्जाद जहीर ओर फज साहब इकट्ठे हो जात थ

42 मंजिल पर पहुचने स मिलन वाला आराम
43 गाल
44 जुल्फ
45 सिलवट

तो फिर बात ही अक्सर इन लोगो के बारे म हुआ करती थीं।

1947 ई के दगा का जमाना फैज साहब न लाहार म गुजारा था। उन्हीं दिना वे पूर्वी पजाब भी हो आय थे। दोना तरफ के बहादुरा आर शूर वीरो ने जिस तरह इसानियत का जलील किया था, उसका आखो देखा हाल सुनाया करते थे। बयान करते-करते दिल भर आता आर रुक जाते। मरे ख़याल म वे इतने बडे पेमाने पर इस होलनाक गृह युद्ध को देखने पर मजबूर रहे है कि शायरी म उसको लान की हिम्मत ही नही हुई। हो सकता है कि वक्त मिलन पर वे नॉवेल या ड्राम क जरिय पजाब की इस ट्रेजिडी को बयान करे। पजाब की सरजमीन यू तो हजारा साला से हमालावरा के हमला ओर बर्बादी का शिकार रही हे। शायद ही यहा की कोइ नस्ल ऐसी गुजरी होगी जिसन विदेशी घाडा के सुमा की टाप न सुनी हो। लेकिन इन हमलावरा म स अक्सर बगूल की तरह आते थे आर आधी की तरह गुजर जात थ। तलवार के साये तले जीने का अपमान कुछ कम नही होता, लेकिन 1947 ई म जिस तरह पजाबिया ने पजाबिया को जलीलो ख़्वार किया, तमाम हमलावरा ने मिल कर भी नही किया हागा। अमृता प्रीतम के शब्दा म (यहा एक पजाबी गजल हे जिसका पहला शेर ह)

अज अक्खा वारिस शाह नू किते कब्रा विच्चो बाल
ते आज किताब इश्क दा अगला वर्का खाल

फैज साहब पाकिस्तान म कई लोगा के इस विचार स बहुत दुखी हात थ कि हर वह चीज जिसका सबध हिदुस्तान से भी है, पाकिस्तान के लिए जहरे हलाहल हे। रेडियो पर इकबाल के कलाम, कव्वालियों ओर फिल्मी गानो के सिवा कुछ सुनने मे नहीं आता। चुनाचे हम जेल वालो से बचबचाकर हिदोस्तानी रेडियो स्टेशन से अपने दश के राग सुना करते थे। किसी जाहिल ने खुद ही कोमी जाश म आकर अमीर खुसरो, तानसेन, वाजिद अली शाह अब्दुलकरीम खा, फैयाज ख़ा आर दूसरे बीसियो उस्तादो ओर नामवरो से पाकिस्तान का रिश्ता तोडने को ही देश प्रेम समझ लिया था।

मुल्को की राजनीतिक ओर आर्थिक सीमाए वक्त के तकाजा के अनुसार बदलती रहती है। लेकिन एक ही भूखड की तहजीब, भाषा, साहित्य, कला, सगीत, स्थापत्य आर दूसरे सास्कृतिक मूल्या का मिश्रण सैकडा, हजारो सालो की कोशिशो के बाद तेयार होता हे आर उसके बुनियादी तत्वो मे तब्दीली आसान नहीं होती। पाकिस्तान ओर हिदुस्तान मे सियासी धीगामुश्ती कैसा भी रूप ले ले दिल्ली, लखनऊ, हैदराबाद ओर लाहोर की गगा-जमनी तहजीबे अपनी जगह कायम रहेगी ओर मीर ओर गालिब म सबका साझा रहेगा। हिदुस्तानी ओर पाकिस्तानी तहजीबा के दरख़्तो की जडे मोहनजोदडो, गया, हर्षपुर, गाधार, तक्षशिला, मथुरा बनारस, अजता, अजमेर, कुतुबमीनार, ताजमहल, जामा मस्जिद, शालीमार हर जगह फेली हुई है। शाखा म कही समरकद व बुखारा और कई अरब व अजम (ईरान) से आये हुए पैबद अपनी बहार दिखा रहे ह ओर कही प्राचीन डाले ज्यो की त्यो कायम है। दूसरे की जिद मे जडो को नुकसान पहुचाना, या शाखो की नोच खसोट करना अपने पाव पर आप कुल्हाडी मारना हे।

फेज साहब उन इसानियत नवाज परपराआ से जुडे है जो हजारो साला से दोनो मुल्का की सरजमीन की विशेषता रही ह। वे उसी सिलसिले की कडी हे जिसे अमीर खुसरो भक्त कबीर, ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, बाबा नानक बाबा फरीद अबुल फज्ल फेजी, बुल्हे शाह, वारिस शाह शाह अब्दुल लतीफ भिटाई रहमान बाबा और दूसरे बहुत से बुर्जुगा ने फैज पहुचाया हे।

हैदरावाद म उनका पढने पढाने का सिलसिला अजव रगा रगी का था। कोई कुरान मजीद और हदीस शरीफ उनसे पढ रहा ह, तो कोई सूफियो की रचनाए, फुतूहुल-गव, कुश्फुल-महजूव, अहयाऊल-उलूम वगरह की वारीकिया समप रहा ह। कोई अग्रेजी आर यूरोपीय अदव की उलझन पेश कर रहा हे तो किसी ने मार्क्सीय भातिक द्वद्ववाद क फलसफे पर वहस शुरू कर रखी हे। उर्दू, फारसी अदव तो तकिया कलाम था। हदरावाद मे हमने उनको शार्गिद के राल म भी देखा हे। पोशनी के साथ मिलकर सज्जाद जहीर से हम फ्रासीसी जयान सीखा करते थे। निहायत लापरवाह आर कामचोर थे। सेयद साहव की उस्तादाना घुडकिया ओर फेज साहव की वहानेवाजिया वहुत मजा देती थी।

मेहनतकशा स उन्ह खास उल्फत ह। हदरावाद म एक वार हमारे अहात म विजली के खभे का फ्यूज जल गया। एक मिस्त्री वगर सीढी क वहा पहुच गया। हम तिलमिलाने लग कि खाहमखा वक्त वर्वाद करन के लिए आ गया हे। उसने खभे को जरा ठोका, वजाया ओर यह जा वा जा। सीढी के विना ही खभ के सिरे तक पहुच कर आख झपकत नया फ्यूज लगा आया। फज साहव देर तक उसके कसीदे पढते रहे। मटगामरी मे शाहजी, एक पास्टमेन, हमारे पार्सल वगेरह लाया करते थे। उनको देखकर फेज साहव की आखा म जेसी रोशनी आ जाया करती थी वह मने कम ही देखी ह। दोना ट्रेड यूनियन के मवर रह चुक थे। कहा करते थे कि हिदुस्तान पाकिस्तान क मसलो का हल एक ही है कि दोनो मुल्का म मेहनतकश अपन हक हासिल करके अपने-अपने वागीचो के माली वन जाये। इसके वाद इन मुल्का के वीच नफरत का जहर, आर उसको पेदा करने वाले वे मसले जो निदान चाहते हे, जिनकी आड मे सामराजी आजकल अपने फालादी पजे, वतने-अजीज की रगो में दोवारा पेवस्त कर रहे हे, यू गायब हो जायग जस देवो परियो के किस्सा म हीरो के इस्म पढने पर देत्य, भूत ओर दूसरी वलाए पलक झपकते गायव हो जाती हे।

फज की शायरी मे एक दिल वाले का जोश आर वलवला हे। इसम पूरी कोम का दिल धडक रहा ह। लेकिन पता नही क्या वात ह कि उसके किवाम (मिश्रण) म पाकिस्तान के मेहनतकशो का मुवारक पसीना आर खून की गर्मी अभी तक पूरी मिकदार मे शामिल नही हे। समन व गुलाव को जिस चाहत स याद किया ह, उसी चाहत ओर विस्तार से उस वदहाल आर वदनसीव का जिक्र नही हे जिसने *समन ओर गुलाव का अपने जिगर क खून स सीचकर शादाव किया हे ओर जिसको हक पहुचता है* कि वह भी इस समन व गुलाव की नजाकता, रग रूप आर सुगध से फायदा उठा सके। उनका दिल तो उधर खिचा जा रहा ह लेकिन–

लग्जिशे पा[46] म ह पावदी ए-आदाव[47] अभी

उनकी शायरी को ड्राइग रूमा, स्कूला, कॉलेजो से निकल कर सडका, वाजारा, खेतो ओर कारखानो मे अभी फलना ह।

वे कहा करते ह कि ये चीज सिर्फ पजावी म हो सकती ह। लेकिन मे समझता हू कि यह उनकी हमेशा की तरह की विनम्रता हे आर प्राकृतिक हिचकिचाहट। *दस्ते सवा* की भूमिका मे उन्हाने लिखा ह

46 पाप की लडखडाहट
47 परपरा की वडिया

या यू कहिए कि शायरी का काम केवल मुशाहिदा (सर्वेक्षण) ही नहीं है, मुजाहिदा (बदलाव का प्रयास) भी उस पर फर्ज है। अपने इर्दगिर्द के बेचैन कतरों में जिंदगी के दजल (नदी का नाम) का मुशाहिदा उसकी बीनाई (दृष्टि) पर है। उसको दूसरों को दिखाना उसकी कलात्मकता पर, उसके बहाव में दखलअंदाज होना, उसके शौक की मजबूती और खून की गर्मी पर और ये तीनों काम लगातार प्रयास और संघर्ष चाहते हैं।

आगे फरमाते हैं कि 'इनसानी जिंदगी के संगठित संघर्ष को समझना और इस संघर्ष में मुमकिन हद तक शामिल होना जिंदगी का ही तकाजा ही नहीं, कला का भी तकाजा है।' *जिंदानामा* इस बात का गवाह है कि फ़ेज के मुशाहिदे और मुजाहिदे की तुलना करें तो मुजाहिदे का पलड़ा भारी हो रहा है और यही इस वक्त उनकी कला का तकाजा भी मालूम होता है।

अब उनकी नजर लाहौर के मजरों से उठकर पाकिस्तान के विशाल मैदानों पर पड़ने लगी है जहां अनगिनत इनसाननुमा मिट्टी के ढेर सदियों से एक ही तरह की धीमी धीमी हरकत कर रहे हैं। अब इन मिट्टी के ढेरों की कमरें कुछ सीधी हो रही हैं, उनको उस बोझ का एहसास हो रहा है जो उन्होंने युगों से उठा रखा है क्योंकि उन पर धीरे धीरे यह भेद खुल रहा है कि कुछ दूसरे देशों में उनके भाई-बंदों ने यह बोझ उतार दिया है और अब वे लोग इनसान की महानता में बराबर के शरीक हैं। उनकी आंखों में एक तरह का नूर है क्योंकि वे दूर क्षितिज पर जीवन और शक्ति की उठती गिरती, घटती-बढ़ती रोशनी देख रहे हैं। लेकिन ये लोग किसी विरह की मारी की तरह, जो अचानक अपने प्रियतम को पास आता देखे, अभी तक लजा रहे हैं, शरमा रहे हैं और अपनी दरिद्रता और बदहाली को छिपाना चाहते हैं। फ़ेज साहब की नजरें कारखानों में भी घुस रही हैं जहां किसानों के साथ मजदूर इनसान की रचना शक्ति और उसकी महानता का पाठ पढ़ रहे हैं। फ़ेज साहब यह सब कुछ खुद ही नहीं देख रहे हैं, अपने लाहौरी भाई-बंदों, मानसिक मजदूरी करने वाले लेखकों, क्लर्कों, छोटे दुकानदारों, वकीलों, टीचरों, छात्रों, गामा और मांझो को भी दिखला रहे हैं और पुकार रहे हैं कि जीवन के मैदाने-जंग में जो रण छिड़ा है उसमें धर्म और अधर्म के लश्करों को पहचानो। 'दरिद्रता, दफ्तर, भूख और गम ने चौमुखी पथराव करके तुम्हारे सागरे-दिल को टुकड़े टुकड़े कर दिया है और तुम्हारे मान सम्मान को मिट्टी में मिला दिया है। महबूब के इश्क की परी रूपी शराब का अपमान किया है। लेकिन

यादों के गरीबानों के रफ़ू
पर दिल की गुजर कब होती है
एक बखिया उधेड़ा एक सिया
यूं उम्र बसर कब होती है

इस कारगह हस्ती में जहां
ये सागर शीशे ढलते हैं
हर शै का बदल मिल सकता है
सब दामन पुर हो सकते हैं।

अब लूट झपट से हस्ती की
दूकान खाली होती है
या परबत परबत हीरे हैं

या सागर सागर मोती है।

कुछ लोग है जो इस दौलत पर
पर्दे लटकाये फिरते ह
हर परवत को हर सागर को
नीलाम चढ़ाये फिरते है।

कुछ वो भी है जो लड़ भिड कर
ये पर्दे नोच गिराते हे
हस्ती के उठाईगीरों की
हर चाल उलझाये जाते हैं।

इन दोनों में रन पड़ता हे
नित बस्ती-वस्ती, नगर-नगर
हर वसते घर के सीने मे
हर चलती रह के माथे पर
ये कालिख भरते फिरते ह
वो जोत जगाते फिरते हे
ये आग लगाते फिरत है
वो आग बुझाते फिरते है।

सव सागर शीशे, लालो गुहर
इस वाजी म बद जात है
उट्ठो सव खाली हाथों को
इस रन से बुलावे आते है।

जिंदानामा मे फ़ेज साहव ने सच ओर झूठ की इस भयावह जग मे वहादुरो की बहादुरी की घटनाओ का जिक्र शुरू कर दिया है। इसका आरभ वे *दस्ते सवा* मे 'ईरानी तुलवा के नाम' लिख के कर चुके ह। लेकिन अभी तक उनकी यह आदत पूरी तरह नही गयी कि वे ज्वालामुखी पहाड से निकलने वाले धुए के पहले मरगोले को ही ले बेठते है, ओर जव यह धुए का बादल हवा के झोको से पलक झपकते तितर-वितर हो जाता हे तो दुखी हो जाते हे। या तूफान की पहली मौज के तमाशे मे ही खो जाते हे आर जव उसे साहिल के रत मे जज्व होता देखते है तो दर्द की ज्यादती से बेहाल हो जाते है। या बढते हुए लश्कर क सवसे अगल स्काउट जव खेत हा जाते है ता उनका तडपता देखकर पूरी दुनिया की व्यवस्था को आग लगा देना चाहते हे। ऐसे दर्द की वहुलता हरेक नेक दिल की विशपता हाती है, लेकिन अगर ज्वालामुखी की जमीन मे दवी गरज को सुना जाये ओर उसके चद क्षणो मे उबलने वाले करोडो मन लावे की कल्पना की जाये, या पहली लहर के पीछे विफरे हुए असीम समदर का खयाल किया जाये तो धुए के पहले मरगोले के बिखरने, तूफान की पहली लहर के जज्व होने आर स्काउटा के मरने मे दर्द व गम की जगह सघर्षी तडप आ जाती ह। जिदगी क साये गहर होन क बजाय उसकी रगीनिया मे इजाफा हो जाता हे। इन तीनो की मौत पर रोने-धोने के बजाय उनकी यादगार मनाने को जी चाहता हे। वे इश्को मुहब्बत के पहले मरने वाले ही नहीं, जीत की नींव डालने वाले भी हे, उनकी मोत जिदगी

का रस है। फेज साहब का केन्वस जरा और बडा हो जाये तो नि संदेह हमारे अदब के गार्की बन जायेंगे। उनसे ज्यादा इस रुत्बे का और कौन हकदार है। बदकिस्मती से हालात कुछ ऐसे हैं कि रजज ख्वा (योद्धाओं का उत्साह बढाने वाला शायर) अपनी एक जान के साथ क्या कुछ कर सकता है?

मटगोमरी में मेरी एक ड्यूटी फैज साहब के लिए श्रोता इकट्ठा करने की भी थी। इसका एक जरिया यह था कि मैं उनका ताजा कलाम सैयद सज्जाद जहीर को मच्छ जेल में, और अता और पोश्ना को हैदराबाद भेज दिया करता था। सैयद सज्जाद जहीर के एक खत का एक हिस्सा इस प्रसग के आखिर में पेश करना बहुत मुनासिब रहेगा

सट्रल जेल
मच्छ, बलोचिस्तान
21 फरवरी 1954 ई

आइदा मैं ज्यादा पाबदी से तुम्हारे खतों का जवाब दूगा। इस इरादे में मेरी नैतिक जिम्मेदारी ही नहीं बल्कि स्वार्थ भी शामिल है। तुम्हारे खतों से दोस्ती और मुहब्बत की धीमी सुगध आती है जिससे रजूर (दुखी) दिल को बेइतहा, ठडक पहुचती है। इस तरह हम तन्हाई में बातचीत कर लेते हैं। थोडी बहुत फलसफियाना और अदबी मूशिगाफिया (सूक्ष्म विमर्श) भी कर लेते हैं। और फौलादी दीवारों में किसी कदर दरार डालकर जैसे निकलते हुए सूरज की किरनों से जरा देर के लिए दिमाग को रौशन कर लेते हैं। फिर इसके अलावा तुम फैज के कलाम के तोहफे भी भेजते हो, और अब की तो तुमने ढेर लगा दिये हैं। इनके लिए फैज और तुम्हारा बहुत बहुत शुक्रिया। यह तो ऐसा अतिया (भेंट) है जिसके बदले में कभी कुछ नहीं दे सकता।

फैज की नज्म 'मुलाकात' मुझे पसद आयी है। इसमें प्रतीकों का अलकरण अपने चरम पर पहुच गया है, और पहली पक्ति से शुरू होकर (ये रात उस दर्द का शजर है) नज्म के बहाव के साथ साथ सुन्दर उपमाओं और रूपकों के जैसे नाजुक फूल चारों तरफ खिलते चले गये हैं जिनमें से हरेक ऐसा है जो अपनी अलग सुगध और रग भी रखता है और दूसरों के साथ मेल भी खाता है और सतुलित भी है। फिर नज्म का बुनियादी खयाल पूरी कल्पना के साथ बडी कामयाबी के साथ मिलाया गया है जैसे एक हसीन और नाजुक जिस्म में दर्दमद, अनुभूति रखने वाली और नाजुक रूह हो। यह नहीं मालूम होता कि दुख गम का एहसास और दर्द की अधिकता और उन सबके बावजूद बल्कि उनके द्वारा उदित होने वाली नया सहर की कल्पना को आत्मसात करके शायर ने उस नज्म में ढाला है। बल्कि यहा पर यह ऊचा उत्साहवर्धक ख़याल और कल्पना जैसे शायराना कल्पना का फल है और पूरी नज्म के गुलदस्ते से आकर्षक और रूह अफ्जा रगीनियों और खुशबुओं के साथ झुक पडा है। तीसरे बद के शुरू की चार पक्तिया जहा से नज्म को एक मोड दिया गया है अपनी रवानी सगीत शब्द रचना और प्रभाव के ऐतबार से अपना जवाब नहीं रखती। उन्हे एक बार पढ लो तो दिल पर नक्श हो जाती है और फिर भूलती नहीं। ऐसा मालूम होता है कि जैसे इतवार की सुबह को किसी चर्च की घटिया लहक लहक कर बज रही हो और उनकी मुसलसल आवाज सिर्फ कानों में नहीं बल्कि सारे जिस्म के रोम रोम में उतर रही हो। फैज की शायरी का 'रग' लोग जिस बात को कहते हैं उसमें लहजे का दर्द और फजा की नर्मी एक चीज है। मुझे खुशी है कि इन पक्तियों में वह रग नहीं है। अच्छे और बडे शायर अपना रग जरूरत और मौके के अनुसार बदलते रहे हैं हालाकि वे अपनी प्रकृति नहीं बदल सकते।

तुमने अपने पिछले खत में इसकी तरफ इशारा किया था कि अब उन्हे हिम्मत करके एक छलाग लगानी चाहिए ताकि उनकी शायरी में खुशबुओं और फूल बिखरने के अलावा खल्के खुदा के उस मुबारक पसीने और खून की हरारत का भी मिश्रण हो जिससे अस्ल में जिदगी बनती ढलती और सवरती है।

मै इस खयाल से बिल्कुल सहमत हू। लेकिन म उन्ह ऐसा करने के लिए धक्का देना नहीं चाहता इन आशाजनक प्रतिबिंबो के कारण जो उनकी नज्मा आर गजलो म खुद ही नजर आ रहे है, सही जनतांत्रिक वतमान दिशा का पता चल रहा है।

मेरे ख़याल म वे खुद इस बिंदु को समझ रहे है। पजाब की सरजमीन सदियो पहले बाबा फरीद, वारिस शाह, बुल्हेशाह की जाता म दूसरे हालात और दूसरे माहौल मे, ऐसी जम्हूरी शायरी पेदा कर चुकी है। हमारे यहा कबीर, तुलसी, सूर हो चुके हैं। एसे नग्म फिर क्या नहीं छेड़ जा सकते।

इन नयी गजला पर उनको मुबारकबाद दना, हालाकि यह सही है कि दाद मिर्जा जाफ़र अली खा स ही लेना चाहिए म तो अब बराएनाम लखनऊ का रह गया हू। छ साल पजाब म ओर पजाबिया के साथ रहकर अल्लाह ही जानता है कि जबान कितनी बिगड़ गयी है। शायद चूंकि मोसम बहार का हे इसलिए हमे 'गुला म रग भर बादे नौ बहार चले' वाली गजल सब स अच्छी लगी। इस शेर की तारीफ़ नहीं हो सकती

बडा ह दर्द का रिश्ता, य दिल गरीब सही
तुम्हारे नाम प आयंगे गम गुसार चले

जिस गजल का तुमने 'वासोख़्त' का शीर्षक दिया ह वह भी अपने रग म खूब हे। एक एक शेर नश्तर है। किस किस की तारीफ़ कर। ख़ासतार पर यह शेर

गर फिक्रे-जख़्म की तो खतावार हे कि हम
क्या महवे मदहे-ख़ूबी ए-तेग-अदा[48] न थ

इसकी दाद ता फ़ज मिर्जा नोशा (गालिब) स भी लत जाफ़र अली खा असर तो अलग रहे ।

उर्दू से अनुवाद अर्जुमद आरा

48 अदा की तलवार की खूबिया की तारीफ करने म मगन

शख़्सियत के जुदा-जुदा पहलू

आफताव अहमद

इस सस्मरण के लेखक फैज और एलिस से बहुत ही आत्मीय स्तर पर जुडे रहे है। इसीलिए इस स्मृति-आख्यान मे बहुत ही विश्वसनीय ढग से फ़ैज के जीवन के विभिन्न पडाव और उतार चढाव का जीवत ढग से वर्णन किया गया है। —स

शायर फैज पर लिखने की वात ओर थी, शख्स फेज पर लिखने म मुझे एक बडी मुश्किल का सामना है। ओर वो ये कि उनसे मेरे 43 बरस के ताल्लुकात की दास्तान के इतने पहलू ह कि जव उन पर एक नजर डालता हू तो सोचता हू, 'मे किसको तर्क करू किसका इतेखाव करू'। तआर्रुफ तो शायर फैज ही से हुआ था क्योकि उनके पहले सग्रह *नक्श फरियादी* के प्रकाशन स पहले ही पत्रिकाओ और मुशायरो के जरिये उनकी नज्मो ओर गजलो की शोहरत मेरी नस्ल के नौजवानो मे बहुत आम हो चुकी थी।

तेरी आखो क सिवा दुनिया म रक्खा क्या हे

चद रोज और मेरी जान फकत चद ही रोज

जैसे मिसरे कि जिनम फैज की शायरी के रूमानी और इकलावी, दोनो रग सिमट आये थे, हमारी रोजमर्रा की गुफ्तगू म शामिल होने लगे थे। उन्ही दिनो फेज साहव एम ए ओ कॉलेज अमृतसर से हेली कॉलेज आफ कामर्स म अग्रेजी के लेक्चरर होकर आ गय तो मेर दोस्तो का ओर मेरा उनसे मिलने का शोक दुगना हो गया। अव तक हम लोगो ने उन्ह दूर दूर से लाहोर के मुशायरो ही म या एक वार लाहौर क वामपथी छात्रो के स्टडी सर्किल मे देखा था। सयोग से मेरे दोस्त सैय्यद अमजद हुसेन एम ए ओ कॉलेज म उनके शागिर्द रह चुके थे। उस ताल्लुक की वुनियाद पर मेरे दूसरे दोस्त सफदर मीर (जीनू) आर मने य सोचा कि अमजद के साथ फेज साहव से मुलाकात की जाये। उस मुलाकात की तस्वीर मेरे जहन म इस तरह उभरती हे। शायद गर्मिया के दिन थे। हम लोग कोई 5 वज क करीव रावी रोड पर फैज साहव के मकान पर पहुचे। वो वैठने के कमरे म सफेद कुर्ता पाजामा पहने कालीन पर गावतकिये से टेक लगाय नीमदराज (अधलेटे) थे। हम तीनो उनके आसपास कालीन पर ही वैठ गय। रस्मी तआर्रुफ के थोडी देर वाद चाय आ गयी। पहले तो उन्होने अमजद स उसका हालचाल पूछा आर फिर सफदर आर मुझसे हमारी दिलचस्पियो क वार म सवाल किये। वीच म कुछ खामोशी क लम्हे भी आय ओर मुझे एहसास हुआ कि फेज साहव को वातो मे लगाने का तरीका य ह कि उनसे सवाल किये जाओ।

सो मैने उनसे उनके सकलन के बारे मे पूछा ओर साथ ही यह भी पूछा कि राशिद (नून मीम राशिद) ने तो 'मावरा' की भूमिका कृश्नचदर से लिखवायी है, आप भी किसी नये अदीब से लिखवायगे या तासीर साहब या पितरस बुखारी साहब मे से किसी एक से' कहने लगे, बुखारी साहब और तासीर साहब से तो हरगिज नही, किसी दूसरे के बारे मे अभी कुछ सोचा नही। बाद मे कृश्नचदर की भूमिका की बात होने लगी, मगर कुछ ज्यादा देर नहीं चली। फेज साहब ने ये कहकर टाल दिया कि वा तो अफसानानिगार हे और फिर उनके अफ़सानो के बारे मे एकाध जुमला कहा। इसके बाद सफदर के एक सवाल पर मोलवी नजीर अहमद, रतननाथ सरशार ओर प्रेमचद का जिक्र हआ ओर फेज साहब ने उनकी ख़ास-खास विशेपताओ की तारीफ की ओर ये भी कहा कि नये अदब मे तो अफसाने ही लिखे जा रहे है, नॉवेल की तरफ किसी ने तवज्जो नही की। फिर कुछ इधर-उधर की बाते हुई ओर कोई घटे-सवा घटे बाद हम लोगो ने उनसे इजाजत चाही। ये मुलाकात तो कुछ रस्मी ही सी थी, मगर फिर भी हम इस खयाल से खुश-खुश लोटे कि आज फेज अहमद फेज से मुलाकात हुइ है।

एक दूसरी तस्वीर वो हे कि जब अमजद 'हल्का-ए-अरबाब-ए-जौक' के ज्वाइट सेक्रेटरी हो गये थे ओर फेज साहब उनकी दावत पर हल्के के एक हफ्तावार इजलास की सदारत करने आये थे। उस जमाने मे हल्के के जलसे ऐबट रोड पर निशात सिनेमा के सामने एक दफ्तर के बड कमरे मे हुआ करते थ। फेज थ्री पीस गरम सूट पहने, बढिया किस्म की टाई लगाये हुए थे। उनकी खुली ओर चमकती हुई पेशानी बिजली की रोशनी मे कुछ ओर भी चमक रही थी। मीरा जी (समानउल्ला डार) की एक नज्म चर्चा मे थी, जिसके इब्तदाई मिसरे ये थे

> चूम ही लेगा बडा आया कहीं का कोव्वा
> उडते उडते भला देखो तो कहा आ पहुचा
> कलमुआ काला कलूटा काजल

नज्म की कॉपिया मीरा जी ने हमेशा की तरह कागज की लबी-लबी मगर कम चोडी कतरनो के रूप म उस मजलिस के लोगो मे बाट रखी थी जो नज्म के बारे मे नये नये नुक्ते बयान कर रहे थे। मीरा जी खामोश बेठे सुन रहे थे और लुत्फ उठा रहे थे। फेज साहब मुस्तकिल सिगरेट का धुआ उडा रहे थे ओर साथ साथ नज्म की कॉपी को भी उलट-पुलट कर देख रहे थ। ज्यो ही नज्म के विपय पर बहस खत्म हुई, फेज साहब ने मुस्कुराते हुए मीराजी से मुखातिब होकर कहा, 'भ२, इस पर ये महाकाव्य लिखने की क्या जरूरत थी?' इस पर हाजरीन मे हसी की एक हल्की सी लहर उठी जिस पर फेज साहब न तरक्कीपसद अदब का अपना नुक्ता-ए-नजर बयान करते हुए ये कहा 'नज्म का विपय कोई इतना अहम, गभीर ओर गहरा नही हे कि उस पर इतनी लबी नज्म लिखी जाये, वगेरह-वगेरह। फज साहब आम तोर पर इस किस्म की फिकरेबाजी नहीं करते थे मगर मीराजी से उनका एक जाती ताल्लुक भी था। आर वो ये कि मीरा जी फेज साहब के छोटे भाइ इनायत अहमद के बडे बेतकल्लुफ आर गहरे दोस्त थे ओर उन्हाने 'अदबी दुनिया' म एक ख़ास मकसद से अहमद क नाम से एकाध नज्म भी प्रकाशित की थी। इस जाती ताल्लुकात की बुनियाद पर फेज साहब ने महफिल म मीरा जी से ये बेतकल्लुफी क़ायम रखी और हम इसका इल्म उस वक्त हुआ जब अमजद, सफदर ओर म उन्ह करीब ही निस्बत रोड के एक चायखाने मे उनसे गप्प करने के लिए ले गये।

फिर कुछ अर्से के बाद अचानक ये पता चला कि फ़ैज़ साहब जनसंपर्क के महकमे में कैप्टन बनकर दिल्ली चले गये हैं। उनको ले जाने वाले मजीद मलिक साहब थे जो उस महकमे में एक बड़े ओहदे पर थे। 1942 से '47 के शुरू तक फ़ैज़ साहब देहली और रावलपिंडी में रहे और लेफ्टिनेंट कर्नल के ओहदे तक पहुंचे। इत्तफ़ाक़ की बात है कि मैं इस दौरान कई बार देहली गया मगर मेरी फ़ैज़ साहब से कोई मुलाक़ात नहीं हुई। हां, एक बार मैंने उन्हें इत्तफ़ाक़ से लाहौर रेलवे स्टेशन पर देखा। वो वर्दी पहने फर्स्ट क्लास के डिब्बे के सामने सिगरेट पी रहे थे। मुझे ये देखकर मजा आया। मैंने आगे बढ़कर सलाम किया तो फ़ैज़ साहब मेरी उम्मीद के खिलाफ़ कुछ तपाक से मिले। वो रावलपिंडी जा रहे थे। जब तक गाड़ी चलने की सीटी नहीं बजी, वो मुझसे खड़े बातें करते रहे। लाहौर की अदबी सरगर्मियां और बाज़ दोस्तों का हाल पूछते रहे।

फ़ैज़ साहब से मेरा बाक़ायदा ताल्लुक़ दरअसल उस वक़्त हुआ जब वो जनवरी 1947 में फ़ौज की मुलाज़मत छोड़कर *पाकिस्तान टाइम्स* के एडिटर की हैसियत से मुस्तक़िल तौर पर लाहौर आ गये। अब उनसे ज़्यादा मुलाक़ात होने लगी। आम तौर पर *पाकिस्तान टाइम्स* के दफ़्तर में, जो उस ज़माने में मॉल रोड पर 'सिविल मिलिट्री गज़ट' के दफ़्तर ही में था। मैं एम.ए. पास कर चुका था। इस्लामिया कॉलेज में अंग्रेज़ी की लेक्चररी करते हुए मुझे चंद महीने ही गुज़रे थे और मैं अपनी मुलाज़मत में अभी कुछ जमा नहीं था। एक अंग्रेज़ी अख़बार में फ़ैज़ साहब के साथ काम करने के ख़याल ने मुझे ऐसा गरमाया कि मैंने एक दिन जुरअत करके फ़ैज़ साहब से कहा कि वो मुझे *पाकिस्तान टाइम्स* के स्टाफ़ में शामिल कर लें। उन्होंने कॉलेज की मुलाज़मत पर अख़बार की मुलाज़मत को तरजीह देने पर कुछ ताज्जुब का इज़हार किया और फिर कहा कि फ़िलहाल रुक जाओ। देखो कि देश के हालात क्या रुख़ अख़्तियार करते हैं। कॉलेज से गर्मी की छुट्टियों की तनख़्वाह तो वसूल करो। सितंबर में देखेंगे क्या सूरत हाल है और फिर कुछ फ़ैसला करेंगे। ये बात शायद अप्रैल 1947 में हुई थी। 3 जून को उपमहाद्वीप के बंटवारे के प्लेन का ऐलान हुआ। कुछ दिन के बाद कॉलेज में गर्मियों की छुट्टियां शुरू हो गयीं और मैं अपने घर वालों के साथ कश्मीर आ गया। हम लोग पहले तो श्रीनगर से कोई 15 मील दूर दरियाए झेलम के किनारे एक कस्बे गादरबल में ठहरे, फिर वहां से अगस्त के शुरू में श्रीनगर आ गये और बांध पर एक हाउस बोट में रहने लगे। दरिया के उस पार एक बड़े से बंगले 'हार्मनी' में तासीर साहब और उनके बच्चे और फ़ैज़ साहब के बीवी-बच्चे रह रहे थे। चुनांचे तासीर साहब से सुबह शाम मुलाक़ातें होने लगीं। 14 अगस्त के दो तीन दिन बाद फ़ैज़ साहब भी वहां पहुंच गये। वो शायद सेंट्रल ट्रेनिंग कॉलेज के प्रिंसिपल साहब के साथ उनकी कार में आये थे और शाम को पहुंचे थे। मैं उनसे दूसरे दिन सुबह तासीर साहब के कमरे में मिला जहां उस वक़्त बशीर हाशमी साहब और डॉक्टर नज़ीर अहमद भी मौजूद थे। फ़ैज़ साहब ने कुछ झिझक के साथ जो बुज़ुर्गों, ख़ास तौर से तासीर साहब और बुख़ारी साहब की मौजूदगी में ज़्यादा हो जाती थी, ज़िक्र किया कि लाहौर में एक नज़्म शुरू हुई थी जो लाहौर से श्रीनगर आते हुए मुकम्मल हो गयी है। तासीर साहब के कहने पर उन्होंने नज़्म सुनानी शुरू की

ये दाग़ दाग़ उजाला ये शबगज़ीदा सहर
वो इंतज़ार था जिसका ये वो सहर तो नहीं

हम सब तो ये पहला मिसरा ही सुनकर अवाक् रह गये खास तौर पर डॉ नजीर अहमद जो नज्म खत्म हो चुकने के बाद भी बार-बार इसको दुहराते रहे। बीच-बीच मे तासीर साहब ने भी कुछ मिसरे दोबारा तिबारा सुनाने को कहा, जैसे

फलक के दस्त मे तारो की आखिरी मजिल
कही तो होगा शबे सुस्तमोज का साहिल
कही तो जाके रुकेगा सफीना ए गमे दिल

कहा से आयी निगारे सबा किधर को गयी
अभी चराग सरे रह को कुछ खबर ही नही

फैज साहब तो दो-चार दिन बाद श्रीनगर से वापस लाहौर चले गये, मगर उनके बीवी बच्चे वही ठहरे रहे। हम लोग सितबर के दूसरे हफ्ते मे लाहौर वापस आये तो कुछ दिनो के बाद मैने फैज साहब से फिर से *पाकिस्तान टाइम्स* मे आने की बात छेडी। उन्होने ये कहकर मुझे हैरत मे डाल दिया कि तुम्हारे बारे मे तो फैसला हो चुका है कि तुम गवर्नमेट कॉलेज मे जा रहे हो। ये बात फैज साहब ने बुखारी साहब के हवाले से कही जो उस वक्त गवर्नमेट कॉलेज के प्रिसिपल थे। मै उनसे 'मजलिसे इकबाल' के जलसो मे दो-तीन मर्तबा मिल चुका था। मेरे बारे मे उन्होने तासीर साहब, फैज साहब और सूफी गुलाम मुस्तफा तबस्सुम साहब से भी जरूर कुछ-न-कुछ सुना होगा। अलबत्ता मेरे गवर्नमेट कॉलेज मे लिये जाने की तजवीज मेरे पुराने उस्ताद प्रो सिराजुद्दीन साहब ने की थी कि वो उस वक्त अग्रेजी विभाग के अध्यक्ष थे और उन्ही की तरफ से मुझे दो-चार दिन के बाद इस सिलसिले मे बाकायदा पैगाम मिला। मुख्तसर ये कि मै अक्टूबर 1947 को गवर्नमेट कॉलेज के अग्रेजी विभाग मे बतौर लेक्चरर शामिल हो गया।

फैज साहब ने अपनी पत्रकारीय जिदगी की शुरुआत मे वाकई बडी मेहनत की थी। उन्होने *पाकिस्तान टाइम्स* मे सपादकीय का एक नया ढग निकाला और उसका एक अदबी जायका भी दिया। उनके उस जमाने के सपादकीयो मे दो-तीन आज भी मेरी याद मे महफूज है। एक तो शायद 1951 के शुरू मे जब लियाकत अली खा ने कॉमनवेल्थ के प्रधानमत्रियो की कान्फ्रेस मे शिरकत के लिए इस बुनियाद पर पेशोपेश की कि उसमे कश्मीर का मसला भी चर्चा मे लाया जायेगा और फिर किसी निश्चित आश्वासन के बगैर ही शिरकत के लिए रवाना हो गये। तो फैज ने 'West Ward Ho' के शीर्षक से एक सपादकीय लिखा जो वॉल्टर स्कॉट के एक नॉवेल का नाम है। वहा कश्मीर पर कोई खास बात नही हुई और लियाकत अली खा खाली हाथ वापस आये तो फैज के सपादकीय का शीर्षक था 'The Return of a Native' जो टॉमस हार्डी के एक नॉवेल का नाम है। ये सपादकीय सियासी किस्म के थे। एक सपादकीय जो उन्होने वाकई दिल की गहराइयो मे डूब कर लिखा था, वो *मखजन* के सपादक उर्दू के मशहूर लेखक और इकबाल के दोस्त सर शेख अब्दुल कादर की मौत पर था जिनसे उनके खानदानी सबध भी थे।

फैज साहब अखबार के काम से फुर्सत पाते तो अपने बुजुर्ग दोस्तो की महफिलो मे वक्त गुजारते थे जिनके कर्ताधर्ता बुख़ारी साहब थे और जो अक्सर उन्ही के घर पर होती थीं। इसके अलावा पत्रकारो की अजुमन और डाकखाने के मुलाजिमो की ट्रेड यूनियन के कामो मे भी खासी सरगर्मी से हिस्सा लेते

थे। ये दोर जो 1947 की शुरुआत से 1951 के शुरू तक रहा, रचनात्मक दृष्टि से फैज की जिन्दगी में ठहराव का दौर था। इसमें उन्होने शायद ही कोई काबिले जिक्र नज्म या गजल कही हो। मेरा खयाल है कि खुद उन्हे भी इसका एहसास होने लगा था। मुझे याद है कि एक शाम मै *इमरोज* के दफ्तर में मौलाना चिराग हसन हसरत के पास बैठा हुआ था, जो अब *पाकिस्तान टाइम्स* के साथ धनीराम रोड पर अपनी एलॉटशुदा बिल्डिंग मे शिफ्ट हो गया था, कि फैज साहब आये और कुछ देर बाद वापस जाते समय मुझे *पाकिस्तान टाइम्स* के दफ्तर मे अपने कमरे मे ले गये। वहा बैठते ही वो ताजा अदबी रुझानो के बारे मे मुझसे पूछने लगे। मैने कहा कि आजकल नये शायरो, जैसे मुख्तार सिद्दीकी और नासिर काजमी वगैरह के बीच मीर की बडी चर्चा है। इस पर उन्होने कहा कि 'अफसोस है कि लोग सौदा को नहीं पढते, हालाकि उसको खुद मीर ने भी पूरा शायर माना है। सौदा के कलाम का इतख़ाब होना चाहिए। मैने इस सिलसिले मे कुछ काम भी किया था मगर अब तो वक्त ही नहीं मिलता।' फिर सौदा के शेर सुनाने लगे। मैने उनके साथ दुहराये तो मुझसे कहने लगे, 'तुम्हीं सौदा का इतख़ाब क्यो नहीं कर देते फिर मै भी एक नजर देख लूगा।' इसके बाद कुछ अपनी गुजरी हुई अदबी सरगमियो का जिक्र करने लगे और इस दौरान ये भी कहा कि 'देखो, लोग गिनाइयत का आम इस्तेमाल करने लगे है। Lyricism के तर्जुमे के तौर पर सबसे पहले मैने ये शब्द वजा किया (गढा) था। मैने कहा, 'लोग ये बात भूल गये है और अगर आप इसी तरह खामोश रहे तो वे आपकी बाकी अदबी रचनाओ को भी भुला देगे।' इस पर जरा गभीर होकर कहा, 'वाकई कुछ करना चाहिए। इस तरह काम नही चलेगा।' मुझे उस शाम पहली बार ये अदाजा हुआ कि जिस किस्म की जिदगी फैज साहब ने अपना ली थी, उससे बजाहिर मुतमइन नजर आने के बावजूद अपने अदर के खालीपन से बेखबर नही थे और न वो अपने असली काम को बिल्कुल भूले हुए थे जिसकी सलाहियत उन्हे कुदरत से मिली थी। इसीलिए तो उन्हे ताजातरीन अदबी रुझानो के बारे मे जानने की तलब थी।

अपने सियासी अकीदे से फैज साहब की जो वाबस्तगी थी, उसकी गहराई और शिद्दत का अदाजा इस वाकये से भी होता है जो मैने बरसो बाद मजीद मलिक साहब से सुना। उन्होने मुझे बताया कि एक शाम कराची मे उनके घर पर बुख़ारी साहब और तासीर साहब, फैज साहब वगैरह जमा थे कि बुख़ारी साहब ने ई एम फॉस्टर के मजमून 'व्हॉट आइ बिलीव' का जिक्र छेड दिया, खास तौर से फॉस्टर के उस मशहूर कथन का कि 'अगर किसी मौके पर मुझे ये फैसला करना पडे कि मै अपने मुल्क से बेवफाई करू कि अपने दोस्त से, तो मेरी ख्वाहिश होगी कि मै अपने मुल्क से बेवफ़ाई करने की हिम्मत पैदा कर सकू। इसको लेकर कुछ बातचीत हुई तो बुख़ारी साहब ने अपने दोस्तो से सवाल किया कि कौन सा वो ऐसा मकसद है जिसके लिए वो अपनी जान का नजराना पेश करने पर तैयार होगे। फैज ने बगैर किसी अगर मगर के, यह कहा, 'इकलाब और ये जवाब उन्होने इस यकीन और दो टूक अदाज मे दिया कि सब ख़ामोश हो गये और बातचीत का रुख ही बदल गया।

ये हकीकत है कि अपने मकसद से फैज की कमिटमेट बडी मुकम्मल थी। देखने मे वो बडे आसान धीमी और लापरवाह रफ्तार से जिदगी गुजारने वाले नजर आते थे। मगर अदर से वो बडे पक्के इरादे के मालिक थे। इस मामले मे उन्होने न कभी समझौता किया न उनके 'यकीन का सबात (पूर्ण विश्वास) कभी भटका। न कभी उन्होने 'गुमानो के लश्कर को इसके करीब आने दिया। मुझे याद है कि जब 1956 मे हगरी मे हगामा हुआ उसे दबाने के लिए सोवियत सघ ने जमीनी फौज और टैको के दस्ते

दिये, तो बडे वडे समाजवादियो और रूस के हामियो के इमान म भी खलल आ गया। मने इग्लिस्तान के हफ्तावार *New Statesman* ओर *Nation* म फेज के अग्रेज दोस्त विक्टर केरिनन का, जो शायद पार्टी के मबर भी थे, एक खत देखा जिसमे उन्हाने इस घटना पर सख्त नाराजगी जाहिर की थी। उसी जमाने म फज यूरोप गये, वापस आये ओर उनसे हगरी ओर केरिनन क खत के बारे म बातचीत हुइ, ता मैंने महसूस किया कि उन्हे इस सिलसिले मे काइ दुविधा नहीं थी। कहने लगे कि भइ, एक इतालवी कॉमरेड से मुलाकात हुई। उसने जा बात बतायी उससे ये मालूम हुआ कि रूस के पास इसके सिवा कोई चारा ही न था। इस तरह फेज ने अपन इत्मीनान के लिए रूसी कार्रवाई की एक वजह ढूढ ली थी। एक तरह से चीजो से आख चुराना आर उन्ह टालना, य उनका एक आम जहनी रवेया भी था। मगर समाजवादी निजाम के मामल म उनकी नजर हमेशा लक्ष्य आर उद्देश्य पर रहती थी। उनकी हिफाजत आर पेरवी के दोरान होने वाली गलतियो को ज्यादा अहमियत नही देत थे।

मार्च 1951 की शाम हुइ एक मुलाकात मुझ अच्छी तरह याद ह। लाहार मे अभी गर्मी शुरू नही हुई थी। मगर फेज आये ता उन्हाने पतलून के साथ सिर्फ कमीज पहन रखी थी ओर पाव म बगेर मोजा के सेडिल। मेने उन्हे देखते ही कहा—फेज भाइ, आपने तो गर्मी मना ली। उन्होने हमारे साथ चाय पी और कुछ देर इधर-उधर की बाते करने के बाद चल गये। दूसरे दिन सुबह जब म दफ्तर जाने के लिए नीचे उतरा, तो मुहम्मद तासीर की पत्नी ने मुझे बताया कि एलिस का फोन आया हे कि रात के पिछले पहर पुलिस फेज का गिरफ्तार करक ले गयी है। मने उस वक्त उसका कुछ खास नाटिस नही लिया ओर कहा कि *पाकिस्तान टाइम्स* मे हुकूमत क खिलाफ कुछ छप गया होगा। आज महमूद अली कसूरी जमानत करा लेग ओर वो शाम तक घर आ जायेगे। तीसरे पहर के बाद जब म दफ्तर से लाटते हुए चेयरिंग क्रॉस के करीब बस से उतरा तो क्या देखता हू कि अखबारा के विशेष अक बिक रह हे ओर हॉकर चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे ह 'हुकूमत का तख्ता उलटने की साजिश। फोज के कइ जनरल आर *पाकिस्तान टाइम्स* के सपादक फेज अहमद फेज गिरफ्तार—प्रधानमत्री लियाकत अली खान का बयान।' मे हक्का बक्का रह गया। विशेष अक लिया आर उस पर नजर डाली। घर पहुचा तो देखा कि कृश ओर मेरी बहने नीचे बरामदे मे दुखी बैठी है। वो भी विशेष अक पढ चुकी थी आर रेडियो की खबर भी सुन चुकी थीं। कृश फैज के घर, एलिस और बच्चो से मिल आयी थी।

शाम को मे और मेरी बहन भी फैज साहब के घर पहुचीं। कुछ पुलिस के सिपाही आर खुफिया विभाग के लोग घर के आसपास मडरा रहे थे। उन्होने हमसे मामूली पूछताछ की ओर हम ऊपर चले गय। एलिस ओर बच्चो स मिले। एलिस ने उनकी गिरफ्तारी के बारे मे बताया। हम कुछ दर वहा बठ आर वापस आ गये।

एलिस से हम लोग बराबर मिलते रहे। मगर ये मालूम नही हो सका कि फज साहब ह कहा। फिर तरह तरह की अफवाहे उडने लगी। जसे ये कि जेल म उनको बहुत यातनाए दी जा रही ह। इनस आर भी घबराहट होती थी। मगर ये सब अफवाह गलत थीं। जब फज लायलपुर (अब फजलाबाद) की जल से, जहा वो केद ए-तन्हाई' म रखे गये थे, मुकदमा शुरू होन पर हदराबाद जल लाये गय और उनस उनके बडे भाई तुफेल अहमद की मुलाकात हुइ, ता उन्हान खुद इन अफवाहा का गलत बताया।

1955 म फेज केद से रिहा हो गये। म जब आखिरी जनवरी 1956 म लाहार पहुचा ता वो लाहार म ही थे। अब वो *पाकिस्तान टाइम्स* के मुख्य सपादक बना दिये गये थे। फज का य ओहदा कुछ यू

ही सा था, क्योकि उनके पास काम कम और फुरसत ज्यादा थी। कोई दो साल बाद अक्टूबर 1958 में जनरल अयूब खान ने सिविल हुकूमत का तख़्ता उलटकर मुल्क म मार्शल लॉ लगा दिया। फेज उस वक्त 'एफ्रो एशियन राइटर्स कान्फ्रेंस' के सिलसिले म पाकिस्तानी डेलीगेशन के साथ, जिसके लीडर हफीज जालधरी थे, रूस गये हुए थ। जब मुल्क म पकड धकड शुरू हुई तो मजीद मलिक साहब ने, जो हुकूमत पाकिस्तान के प्रिंसिपल पब्लिकेशन ऑफिसर थ, फेज को किसी निजी जरिये से पैगाम भिजवाया कि वो वापस न आये, बल्कि मास्को से लदन चले जाये।

फेज ने *यही किया। यहा तक कि दिसबर का महीना आ गया।* मुल्क म हालात नही बदले, तो मजीद साहब ने फिर किसी के जरिये पेगाम भिजवाया कि वो अभी लदन म ही ठहर रहे। दिसबर के दूसरे हफ्ते का कोई दिन था कि मजीद साहब के घर के अदर कोई टेक्सी आकर रुकी और बिल्कुल उम्मीद के खिलाफ फेज बरामद हुए। मजीद साहब उनके स्वागत के लिए आगे बढे, मगर उनसे रहा नही गया और फोरन बोल उठे—मैने तुम्हे पेगाम भिजवाया था कि तुम अभी मत आना। फेज ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया कि मगर हम तो आ गये। बहरहाल, हम सब उनसे मिलकर बहुत खुश हुए। शाम जरा भीगी, तो महफिल जमी। हम लोग रात गये तक बात करते गये। फेज रूस म राइटर्स कान्फ्रेंस के किस्से, पाकिस्तानी डेलीगेशन के लीडर की हसियत से हफीज जालधरी साहब के लतीफे के किस्से सुनाते रहे। फिर लदन मे अपने रुकने का जिक्र किया और मजीद साहब से कहा कि मुझे आपका पैगाम मिल गया था। मगर म लदन मे कब तक बेठा रहता। अब देखिए, जो हो सो हो।

दो-तीन दिन कराची मे रहने के बाद वो लाहौर चले गये। दूसरे दिन हमने अपनी बडी बेटी सलीमा की शादी की सालगिरह मनायी और उसी रात के पिछले पहर उन्हे गिरफ्तार करके लाहौर किले की जेल मे नजरबद कर दिया गया। मैं वापस आया और पूरे तीन महीने के बाद मेरा तबादला कराची हो गया। जिस दिन मुझे कराची के लिए रवाना होना था उसी दिन फेज की नजरबदी ख़त्म हुई और उनको रिहा कर दिया गया। मगर मेरी उनसे मुलाकात न हो सकी। सिर्फ फोन पर बात हुई। फेज यहा होने के बाद फिर *पाकिस्तान टाइम्स* के दफ्तर पहुच गये। मगर अभी चद ही दिन गुजरे थे कि जनरल अयूब ख़ान ने प्रोग्रेसिव पेपर्स की सस्थाओ और उनके अखबारो और पत्रिकाओ मे यानी *पाकिस्तान टाइम्स, इमरोज* और *लैलोनिहार* को हुकूमत ने कब्जे मे ले लिया, और इसके साथ ही फेज साहब की मुख्य सपादकी भी खत्म हो गयी।

पाकिस्तान टाइम्स पर हुकूमत के कब्जे के कुछ समय बाद, हुकूमत म फ़ैज के कुछ दोस्तो और चाहनेवालो ने उनको किसी न किसी काम पर लगाने की कोशिश शुरू कर दी। फेज ने मुझे बताया कि एस एम शरीफ साहब ने जो उस जमाने मे शिक्षा मत्रालय के सचिव थे, उन्हे गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर म अग्रेजी की प्रोफ़ेसरी की पेशकश की। मगर फेज की ईमानदारी देखिए कि उन्होने ये कहकर माफी माग ली कि अग्रेजी अदब से उनका रिश्ता उस तरह का नही है कि वो एम ए की क्लासो को पढा सके। उन्हे इस विषय के सिलसिले म नये पहलुओ की जानकारी नही हे। हा, अगर उर्दू की प्रोफ़ेसरी का इतजाम हो सके तो और बात है। क्योकि इसमे उनके पास कुछ कहने को होगा। बहरहाल, कुछ वर्षो बाद उन्हे लाहौर की *आर्ट्स कौंसिल का प्रशासनिक मुख्य अधिकारी* बना दिया गया। कौसिल की बुनियाद 1948 मे तासीर साहब, इम्तियाज अली ताज अब्दुल रहमान चुगताई ओर फेज साहब ने ही डाली थी। फेज लाहौर म ही रहते थे और अक्सर कराची आते रहते थे। जब सदर के इलाके म आते तो मेरे यहा भी

आ जाते। इस दारान फ़ज आर म एक दूसरे क आर भी करीब आ गय। ओर हमारे दरमियान से वो पर्दे भी उठन लग जो अब तक पडे हुए थे।

म फ़ज के दिल के जाती मामलात का जिक्र नही करुगा। मने उनकी जिदगी मे भी उनके भरोसे को कभी ठेस नहीं पहुचायी। अब तो ख़र उसका सवाल ही पैदा नहीं होता। हा, फज के दिल के मामलात मे स एक घटना का जिक्र जरूर करुगा। एक दिन तीसर पहर क करीब मेरे यहा आये ओर थाडी देर बेठकर कहने लगे तुम जरा मुझ करीब ही एक जगह पहुचा दो। मरे साथ कार मे बेठे ओर मुझे ई आई लाइस की तरफ जाने को कहा। वहा एक काठी क पिछवाड की तरफ ल गय, जहा नाकरो के क्वार्टर्स थे, ओर धाबिया की अलगनी लटकी हुइ थी, वहीं उतर गये ओर खुद य कहकर अदर चले गय कि मे वापस आ जाऊगा। कोइ घट-डढ़ घंटे के बाद एक कार उन्ह मर घर क गट तक पहुचा गयी। बहुत खुश नजर आ रहे थे। मुझ बताया कि आज बडी मुद्दत के बाद मुलाकात हुई ह। इन खातून से नोजवानी म लायलपुर म जान पहचान हुई थी, जा जल्द ही गहरे जज्बाती लगाव म तब्दील हो गयी। मगर फिर किसी वजह स उसे भुलाना पडा। मगर उसका असर उन पर बहुत देर तक रहा। फज की नज्म 'कोइ आशिक किसी महबूबा स' अगरचे इस घटना से काई सत्रह बरस बाद 1978 म लदन म लिखी गयी, मगर मेरा अदाजा ह कि ये उन्ही महिला के लिए ह। यहा म ये भी बता दू कि वो दूसरा के दिल के मामलात का भी बडा गहरा एहसास कर सकते थे। एक बार जब वा रूस से लाट ता कहन लगे कि सोशलिस्ट सिस्टम म गमे रोजगार यानी रोटी, कपडा और मकान क गम का इलाज कम स-कम उसूली तोर पर माजूद हे। मगर दखिली गम यानी इश्क क गम, किसी बेवफाइ क गम का क्या इलाज हे?

बात ये थी कि इस सफर म वा किसी एसी महिला से मिलकर आये थे, जो अपनी जिदगी क बाकी हालात स ता बिल्कुल सतुष्ट थी, मगर जब उसने फेज स अपन महबूब की बेवफाइ का किस्सा बयान किया तो अदाजा हुआ कि अदर से वो कितना दुखी ह।

1962 म मरे लॉस एंजिलिस पहुचने के फोरन ही बाद मुझे फेज के दिल की बीमारी की ख़बर मिली ओर चद दिना बाद मरी तसल्ली के लिए एलिस का खत कि अब वो स्वस्थ हो रहे ह। चद महीने के बाद जब उनका रूस की तरफ स 'लेनिन पीस प्राइज' दिये जाने का एलान हुआ उस समय पाकिस्तान क कुछ अख़बारा म बहुत ले दे हुई। ये ख़बर मुझे नून मीम राशिद के एक खत से हुई, जो उन्होने मुझे न्यूयाक से लिखा था। इससे पहले भी ये अख़बार उनके नाम के साथ पिडी साजिश केस के सजायाफ्ता' लगाकर उनके खिलाफ लिखते रहते थ। अमीर मुहम्मद खा, गवर्नर, पजाब ने भी उन्ह तरह तरह से तग करना शुरू कर दिया। आखिर वो इतने दुखी हुए कि अपनी बडी बेटी सलीमा को साथ लेकर जब वो अपना पुरस्कार लेने वसूल करने मास्को गये तो वहा से वापस नही आये, बल्कि लदन चले गये। एलिस ओर छाटी बेटी मुनीजा को अपने पास वहा बुला लिया। लदन म रहन के दारान उन्हान वाशिगटन मुझ एक खत लिखा जिसमे ताजा नज्म और गजल भी भेजी। वाशिगटन म हमारे इतवार के दोस्तो क बीच उस नज्म आर गजल की बहुत चर्चा हुई।

1965 के शुरू म म आर सीमा वाशिगटन मे वापसी पर लदन मे रुके। उनकी बेटी सलीमा से पता चला कि फेज जल्द ही लदन पहुच रहे हैं। मेरी तो जसे इद हा गयी।

इसके बाद हम करीबन दो महीने इग्लिस्तान यानी लदन म रह और ज्यादा वक्त फैज के साथ गुजारा।

वतन वापसी पर मेरी नियुक्ति ५ . . . सिविल सर्विसेज एकेडमी में हुई, जो अब सिविल सर्विसेज एकेडमी बन गयी है और लाहौर के वाल्टन रेलवे स्टेशन के करीब है। फैज अपने परिवार समेत लंदन की रिहाइश से उकताकर कोई साल भर पहले ही अपने वतन वापस आ गये थे, और अब 'अब्दुल्ला हारून कॉलेज' में प्रिंसिपल की हैसियत से कराची में रहते थे। मैं लाहौर में कोई दो साल रहा। इस दौरान फैज कई बार लाहौर आये और मैं कई बार कराची गया और उनसे बराबर मुलाकात होती रही। जनवरी 1968 में बतौर ज्वाइंट सेक्रेटरी सूचना और प्रसारण मंत्रालय में लाहौर से तबादले पर ढाका पहुंच गया। फैज उस जमाने में हुकूमत की एक कमिटी के मुखिया भी थे और पाकिस्तानी संस्कृति पर एक रिपोर्ट तैयार कर रहे थे। इस सिलसिले में वो दो-तीन बार ढाका भी आये। एक बार जब मैं उन्हें लेने एयरपोर्ट गया तो उसी जहाज से जी. अहमद साहब भी उतरे, जो उस जमाने में किसी सरकारी कमीशन के मुखिया भी थे। उनसे हमारा वाशिंगटन में काफी मिलना-जुलना भी था। उनसे मुलाकात हुई तो कहा—आज शाम मैंने फैज को अपने होटल में खाने पर बुलाया है, तुम भी आ जाना। उस शाम तो खाना इंटर कॉन्टिनेंटल में हुआ। अगली शाम मैंने जी. अहमद साहब और मंजूर कादिर साहब को, जो फैज के पुराने दोस्त थे और इन दिनों अगरतला साजिश केस के सिलसिले में ढाका में थे, अपने यहां खाने पर बुलाया। जब ये तीनों बुजुर्ग जमा हुए, तो जी. अहमद साहब मंजूर, कादिर साहब से अगरतला साजिश केस के सिलसिले में पूछने लगे। बात उन्होंने इस तरह से शुरू की—मंजूर ये बताओ कि ये साजिश केस है क्या? एक रावलपिंडी साजिश केस था, जिसका एक बड़ा मुजरिम तुम्हारे सामने बैठा है। ये उस समय बड़े अंग्रेजी अखबार का संपादक था। उससे पहले फौज के जन संपर्कीय महकमे में कर्नल था। बाकी मुल्जिम हाजिर सर्विस के जनरल और ब्रिगेडियर थे। एक और मुल्जिम पाकिस्तान कम्युनिस्ट पार्टी का सेक्रेटरी जनरल सज्जाद जहीर था। मुख्तसर में ये कि सबके सब हैसियत वाले और अहम लोग थे। इल्जाम गलत है या सही, ये अलग बात है। तुमने इस साजिश में केस लोगों को पकड़ा है। एक नेवी का लेफ्टिनेंट कमांडर है, एक कोई सी एस पी का अफसर है। बाकी सब फालतू किस्म के लोग हैं, और फिर तुमने इस केस को सियासी रंग देने के लिए मुजीब को शामिल कर लिया है। मेरी समझ में नहीं आता कि ये किस किस्म का साजिश केस है। फैज तो जी. अहमद साहब की बात खामोशी से सुनते रहे और मजा लेते रहे। मंजूर कादिर साहब ने उस केस का कुछ बयान किया और कुछ विस्तार में बताया भी। मगर जी. अहमद साहब कायल नहीं हुए। हम लोग तो साथ साथ पीते-पिलाते भी रहे। मंजूर कादिर साहब सिर्फ बर्फ चबाते रहे, और हमेशा की तरह बहुत अच्छी उर्दू और अंग्रेजी में गुफ्तगू करते रहे।

फैज को पूर्वी पाकिस्तान से खास किस्म का लगाव था। वहां उनके बहुत से चाहने वाले भी थे। खासतौर पर बायें बाजू के (वामपंथी) पत्रकार और लेखक, जैसे जहूर हुसैन चौधरी, संपादक *संवाद* शहीदउल्ला कैसर सहसंपादक संवाद और बांग्ला के मशहूर उपन्यासकार मुनीर चौधरी (ढाका विश्वविद्यालय के प्रोफेसर) और उनके भाई कबीर चौधरी और उनके साथी। मेरी भी उन लोगों से अच्छी मुलाकात थी और घरों में आना जाना भी। फैज जब उनकी महफिलों में बुलाये जाते थे तो अक्सर उनके साथ होता था। उन्हीं दिनों एक शाम शहीदउल्ला कैसर आये और फैज को अपने साथ ले गये। मुझे पूछा तक नहीं और न ये बताया कि कहां ले जा रहे हैं। मुझे हैरानी तो हुई, मगर उसकी वजह दूसरे दिन उस वक्त मालूम हुई जब फैज भाई ने मुझे बताया कि शहीदउल्ला कैसर उन्हें मशहूर बंगाली कम्युनिस्ट लीडर मनी सिंह से मिलाने ले गये थे, जो उन दिनों ढाका में छुपे हुए थे।

पूर्वी पाकिस्तान मे जनरल याहिया ख़ा के आर्मी एक्शन क दारान शहीद उल्ला कसर ओर मुनीर चोधरी दूसरे लेखको ओर बुद्धिजीविया के साथ गिरफ्तार हुए आर मारे गय। फज का उन दास्ता के वे मात मरने के दुख के अलावा उन सारी कार्रवाइयो से जो दिली तकलीफ हुई, उसका इजहार उस जमाने की शायरी मे हुआ। वहरहाल, 1971 मे पूर्वी पाकिस्तान वाग्ला दश वन गया। मे उससे दो साल पहले ही ढाका से वापस आ चुका था। पहले तीन महीने की छुट्टी मेने कराची मे गुजारी, जिसमे करीवन हर रोज फॅज भाइ स मुलाकात होती थी। फिर मेरी नियुक्ति लाहौर म हो गयी आर हम गुलवर्ग म रहने लग।

दिसबर 1971 म जुल्फेकार अली भुट्टो पाकिस्तान के नये सद्र वने। उनसे फेज की पुरानी जान पहचान थी। फरवरी 1972 के शुरू मे फेज लाहार आये, ओर अपनी वेटी सलीमा के यहा मॉडल टाउन मे ठहरे। म जव फेज से मिला, तो उन्होने वताया कि भुट्टो साहब ने उन्हे सस्कृति सस्था कायम करने के सिलसिले म पिडी वुलाया हे। दो-चार दिन के वाद जव वो लौटकर फिर लाहोर आय, तो उनसे मालूम हुआ कि एक सस्था 'नशनल कॉसिल ऑफ दि आर्ट्स' के नाम स कायम की जा रही ह। आर फेज को उसका चयरमन नियुक्त किया गया हे। चुनाचे कुछ दिनो के वाद वो कराची से इस्लामावाद चले गये आर उन्होने इस नयी सस्था का चाज सभाल लिया। काई चार महीन वाद मेरा तवादला भी रावलपिडी हो गया ओर म मकान मिलने के इतजार म उस जमाने क माल रोड पर बन पूर्वी पाकिस्तान हाउस के एक कमर म रहने लगा। फिर फेज भाई से पिडी आर इस्लामावाद मे वरावर मुलाकाते होने लगी।

फेज या ता वहुत लिय दिय रहत थे, मगर सरकारी अफसरा से सवध रखने आर काम लन का ढब उन्हे खूव आता था। आर इसम न वो किसी का रोव खात थ न किसी की खुशामद करत थ। एक फायदा उनको ये जरूर था कि हर हुकूमत म कई एक मत्री ओर वडे सकारी अफसर कॉलेज के जमाने से या किसी आर वजह से उनक जानने वाले हाते थे। इसक अलावा उनकी अपनी तबीयत म नरमी ओर कशिश पायी जाती थी। वो किसी से कोई कडवी या सख़्त वात नही करते थ। इन सव वातो की वजह से वो हर जगह ओर हर महफिल म इज्जत की नजर से देखे जाते थे। मने उनका सरकारी मीटिग म भी देखा हे। उनकी वात हमेशा वडे ध्यान आर आदर से सुनी जाती थी। फिर उनमे सरकारी अफसरा के खिलाफ कोई भेदभाव नहीं था क्योंकि वा इनसान को इनसान समझ कर मिलते थे ओर उनकी बुराइया ओर कमिया को इनसानी कमजोरिया समझ कर कुवूल करते थे।

फेज कोई चार साल तक नेशनल काउसिल आफ द आट्स के चेयरमेन रहे मगर फिर उन्ही लोगो ने, जिनका वो खुद इस सस्था मे अहम जगहा पर लाये य, ऐसे हालात पदा कर दिय कि फेज का दिल उखड गया। हमेशा की तरह न उन्होने किसी की शिकायत की, न किसी तरह की कडवाहट जाहिर की, केवल प्रधान मत्री भुट्टो स मिल कर यह कहा कि मेरी दोनो वच्चिया क्यांकि लाहार मे ह, मेरी इच्छा है कि म उनके पास रहू। सो, उन्होने अपने पुराने दोस्त आर सगीत के माहिर खुर्शीद अनवर की मदद से 'आहग ए-खुसरवी आर 'कराना घरान' के सगीत के लिए एक अलग सेटर की वुनियाद डाली ओर उसके मुखिया बन कर लाहोर चल गये।

जुलाई 1977 मे जव जनरल जिया-उल हक ने देश म मार्शल-लॉ लगाया तो फेज लाहोर म थ। दो तीन दिन के बाद वो पिडी आये। एक शाम जव हमारे घर फेज आर कुछ दूसरे दोस्त जमा थे मार्शल-लॉ लागू करने की वाता क दोरान जनरल जिया-उल हक के नब्वे दिन मे चुनाव कराने की वात आयी। मुझ अच्छी तरह याद है कि फेज ने फौरन कहा कि यह काम स्वभाव के खिलाफ होगा।

उस समय तो किसी न इसे यकीन नही किया मगर वाद म फज की यह वात सचमुच सियासी भविष्य वाणी सावित हुइ।

कुछ दिनो वाद हुकूमत की खुफिया एजेसिया ने फिर स जिदगी मुश्किल कर दी। सदिग्ध लाग लाहार मे उनके घर के आस-पास घूमने लग। वो वाहर निकलते ता एक जीप उनके पीछे लगी रहती। फज अव जीवन की उस मजिल म थे कि उनसे इस तरह की नागवार कारवाई वरदाश्त नहीं हाता थी। उन्हे यह वहुत वुरा लगा, सो उन्हाने 'एफ्रो-एशियन राइटस की पत्रिका *लोटस* का सपादक पद स्वीकार करके देश से वाहर जाने का फेसला कर लिया। फरवरी 1978 के आरभ म वो एक वार एलिस के साथ पिडी मे हमारे 'हॉरले स्ट्रीट' वाले घर आय। चद मिनट स ज्यादा नहीं वठे। कहने लगे, हम शाम का फ्लाईट से कराची जा रहे ह आर वहा से रात को लदन। वस तुम्ह 'खुदा हाफिज' कहने आय ह। अव देखो कव मुलाकात होती ह। फिर सीमा ओर हमारी दाना वच्चियो का ओर मुझे प्यार किया ओर चल गये। उस दिन फज वहुत उदास ओर दुखी लग रहे थे।

अगले तीन साल मे वो मुस्तकिल तोर पर वरूत म तो रह, मगर वहा से लदन ओर मास्का आर दुनिया के वडे-वडे शहरो के चक्कर लगाते रहे, ओर अदीवो की कान्फ्रेस म शरीक होते रह। इस दारान एक वार फैज से लदन म मुलाकात हुई। मुझसे पाकिस्तान ओर दूसरे दोस्ता का हाल चाल पूछने लग। ओर आखिर मे दो टूक अदाज मे मुझसे कहा कि भई, वहुत हो चुका। म अगले साल के शुरू मे पाकिस्तान आ जाऊगा। फिर देखा जायेगा कि क्या होता हे। मार्शल लॉ का असल मकसद ता भुट्टा को खत्म करना था, वो ता हो चुका। वातो मे जव मने उन्ह वताया कि जनरल जिया उल हक ने लखका की पहली कान्फ्रेस क माके पर, जो प्रधानमत्री जुल्फिकार अली भुट्टो की फासी के हफ्तेभर वाद 11 अप्रल 1979 को हुई थी, अपने अध्यक्षीय भाषण मे फज का नाम लिए वगेर 'अपने हमवतनो से किनाराकशी' करने वाले लेखका पर पाकिस्तान की जमीन का अन्न, उसका पानी, उसकी छाव, उसकी चादनी हराम होने की भविष्यवाणी की थी, तो फेज खिलखिलाकर हस पड। उन्ह इसकी ख़बर इसस पहल भी मिल चुकी थी। फिर मुझ उन्हाने एक दिलचस्प घटना सुनायी। पिछल या उससे पिछली गर्मी के एक वडे सुहाने दिन वो ओर एलिस आर उनकी दुभाषिया महिला मास्को के किसी रस्टोरट मे वठे कॉफी पी रहे थे। रेस्टोरट पूरा भरा हुआ था, सिर्फ उनकी मेज पर एक जगह खाली थी। इतने म एक फिरगी व्यक्ति आया ओर उनकी मेज पर वठने की इजाजत मागी। फज ने इजाजत दी ता उसने अपना परिचय दत हुए वताया कि वो ऑस्ट्रेलिया के किसी विश्वविद्यालय म फिजिक्स का प्रोफेसर है। फेज ने अपना परिचय कराया कि म पाकिस्तान से हू, ओर एक शायर हू। जव उसने ये सुना तो गर्मजोशी दिखात हुए कहा कि म अभी कुछ पहले ही आपके एक हमवतन नोवेल पुरस्कार प्राप्त डॉ अब्दुस्सलाम से मिला था। उन्हाने मुझे वताया कि एक महान पाकिस्तानी शायर फज अहमद फेज को 'लेनिन अम्न इनाम मिला ह। सयाग दखिए कि आज आपस यहा मुलाकात हो गयी। वाता के दोरान जव प्रोफेसर साहव को य पता चला कि फेज साहव इन दिनो अपन वतन स वाहर रहते ह, तो उसन भालपन से पूछा कि डॉ अब्दुस्सलाम के वारे म तो जानता हू कि पाकिस्तान से इसलिए वाहर रहते ह कि धम म वो एक एसे पथ को मानते ह जिसे वहा गलत समझा जाता हे। मगर मि फज आपकी परशानी क्या हे? फैज न फारन जवाव दिया कि मैं गलत किस्म की शायरी करता हू।

जनवरी 1982 म फज पाकिस्तान वापस आ गय। कराची आर लाहार म कुछ दिन गुजारने क वाद

जब वो इस्लामाबाद पहुचे तो मे उनसे मिलने गया। फज के इस्लामावाद पहुचने के दो-दिन बाद ही जोश साहब का निधन हो गया। मुझे दफ्तर मे जब ये खबर मिली ता मेने फैज को फान किया ओर फिर उनके पास चला गया। उसी दिन उन्हे शाम के खाने पर हमारे यहा आना था। उन्होने मुझे बताया कि इससे पहले उन्हे चाय पर जनरल जिया-उल-हक से मिलना हे। मन पूछा कि ये केसे हुआ, ता कहने लग, अरवाब नियाज ने मुलाकात का समय तय करान के बाद मुझे खबर दी ह। कनल अरवाब नियाज फैज क पिडी साजिश केस के सजायाफ्ता साथी ओर उस जमाने म जनरल जिया उल-हक के मत्रिमडल के एक मत्री थे। मेने जब ये सुना तो मेर मुह स सहसा निकला कि फेज भाई, आपक साथिया को इस पर ऐतराज होगा, आर वो इस सिलसिले मे वात बनायेगे। कहने लगे कि भई हम क्या करे।' अरवाब नियाज हमारे दोस्त ह, ओर उनकी जिद हे। मे उनके इस जवाब पर चुप हा गया। जोश साहब के कफन-दफन स निपटकर म पिडी म अपने घर क लिए रवाना हुआ, आर फज अपने एक रिश्तेदार अजफर शफकत के साथ उनकी कार मे जनरल जिया-उल-हक से मिलने चले गये। खाने के समय से वहुत पहले ही फेज साहव हमार घर पहुच गये। मने पूछा तो उन्हाने बताया कि बस आध घटे की मुलाकात रही। हमने चाय पी, ओर इजाजत चाही। अपनी बात जारी रखते हुए कहने लग कि मने शुरू मे तो ये कहा कि आप उर्दू के बडे समर्थक ह ओर उसकी बहुत चर्चा करत है। आज उर्दू के इतने वडे शायर की मोत हुई, मगर उनके जनाजे पर आपका प्रतिनिधि, आपके निजी स्टाफ का कोई आदमी मोजूद नही था। जनरल जिया-उल-हक ने जवाव दिया कि हा, ये गलती हो गयी। मने पेगाम ता दे दिया ह। मगर आप ठीक कहते ह कि उन्हे जाना चाहिए था। इसके बाद उन्हाने ये बात छेड दी कि आप वाहर क्यो रहते हे, आप वतन वापस आ जाइए आर यहा रहिए। मेन कहा, म तो वतन मे ही रहना चाहता हू, मगर पिछले दिना लदन स टोकियो जाते हुए कराची से गुजर रहा था कि मुझे एयरपोर्ट पर रोक लिया गया। वडी भाग दाड क वाद ओर गृहमत्री के दखल देने पर सफर जारी रखने की इजाजत मिली। जनरल जिया-उल-हक ने कहा, मुझे तो इसकी विल्कुल खवर नही। ये तो वडे अफसोस की वात ह। ऐसा हरगिज नही होना चाहिए था। पर फज ने उन्ह बताया कि मुझे कई देशा से दावत आते रहते हैं। म अपने वतन मे रहना चाहता हू, मगर मेरे सफर पर कोई पाबदी नही होनी चाहिए। जनरल जिया उल-हक ने इस वारे मे भी उन्हे विश्वास दिला दिया। फंज ने कहा इसके वाद न मेरे पास कुछ कहने को वाकी था, आर न उनके पास। इतने म चाय की प्याली खत्म हा गयी, सा मन इजाजत चाही।

ये हे फंज की जनरल जिया-उल हक से उस मुलाकात की विस्तृत जानकारी, जिस पर फेज के कुछ साथियो ने, जेसा कि मेन उनसे कहा था, वहुत ले-दे की आर तरह तरह की वात बनायी। मन सुना कि एक महफिल म उनम से एक साहव अपनी सीमा पार करने लग ओर वहस पर उतर आये, तो फेज अपनी आदत के ख़िलाफ चिढ गये ओर उनका हल्की-सी डाट पिला दी। कोई आठ महीने बाद फज इस्लामावाद आये ओर हफ्ते भर से ज्यादा यहा ठहर। किम मालूम था कि इस्लामावाद म ये उनका आख़िरी दोरा होगा।

वापसी स दो दिन पहले एक शाम मर साथ ड्राइव पर चलने की फरमाइश की। वो शाम वहुत ख़ूबसूरत थी। फिर जव शाम ढलन लगी, तो फज कहन लग कि अपन घर चला, सीमा स मिलगे। देर तक अपने परिवार की आर ख़ासतोर पर अपन पिता आर उनके इंग्लिस्तान म रहन आर अफगानिस्तान के शासका से उनके सवधा की वात करत रहे। फिर अपनी जमीना का जिक्र किया जिनका उन्हान अपन

गरीब रिश्तदारो म बाट दिया था। वो बोलते रहे और हम सुनते रहे। एक बार सीमा ने जरा शरारत से कहा कि फैज भाई, वैसे तो आप इलिटिज्म के बहुत खिलाफ हैं, मगर आप तो खुद बहुत इलीट है। कहने लगे, वो तो हम है।

अगली शाम उनकी मेजबान के यहा एक बडी दावत का इंतजाम था। फैज के करीबन सभी दोस्त जमा थे। यहा फिर उनसे मुलाकात हुई। उन्होने फरमाइश पर शेर भी सुनाये और देर तक सुनाते रहे। उससे अगले दिन वो लाहौर चले गये और हफ्ते भर बाद, कि जिसके दौरान वो सियालकोट और उसके करीब अपने गाव कालाकादर का चक्कर भी काट आये, 19 नवबर 1984 को मगल के दिन लाहौर में उनका देहात हो गया। मै दूसरे दिन लाहौर पहुचा और उसी दिन यानी बुधवार 20 नवबर, 1984 को उनका अतिम संस्कार हुआ। हजारो लोग जमा थे। सिर्फ उनके चाहने वाले ही नहीं, बल्कि वे भी जिन्होने जीवन भर उनका विरोध किया। शोक सभा के दिन शुक्रवार था। शाम को 'हल्का-ए-अरबाब जौक' की शोक सभा 'टी हाउस' मे हुई, जिसकी अध्यक्षता के लिए मुझे आमंत्रित किया गया। वहा भी साहित्य, पत्रकारिता और राजनीति के हर विचार के प्रतिनिधि मौजूद थे। उनमे से हर एक ने फैज को शायर ही नहीं बल्कि एक इनसान की हैसियत से भी अपने रंग मे श्रद्धाजलि पेश करते हुए उन्हे बडी दर्दमदी से याद किया।

बात ये है कि फैज शायर थे, और इस दौर के बड़े शायर थे। मगर वो सही मायने मे एक बडे इनसान भी थे। उनके विरोधी उनकी जाती शराफत के भी कायल थे। मैने कुछ ऐसे लोगो को, जो कई वजह से उनकी शायरी को नही मानते थे, ये कहते हुए सुना है कि फैज शायर से ज्यादा बडे इनसान थे। असल मे फैज के व्यक्तित्व मे कोई ऐसे कोने कतरे या एच पेच नहीं थे कि जिनसे लोग बिदक जाये। उनमे न तो हमारे कुछ दूसरे शायरो जैसी अदाएं थीं और न किसी तरह का नाजो-अदाज। वो कभी कोई ऐसी हरकत नहीं करते थे जो किसी को नागवार गुजरे। वो सही मायने मे बहुत सभ्य आदमी थे। उनका सहज स्वभाव उनके आम मिलनेवाले के दिल को मोह लेता था। इसकी वजह शायद वो धार्मिक माहौल भी हो, जिसमे उनकी बचपन की परवरिश हुई, और जिसका उन्होने अपने कुछ लेखो मे जिक्र भी किया है। एक इंटरव्यू मे उन्होने साफ कहा कि वो अपने-आप को मामूली तरीके से तसव्वुफ (इस्लामी भक्ति) को मानने वाला समझते है, और जेल से एलिस के नाम एक खत मे भी अपने-आप को कुछ Inhibited सूफी की तरह की किसी चीज का नाम दिया था।

शायद ये भी धार्मिक माहोल मे परवरिश पाने का ही असर था कि फैज की शायरी मे पुराने संस्कारो और नयेपन का एक बहुत अच्छा संयोजन पाया जाता था। बचपन और लडकपन मे वो मौलवी इब्राहिम साहब सियालकोटी और सय्यद मीर हसन साहब जैसे ज्ञानियो के ओरियटल कॉलेज मे एम ए अरबी के जमाने मे मोहम्मद सफी साहब के शागिर्द रहे थे। इन बुजुर्गो का जिक्र वो बडी श्रद्धा और इज्जत से करते थे। बुखारी साहब गवर्नमेट कॉलेज मे उनके अग्रेजी के उस्ताद थे। इसके अलावा दूसरे दोस्त अब्दुल मजीद सालिक, तासीर साहब मजीद मलिक साहब, अब्दुर्रहमान चुगताई साहब, सूफी गुलाम मुस्तफा तबस्सुम साहब और इम्तियाज अली ताज साहब को भी अपना बुजुर्ग समझते थे और उनका बडा आदर करते थे। और उनसे बातचीत मे भी रख रखाव का ध्यान रखते थे। उनका ये अदाज देखकर मैने एक बार उनसे कहा कि 'फैज भाई हम भी आपको अपना बुजुर्ग समझते है। आदर और सम्मान मे तो नहीं मगर कुछ रख रखाव मे कमी रह जाती है। आपसे कभी-कभी असहमति भी कर लेते है और

वहस भी।' हसकर कहने लगे, 'ठीक है, हम इसे जेनरेशन गेप समझते ह, जो हमे कवूल है।'

गुजरे समय के ये ओर दूसरे कई सस्कार, जो फैज की जिदगी के आम रवैयो म नजर आते थे, उनमे एक दोस्ती भी थी ओर उसमे ये जरूरी नही था कि दोस्त हमेशा हमखयाल आर हमकबील ही हो। उनके वुजुर्ग दोस्तो मे, जिनके दरमियान उनके दिन-रात गुजरते थे, तासीर साहब क अलावा कोई भी उनका हमख़याल नही था। वुखारी साहब तो उनके सामने ही तरक्कीपसद अदव का मजाक उडाया करते थे। हसरत साहब ने 'तरक्कीपसद' की फब्ती कस रखी थी। कॉलेज के दोस्ता म आगा अब्वुल मजीद, नून मीम राशिद, रशीद अहमद वगैरह भी दूसरी तरह के लोग थे। मगर फंज से उनके सवधा मे कभी इस वुनियाद पर खलल नही आया।

इनके अलावा, उनके मिलने वाला मे नवाव मुश्ताक अहमद गोरमाती ओर नवाव मुजफ्फर अली कजलबाश जैसे जागीरदार ओर रईस भी शामिल थे। ये ढकी-छुपी वात नहीं है कि इसी दोस्ती की वुनियाद पर गोरमानी साहब ने फैज से रिपब्लिकन पार्टी का मैनिफेस्टो लिखवाया ओर एस एम शरीफ साहव ने, जो जनरल अयूब ख़ा के मार्शल लॉ के जमाने मे शिक्षा मत्रालय के सचिव थे, अपने शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट पर उनसे एक नजर डालने के लिए कहा था। सक्षेप मे ये कि फैज अपने राजनीतिक विचारो के वावजूद दूसरे लोगो से नफरत नही करते थे, वल्कि कई वार तो यू लगता था कि वा उनसे सवध कायम रखना जरूरी ओर फायदेमद समझते थे। यू तो वर्ग-सघर्ष के मार्क्सी नजरिये के कायल थे, मगर उन्हे किसी भी वर्ग के लोगो से मेल मुलाकात रखने म कोई वुराई दिखायी नही देती थी।

फ़ैज से उनके कुछ दोस्तो को ये शिकायत भी थी कि हर ऐरे-गैरे का दावत स्वीकार कर लेते है ओर इस मामले मे कोई एहतियात नही वरतते। इस सिलसिले मे फेज का जवाव अक्सर होता था कि भई, जो शख्स हमे मुहव्वत से वुलाता हे, हम उसकी नीयत पर शक क्यो कर। जहा तक छोटी-वडी हेसियत के लोगो मे फर्क करने का सवाल हे, ता उन्हे ये किसी तरह गवारा नही था। वो शेर सिर्फ फरमाइश पर सुनाते थे ओर वही कुछ सुनाते थे जो उनकी याद म महफूज होता था। वो घर से शायरी की नोटवुक साथ लेकर नही निकलते थे। मगर उन्हे महफिल की तलाश जरूर रहती थी। मुझे अक्सर ये ख़याल होता था कि वो तन्हाई से डरते हे।

हो सकता ह, ये जेल की जिदगी का असर हो। तन्हाई से डर की वजह से ही उन्हाने जमकर लिखने लिखाने का कोई काम नहीं किया। वो अपने-आप को इस किस्म के अनुशासन का पावद नही बना सकते थे। अगरचे, अपने हर दायित्व को उन्होने हमेशा वडी जिम्मेदारी से निभाया। उनको किताबा से ज्यादा इनसानो से मुहव्वत थी। मने उन्हे कभी किसी पर गुस्सा करते नही देखा। नफरत नाम की चीज तो वो जानते ही न थे। उनको लोग अच्छे लगते थे। हसते-खेलते लोगा मे वठकर वो वाकई वड खुश रहते थे। वो वहुत कम उदास या दुखी रहते थे। इस मामले मे भी वो वहुत प्राइवट आदमी थे। जाती दुख को वो खुद ही झेलते थे। वर्दाश्त, सब्र ओर सुकून उनके व्यक्तित्व की ख़ूवी थी। वो अपने दुख से महफ़िल को दुखी नहीं करते थे। मुझे याद हे कि कराची क पुराने आर करीवी दोस्त की तरफ से उन्हे वहुत जाती क़िस्म की तकलीफ पहुची तो मरे सिवा, कि मुझे इस मामले मे दोनो तरफ से भरोसे म लिया गया था, उन्होने कभी किसी से इसका जिक नही किया, आर मुझसे भी शिकायत करन के लिए नही सिर्फ़ दिल हलका करने के लिए किया। मने कहा था कि फंज की शायरी की तरह उनके व्यक्तित्व मे भी नये आर पुराने का एक खूवसूरत सयोजन था। यही सयोजन उनकी तवीयत म नर्मी आर मजवूरी

फैज़ से मेरी मुलाक़ात

सूफी गुलाम मुस्तफा 'तवस्सुम'

शामे शहरे यारा नामक फ़ैज के सग्रह की भूमिका मे उनके कालेज के छात्र जीवन की कुछ यादे उनके शिक्षक तवस्सुम साहब ने दर्ज की है खासकर परीक्षा के सभागार मे सिगरेट पीने पर पाबदी के कारण बेचैनी और फिर इजाजत मिल जाने पर कलम की चाल और सिगरेट की कश मे मुकाबले की दिलचस्प दास्तान।—स

सन् 1931 था ओर अक्टूबर का महीना। मुझे सेट्रल ट्रेनिग कॉलेज से गर्वमेट कॉलेज मे आये हुए कोई तीन हफ्ते गुजरे थे। पिछले स्कूल मे पढने पढाने की खुश्क फजा ओर अनुशासन की सख़्ती से तबीयत घुटी-घुटी सी थी। नये कॉलेज में आते ही तबीयत में खुशी की एक लहर दोड गयी। शेरो-शायरी का शोक़ फिर से उभरा। चुनाचे 'बज्मे-सुख़न' की ओर से एक बडे मुशायरे की सदारत (अध्यक्षता) प्रो पतरस बुख़ारी के सुपुर्द हुई। शाम होते ही कॉलेज का हाल छात्रो से भर गया। स्टेज की एक तरफ़ 'नियाजमदाने-लाहोर' अपनी पूरी शान से विराजमान थे। दूसरी ओर सामने लाहौर की तमाम साहित्यिक सस्थाओ के नुमाइंदे कतार म सजे बेठे थे। दोनो तरफ से सहदयता ओर स्पर्धा के माहौल के बावजूद सारी सभा एक-दूसरे का ख़ैर मकदम (स्वागत) कर रही थीं।

रिवायती दस्तूर के मुताबिक अध्यक्ष ने अपने कॉलेज के छात्रो से शेर पढने का एलान किया। दो-एक छात्र आये ओर बडे अदब ओर विनम्रता से कलाम पढकर चले गये। अचानक एक दुबला-पतला सा लडका स्टेज पर प्रकट हुआ। सियाह रग, सादा लिबास, अदाज मे गभीरता बल्कि रूखापन, चेहरे पर अजनबी होने का गहरा एहसास। इधर उधर कुछ फुसफुसाहट होने लगी। इतने मे उसने कहा अर्ज किया है। कलाम मे शुरुआती रियाज के बावजूद पुख्तगी ओर शेली मे सहजता थी। सब ने दाद दी। ये हफीज होशियारपुरी थे।

फिर एक नोजवान आये, गोरे चिट्टे, चौडा माथा, चाल मे शालीनता, आख ओर होठ जेसे एक ही समय म हल्की मुस्कान मे डूबे हुए। शेर बडे ढग ओर सलीके से पढे। इशारे हुए, पतरस ने कुछ मानीख़ेज नजरो मे लाहोर के 'नियाजमदो' से बाते कीं ओर उनकी हलकी ख़ामोशी को रजा (सहमति) समझकर दोनो नोजवानो को दोबारा स्टेज पर बुलाया गया। नयी शायरी सुनी। फेज साहब ने गजल के अलावा एक नज्म भी सुनायी। गजल और नज्म दोनो म सोच का अदाज ओर बयान का अछूता ढग था।

मुशायरा खत्म हुआ। तय पाया कि सभी दोस्त इन दोनो को साथ लेकर गरीबखाने पर जमा हो। रात काफी गुजर चुकी थी, उन्हे बोर्डिंग मे पहुचना था। बुखारी साहब ने उनकी गैरहाजिरी का जिम्मा लिया ओर फिर घंटे भर के लिए शेरो-शायरी पर बातचीत होती रही। ये उनकी शायरी का इम्तिहान नहीं

उस्तादा की हासला अफजाई का इम्तिहान था। दाना कामयाब रहे।

अभी पूरा महीना भी नही गुजरा था कि कॉलेज के इम्तिहान शुरू हुए। जिस दिन की म बात कर रहा हू उस दिन पतरस साहब कॉलेज हॉल म इम्तिहानात के कर्ताधर्ता थे और हम जैसे नये तजर्बेकारों को छोटे कमरे सुपुर्द किये गये थे। मुझे कॉलेज की दूसरी मंजिल मे तेनात किया गया। यहा एम ए इंग्लिश के छात्र थे ओर उनमे फेज अहमद फेज भी थे।

इम्तिहान का कमरा पाबदी वाली जगह होती है। उम्मीदवारा के दिमागी इम्तिहान के साथ साथ धैर्य आर अनुशासन का भी इम्तिहान होता हे। सिगरट पीना मना था। मने अपनी आदत का दबाने के लिए पान का इतजाम कर लिया था। मगर फज साहब कभी सवालात के पर्चे पर नजर डालते आर कभी मरी तरफ हल्की मुस्कराती नजरा से देखते ओर फिर कलम का उठाकर सर को खुजाते आर कभी खामोशी से अपने पडोसियो का हालचाल लेते, कभी-कभी उनका बाया हाथ ऐसे हरकत करता जसे किसी नामालूम राय को टटोल रहे हे। मे सोच रहा था। इतने मे वो उठ ओर हमस पूछा—हमें यहा सिगरट पीने की इजाजत ह? मेने कहा, म अभी बताता हू।

इतने म पतरस दूसरे कमरा का मुआयना करते-करते मेरे कमरे के बाहर आकर खडे हो गये। म जब सम्मान म प्लेटफार्म से उतरकर दरवाजे पर पहुचा तो उन्होंने, पूछा सब कुछ ठीक हे? मने कहा, जी।

मेने अर्ज किया पाफेसर साहब (म उन्हे प्रोफेसर साहब कहा करता था) कुछ छात्र सिगरेट पीना चाहते हे। इजाजत हे?

पतरस न मेरे कान मे दबी आवाज मे कहा 'जब तक प्रोफेसर जोधसिह इस कॉलेज के प्रिंसीपल नही बनते, उस वक्त तक पी सकते हे।' ओर फिर मुस्करा कर चले गये।

मेने अदर आते ही फैज साहब की तरफ देखा ओर इशारा से सिगरेट पीने का एलान किया। फज साहब के हाथ म फोरन एक सिगरेट प्रकट हुआ। जसे कलम ही से उभर आया हो।

फिर कलम की चाल ओर सिगरेट के कश मे मुकाबिला शुरू हुआ ओर इस कशमकश मे सुगंधित धुए के गुब्बारे पूरे कमरे मे फेल गये। म उस्ताद (शिक्षक) था, अनुशासन की जजीरो मे जकडा हुआ बेठा रहा आर किवामदार पान को छोडकर इस खुशबू से अपने सिगरेट पीने के शोक के सुकून म डूब गया।

क्या मालूम था कि धुए के ये गुब्बारे कॉलेज की चारदीवारी से दूर-दूर तक फजा मे फेल जायगे ओर उनमे सिगरेट पीने वाले की सुगंधित सासा की खुशबूए भी लहरायेंगी और शेरो शायरी ओर अदब की दुनिया को अपने आगाश (गोद) म ले लगी।

उर्दू से अनुवाद गोबिंद प्रसाद

मंटगोमरी से मास्को तक

लुदमिला वेसिलेवा

यह आलेख लेखिका की रूसी पुस्तक के एक अध्याय का हिदी अनुवाद है। यह रूसी पुस्तक वस्तुत लुदमिला द्वारा लिखित फ़ैज की जीवनी है। चूंकि लेखिका एक लबे अरसे से तक सोवियत सघ मे उनकी दुभाषिया के रूप मे उनके करीब रही है अत जीवनी मे दिये गये तथ्य विश्वसनीय और प्रामाणिक है। —स

दयार-ए यार, तेरी जोशिशे-जूनू पे सलाम
मेरे वतन, तेरे दामान ए-तार तार पे ख़ेर

फ़ज अहमद फ़ेज की केद के दौरान, एक के बाद एक कई सरकारे वदली, लेकिन चेहरे वदलने के बावजूद न तो कोई ख़ास वदलाव आया था न ही बेहतरी की कोई सूरत नजर आ रही थी। पाकिस्तान फोजी व्लाक मे शामिल हो गया था और सवको समुद्र पार की सुपर पावर यानी अमरीका से आ रहे फरमानो का एहसास हो रहा था। तेजी से फौज का ख़र्चा वढने की वजह से सरकारी बजट कमजोर हो गया।

1955 मे मटगोमरी जेल से रिहाई के बाद जव फेज लाहोर लोट आये तो शहर के माहोल मे एक कशीदगीरी महसूस हो रही थी। इसमे कोई ताज्जुव की वात नही थी। पाकिस्तान के कई इलाको मे अकाल पडा हुआ था। सनत के मेदान मे जमूद का आलम था ओर इस वजह से अवाम की गरीवी आर बढ गयी थी। बाज लोग मायूसी का शिकार हुए बाज लापरवाही का। हमवतनो की मदद किस तरह की जाये? उनके दिलो मे नयी उम्मीद केसे जगायी जाये? ओर उनमे आजादी की दी हुई कीमत की याद को किस तरह ताजा किया जाये? आजादी की तारीख़ के आमद के मोके पर फैज की नज्म 'अगस्त 1955' के उन्वान से शाया हुई। यह कडवाहट भरी सही लेकिन एक उम्मीद अफ्जा गजलनुमा नज्म हे

शहर मे चाक गरेवा हुए नापेद अब के
कोई करता ही नही जब्त की ताकीद अवके
लुत्फ कर ऐ निगहे यार कि गमवालो ने
आरजू की भी उठायी नही तमहीद अब के
चाद देखा तेरी आखो मे न हाठो पे शफ़क्
मिलती जुलती हे शव ए गम से तेरी दीद अब के
दिल दुखा हे न वो पहले सा न जान तडपी हे
हम ही गाफ़िल थे कि आयी ही नही ईद अब के

फिर से बुझ जायगी शम्मा जो हवा तेज चली
लाके रखो सर ए महफ़िल कोइ ख़ुर्शीद अरक़

फ़ैज फिर स *पाकिस्तान टाइम्स* म काम करने लगे। वे पहले की तरह अख़बार के लेखो म दो टूक अदाज मे सरकारी सियासत क ख़िलाफ़ आवाज उठा रहे थे। और हुकूमत की दाख़िली पालिसी का अवाम दुश्मन और ख़ारजा पालिसी को अमरीका-नवाज करने से घबराते नहीं थे। साथ ही साथ उनका अख़बार साम्यवादी मुमालिक से ताल्लुकात की बहतरी की तरफ हुकूमत के हर कदम का ख़ैरमक़दम करता था। उस तरफ कदम छोटे ही सही मगर उठाय जाते थे। आम तौर पर यह शक़ाफती और साइसी जानकारी का तबादला होता था।

अपनी जिदगी के इस मरहले पर फ़ैज न बहुत कम शायरी की थी। लेकिन उस दौरान ख़ालिस अदबी हदो से निकल कर उन्होने आलोचना के मैदान को ज्यादा बढ़ाने की कामयाब कोशिश की। उन्होने एक फिल्म की कहानी लिखी और फिल्म बनाने म भी शिरकत की थी। फिल्म का नाम एक लोक गीत की पहली पंक्ति पर रखा गया। *जागा हुआ सवेरा*। यह पुरआब दरिया के किनारे बुरवाकमा माहीगीरों के एक छोटे गाव की जिदगी की झलक और गाव वालो की कहानी थी। लदन के अतर्राष्ट्रीय समारोह म फ़ैज की फिल्म को पहला इनाम मिला।

जेल स फ़ैज की रिहाई के बाद उनके पुराने साथी, तरक्कीपसद मुसन्नफीन की अजुमन क मबर, उनको फिर से अजुमन की सरगर्मिया म शामिल करने की कोशिशो म लग गये। वे अजुमन की सफ़ों को मजबूत करने की सख़्त जरूरत महसूस कर रहे थे। फ़ैज हमकलम दोस्तो के बेहद शुक्रगुजार थ। ये वही थे जो कैद के दिनो में ख़ुद शायर को और एलिस को रूहानी सहारा देते रहे थे और जिन्होने इस जमाने मे दस्ते *सबा* के बेमिसाल प्रकाशन का इतजाम किया था। इसलिए फ़ैज ने उनसे तआवुन करने से इकार तो नही किया लेकिन अख़बार के काम मे निहायत मसरूफ़ियत का हवाला देकर माफ़ी चाही। उन्होने अपने पुराने सामयिक मसलो से ताल्लुक बरकरार रखा। मसलन वे दोस्तो की गुफ्तगू और बहस-मुबाहिसो मे हिस्सा होते और तरक्कीपसदो को दूसरे देशो के लेखको मे ताल्लुक कायम करने के बारे मे अपने खयालात म शरीक करते थे। लेकिन ख़ुद अजुमन की रहनुमाई और उसकी वसीअ सरगर्मियो मे शामिल होने से कतराते थे।

1956 मे हिदुस्तान के तरक्कीपसद मुसन्नफीन ने दिल्ली में एशियाई अदीबो की कान्फ्रेंस का ऐलान किया। पहला दावतनामा फ़ैज अहमद फ़ैज के नाम भेजा गया। यह आजाद हिदुस्तान का उनका पहला दौरा था। फ़ैज बेहद ख़ुश थे क्योंकि आख़िरकार बरसो बाद उनको अपनी जवानी क दोस्तो से मिलने का मौका मिला। अब फ़ैज दिल्ली मे सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनद, कृश्न चदर और दूसरे सब यार फिर से इकट्ठा हुए। वे 1936 की लखनऊ की कान्फ्रेंस की यादो मे खो गये, जिसमे हिदुस्तानी तरक्की पसद मुसन्नफीन की अजुमन कायम हुई थी।—अब कितना दूर था वह जमाना—। दिल्ली कान्फ्रेंस मे शरीक सभी अदीब इस राय पर सहमत हुए कि तीसरी दुनिया की नौजायदा रियासतो को कौमी अदब और शकाफत की तरक्की के मैदान मे मशाबा मुश्किलात दरपेश है जो सबसे पहले एशिया और अफ्रीका के मुमालिक के अवाम की रूहानी आजादी के मसले से वाबस्ता है और इस मसले का तसफ़िया सिर्फ़ सघबद्ध कोशिशो से किया जा सकता है। इस तरह से अफ्रीकी और एशियाई अदीबो के सगठन का ख़याल पैदा हुआ था।

1958 मे फेज ओर हफीज जालधरी पाकिस्तानी नुमाइदा की हसियत से एफ्र दूसरी काफ्रेस मे शिरकत के लिए ताशकद तशरीफ लाये। इस तरह सोवियत यू की दिली इच्छा पूरी हुई। उस वक्त भी सोवियत यूनियन के वारे म मुख्तलिफ खब थे इसलिए फेज अपनी आखो से यह मुल्क देखना चाहते थे। उसी दिन स फेज विछोह और मिलन का प्रेम शुरू हुआ जो उनकी जिदगी क आखिर तक जारी रहा

ताशकद काफ्रेस मे 'एफ्रो-एशियाई लेखक सघ' कायम हुआ जिसका मक इकरारकर्ता के शब्दो मे, 'नये आजाद हुए देशो ओर आजादी के सघर्ष म जुटी आवादी व के दवाव से निकालने मे मदद करने के उद्देश्य से बुद्धिजीवियो को एक वडे स्तर पर एक

ताशकद करारनामा के मुसन्नफीन मे फज का नाम सर ए फेहरिस्त था।

अफ्रो एशियाई मुसन्नफीन की तहरीक म फेज की सरगम शिरकत उनक आखिरी रही। दरअसल यह हिदुस्तानी ओर आजादी क वाद पाकिस्तानी तरक्कीपसद मुसन्नफीन शायर के जुडाव की एक नयी मजिल थी। हा इस तहरीक का पेमाना वेशक कही ज्यादा और सतह भी ज्यादा वुलद थी।

अक्तूबर 1958 म जव ताशकद काफ्रेस जारी थी पाकिस्तान म फोजी 'तख्तापलट' हु नतीजे मे फोजी अलगानी कायम हुई। सारा इकदितार मुल्क के नये सरवराह जनरल अयूव ख मे मरकूज हो गया। पाकिस्तान म मार्शल लॉ लागू हुआ ओर हर जीवन क पहलू म सख्ती वढ अव मुल्क के सारे शहरा म सोशल सेक्योरिटी एक्ट के सहारे से आम पेमाने पर गिरफ्तारिया थीं और तरक्कीपसद घरो के अमला की 'सफाई आम वात हो गयी थी। वाये वाजू की तर्ज सरगर्मियो पर पावदी लगायी जा रही थी। फज के ज्यादातर दोस्त इस सरकार के पहले दिनो म गि हो गये। मेजर इस्हाक पहले थे जो जेलखाने मे वद हुए थे लेकिन अव की वार उनको 'अपने श का साथ नसीव नही हुआ।

ताशकद काफ्रेस खत्म हुई तो फेज अपनी फिल्म *जागो हुआ सवेरा* के सिलसिल म इनाम लेन ल चले गये और दिसवर मे पाकिस्तान लोटे। फेज के दोस्ता ने जो कराची एयरपोर्ट उनको लेन पहुच वता कि उनकी गिरफ्तारी का वारट तेयार हो चुका हे। सव दोस्ता का मशविरा था कि फेज लाहार जान य नाम ही न लें ओर फिलहाल कराची म ठहर जाये। लेकिन फेज यह सव सुनन को तेयार नही थ। सलीम की सालगिरह होने वाली थी जिसके लिए उन्हे हर सूरत घर जाना था।

लाहोर मे एलिस ओर सव अजीज दिल थाम कर फेज का इतजार कर रहे थ कि क्या उनको घर तक पहुचने का मोका मिलेगा या उनको रास्ते मे ही गिरफ्तार कर लिया जायगा? लकिन फज सही सलामत घर पहुचे ओर अपनी तीन प्यारियो एलिस, और दोना वेटियो स वड प्यार से मिल। व वहुत खुश थे ओर वडे शोक से अपने सफर के किस्से वताते रहे।

फिर भी चार दिन वाद फेज की गिरफ्तारी हो ही गयी। शायर फिर स लाहोर जल म कद हुए निस वे मजाक म खानदानी जेल कहते थे। अवकी वार गिरफ्तारा स फज क दिल का पहली सी चोट नही लगी। अव्वल तो यह गिरफ्तारी कोई गर मुतवक्को वात न थी आर दूसर जल का माहाल भी विलकुल जाना पहचाना लगा। उनकी पिछली केद क दिना से यहा कुछ नही वदला था। जलर तक पुरान थ आर फज से मिलते वक्त वडे खुलूस से सलाम करते थे। कदिया क दरमियान फज क कई दास्त थ। जल

मे शायर के आने से खलवली मच गयी। पुरशोर तरीके स खुशी का इजहार किया जा रहा था कि अव मुशायरे हागे' आर वाकई एसा ही हुआ। शुरू की नज्मा म एक, जा फेज न जेल के एक मुशायरे में सुनायी 'शारिशे जजीर विस्मिल्लाह' थी। मुल्लाआ ने फज पर सख़्त तनकीद की आर ऐलान किया कि शायर ने इस्लाम की तोहीन की ह। अशआर की र्दीफ ह 'विस्मिल्लाह' जिसे शायर ने वजाहिर 'शुरू करने' के मुहावरेदार मानी म इस्तेमाल किया ह। लेकिन साथ ही इसम मजहवी कट्टरपथिया की तरफ साफ तज आर इशारा किया हे। फेज के दोस्ता आर हमखयालो ने इस नज्म को वहुत सराहा

हुइ फिर इम्तिहान ए इश्क की तदवीर विस्मिल्लाह
हर इश्क जानिव मचा काहराम ए दार ओ गीर विस्मिल्लाह
गली कूचा म विखरी शारशा ए-जजीर विस्मिल्लाह

फज का खानदान लाहोर के जिस मकान मे उस वक्त रहता था। वह लाहार के किले से दूर न था। एलिस दोनो वच्चा को लेकर फेज से मिलने अक्सर आती थी। लेकिन फिर भी शायर का दिल उदास रहता था। इस वार की गिरफ्तारी से उनको वही दिन याद आये थे जव व कराची जेल के हस्पताल की हरियाली मे डूवी कोठरी से मटगोमरी जेल की मायूसकुन चारदीवारी म लाहार गये थे। माहाल के एकदम वदल जाने का फेज पर हमेशा वहुत वुरा असर होता था। लंकिन इस वार भी शायरी की देवी कद क दिन काटने म मदद कराने आया करती थी। गालिवन वह खुश होती होगी कि अपने शायर को फिर से तन्हा पाया ओर वे कही जाने की जल्दी भी नहीं कर रहे थे। फज के दिल म एक जाना पहचाना दर्द करवट लेता रहा

दूर आफाक़ पर लहराई कोई नूर की लहर
ख्वाव ही ख़्वाव म वेदार हुआ दर्द का शहर
ख़्वाव ही ख़्वाव मे वेताव नजर होने लगी
अदम आवाद जुदाई म सहर होने लगी
कासाए दिल म भरी अपनी सुवूही मने
घालकर तल्ख़ी ए देरोज म इमरोज का जहर
हसरते रोज ए मुलाकात रकम की मने
देस परदेस के यारान ए-कदह ख़्वार के नाम
हुस्न ए-आफाक जमालए लव ओ रुख़्सार के नाम

फेज की काठरी का दरीचा किले के दामन म हरी चादर जसे मेदान की तरफ खुलता था। अपनी लडकियों को लेकर एलिस उन दिना यहा भी आती थी जो कदिया से मुलाकात के दिन न होते थे। वच्चिया किले की ऊची दीवार मे छोट छोट दरीचा को इस उम्मीद मे तक रही थी कि उनके अजीज अव्वाजान उनको दख रह हागे। कई सारे लोग दरीचो की सलाखा से वाहर हाथ हिला हिला कर उनका ख़ेर मक़दम कर रहे थ। उनम स कोइ हाथ अव्वाजान का भी होगा।

मुलाकाता क वक्त एलिस फेज की हासला अफजाइ करन की काशिश करते हुए उनका शहर की खवर ओर वह अफवाह भी सुनाती थी जा फज की गिरफ्तारी क सिलसिले म शहर म फेली हुई थी। एक वार एलिस अपन शाहर की रिहाइ क मुतालिक दाडधूप करने के दारान सी आइ डी के एक आला

आहदेदार—जनाव मिया अनवर अली—से मिली ता इस सज्जन ने उनका वताया कि फेज पर सावियत जासूसी इदारा से ताल्लुक का शक हे आर यकीन दिलान लग कि इस ताल्लुक क पक्क सुवृत भी माजूद ह।'

पहले ता एलिस का हुकूमत की 'जासूसी की वीमारी पर हसी आयी थी। लकिन वाद म पता चला कि अफसर का इशारा फज की एक तस्वीर की तरफ था जो उनक सावियत दूतावास से निकलते वक्त उतारी गयी थी। यह सच्ची वात थी कि ताशकद जाने से पहल फज आर हफीज जालधरी दाना वीजा वनवान सावियत दूतावास गय थे। फज अपनी गायव दिमागी की वजह स वहा अपना वैग छोड आये थे आर उसे लने क लिए लाट कर चद एक मिनट तक दूतावास क अदर अकेल रह गय थे। मुमकिन ह फज उन दिना शासको की जेरे नजर रहे हाग या सोवियत दूतावास के पास ड्यूटी करन वाले पहरदार न चाकसी के जोश मे आकर अपनी रिपोट म कुछ लिखा होगा। वहरहाल फेज क सावियत दूतावास लोटने की वजह से ही उन पर शक किया गया था। इस तरह यह गिरफ्तारी हर सूरत म सोवियत दारे स जुडी थी' उसका एक आर सुवृत यह था कि एलिस का गवनर क यहा एक सरकारी गुफ्तुगू क लिए वुलाया गया आर उन से देर तक 'रूस क पसा पर ख़रीदी हुइ गाडी क वार म पूछताछ की जाती रही। वात दरअसल यह थी कि उसी साल के शुरू म एलिस दाना लडकिया क साथ लदन गयी थी ओर वहा उन्हाने एक गाडी ख़रीद ली थी। गाडी के पस उनको मरहूम वालिद की विरासत से मिल थे। यहा उसी गाडी की वात हो रही थी। एलिस को सवंधित कागजात लदन भेज भेज कर दस्तावेजात की विना पर 'रुपय आने से लेकर गाडी ख़रीदने तक' के एक एक कदम का सुवृत देना पडा था। लेकिन फिर भी हुकूमत के आहदेदारा का यह शक दूर नहीं हुआ कि गाडी के पसे फज को मास्को से किसी खास खिदमत' के मुआवज के तार पर मिले थे।

फेज की रिहाइ आधे साल वाद हुइ। *पाकिस्तान टाइम्स* म व नही लोटे क्याकि इस एक साल मे लोकतांत्रिक ताकता का समथक यह अख़वार, अव फोजी हुकूमत की कई महीना की 'सफाई' क नतीजे मे अपने मजाहिदाना जोश से पूरी तरह 'पाक' हो चुका था। एलिस अभी तक अखवार म अपने कालम चलाती थी लेकिन उनको भी अव काम से कोइ इत्मीनान नही मिलता था।

रिहाई के वाद फेज की सेहत वहुत ख़राव हाने लगी। लगातार सिगरेट पीने आर किसी भी किस्म की वर्जिश से कतराने से उनकी हालत वेहतर नहीं हो सकती थी। उनकी सहत एक नयी परशानी की वजह वनी। उन दिना के हालात का जिक्र फेज ने इन अल्फाज म किया *'जिदानामा* के वाद का जमाना कुछ जहनी अफ़रातफरी का जमाना ह जिसम अपना अख़वारी पेशा छूट गया। एक वार फिर जेल गये, मार्शल लॉ का दोर आया ओर जहनी ओर गर्द-ओ पेश की फिजा म फिर स कुछ इजदादे राह आर कुछ नयी राहो की इच्छा का एहसास पेदा हुआ।'

1965 म फज का एक आर मजमुआ *दस्ते-तहे सग* निकला। उसमे *जिदानामा* के वाद की लिखी हुई कुल मिलाकर चालीस नजमे कृतआत ओर गजले शामिल हुई। यह सब मुख़्तलिफ कैफियता का सृजन थी। उनमे दुनिया मे नेकी ओर इसाफ की फतह की आरज़ू उम्मीद, ओर यकीन के मुख़्तलिफ रग हुस्न-ए-कुदरत के नजारो की ख़ुशी ओर मरहूम दास्तो के सोग जेसी केफियते पायी जाती हे। दस्ते तहे-*सग* मे कई ऐसी नज्मे भी ह जो फेज न विदेशो के ने दोरा स प्रभावित होकर लिखी। इस सग्रह की भी कइ चीजो का शुमार फेज की वेहतरीन तख्लीकात मे होता ह। एक ऐसी ही मिसाल आर कुदरती

मजर की नफीस तस्वीरकशी नज्म 'शाम' है जो लाहौर जेल में वजूद में आयी। इस नज्म के सिलसिले में फिर से फेज के खतो की याद आती है जिनमे वे अपने दरीचे मे से नजर आने वाले मजर को तकने के अपने शौक का जिक्र करते थे और आसमान के पसमजर में उड़ने वाले बादलों की बदलती हुई फरागत की तस्वीरकशी करते है

इस तरह है कि हर एक पेड़ कोई मंदिर है
कोई उजड़ा हुआ, बेनूर पुराना मंदिर
ढूढ़ता है जो खराबी के बहाने कब से
चाक हर बाम हर इक दर का दम ए-आखिर है
आसमा कोई पुरोहित है जो हर बाम तले
जिस्म पर राख मले माथे पे सिदूर मले
सरनिगू बैठा है चुपचाप ना जाने कब से
इस तरह है कि पसे ए परदा कोई साहिर है
जिसने आफाक पे फैलाया है यू सहर का दाम
दामन ए वक्त से पैवस्त है यू दामन ए शाम
अब कभी शाम बुझेगी ना अधेरा होगा
अब कभी रात ढलेगी ना सवेरा होगा
आसमा आस लिये है कि यह जादू टूटे
चुप की जजीर कटे वक्त का दामन छूटे
दे कोई शख दुहाई कोई पायल बोले
कोई बुत जागे, कोई सावली घूघट खोले

आने वाले सालो मे भी फेज ने मजरनिगारी पर काफी तवज्जो दी। उन नज्मो मे उडे-उडे से रगो, मुबहम से कनाईयो और धुआ-धुआ से पेकरो की बदोलत, अधूरेपन का और राज भरा माहौल पैदा होता है और शेरो का सोतिआती हुस्न तासीर मे मजीद इजाफा कर देता है। कभी एक मुख्तसर रूमानी नज्म में पूरी दास्तान ए-उल्फत समोई हुई मालूम होती है। एक ऐसी नज्म 'जब तेरी समदर आखो मे' है। नज्म का नाम उसका एक मिसरा है

यह धूप किनारा शाम ढले
मिलते है दोनो वक्त जहा
जो रात न दिन, जो आज ना कल
पल भर को अमर पल भर मे धुआ
इस धूप किनारे पल दो पल
हाठो की लपक
बाहो की छनक
यह मेल हमारा झूठ ना सच
क्या राड करो, क्या दोष धरो
किस कारण झूठी बात करो
जब तेरी समदर आखो मे
इस शाम का सूरज डूबेगा

सुख सोयेंगे घर दर वाले
ओर राही अपनी राह लेगा

इस मुख़तसर नज्म मे फ़नकार ने गोया चद लम्हा को क़ैद कर लिया ह। कई मिसरा मे तास्सुराती (impressionistic) अदाज मे चद घडियो के मिलन ओर गालिबन लबी तलाश की तस्वीरकशी की गयी है। यहा क़ुदरत के दो पात्रों (मैं-तुम आशिक़-माशूक़) को कद्र म रखा गया हे यानी नज्म के सभी अनासिर की पोशीदा वहदत को निहायत ख़ूबसूरत तरीके से नुमाया किया गया हे।

लेकिन *दस्ते-तहे-सग* म दिलफ़रेब रूमानी नाईयत के अशआर की तादाद के मुकाबले म कही ज्यादा ऐसी नज्मे शामिल हे जो परागदा हालात के सिलसिले म शायर की फ़िक्र का अक्स हे।

जब फ़ज जेल से निकले तो बाय बाज़ू क सभी सगठन जिनसे फेज का गहरा ताल्लुक़ था बद हो चुके थे पाकिस्तान अमन काउंसिल, मुल्क की सबसे बडी रेलवे मजदूरा की ट्रेड यूनियन आर तरक्की पसद मुसन्नफ़ीन की अजुमन इन सब की सरगरमियो पर पाबदी लगायी जा चुकी थी। फ़ेज को इन नागवार हालात का शदीद एहसास हुआ। 1959 म प्रोफसर पितरस बुख़ारी का इतक़ाल हुआ, जिनसे फ़ेज का गहरा रिश्ता ओर बडे प्यार ओर मोहब्बत का था ओर जिनको व अपना एक उस्ताद भी मानते थे। इस महरूमी के दर्द से गम-ए-दारा का बोझ आर ज्यादा बढा। फेज का जी इस कदर घबराया हुआ था कि उन्हांने माहोल म कुछ तब्दीली लाने के मकसद से कराची जाने का आर वहीं रोजगार तलाश करने का फैसला किया। कुछ दिनो बाद एलिस भी फ़ेज के पास कराची पहुचीं। दोना बेटिया लाहोर म रह गयीं। अब सलीमा आर मुनीजा काफ़ी बडी हो गयी थी। उनको अपना स्कूल बहुत पसद था जिसे वे बदलना नहीं चाहती थीं। ओर फिर वे अकेली तो नही रह रही थीं। लाहार म दादी ओर दूसरे रिश्तेदार भी रहते थे।

कराची मे फ़ेज फ़ारन काम म जुट गये। उन्हाने कराची के एक कॉलज को, गरीब खानदानो के छात्रा के ख़ास कॉलेज मे तब्दील कराने की कोशिश की ओर कामयाब रहे। उन्हान खुद इसी कॉलेज म पढाना शुरू किया। लेकिन कराची म उनका दिल नहीं लगा। उन्हे लाहोर की, अपनी बेटिया की, अजीजो दोस्तो की और काला कादर की भी यानी अपने उस पुश्तेनी गाव की याद सताने लगी जहा वे बचपन के दिनो मे जाया करते थे।

यू तो पहली कैद के जमाने मे भी उनका गाव की याद आती थी। मटगोमरी से रिहाई के बाद एक दिन फ़ज, एलिस ओर बेटियो को, पहली बार अपने गाव ले गय थे। लेकिन अगले ही राज से वे लाहार के रास्ते की तरफ़ नजर डालने ओर गाडी के पहिय चेक करने लगे थे। अब कराची मे उन्होने फिर से गाव को याद किया ओर गाव वाले रिश्तेदारा के पास जाने के मसूबे बनाने लगे। एलिस खामोशी से मुस्कुराते हुए शोहर की बाते सुनती रही।

जल्द ही पता चला कि कराची की आब-ओ-हवा फेज को कतई मुआफ़िक़ नही आ रही। एक अरमे से वे दमे के मरीज थे ओर अब उन पर खासी के सख़्त दारे पड जाते थे। दिल म भी काफी तकलीफ होने लगी। एलिस के इसरार पर दोनो वापस चले आये।

लाहोर लोटते ही फेज बीमार हुए। डॉक्टरा ने कहा कि उनको दिल का हल्का दारा पटा ह आर उन्ह मुस्तकिल आराम करने की ओर हर तरह की परेशानी ओर बेकरारी से बच रहन की जरूरत ह। पहली हिदायत की पाबदी की जा सकती थी मगर दूसरी की—बकाल गालिब के—'यह क्हा बच कि दिल ह'

कुछ वक्त गुजरा। इस दौरान फैज की सेहत आहिस्ता-आहिस्ता ठीक होती रही। अभी उनको बाहर निकलने की इजाजत नहीं मिली थी। एक दिन जब वे एलिस के साथ बरामदे में बैठे थे अचानक *पाकिस्तान टाइम्स* से फोन आया। फैज ने फोन उठाया, बात सुन ली और कुर्सी की पीठ से टेक लगाए कुछ देर तक खामोश रहे। फिर एलिस की सवालिया नजरों का जवाब देते हुए बताया, 'मुझे लेनिन अमन इनाम से नवाजा गया है'। इस मौके पर कौन खामोश रह सकता?

सोवियत यूनियन का आला इनाम दिये जाने की शानदार रस्म मास्को में होने वाली थी। लेकिन चूंकि पाकिस्तान में फैज अहमद फैज का नाम हुकूमत के जेरे नजर अफराद की फेहरिस्त में शामिल था उनको अपनी मर्जी से मुल्क से बाहर निकलना मना था। सिर्फ सदर ए पाकिस्तान की इजाजत से वे मास्को जा सकते थे।

उम्मीद के खिलाफ यह इजाजत उन्हें फौरन मिल गयी। यह 1962 की बात थी जब अयूब खां की हुकूमत ने अमरीका के मुकम्मल खुशामदी रवैये के रवय से हट कर अंतराष्ट्रीय ताल्लुकात के मैदान में वह राजनीति अपनायी जो आजाद खुद मुख्तार, पाकिस्तान के कौमी फायदे से ज्यादा ताल्लुक रखती थी। उस वक्त सोवियत यूनियन से ताल्लुकात में भी बेहतरी आयी हुई थी। इस तरफ हुकूमत की तरफ से फैज के लिए मास्को जाने की राह में कोई रुकावट न था।

यह फैज का डॉक्टर ही था जिसने बहुत शोर मचाया और इस दौरे की सख्त मुखालफत की। डॉक्टर का यह दावा था कि बीमारी के नतीजे में फैज साहब का दिल काफी कमजोर हुआ है, इसलिए फिलहाल हवाई जहाज में सफर करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। तब फैसला किया गया कि डॉक्टर की बात को मद्देनजर रख कर फैज हवाई जहाज से नहीं बल्कि समुद्री जहाज से इटली के शहर मिलान तक जायेंगे और वहां से रेल गाड़ी में बैठकर आगे मास्को तक पहुंचेंगे।

एलिस भी साथ जाने की तैयारी करने लगीं। उनके दोस्त उनको मना रहे थे कि वे उस वक्त अखबारी काम को न छोड़ें। लेकिन *पाकिस्तान टाइम्स* छोड़ने का उनका फैसला बहुत पहले पुख्ता हो चुका था। और अब उनको अच्छा बहाना भी मिला कि फैज की सेहत के पेश ए-नजर हर वक्त उनके साथ किसी अपने का होना जरूरी था।

फैज अहमद फैज को लेनिन अमन इनाम अता करने की रस्म मास्को क्रेमलिन के मशहूर हाल के शानदार माहौल में अदा की गयी। लेनिन इनामयाफ्ता, फैज अहमद फैज ने रिवाज के मुताबिक एक तकरीर की जिसका गर्मजोश तालियों से खैरमकदम किया गया था। यह तकरीर *दस्त तह संग* में शायर के पेशलफ्ज की हैसियत से शामिल हुई।

फैज ने यह भी कहा कि मुझे यकीन है कि इंसानियत जिसने अपने दुश्मनों से आज तक कभी हार नहीं खायी अब भी विजयी होकर रहेगी।

आज इंसानियत की भावनाओं में डूबे इन शब्दों पर शायद कड़वी हंसी ही हो सकती है। लेकिन 1962 में इन खूबसूरत अलफाज ने दुनिया भर के उन बेशुमार वासियों की दिली इच्छा को आवाज दी थी जिनके लिए वसीह पैमाने पर उन्नतिशील तरक्कीपसंद इंसानियत रायज थी। फैज भी उन लोगों में से एक थे। उनका सियासी और समाजी बदी पर नेकी की जीत का यकीन था। वे यह भी मानते थे कि उस जीत की खातिर जद्दोजहद करनी चाहिए लेकिन जद्दोजहद एक तजरीदी बात है जबकि हालात के मुताबिक जद्दोजहद के अपने नपे तुले तौर तरीके होते हैं। फैज को इस बात पर कतई यकीन था इसलिए

वह नेकी की खातिर जद्दोजहद के खुद अपने तरीका की जुस्तुजू म रहते थे।

अब पाकिस्तान मे काफी तब्दीलिया आयी। फाजी निजाम के साढे तीन बरस के बाद, हुक्मरान हलका ने मुल्क मे आईन आर सियासी पार्टियो ओर तजीमा पर से पाबदी उठा ली। उसकी बदोलत सियासी ओर समाजी जिदगी के मदान मे फौरन सरगरमिया बढी।

फज ने अपने दास्त सिब्ते हसन से मिलकर *लेल-ओ निहार* निकालना शुरू किया। लेकिन उनके जेसे नजरियात रखने वाले मुट्ठी भर लोगो के लिए मारशल लॉ की गिरफ्त ढीली करने के बाद भी यह काम उनके बस से बढकर साबित हुआ। दो चार परचे निकलने के बाद इसे बद करना पडा क्याकि हुक्काम को वह 'बहुत ज्यादा बाये बाजू का' नजर आया था।

फिर फज अपनी पुरानी दिलचस्पी के मोजू, शकाफत की तरफ मुतवज्जो हुए। उन्हाने कोमी थियेटर, कायम करने के मसूबे बनाये। एलिस के साथ मिलकर उन्हान उस वक्त क अदाकारो के ग्रुपा को ड्रामे स्टेज करने मे बहुत मदद दी। रेडियो प्रोग्रामो मे नयी जान डालने के लिए फेज ने कई रेडियो ड्रामे लिख। (याद रहे कि लाखा पाकिस्तानी खानदानो क लिए रेडिया प्रोग्राम एक वाहिद किस्म का मनोरजन होता था।) उन दिना पश्चिमी मुमालिक के साथ पाकिस्तान के तालुक्कात ज्यादा फेलने लगे। खुद पाकिस्तानियो क लिए अपनी सास्कृतिक जडा का मामला पूरी तरह साफ नही था। मुल्क के नामी वज्ञानिक, अदीब ओर फनकार पश्चिम क मासमीडिया की परायी सभ्यता क सिलसिल म फिक्र-आ परशानी जाहिर करने लगे। कोमी वेज्ञानिक के मसायल आर उसकी जडो की जुस्तुजू समाजी हलका की तवज्जो का कद्र बने। पाकिस्तान एक इस्लामी रियासत की हेसियत से वजूद म आया जिसका मतलब यह हे कि इस्लाम न सिर्फ उसका रियासती मजहब है बल्कि मुल्क की आबादी की नजरयाती ओर सास्कृतिक बुनियाद भी। मजहबी कायकताआ ओर सरकारी ओहदादारो के हिसाब से इस्लामी सस्कृति ओर इस्लामी नजरिया ही सबसे महत्वपूण ह। इसका अहमतरीन नुक्ता था सिर्फ इस्लामी सस्कृति ही मुख्तलिफ जबान बालन वाले ओर जुदा-जुदा क्षेत्रीय रीति रिवाज की पेरवी करने वाले लाखा लोगो को एक वाहिद पाकिस्तानी कोम मे जोड सकती हे।

बुनियादी दावा यह था कि पाकिस्तानी अवाम की तहजीब-ओ सभ्यता की सब जड इस्लाम से ही निकलती है। लेकिन इस नजरिये के मुताबिक इस्लाम से पहले के सास्कृतिक विरसे को तर्क करना चाहिए। (फेज के जेल के जमाने में रेडियो प्रोग्रोमा म हिदुस्तानी क्लासिकी मोसीकी पर पाबदी याद करे।) गर मुल्को स पायी गयी उन सारी कलात्मक ओर साहित्यिक दोलता स भी इकार करना चाहिए जो सदिया के दोरान अपनायी जाती रही। इस तरह का इस्लामी नजरिया सरक्षका की तरक्की म एक रुकावट था। वह समझदारी ओर तर्क के भी उलट था क्योकि इस्लाम के उन गिने चुने सरक्षका का नजरिया अपनाने की सूरत मे यह सवाल उठता था कि मोहनजोदडो ओर हडप्पा की प्राचीन तहजीबा की मशहूर यादगारा ब्राह्मणवादी ओर बाद्ध तहजीब से पहले की, ईरानी तहजीब के कदीम, यूनानी तहजीब के ओर मगरिबी तहजीबा के उन सारे नकूश स मुतालिक क्या रवेया अख्तियार करना चाहिए जा पाकिस्तान की सरजमीन पर माजूद हे? सरहदी हिंदुस्तान म सदिया के दारान बनने वाली तहजीब मे से खालिस इस्लामी धाराआ को किस बिना पर आर किस तरह निकाल कर अलग कर दिया जाये? आर आखिरकार पाकिस्तानी समाज के उस पूरे हलक का क्या किया जाय जो अग्रेजी ढग से पाले पासे गये ह?

कामी सभ्यता आर इस्लाम, कामी सभ्यता के मसायल, ऐतिहासिक विरसे आर वर्तमान क दरमियान

कोमी असर का तालमेल, यह ओर कई दूसरे विषया पर फेज अक्सर अपने साथिया से गुफ़्तुगू ओर बहस करते थे। कल्चर के सवाल अखबारो ओर पत्रिकाओ मे उठाते थे ओर उन सब विषय पर अक्सर रेडियो ओर टेलीविजन पर आलमी ओर दूसरे इदारा मे तकरीर करते थे। 1978 मे 'हमारी कोमी सभ्यताए' के नाम से फेज की किताब शाया हुई। उसमे मिर्जा जफर-उल हसन की कोशिशो ओर महनतो से कल्चर के मसायल पर फेज अहमद फेज के बिखरे हुए मजामीन, तकरीर ओर अन्य गद्य जमा किये गये थे। इस किताब मे कोमी शकाफत मे इस्लामी असर के मकाम, सभ्यता मे बढत ओर दूसरे अहम सवाल पर विस्तार से रोशनी डाली गयी। मसलन पाकिस्तानी तहजीब के सवालो को साफ साफ रखते हुए फेज ने लिखा

> इस वक्त जो हमारे इलाके का तहजीबी ढाचा हे उसमे आपकी पुरानी दरबारी तहजीब भी शामिल है। उसमे मुख्तलिफ अवामी तहजीबे भी शामिल हे ओर एक सफेदपोश तबके की आधी पश्चिमी आधी पूर्वी तहजीब भी शामिल हे। अब यह सूरत ए हाल हे ओर ये मसायल हे। अब सवाल यह है कि उनसे केसे निपटना चाहिए?

इसी किताब मे पाकिस्तानी सभ्यता के भविष्य के हवाले से गुफ्तुगू करते हुए फेज ने एक ऐसा निजाम कायम करने की जरूरत पर जोर दिया जो हालात के मुताबिक हो, अवाम के लिए फायदेमद हो और मोजूदा तकाजो को पूरा करता हो। उन्होने उन कार्यो पर भी रोशनी डाली जो उनके खयाल मे वर्तमान मुश्किलो से निबटने के लिए करना जरूरी था।

1976 मे मास्को मे एक मशहूर सोवियत रिसाले 'गैरमुल्की अदब' के नामानिगार से मुलाकात में फैज ने पाकिस्तान की शकाफत के ही मोजू पर गुफ्तुगू करने की ख्वाहिश जाहिर की। यह भी इसका एक सुबूत है कि उन दिनो शकाफती मसला फेज की नजर मे किस कदर अहम था। इस रिसाले में छपी गुफ्तुगू मे बेशुमार सोवियत लेखको ने बडी दिलचस्पी ली थी। इस विषय पर फैज की वह नज्म है जो शायद एक खास मकसद से अग्रेजी जबान मे लिखी गयी यानी पाकिस्तान के सब दानिशवरो की अपनी दूसरी (और बाज लोगो की तो शायद पहली) जबान हैं। नज्म का उन्वान हे 'दि यूनिकार्न एड दि डासिग गर्ल'।

यूनिकार्न एक फर्जी असातीरी जानवर हे, एक सीग वाले बेल की शक्ल मे इस जानवर की सबसे पुरानी तस्वीर उन मोहरो पर मौजूद हे जो सिधु घाटी के कदीम तरीन शहरो की खुदाई के वक्त मिली। एक ऐसी मशहूर मोहर मोहनजोदडो से ताल्लुक रखती हे। उस पर एक नर्तकी के साथ उसी यूनिकार्न का खुदा हुआ नक्श है। हजारो बरस पहले यूनिकार्न का पेकर एक सबसे अहम ओर पवित्र अलामत होता था। इसका जिक्र अथर्ववेद ओर महाभारत मे मिलता हे। ममलन आलमी सेलाब के बारे मे असातीर मे ऋषि मनु ने अपनी किश्ती को यूनिकार्न के सीग से ही बाधा था। बाद मे यूनिकार्न की पताका पश्चिम के ओर यूराप के शुरुआती असातीरी सिलसिलो मे भी नमूदार हुई। दूसरी ओर तीसरी सदी के यूनानी गद्य मे यूनिकार्न ने पवित्रता ओर सतीत्व की अलामत की हेसियत अपनायी। इसी कडी से आधुनिक इसाई परपरा की जड जुडती हे ओर जिसकी रो से यूनिकार्न का ताल्लुक हजरत मरियम ओर हजरत ईसा से किया जाता हे। रनासा की यूरोपीय चित्रकला मे भी यूनिकार्न एक अहम अलामत की हेसियत से मशहूर था। यहा इसकी शक्ल बदल गयी जमान ए वुस्त की मगरिबी तस्वीरो मे वह कभी घाड ओर कभी भेड की सूरत मे नजर आता हे। लेकिन उसकी पहचान वही हे—एक बडा सा सीग। इन सब

कोई इत्तिफाकिया यात नही थी
ने शायर ने इसानियत की हजारो
विश्लेषण के तोर पर पाकिस्तान
मकसद रखा। अफसोस कि इस
की शुरुआत इस तरह होती

दे रहे हे

लामती किरदारो मे समो दिया
यताया गया जिसका सदर

की हेसियत रखती है। उसके

कदीम कोमो की जिदगी की

ओर नगर उपजे मेदाना पर
जो मरकज बने अनत कारवा के
इनसानी कदमा ने चाप धरी
लावक्त पर्वत पर दस्तक दी
पार्थियन, वक्ट्रियन, हून ओर सीथियन
अरब, तातार, तुर्क ओर गोरे
जव खुला वक्त का पहला धागा
यूनिकार्न जो ह अतीत
अधे खुरा से जकड उसे
लपेट लिया ओर केद किया अपने भीतर

किसी भेदभरी दास्तान के अदाज म यूनिकार्न के दायरे मे रहने वाले इनसाना की तारीख का किस्सा जारी रखते हुए फेज ने वताया कि यूनिकार्न ने अपने देश म वक्त को चक्र मे बद करके, तरक्की को रोक दिया था। नृत्य करने वाली लडकी अपने नृत्य के चक्करा म बध कर रह गयी। इनसान चक्कर काटते हुए एक जगह पर रहते रहे। उसकी वजह इस तरह वतायी गयी

वह काल का चक्र
आर रीति रिवाज
अनजानी शक्तियो का चक्र
निर्धारित हे जिसपर सुदरता
की मृत्यु जीवन का अत
ओर महानगरा का खाक मे मिलना

इसी चक्कर को तोडने की इनसानो की कोशिश पहले नाकाम रही ओर उन्होने हथियार डाल दिये थे

चुपचाप वोझ स्वीकारे
जीवन का अधे वेला से
गिने दिनो को जीते
चक्र को ढोते
चक्र जो था काल
वोझ जो था कर्म
डर ओर इच्छा और दर्द
मुरझाती उम्र का
जिससे आती मौत रहमत की तरह
ओर जालिम दिल जिसका
सदा रहम से खाली

इसी तरह सदिया गुजर गयी लेकिन आखिरकार नया जमाना आया

फिर कोशिश ओर जतन से
गम ख्वाव जरस आर तडप से

अनगिनत बदो की
अनकही सदियो में
जजीर चटक के
तोड के चक्र
ताल की मस्त दीवानगी छूटी

ओर जब यह जादू का चक्र टूटा तो जमाने की तरक्की होने लगी। जिदगी की खुशी और नृत्य की फ़तह हुई ओर यूनिकार्न एक नक्श बनकर रह गया जो अब पाकिस्तान मे अक्सर कपडे पर या दीवारो पर एक तस्वीर की सूरत म नजर आता है।

मोहनजोदडो का यूनिकार्न पाकिस्तान का एक कोमी सास्कृतिक निशान ओर पाकिस्तान की तारीख की एक अलामत बन गया ह। उस तारीख़ की जो दुनिया की तहजीब जेसी पुरानी हे। इस नज्म मे यूनिकार्न की अलामत मगरिबी मुमालिक से पाकिस्तान की बराबरी की तरफ ही नही बल्कि उन पर यूनिकार्न के वतन की बरतरी की तरफ़ भी साफ इशारा किया गया है

जन्मा वक्त तब लावक्त से
हर जन्म सा बेहतर
हसरत, आशा, सुख, ख़ौफ लिये
जन्म जिसका पाकिस्तान मे
या एशिया के नये आजाद देशो मे
या अफ्रीका मे
है नन्ही सी पताका विद्रोह की
डर भूख, पीडा
ओर चाहत
और इनसानी दिलो की
मौत के ख़िलाफ़

यह नज्म उर्दू म तर्जुमा करके उसे अपने नये मजमुए मे शामिल करने का फेज का नेक इरादा तो था लेकिन हमेशा की तरह दूसरे फोरन करने वाले काम शायर को अपनी तरफ़ खीचते रहे। आज रूस समेत कई मुमालिक के कारीन अपनी-अपनी जबानो मे इस नज्म का तर्जुमा पढ सकते हे लेकिन उर्दू मे इसका तर्जुमा अभी तक नही हुआ।

ओर अब फ़ैज की हयात की कहानी पर लोट आय। उनको बाहर से एक बार फिर दावतनामा मिला और शेरगोई मे फिर से रुकावट पडी। पहले की तरह अब भी समाजी सरगर्मियो ने शायरी का वक्त ले लिया। 'इश्क' के बरखिलाफ, जिसम शेरगोई भी शामिल थी, समाजी और सियासी सरगर्मिया ने शायरी का वक्त ले लिया। फैज सियासी ओर समाजी गतिविधियो को कर्म या काम कहते थे। काम या इश्क़ (यानी शायरी) पर तरजीह के मुश्किल फेसले मे फसा होना फेज के लिए एक मामूली हालत होती थी। 1984 म लिखी हुई मजाहिया नज्म 'कुछ इश्क किया कुछ काम किया उनकी इस तरह की कैफियत की आईनादार है

वह लाग वहुत खुशक़िस्मत थ
जा इश्क़ का काम समझत थ
या काम से आशिकी करते थ
हम जीते जी मसरूफ रह
कुछ इश्क़ किया कुछ काम किया
काम इश्क के आडे आता रहा
ओर इश्क से काम उलझता रहा
फिर आख़िर तग आकर हमने
दोना का अधूरा छाड दिया''

लेकिन लेनिन शाति पुरस्कार के वाद अतर्राष्ट्रीय मैदान मे फेज की इज्जत ज्यादा वढी। अव उनको अदीबो की अजुमनो, अमन काउसिल ओर मुख़्तलिफ जम्हूरी तजीमा की तरफ से दावतनामे आते रहे। उन दारा क लिए तकरीरों और तहरीरों की तेयारी पर भी फेज को वहुत वक्त लगाना पडता था। साशलिस्ट मुल्का मे पाकिस्तानी शायर की ख़ास कद्र की जाती थी। उन तकरीवन सारे मुल्का की जवाना म उनके कलाम का अनुवाद हुआ ओर इसकी वदोलत उनकी शोहरत का चार चाद लग गये। दुनिया के भ्रमण के फेज के रास्ते चीन ओर क्यूवा, अमरीका ओर मगोलिया से गुजरते थ। अल्जीरिया, मिस्र, तियूनिश, शाम, ईराक मे इकलाव नवाज दास्तानो के नुमाइदे अदीव ओर शायर फेज के करीवी दोस्ता म शामिल हुए। लेवनान तो उनकी जिदगी का खास हिस्सा वना। कई वरस फेज वेरूत म जिलावतन होकर रहे आर लेवनान की वरवादी के चश्मदीद गवाह वन गये।

फेज की यात्राओ मे यूरोप के शहरो मे से लदन वेशक पहल नवर पर था। यहा एलिस के रिश्तदारा के अलावा फ़ेज क वे हमवतन भी रहते थे जिनका ताल्लुक अदवी हलको से था। यहा हमशा उनके आने का इतजार रहता था। लेकिन फिर भी गालिवन यह सोवियत यूनियन ही था जहा फेज का सवसे पुरखुलूस, सवसे गमजोश आर माहब्वत से स्वागत किया जाता था।

अनुवाद नूर जहीर
मो 09811772361

उनका दूसरा घर : मास्को में हिंदुस्तान का दूतावास*

इंद्रकुमार गुजराल

यह संस्मरण अपने आप में ऐतिहासिक महत्व रखता है चूंकि फ़ैज की जिंदगी उनकी सृजनात्मक यात्रा और उनके जीवन-संघर्ष के विभिन्न पड़ावों की एक विश्वसनीय तस्वीर इसमें मौजूद है। वैसे गुजराल साहब लाहौर के कालेज के दिनों में उनके शिष्य थे पर बाद में यह रिश्ता पक्की दोस्ती में तब्दील हो गया था। फ़ैज की निजी जिंदगी में गुजराल साहब की अच्छी पैठ थी और इसके साथ ही उनकी शायरी से उनका गहरा लगाव भी।—सं

फ़ैज ने एक बार लिखा था

अब कोई पूछे भी हम से तो क्या शरह[1] हालात लिखें
दिल ठहरे तो दर्द सुनायें और दर्द थमे तो बात करें

दिसंबर 1983 ई. में इस्लामाबाद में एक अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस के लिए मुझे भी निमंत्रण-पत्र मिला। पुराने दोस्तों से मिलने की इच्छा और अपना पुराना देश देखने का उत्साहपूर्ण आकर्षण तीन सप्ताह के लिए वहां ले गया, लेकिन जाने से प्यास बढ़ी, कम नहीं हुई।

लाहौर से मेरा विशेष संबंध बहुत गहरा था। इसी शहर की गलियों और सड़कों पर जवानी का बड़ा हिस्सा कटा था। वही यूनिवर्सिटी की पुरानी बिल्डिंग, वही मेरे कॉलिज और हॉस्टल, वही रोड पर बनी मेरी ससुराल की कोठी, जहां हमारी शादी हुई थी। उस शाम की यादें उमड़ कर कौंध आयीं जब बारात में फ़ैज और मजहर अली बाराती थे। यह बात तो फ़ैज़ भी नहीं भूले थे। मेरी पत्नी से मिलते ही पूछा—'अपना घर देख आयी हो ना?'

लाहौर में वह ऐतिहासिक ब्रेडला हॉल भी और लाजपत राय भवन भी थे जहां बकौल मजाज—

फ़ितरत ने सिखायी थी हमको उफ़ताद[2] यहां परवाज़[3] यहां
गाये थे वफ़ा के गीत यहां छेड़ा था जुनूं का साज यहां

और इसी जुनून ने फ़ैज से भेंट भी करवायी थी। इस्लामाबाद में कांफ्रेंस समाप्त हुई तो पेशावर से होते हुए लाहौर पहुंचे। फ़ोन पर बात तो पहले ही हो चुकी थी। सूचना मिलते ही फ़ैज और एलिस हमारे

---

1 हालात का खुला बयान।
2 परेशानी, तंगी।
3 उड़ान।

होटल आ गय। यू ता निमत्रण था कि हम दाना उनके यहा ठहरें। लेकिन उनका घर शहर से वाहर
टाऊन म था और हम वहुत सारे मित्रा से मिलने के इच्छुक थे। आर इसस अधिक इच्छा थी उन ग
और सडको पर घूमने की जो जानी पहचानी थीं। वेसे भी फेज आदतानुसार वाहरी दिखावे से घृणा
थे। हमारी विवशता के कारण उन्ह उचित लगे।

उन दिना हिंदुस्तान की क्रिकेट टीम भी लाहोर म मेच खेलने गयी थी। हमारे राजदूत हुमायू
ने उनके सम्मान म हमारे ही होटल मे एक दावत दे रखी थी। ज्या ही उनको मालूम हुआ कि फेज
एलिस मेरे कमरे मे ह तो अपने अमले के साथ आ गये। फेज से उनकी भट ता न थी लेकिन इस
स उनका परिचय हा गया आर हम सभी पार्टी मे जा पहुचे। पार्टी तो परहेजगारा की थी। हर प्रक
कवाब ता उपलब्ध थ लेकिन पाकिस्तानी कानून शरावबदी पर अडे थे। काफी देर तक फेज काफ
किस्म के ड्रिक्स पर सब्र करते रह।

मास्को के वाद फेज से मेरी भेंट लगभग दा वर्ष वाद हो रही थी। चेहरा कुछ ढला हुआ था,
चाल भी पहले से धीमी (थी)। मैंने एलिस से कारण पूछा। कहने लगीं डॉक्टरा ने दिल के विषय म
प्रकट की थी लेकिन अब उनको तसल्ली हा गयी ह, और फेज आदतानुसार सिगरेट की झडी लगा
थे। लेकिन यह कोई पहली वार तो था नहीं कि डॉक्टरों न उनको कुछ सयम[4] की सलाह दी थी। म
मे भी एक वार डॉक्टरो ने उनको अस्पताल मे वद कर दिया था। यू तो उनके लिए वहा ठहरना
था। डॉक्टर जेड ए अहमद, हाजरा वेगम , पी सी जोशी उन दिना वहीं थे और अस्पताल म उन
आपस मे खूब छनती थी। एक दिन मुझसे फोन पर कहने लगे 'भाइ जब मिलने आओगे तो हमारी
का ध्यान करते आना'। मेने कहा 'गजव कर रहे ह आप, डॉक्टरो ने आपको कडाई स मना कर
है।' 'अरे भाई, तुम भी खूब हो, डॉक्टरो ने मुझे मना किया है, आपको नही और यू भी डॉक्टर अह
बुरा मान रहे है'। लेकिन गजव तो यह हुआ कि उन्हे मृत्यु उस समय आयी जब लगभग एक वर्ष
वे परहेजगार हो गये थे और जो लोग हाल ही में उनस लदन म मिलकर आये थे वे इस वात की गव
दे रहे थे कि व अव पहले से अधिक स्वस्थ लग रह ह।

अगले दिन शाम को हम दाना खाने के लिए उनके घर पहुचे। एलिस ने केवल अपनी दोनो वे
आर दामादो को वुलाया था—सलीमा और मुनीजा वहुत पहले भी हमारे पास आ चुकी थी जब व
छोटी थी। अब तो उनके वच्चे वहुत प्यारे लग रहे थे। फैज को तो पता था कि मे हमेशा से ही
से दूर रहता हू लेकिन फिर भी हिंदुस्तानी व्हिस्की मौजूद थी। अरे। मेने पूछा—य कसे?' हम ता सु
है कि कानून अब घरो के अदर भी हिसाब-क्तिाब करने वाले भिजवा देता है। ओर फिर यह हिंदुस्ता
व्हिस्की यहा केसे पहुची।' 'अरे सब चलता है मिया। हम ओर कौन से आदेश मान रहे हे जो इस
पावद रह।' कराची म किसी ने चुटकुला सुनाया था कि अकेल पीना ज्यादा खतरनाक है क्योंकि जि
साहब के राज म अब दीवारो की भी आखे होती ह। लेकिन बडी पार्टी मे आसान है। शत केवल
ह कि पार्टी के साइज की सख्या के अनुसार किसी खास पद के फोजी अफसर को भी दावत दे दीजि
उस दिन वात अधिकतर राजनीतिक विषया पर ही रही। वदलती हुई परिस्थितिया म हिद पाकिस्ता
के सवधा, अफगानिस्तान म रूस के प्रवेश का प्रभाव भिन्न भिन्न लोगो पर अलग-अलग था। वामप

4 शराव छोड़ना।

उसमे खतरा महसूस नहीं करता था। बल्कि उनके दृष्टिकोण मे यह सब न होता यदि पाकिस्तानी सरकार अमेरिका की खिलोना न बनती और सोशलिस्ट निजाम को तुडवाने के प्रयास मे भागीदार न होती। एक और सोच (समझ) अधिक थी कि इस मौके पर पाकिस्तानी प्रोग्रेसिव सगठना को भारत से सबध सुधारने के प्रयास करने चाहिए। उन्हीं दिनो फ़ेज बेरूत से लोटे थे। वहा के लोगो की बदहाली ने उनके मन पर गहरा प्रभाव छोडा था। उस दोर की नज्मे उस पीडा को व्यक्त करती ह। उस शाम हमने उनसे फिलिस्तीनी बच्चे के नाम 'लोरी' सुनी।

अभी कुछ महीनो पहले दिल्ली मे हम लोगो ने मिलकर फैज के सतरवे जन्मदिन का उत्सव मनाया था। फैज के दामाद हाशमी साहब कहने लगे कि उसका प्रभाव पाकिस्तान के लोगा पर बहुत गहरा था। 'महीना लोग हिंदुस्तान के लोकतांत्रिक ओर लिबरल समाज की बाते करते रहे। बहुत से लोगो न तो उस हिंदुस्तानी टीवी के प्रोग्राम की केसिट्स भी बना ली थी। लेकिन हमारे यहा की भी सुनिए, फेज तो यहा थे नहीं। यहा भी एक जन्मदिन कमेटी बनायी गयी। समाचार निकलते ही उसके सब सदस्य मेरे साथ गिरफ्तार कर लिये गये ओर हमने जन्मदिन पुरानी अनारकली के थाने के गदे सेल मे गुजारा।'

आर फिर वे बताने लगे कि 'इसी थाने मे एक रोचक घटना हुई। हमारे साथ न जाने क्यो पुलिस वाले एक नोजवान मौलवी को भी पकड लाये थे। वह बेचारा परेशानी मे बहुत रो रहा था और बार बार कहता था कि म तो जनरल साहब का समर्थक हू, मुझे पकडने म कोई गलती हुई है। इसमे से किसी ने कहा कि अरे साहब हम सब भी तो जिया साहब के कृपापात्र ओर समर्थक थे। लेकिन कल रात कुछ फौजी अफसरो ने जिया साहब को बाहर कर दिया हे। इसलिए उनके सभी समर्थक पकडे जा रहे है।' बाहर खडा सतरी सुन रहा था। वह दोडा थानेदार को बताने। थानेदार ने तुरत किसी को फोन किया। जवाब मे डाट पडी तो हमारे पास आकर कहने लगा—'आपका यह मजाक हमको तो चोपट ही करने वाला था। खुदा का शुक्र हे कि अफसर मेहरबान था।' यह हमारी अँतिम भेट थी। अगले दिन हम वापस दिल्ली आ रहे थे। पिछले वर्ष मने उनको अबाला के मुशायरे मे भागीदारी करने के लिए लिखा लेकिन उन्हे दिल का दोरा पडा गया इसलिए यहा आने के बजाय अस्पताल मे भर्ती हो गये। मजहर ने उनकी बीमारी की सूचना भजी ओर साथ ही वह नज्म जो उन्हाने मेव अस्पताल मे लिखी थी। हमेशा की तरह उसमे दुख भी था ओर सकल्प भी

इस वक्त तो यू लगता है अब कुछ भी नहीं है
महताब न सूरज न अधेरा, न सवेरा
आखा के दरीचा[5] मे किसी हुस्न की झलकन
ओर दिल की पनाहा मे किसी दर्द का डेरा
मुमकिन है कोई वहम हो, मुमकिन है सुना हो
गलिया मे किसी चाप का इक आखिरी फेरा
शाखो मे खयाला के घने पेड की शायद
अब आके करेगा न कोई ख़्वाब बसेरा
इक बैर न एक महर, न इक रब्त,[6] न रिश्ता

5 झरोखो
6 ताल्लुक मेल-जोल।

तेरा कोई अपना न पराया न कोई मेरा
माना कि ये सुनसान घड़ी सख़्त कड़ी है
लेकिन मेरे दिल ये तो फ़कत एक घड़ी है
हिम्मत करो जीने की अभी उम्र पडी है

फैज की शायरी मे जहा दुख की गहराई है, उसके साथ ही हिम्मत ओर सकल्प हमेशा (हमें) आशा की ओर ले जाते है।

लबी केद ओर यह डर कि फासी की सजा न हो जाये, इस सोच का कम न कर पाये, बल्कि उनकी शायरी को चार चाद लगाते रहे—'लबी है गम की शाम मगर शाम ही तो है।' यू तो रावलपिडी केस से पहले भी सबकी तरह कई बार उन पर भी निराशा का दोर दिखायी देता हे। मगर बहुत कम।

ये बज्म चरागा देती है, इक ताक अगर वीरा है तो क्या

ओर या —

शीशो का मसीहा कोई नहीं क्या आस लगाये बेठे हो

लेकिन उनकी शायरी की खूबसूरती यह थी कि इस दुख आर निराशा के पीछे परिवेश के दुख दर्द की कहानी हे जिसे वे खूबसूरती से अपने मे आत्मसात कर ओर भी परिष्कृत कर पेश कर देते हे। फेज की जबान, उनकी रूमानियत ओर क्राति ने ही हमारी पीढी को उनकी ओर आकर्षित किया था। अब तो बात बहुत पुरानी लगती है। बडी लडाई (द्वितीय विश्वयुद्ध) पूरे उफान पर थी। कहना कठिन था कि अत म हिटलर जीतेगा या हारेगा। लेकिन हिदुस्तान के स्वाधीनता सघर्ष को पूरा विश्वास था कि उसके पूरे हाने की घडी आ पहुची है। मे उस दोर मे कॉलेज के आखिरी दिना मे था। लेकिन पढाई स अधिक उलझाव था। वामपथ की राजनीति के साथ था ओर इस कारण हमे जेलबदी हुई थी। हम जैसे लोगा के राजनीतिक स्वप्न स्वतत्रता के भी अगले पडाव के बारे मे ही सोचते थे। इसीलिए युगीन सामाजिक साहित्यिक सबध और क्राति के पारस्परिक प्रभावो पर अक्सर बहस रहती थी। उसी दोर म प्रगतिशील लेखका का आदोलन भी उभर कर सामने आ रहा था। नये लिखने वालो मे फेज की (विशिष्ट) शेली के चर्चे चल निकले थे।

अचानक ही हमारे कॉलेज मे सूचना आयी कि फेज अमृतसर छोडकर लाहोर हमारे ही कॉलेज में अग्रेजी साहित्य के लेक्चरर हाकर आ रहे ह। आश्चर्य हुआ क्याकि सिर्फ हमारा कॉलेज सरकारी ही नहीं था बल्कि हमारे प्रिंसिपल अग्रेज थे, लेकिन थे बडे खुले दिमाग के आदमी। स्वाधीनता आदोलन के प्रति उनकी सहानुभूति थी, शायद इसलिए (ही) फज के चुनाव मे उनको कोइ परेशानी न थी। किसी सीमा तक अदृश्य परिचय तो था ही, थोडे ही दिना मे हमारा सबध शिष्य गुरु की सीमा पार कर गया और एक लबी मित्रता की आधारशिला पडी।

उठती जवानी म कई आकर्षण एक साथ प्रकट हाते हैं और हम लागा के लिए क्राति के कई अर्थ थे। उसम देस से दोस्ती भी थी, सामाजिक सबधो को बदल देने का सकल्प भी था। नय प्रकार की शायरी से रुचि थी ओर उस पीढी मे हमारे मित्र साहिर ओर सरदार जाफरी जेसे शायर अपनी प्रतिभा दिखा रहे थे। लेकिन उन सब चेहरो आर रुझाना म रूमानियत का अश हावी रहता था। इसीलिए फज की उस समय भी शायरी हमारी उन सभी भावुक बहसा की प्रतिनिधि थी और दिल म उतर जाती थी। हमारा

कोई भी सहयोगी या मित्र ऐसा न होगा जिसको *नक्शे-फरियादी* याद न हो या देनिक जीवन मे 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग' की वात न करता हो।

फज की प्रसिद्धि का एक कारण उनकी सादा ओर आम वालचाल की भापा ही थी। उस दोर मे कॉडवेल की पुस्तक 'स्टडीज इन डाइग कल्चर' प्रकाशित हुई। उसकी भूमिका आज भी याद आती हे जिसम उसने कहा था कि शायरी एक रूमान भी ह क्याकि उसका सवध भापा ओर समाज से ह, इसलिए उसका अलग नहीं किया जा सकता। यही वात फज ने अपने ढग से प्रस्तुत कर दी है। उस दोर म जॉन फ्रिमेन की आत्मकथा *New Testament* की भी चर्चा चली ओर उसने वामपथ के समर्थका म एक नकारात्मक किस्म की हलचल पेदा कर दी। फ्रीमेन किसी दार म कम्युनिट थे मगर अव कम्युनिज्म छोड चुके थे। शायर भी थे इसलिए उनके वारे मे राय भी अलग-अलग थी। लकिन उनक जीवन की एक घटना वडी ख़ूवसूरती से कही गयी है। अपने यूनिवसिटी क दिना मे उनकी भेट एक ख़ूवसूरत लडकी से हुई जिसने उनसे एक दिन पूछा कि कॉलज छूटने के वाद आप क्या करेग? 'शायरी आर क्रांति। लडकी को यह विचार वडा ख़ूवसूरत दिखायी दिया लेकिन उसने उचित यही समझा कि उभरते प्रेम को छोडकर किसी खुशहाल नोजवान (युवक) से शादी कर ली जाये। फेज भी तो शायरी ओर क्राति (इकलाव) को अपना चुके थे लेकिन उनका भाग्य फ्रीमेन से वेहतर था। यह सूचना कि फज एक अग्रेज ओरत से शादी कर रहे हे और वह भी इग्लिस्तान गय विना, वडी आश्चर्यजनक लगी। लेकिन उसमे भी फेज की अपनी विशिष्टता थी। एलिस अपनी वहन मिसेज तासीर से मिलने अमृतसर आयी हुइ थी कि फेज से भेट हो गयी। हमखयाली ने प्रेम सवध का मजवूत व अटूट कर दिया। जिस दार मे फेज लाहोर आये उस ममय तासीर श्रीनगर म प्रिसिपल होकर चले गये, इसलिए शादी वहा रचायी गयी ओर निकाह स्वर्गीय शेख अवदुल्लाह ने पढाया। वाद के वर्पो म शेख साहव उसकी अक्सर चचा किया करते थे। शादी मे कश्मीर नेशनल फ्रट के सारे वडे नेता शामिल हुए थे। सादिक साहव ओर वख्शी गुलाम मुहम्मद के साथ फेज की मित्रता उसी समय आरभ हुई। फ़ज को कुदरत ने वहुत सी नेमता से नवाजा था। लेकिन एलिस जेसी पत्नी वहुत कम लोगा के भाग्य मे होती है। जिस ढग ओर वाकपन से फेज की पत्नी ने मुश्किला के दिन काटे हे, वह उनकी सराहनीय हिम्मत का सवूत हे। व्रिटिश सना म शामिल होकर जग मे भाग लेने के कारण वामपथी कलाकारो ओर सोचने वाले कुछ ओर दोस्त यह महसूस करने लग गय थे कि पहली वात नाजी वर्वरता को हराने की है ओर हिटलर की जीत के परिदृश्य म काई क्रातिकारी ओर प्रगतिशील शक्ति उस यथार्थ को अनदेखा नहीं कर सकती। यह सोच फेज ओर मजहर अली जस भावुक लोगो को फोज मे ले गयी ओर फेज कॉलेज की नोकरी छोडकर दिल्ली आये। म कॉलज खत्म करके कराची चला गया था। कुछ दिनो के लिए दिल्ली आया। उस दोर मे नयी दिल्ली भी कुछ ओर ही थी। रात को 'ब्लैक आऊट' होता था। आर इडिया गेट के उस आर तो था ही जगल। फेज साहव को घर मिला था लोधी एस्टेट मे। रात मे उनके साथ खाना तो मेने मान लिया लेकिन तागे पर वहा पहुचते-पहुचते पसीना निकल गया। अव फेज साहव के सामन दो ही रास्त थे कि या तो मुझे अपनी पुरानी ऑस्टिन गाडी मे वापस पहुचाय या रात को ठहरने का प्रवध कर।

फिर तो पाकिस्तान वन गया। हम लोग 'देश वाहर' होकर दिल्ली आ गये। फेज वापस लाहार चले गये। कुछ वर्पो तक सवध स्थगित हो गये। अव फेज के जीवन में एक नया दार आरभ हुआ। मिया इफ्तखारूद्दीन ने *पाकिस्तान टाइम्स* ओर *इमरोज* का उद्‌घाटन किया। फेज ओर मजहर अली उसक

एडिटर और ज्वाइट एडिटर नियुक्त हुए। यहा हम लोग यह समाचार सुनकर उनके भाग्य पर नाज करने लगे। यहा तो दिन-रात मकानो की अलॉटमेट ओर राशनकार्डो के चक्कर मे कटते थे। आर वे नये देश मे नये मूल्या के रुझान वना रहे थे। लेकिन न ही उनकी वह स्थिति वहुत दिनो तक रही आर न अपनी। अयूब खान का राज आया तो *पाकिस्तान टाइम्स* ओर *इमरोज* को सरकार ने दबोच लिया ओर अव भी वह सरकारी ट्रस्ट की सपत्ति है। कुछ ही दिनो वाद रावलपिडी साजिश केस का ड्रामा रचाया गया। फेज ओर सज्जाद जहीर लवे समय के लिए जेल मे वद हो गये। थोडे ही दिनो वाद मिया इफ्तखारुद्दीन की मृत्यु हो गयी।

वे अपने समय मे वडे ठाठ के इनसान थे। ऑक्सफोर्ड म पढते-पढते क्रातिकारी वन गये। वापस आने के वाद पजाव काग्रेस के अध्यक्ष जवाहर लाल जी के साथ उनका विलकुल निकट का सवध था। मेरे पिता ओर वे जल म दो बार इक्ट्ठा हुए थे। उनका सवध फेज, महमूद अली, मजहर अली आर हम जेसे वामपथी लोगो के साथ वहुत गहरा था। फज को उनकी मृत्यु पर वहुत शोक हुआ। और जल से उन्होने एक दर्दनाक मर्सिया लिखा

करा कज जवीं[7] प सरए कफन/ मेरे कातिलों को गुमा न हो
कि गरूरे इश्क का बाकपन/परो मर्ग[8] हमने भुला दिया

जब हम लोगो ने यहा उस शेर को सुना तो हिदुस्तान की राजनीति एक नया मोड ले रही थी। काग्रेस दो हिस्सो मे वट रही थी। जिस दिन इदिरा जी को काग्रेस से निकाल दिया गया तो मैने उनको यही शेर लिखकर भेज दिया। उनको बहुत भाया। वैसे तो वे शेर याद करने मे सिद्धहस्त न थी। फिर भी कइ वार कह देती थी—'क्या था वो फेज का शेर।'

फेज का सवध पडित जी ओर इदिरा जी से वहुत निकट का था। 1955 ई मे जब फैज दिल्ली आये तो पडित जी ने पूरी शाम उनके साथ बितायी। 1971 ई के बाद पाकिस्तान म स्थिति ने पलटा खाया। भुट्टो के दोर म फेज नेशनल आर्ट्स कोसिल के डायरेक्टर बने तो दिल्ली आये। म उन दिना इफार्मेशन एड ब्रॉडकास्टिग मिनिस्टर था। कहने लगे 'दो काम करो एक तो शीला भाटिया का प्रसिद्ध आपेरा 'हीर राझा' आर दूसरे अपने भाई सतीश गुजराल की तस्वीरो की प्रदर्शनी पाकिस्तान भिजवाओ। मने कहा कि सिद्धातत तो आपत्ति नही हो सकती। लेकिन हमारी भी एक शर्त है कि आप दिल्ली टी वी पर अपना पूरा प्रोग्राम प्रस्तुत कर दे। फेज साहब ने तो अपनी बात पूरी कर दी लेकिन न ही शीला भाटिया का ऑपेरा ओर न ही सतीश गुजराल पाकिस्तान जा पाये। अभी सवध ही कुछ ऐसे थे और उन दिनो भुट्टो के तार-तरीके बदल रहे थे। फेज इससे निराश हो रहे थे लेकिन कोशिश मे थे कि भुट्टो ओर उनके साथी सामने आने वाले दिनो को देखे। फैज उन लोगो म थ जो महसूस करते थे कि भुट्टो अपनी गलतियो से सिर्फ फोजी राज ही का पथ निर्मित कर रहे है। लेकिन ये होकर ही रहा। हमारे यहा भी इतिहास एक पन्ना उलट कर इमरजेसी ले आया। फैज ने सोचा कि शायद इमरजसी केवल वामपथ को तोडने के लिए लायी गयी हे लेकिन वे शीघ्र ही इसके तेवर समझने लगे। जव हम मिले फेज ने कहा यह तुमने ख़ूब किया। पाकिस्तान को लोकतान्त्रिक रास्ते पर लाने के वजाय तुम लोग ही ढलक गये।

---

7 माया या ललाट।
8 मान के बा॰।

जनरल जिया का दोर आया तो फिर से दिल मे घुटन ओर बुद्धिजीवियो की पकड-धकड शुरू हो गयी। फ़ेज तो किसी तरह निकलकर मास्को आ गये लेकिन एलिस ओर बच्चो को वहुत देर तक कठिनाइया का सामना करना पडा। तव तक इमरजेसी के दोर ने मुझे भी मास्को धकल दिया था। फैज जव मिले तो उन्होने कहा 'सितम सिखलायेगा राहे वफ़ा ऐसा नही होता' ओर उनकी नज्म 'मेरे दिल मेरे मुसाफिर' तो वस दिल मे ही उतर गयी। हमको तो उनके देशनिकाले का बहुत लाभ हुआ। हिंदुस्तान का दूतावास उनका दूसरा घर था ओर शाम को हमारे यहा आ जाया करते थे। एक दिन पुरानी वाते होने लगी। 'विस्मिल' की नज्म 'सरफरोशी की तमन्ना अव हमारे दिल मे हे' जिसने 'स्वाधीनता–सघर्ष म क्रांतिकारियो की कतार को गर्मा दिया था। तव फेज ने वताया कि इस भूमि पर उन्होने भी एक नज्म कही हे

सरफरोशी के अदाज बदले गये/दावत ए-कत्ल पर मकतल[9] ए शहर म
डाल कर कोई गर्दन म तोक[10] आ गया/लाद कर कोई काधे पर दार[11] आ गया।
फेज क्या वात ये किस आस पर/ मुतजिर ह कि लायेगा कोई खबर
मयकशा पे हुआ मुहतसिब[12] महूवा/दिल फिगारा[13] पे कातिल का प्यार आ गया

अब तो कई वार शाम को जव शेरो-शायरी की मजलिस जमती तो पाकिस्तान ओर वग्लादेश क राजदूत भी उन मजलिसा म आते। भारत मे मोजूद पाकिस्तान के डॉक्टर हुमायू खान से भी इसी दोर मे भट हुई। फैज की उर्दू भापा को एक देन यह भी ह कि उन्होने उसको अतर्राष्ट्रीय भापा बना दिया। रूस मे उनके बहुत से प्रसशक थे जिनको फेज की शायरी ने जीवन का एक ओर ही पक्ष दिखाया हे। एक किस्सा ओर। हमारी हिंदी भापा के चोटी के कवि वच्चन जी मास्को आये। शाम को मुशायरा हुआ। वडी रात तक वच्चन जी नयी ओर पुरानी कविताए सुनाते रहे। फज अपनी वारी भी खूवसूरती (से) निभाते रहे। उस दिन का एक शेर आज भी दिमाग म घूमता है

सहल यू राहे जिदगी की हे / हर कदम हमने आशिकी की ह
हमन दिल म सजा लिए गुलशन / जव बहारा ने वेरुखी की हे
दर से धो लिये है होठ अपने / लुत्फे साकी ने जव कमी की है

फेज के मास्को के प्रवास के दोरान मे ही उनकी आलमगीर मगजीन *लोटस (Lotus)* की एडिटरी सापी गयी, इसलिए उनको अधिक अरसे वेरूत म ही रहना पडता था। इसी वीच एलिस भी आ गयी। वरूत की वर्बादी का फेज की शायरी पर गहरा प्रभाव पडा

चाद फिर आज भी नही निकला/ कितनी हसरत थी उसके आने की।

यह जानना कठिन हे कि फेज चुपके से मर गये होगे। निश्चय ही उन्होन फरिश्ते अजल (मृत्यु के दूत) से भी पूछा होगा

---

9 वह स्थान ‍जहा कत्ल किया जाये।
10 गुलामी का चिह्न
11 फासी का तख़्ता
12 जा हिसाव किताब रखता हे।
13 जख़्मी दिल

लाओ तो कत्लनामा मरा म भी देख लू
किस किस की माहर है सर महजर[14] लगी हुई

लेकिन बात समाप्त करने से पूर्व एक घटना का उल्लेख अवश्य करना चाहता हू। फैज की शायरी को ओर सोच को नया मोड देने मे महमूद जफर ओर रशीद जहा का बहुत हाथ था। दूसरे दार ने उनको कूए यार[15] से निकालकर सूए दार[16] का रास्ता समझाया था। मे अभी मास्को गया ही था कि फैज का संदेश मिला—'रशीद जहा की कब्र पर मेरी तरफ से भी फूल चढा देना।' दिसबर की बर्फीली सर्दी मे हम दोनो पति-पत्नी ने उनकी कब्र ढूढ निकाली ओर वहा पहुचकर फैज साहब ओर रशीद जहा यादगारी (स्मृति) कमेटी की ओर से हमने श्रद्धाजलि के फूल चढाये।

फैज शायर तो थे ही, लेकिन एक प्यारे मित्र ओर ख़ूबसूरत इनसान भी थे। यह रिक्तता कभी पूरी न होगी।

उर्दू से अनुवाद शहाबुद्दीन
मा 9810929631

15 कागज पर।
16 महबूब की गली।
17 फासी का तख्ता।

वो बात जिसका फ़साने मे कोई ज़िक्र न था.

कातिमोहन

रावलपिंडी साजिश क नाम स मजर जनरल अकवर ख़ा ओर अन्य पर जो मुकद्दमा 1951 म शुरू हुआ वह फ्ज की जाती आर शेरी जिंदगी म अहम मुकाम रखता ह। अक्वर खान क साथ जा अन्य अभियुक्त इस कस म शामिल थ उनम पाकिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी क महासचिव सज्जाद जहीर आर फज अहमद फज भी शामिल थ आर इन दाना का चार साल कद की सजा सुनायी गयी था।

मुकद्दमा कितना अहम था आर जुम कितना सगीन इसका अदाजा पाकिस्तान क प्रधानमत्री लियाकत अली द्वारा 9 माच का रडिया पाकिस्तान स की गयी घापणा से लगाया जा सकता हे। गारतलव ह कि यह काम किसी आर वजीर वगेरह पर न छाडकर वा खुद रेडिया पर आये आर उन्हाने मुल्क के अवाम को वताया कि सग्कार का तख़्ता पलटने की एक साजिश का पता चला ह आर एसा इरादा रखनवाल इन चार लोगा का गिरफ्तार कर लिया गया ह चीफ ऑफ जनरल स्टाफ मेजर जनरल अकवर ख़ा आर उनकी वीवी नसीम अकवर ख़ा, वावनवीं व्रिगड क कमाडर आर क्वटा के स्टशन कमाडर व्रिगडियर मोहम्मद अव्दुल लतीफ ख़ा आर फेज अहमद फज। उन्हान गिरफ्तार लागा की योजना के वारे म सार्वजनिक तार पर कुछ कहने से इनकार किया आर इस गापनीयता को राष्ट्रीय सुरक्षा के हित म जरूरी वताया। उन्हान इस वात पर जरूर जोर दिया कि साजिश करनेवाल पाकिस्तान की स्थिरता का हिसात्मक उपाया स भग करना चाहते थे। उन्हाने ऐलान किया कि यह साजिश पाकिस्तान की जम्हूरियत क खिलाफ थी। इसका मकसद अराजकता पदा करना, फाजी यकजहती को तोडना ओर समाजवादी फाजी तानाशाही कायम करना था। प्रधान मत्री ने देश की जनता स इस साजिश को नाकाम वनान म पाकिस्तानी हुकूमत स तआवुन करन की अपील की।

उस वक्त फज अग्रेजी अखवार *पाकिस्तान टाइम्स* के प्रधान सपादक ओर उर्दू दैनिक *इमरोज* के प्रवध सपादक थे ओर लियाकत सरकार की नीतिया के मुखर आलोचक। जम्हूरियत के नाम पर पाकिस्तान मे अजीव सा ही निजाम वजूद म आ गया था। 1948 म पाकिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हा चुकी थी आर वह वेध टग से अपने जनसगठना की मदद से देश की राजनीति की मुख्य धारा मे शामिल हाना चाहती थी लकिन सरकार हर मुमकिन तरीके से इसमे अडचन डाल रही थी। उसने पार्टी क लिए खुले आम काम करना नामुमकिन वना दिया था, पार्टी ओर जनसगठनो क अनेक

रावलपिंडी षड्यत्र कस का पूरा किस्सा

कार्यकर्ताओ को जेल म डाल दिया था आर उन पर झूठे मुकदम कायम कर दिये थ। पार्टी के जनरल सेक्रेटरी सज्जाद जहीर सहित केंद्रीय कमेटी क सभी सदस्य अडरग्राउड हो गये थे और गैरकानूनी तार पर अपना काम *अजाम* देने पर मजबूर कर दिये गये थे। वामपथी *पाकिस्तान टाइम्स* उस जमाने का बहुत महत्वपूर्ण अखबार था आर जमहूरियत के पक्ष म जनमत तैयार करने म प्रमुख भूमिका निभा रहा था। फेज कम्युनिस्ट पार्टी के खुले पक्षधर थे आर कामरेड सज्जाद जहीर क पक्के दोस्त।

फेज को 9 मार्च 1951 के दिन अलस्सुबह गिरफ्तार किया *गया था आर* अगल ही दिन पजाब म विधान सभा का चुनाव हानवाला था। जब लियाकत मिया की हथियारबद पुलिस उन्ह गिरफ्तार करने पहुची तो फेज ओर उनके सहयोगी मजहर अली को यही लगा था कि चुनाव से दूर रखने के लिए हा उन्हे जल ले जाया जा रहा हे आर चुनाव क फारन बाद छोड दिया जायगा। बाद म पता चला कि उन्ह पब्लिक सेफ्टी एक्ट के तहत गिरफ्तार किया गया हे। फेज क खिलाफ 1818 क बदनाम बगाल रेगुलेशस के तहत वारट जारी किया गया था ओर उन्हे बिना मुकदमा चलाये अनिश्चित काल क लिए हिरासत मे ले लिया गया था।

मेजर जनरल अकबर खा रावलपिडी कासपिरेसी केस की धुरी थे। 1948 मे कश्मीर को लेकर हुए भारत-पाक सघर्ष के दोरान वे पाकिस्तानी फोज का नतृत्व कर रहे थ। उन दिना व ब्रिगेडियर क ओहदे पर काम कर रह थ आर पाकिस्तानी फोज म उन्ह 'जनरल तारिक' क नाम से पुकारा जाता था। कश्मीर मे पाकिस्तान की रणनीति यह थी कि सबस पहले तो कुछ पठान कबाइलिया से वहा घुसपठ कराया जाये फिर सेना क एक हिस्से को कबाइली भस म वहा उतारा जाय आर उनके पीछे नियमित पाक सेना की मदद से कश्मीर पर कब्जा कर लिया जाय। उसे उम्मीद थी कि हिदू राजा की भारत मे विलय की कोशिश के बावजूद वहा की भारी मुस्लिम जनसख्या, मुस्लिम दश पाकिस्तान की फोज का स्वागत करेगी ओर कश्मीर पर अधिकार करने मे कोई भारी बाधा नही आयेगी। बाद की बात तो इतिहास की हे, हमारे मतलब की बात यह हे कि अकबर खा कश्मीर से पिटकर लाट आर अपनी इस अप्रत्याशित पराजय को वे जीवन भर नही भूले।

उन्हे लगा कि उन्हे लाम पर भेजने के बाद पाकिस्तानी हुकूमत को पीछे स उनकी जैसी मदद करनी चाहिए थी वसी नही की गयी आर उनकी पराजय इसी कारण हुई। वे कश्मीर मे युद्ध विराम के विरुद्ध थे ओर अपनी ब्रिगेड के बल पर श्रीनगर को जीतने का सपना देखते थे। जग क खात्मे के लिए जो नेहरू-लियाकत समझाता हुआ, उसे भी अकबर खा ने एक बेशर्म आत्मसमर्पण ही माना, हालांकि सचाई यह है कि युद्ध मे परास्त होने के बाद पाकिस्तान की हालत इतनी पतली हो गयी थी कि उसके पास समझौते का कोई विकल्प था ही नही।

इस प्रसग को तूल देना बेकार ह, लेकिन रावलपिडी कासपिरेसी केस के सिलसिले म इसकी अहमियत को लेकर यह दुहराना जरूरी है कि अगर कश्मीर म पाकिस्तान की ऐसी शर्मनाक हार न हुई होती और उस वक्त पाकिस्तानी सेना का नेतृत्व अकबर खा के हाथ मे न रहा होता तो शायद यह केस भी वजूद म न आया होता।

इसम सन्देह नही कि अकबर खा एक दिलेर सिपाही थे। वे जग म हारने के आदी न थे आर अपनी पहली हार के अपमान का आसानी स नही भूल सकत थ। व जीवन भर भारत का अपना जानी दुश्मन समझते रहे। उन्हे लगा कि पाकिस्तान म लियाकत अली की हुकूमत तो गल गेहू की बोरी ह जिस

पलट देना कोई मुश्किल काम नहीं। मुल्क का अवाम कश्मीर मे शर्मनाक हार के लिए भी उसी को जिम्मेदार मानता हे आर अगर ऐसी निकम्मी ओर नालायक़ सरकार का तख़्ता पलटने की कोई कोशिश की जाये तो उसकी मुख़ालिफ़त शायद ही करे। अव जरूरत थी तो कुछ ऐसे साथिया की जा सरकार से नाराज ओर परेशान हो ओर जिनका साथ तख्ता पलटनेवालो को नेतिक समर्थन दिला सके।

यह सच ह कि पाकिस्तानी फोज म अकवर ख़ा के हमखयाल और लोग भी थे। सेनिक अधिकारियो का अच्छा-ख़ासा हिस्सा कश्मीर म मिली शिकस्त से नाराज और नाखुश था ओर हुक़ूमत के खिलाफ अकवर ख़ा के साथ खडा होने के लिए तयार था। उसका कसूर भी क्या था? पाकिस्तान क हुक्मरान ने पाकिस्तानी फौज के अजेय होने का इतना ढिढोरा पीटा था कि वे इस हार का सामना करन क लिए विलकुल ही तयार न थे आर शर्मनाक़ हार से वुरी तरह वोखला उठा थे। रावलपिडी कस मे जिन लोगो पर मुकद्दमा चलाया गया उनमे मेजर जनरल अकवर ख़ा के अलावा व्रिगेडियर से लेकर केप्टन तक के पदो पर काम कर रहे कम से कम सात सेनिक आर वायुसनिक अधिकारी शामिल थे। भारत मे कम लोग जानते हे कि इस मामले मे सेना के एक वडे ओर सम्मानित जनरल नजीर अहमद को भी हिरासत मे लेकर पूछताछ की गयी थी। उन दिनो वे मेजर जनरल के पद पर काम कर रहे थे। उन पर आरोप था कि साजिश की भनक होते हुए भी उन्हान यह वात अपने तक ही महदूद रखी, अपने से उच्च अधिकारिया तक नहीं पहुचायी। उन्ह दोपी पाया गया आर एक दिन की सजा सुनायी गयी। सजा सुनाने के फोरन वाद अदालत उठ गयी।

सनिक अधिकारियो के अलावा अकवर ख़ा की नजर पाकिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी पर भी गयी जो पाकिस्तान क नामनिहाद जम्हूरी निजाम की ज्यादतिया का सबसे बडा शिकार थी ओर जिसे नयी हुकूमत मे कुछ रियायते देने के वादे पर अपने साथ लिया जा सकता था। अकबर खा अपनी बीवी को बहुत मानते थे ओर अपने हर राज मे उसे शरीक़ करते थे। उनकी बीवी वेगम नसीम सर माहम्मद शफी की वेटी ओर मुस्लिम लीग की एक वहुत वडी नेता बेगम जहानारा शाहनवाज की पुत्री थी और मुल्क के वडे-वडे सियासतदानो वुद्धिजीवियो ओर आला अफसरा से उनके ताल्लुकात थे, जिनमे फेज अहमद फेज भी शामिल थे। फेज का साथ अकवर खा के लिए वेहद फेजयाव सावित हो सकता था। एक तो उनकी कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी सज्जाद जहीर से वेतकल्लुफी ओर दोस्ती थी ओर दूसरे वे एक वडे ओर सम्मानित अखवार *पाकिस्तान टाइम्स* के प्रमुख सपादक थे ओर यह अखवार तख़्ता पलट के वाद वजूद मे आनेवाले फोजी निजाम के पक्ष म जनमत तयार करने मे एक वडी भूमिका निभा सकता था।

लिहाजा 23 फरवरी 1951 को मेजर जनरल अकवर खा की कोठी पर हमखयाल लागो की एक मीटिग वुलायी गयी ओर उसमे अकवर खा ने तख़्ता पलट की अपनी योजना पेश की। वताया जाता हे कि मीटिग मे इन लोगा ने हिस्सा लिया अकबर खा, नसीम अकवर खा, व्रिगेडियर मोहम्मद अव्दुल लतीफ खा एयर कमोडार माहम्मद खान जनजुआ ले कर्नल सिद्दीक राजा, मेजर एम यूसुफ सेठी, मजर मोहम्मद इसहाक़, केप्टेन जफरुल्ला पोशनी, सेयद सज्जाद जहीर फेज अहमद फेज मोहम्मद हुसेन अता। कुछ हवालो से पता चलता हे कि इनके अलावा सेयद सिव्ते हसन, रेल मजदूरो के महवृब रहनुमा मिर्जा मोहम्मद इव्राहीम, दादा फीरोजुद्दीन मसूर, एरिक साइप्रियन और हसन आविदी भी मीटिग म शामिल थे, जवकि अन्य हवाले इसकी पुष्टि नही करते। हा, यह तय हे कि रावलपिडी साजिश के मामले मे

इनम से लगभग सभी को घसीटा गया और उन पर मुकदमे चलाये गये। लियाकत अली की सरकार इतना असुरक्षित महसूस करती थी कि उसने अहमद नदीम कासमी जैसे सम्मानित लेखक को भी सिर्फ इसलिए छ महीनो के लिए नजरबंद कर दिया कि वे अंजुमन तरक्कीपसंद मुसन्निफीन के जनरल सेक्रेटरी थे। ये सभी अगली कतार के कम्युनिस्ट थे और अपने-अपने जन संगठनो की अग्रामी कारगुजारियो मे सरगर्म थे, हालाकि इनमे से बेशतर लोगो का रावलपिंडी साजिश से कतई कोई ताल्लुक न था।

रावलपिंडी मे चीफ आफ आर्मी स्टाफ की कोठी पर बुलायी गयी इस बैठक मे अकबर खा ने अपनी योजना रखी। जिन्ना की मौत के बाद गवर्नर जनरल बने नजीमुद्दीन और प्रधान मंत्री लियाकत अली खा अगले हफ्ते रावलपिंडी आनेवाले थे। तजवीज थी कि यहा उन दोनो को गिरफ्तार कर लिया जाये और गवर्नर जनरल को मजबूर किया जाय कि वे लियाकत सरकार को बर्खास्त कर दे। उसकी बर्खास्तगी के बाद अकबर खा नयी सरकार का गठन कर लेगे और देश मे फौज की निगरानी मे आम चुनाव करा देगे, हालांकि इसकी कोई तारीख नही बतायी गयी थी। नयी सरकार कम्युनिस्ट पार्टी को राजनीतिक प्रक्रियाओ मे खुलकर शिरकत करने का मौका फराहम करेगी और बदले मे कम्युनिस्ट पार्टी नयी सरकार की हिमायत करेगी। फैज अहमद फैज के संपादकत्व मे *पाकिस्तान टाइम्स* और उर्दू दैनिक *इमरोज* अपनी संपादकीय नीति द्वारा नयी सरकार का समर्थन करेगे।

यह एक गुप्त बैठक थी और इसकी कार्रवाइयो को दस्तावेजो की मदद से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। बैठक के भागीदारो की कही-सुनी बातो के आधार पर, और कम्युनिस्ट पार्टी की रीति नीति और फैज के विचारो के परिचय की मदद से यह अनुमान ही लगाया जा सकता है कि बैठक मे दरअसल क्या बातचीत हुई होगी। बैठक आठ घंटे चली और फिर बिना किसी नतीजे पर पहुचे बर्खास्त हुई इससे अदाजा लगाया जा सकता है कि इस योजना पर गभीर विचार विमर्श हुआ होगा। अकबर खा की छवि एक जांबाज और साफगो लेकिन मगरूर जनरल की थी और कम्युनिस्ट पार्टी के पास यह जानने का कोई तरीका न था कि थल सेना, जल सेना और वायु सेना से वो वाकई कितना समर्थन जुटा पायेगे। यह सवाल भी काबिले गौर था कि जब एक बार पाक फौज की एकता टूट जायेगी और वह गुटो मे बट जायेगी तो कौन सा गुट नयी सरकार के साथ आयेगा और कौन सा उसके खिलाफ काम करेगा? पार्टी की रीति-नीति से वाकिफ लोग बडी आसानी से समझ सकते है कि किसी संयुक्त बैठक मे पार्टी के शीर्षस्थ नेताओ की मौजूदगी भी इस बात को सुनिश्चित नही कर सकती कि वे पार्टी के जीवन मरण से संबद्ध किसी सवाल पर तुरत फुरत कोई निर्णय ले ले। ऐसे किसी भी सवाल पर सभी नीतिनिधारक निकायो को विश्वास मे लेकर संबद्ध योजना पर उनकी राय लेना कम्युनिस्टो की कार्यशैली की बाध्यता है। अकबर खा की योजना मे पूर्वी पाकिस्तान (अब बाग्ला देश) का कोई जिक्र न था। अकबर खा की तरह, कम्युनिस्टो के लिए यह मान लेना आसान नही रहा होगा कि अकेले पश्चिमी पाकिस्तान मे तख्ता पलट काफी है पूर्वी पाकिस्तान की जनता के पास उसके अनुगमन के अलावा कोई विकल्प नही रह जायेगा। पार्टी इस सचाई को कैसे नजरअंदाज कर सकती थी कि पाकिस्तान के अवाम का बहुमत पश्चिम मे नही बल्कि पूर्वी पाकिस्तान मे रहता है और पश्चिम के मुकाबिले वहा जम्हूरियत की जडे निस्बतन गहरी है? उन्होने शायद कहा न हो लेकिन सोचा जरूर होगा कि एक मझोले दर्जे के सैनिक अधिकारी के मौखिक आश्वासन के बल पर यह मान लेना कि सैनिक तख्ता पलट की मदद से सत्ता प्राप्त करने के बाद वह इमानदारी से आम चुनाव करा देगा और कम्युनिस्ट पार्टी को राजनीतिक प्रक्रियाओ

म खुली शिरकत का मौका देगा, कहा तक ठीक है, खासकर तब जबकि यह समर्थन शुरू से आखिर तक जोखिम से भरा हो। इसके अलावा यह भी जानी मानी बात थी कि अकबर खा अपनी बेगम को जरूरत से कुछ ज्यादा ही मानते हैं जबकि उनकी छवि एक बेहद महत्वाकांक्षी और बड़बोला महिला की थी, संयत और विचारशील महिला की नहीं। वे अपनी इस महत्वाकांक्षा को छुपाने में यकीन नहीं रखती थीं कि उन्हें किसी भी तरह एक दिन देश की प्रथम महिला बनकर दिखाना है। ऐसे में, सैनिक साजिश को कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन की बात कैसे और कब तक गुप्त रह सकती थी?

दरअसल, बेगम नसीम अकबर खा राष्ट्र की प्रथम महिला बनने की कुछ ज्यादा ही जल्दी में थी और इस बात पर मुतमइन हो चुकी थी कि अब उन्हें अपना इरादा पूरा करने से कोई नहीं रोक सकता। वे टेलीफोन पर अपनी सहेलियों को यह बताने में मसरूफ हो गयी कि प्रस्तावित तख्ता पलट के बाद उनकी क्या योजनाएं हैं। इसके अलावा, अस्कर अली शाह नामक एक पुलिस अफसर ने भी इस राज को फाश करने में एक बड़ी भूमिका निभायी। वह अकबर खा का विश्वस्त अनुचर था और अगर्चे वह 23 फरवरी की बैठक में मौजूद न था, लेकिन खुद जनरल खा की मेहरबानी से सब अहवाल जानता था। उसने तब तक जनरल के साथ कभी दगा नहीं की थी, लेकिन इस बार योजना इतनी बड़ी थी कि वह इसे अपने पेट में न रख सका और उसने सारी बात अपने इंसपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस को बता दी और वो सीधा उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के गवर्नर के पास पहुंचा और अकबर खा की सारी योजना उसे बता दी। गवर्नर ने पलक झपकाये बिना यह बात प्रधान मंत्री तक पहुंचा दी। और, इस तरह पाकिस्तान के फौजी तख्ता पलटों के इतिहास में यह पहला 'प्रयास' नाकाम कर दिया गया।

पहले दिन, यानी 9 मार्च 1951 को चार प्रमुख अभियुक्तों को पकड़ा गया जिनमें फैज शामिल थे। उसी दिन प्रधान मंत्री ने खुद रेडियो के जरिये इस साजिश से मुल्क के अवाम को खबरदार किया। धीरे-धीरे सभी अभियुक्त पकड़ गये। सिर्फ कॉमरेड मोहम्मद हुसेन अता अंडरग्राउंड हो गये और एक महीने तक पुलिस को छकाते रहे। अंत में उन्हें पूर्वी पाकिस्तान से पकड़ा गया। पार्टी के जनरल सेक्रेटरी सज्जाद जहीर पहले से ही रूपोश थे और कई महीने बाद ही उन्हें गिरफ्तार करना मुमकिन हुआ। ज्यादातर अभियुक्तों को लाहौर की मुख्तलिफ जेलों में रखा गया और अंत में उन सबको सिंध प्रांत की हैदराबाद जेल ले जाया गया। वहां जेल के भीतर एक खास अहाते को नये सिरे से दुरुस्त कराकर उसे एक अदालत की शक्ल दी गयी और अभियुक्तों पर मुकद्दमा चलाने के लिए एक स्पेशल ट्राइब्यूनल गठित किया गया। यह तीन सदस्यीय ट्राइब्यूनल फेडरल कोर्ट के जस्टिस सर अब्दुर्रहमान की अध्यक्षता में बनाया गया और इसमें पंजाब हाई कोर्ट के जस्टिस मोहम्मद शरीफ और ढाका हाई कोर्ट के जस्टिस अमीरुद्दीन को शामिल किया गया था।

फैज को शुरू के महीनों में सरगोधा और लायलपुर जेलों में कैदे तनहाई या काल कोठरी में रखा गया। उन्हें पढ़ने लिखने की सहूलतों से महरूम किया गया और उनका कोई रिश्तेदार या दोस्त उनसे नहीं मिल सकता था। इस सख्ती का सबब गालिबन यह था कि अभी तक कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी सज्जाद जहीर हाथ नहीं आये थे और उनकी गैर मौजूदगी में फैज ही पार्टी के सबसे अहम रहनुमा माने गये और सज्जाद जहीर पर दबाव बनाने के लिए उन्हें तकलीफदेह कैदे तनहाई में रखा गया। सज्जाद जहीर की गिरफ्तारी के बाद ही सब अभियुक्तों को हैदराबाद जेल ले जाया गया और उन पर मुकद्दमा चलाने की तैयारियां मुकम्मल की गयीं। इससे साफ हो जाता है कि पाकिस्तानी हुकूमत अकबर

खा आर उनके साथिया पर मुकद्दमा चलाकर सन्तुष्ट होना नहीं चाहता था उसकी तसल्ली के लिए पाकिस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी पर गद्दारी के इलजाम में मुकद्दमा चलाना आर सजा दिलाना जरूरी था।

इससे पहले पाक असेम्बली ने 16 अप्रैल 1951 को रावलपिंडी कांसपिरेसी को ध्यान में रखते हुए एक कानून पास कर दिया था जिसका संक्षिप्त नाम 'द रावलपिंडी (स्पेशल ट्राइब्यूनल) एक्ट 1951' था। उपर्युक्त ट्राइब्यूनल इसी एक्ट के तहत कायम किया गया था। ट्राइब्यूनल के तीनों सदस्यों के लिए जरूरी था कि वे फेडरल कोर्ट या हाइ कोर्ट के कार्यशील जज हों। उन्हें हाइ कोर्ट की सारी शक्तियां और अधिकार दिये गये थे, बल्कि इस मान में वह हाइ कोर्ट से भी ऊपर था कि मुल्क की किसी भी अदालत में उसके फैसले के खिलाफ सुनवाई नहीं हो सकती थी। ट्राइब्यूनल की कारवाई गोपनीय थी और सुनवाई के दौरान पब्लिक अदालत में नहीं आ सकती थी। इस सबसे जाहिर होता है कि मुल्जिमों और उनके वकीलों और समर्थकों की यह बात पूरी तरह सही थी कि इस मामले में प्राकृतिक न्याय के न्यूनतम मानदंड भी लागू नहीं किये जा रहे हैं।

मुकद्दमे की सुनवाई 15 जून 1951 को सुबह आठ बजे शुरू हुई। अभियोग पक्ष की नुमाइंदगी मशहूर वकील ए के ब्रोही कर रहे थे। आगे चलकर यह हजरत पाक तानाशाहों से अपनी नजदीकियों के चलते खासे बदनाम हुए, लेकिन उनकी कानूनी दक्षता से इनकार नहीं किया जा सकता। ब्रिगेडियर लतीफ की ओर से प्रख्यात वकील और राजनीतिज्ञ हुसैन शहीद सुहरावर्दी खड़े हुए और जनरल अकबर की पैरवी मशहूर वकील जेड एच लारी ने की। जिन अन्य प्रमुख वकीलों ने मुकद्दमे में मुल्जिमों के बचाव में हिस्सा लिया उनमें मलिक फैज मोहम्मद, ख्वाजा अब्दुर्रहीम, साहिबजादा नवाजिश अली और काजी असलम के नाम अहम हैं। सभी मुल्जिमों के खिलाफ बुनियादी इल्जाम यही था कि उन्होंने सम्राट् (किंग) के खिलाफ जंग छेड़ने का जुर्म किया है। मोटे तौर पर यह जुर्म वतन से गद्दारी करने जैसा था और साबित होने पर मुजरिमों को सजाए मौत तक दी जा सकती थी। इससे जाहिर है कि जितने दिन यह मुकद्दमा चला, मुल्जिमों और उनके घरवालों के सर पर सजाए-मौत की तलवार लटकी रही। इससे फैज की बीवी एलिस फैज के हालात का अंदाजा लगाया जा सकता है जो *पाकिस्तान टाइम्स* में नौकरी करके किसी तरह अपना और अपनी दो नन्ही बेटियों का पेट पाल रही थीं मुकद्दमे का खर्च उठा रही थीं और तमाम दौड़ धूप कर रही थीं। जैसे जैसे मुकद्दमा लंबा खिंचता गया, मुल्जिमों का हाथ तंग होता गया और मेहनताना न मिल पाने की सूरत में वकील लोग उन्हें अलविदा कहने लगे। जनरल अकबर और ब्रिगेडियर लतीफ को नौकरी से पहले ही बर्खास्त कर दिया गया था, कम्युनिस्ट तो अपने कड़केपन के लिए विश्वविख्यात हैं ही। लेकिन वकीलों की चलाचली की इस बेला में भी हुसैन शहीद सुहरावर्दी हिमालय की तरह अडिग रहे और बिना मेहनताना लिये पूरी मुस्तैदी के साथ अपने मुवक्किल की पैरवी करते रहे।

अभियोग पक्ष की ओर से कहा गया कि मुल्जिमान ने 'पाकिस्तान में कानून के जरिये कायम की गयी हुकूमत को मुजरिमाना तरीकों से उलटने की 'साजिश' रची। मुलजिमों ने 'साजिश' की बात से इनकार किया। अब सारी बात इस नुक्ते पर आकर टिक गयी कि अभियोग पक्ष की ओर से जो सबूत पेश किये गये हैं वे साजिश साबित करने के लिए काफी हैं या नहीं? गोया अदालत को देखना होगा कि क्या सरकार का तख्ता पलट करने की साजिश वाकई की गयी है? और अगर साजिश की गयी तो फिर उसमें कौन कौन शामिल था? अभियोग पक्ष की ओर से जो सबूत पेश किये गये उनमें सबसे महत्वपूर्ण दो इकबाली गवाह थे ले कर्नल सिद्दीक राजा और मेजर एम यूसुफ सेठी। ये दोनों 23 फरवरी

की अकबर खा के घर पर हुई मीटिंग म मोजूद थे ओर अव सजा से वचने के लिए इकवालिया गवाह वन गये थे। इनके अलावा अन्य गवाह भी थे, लेकिन वे घटनास्थल पर मोजूद नही थे आर उनकी गवाही सिर्फ यह वता सकती थी कि हालात ऐसे थे कि मुल्जिम साजिश रच सकते थे। इकवालिया गवाहो ने जोर देकर गवाही दी कि 23 फरवरी की वेठक सरकार का तख़्ता पलटने का फेसला लेने के वाद ही वर्ख़ास्त हुई थी। अभियुक्तो ने वेठक या वैठक म हाजिर हाने से इनकार नही किया, उनका जोर इस वात पर था कि वहस मुवाहिसे के वाद वेठक विना किसी फेसले पर पहुचे ही वर्खास्त कर दी गयी थी। *यह मुद्दा इसलिए कद्रीय महत्व का था क्योंकि ताजीराते-पाकिस्तान* (पाकिस्तानी दड सहिता) के अनुसार साजिश सावित करने के लिए यह लाजिमी था कि दो या दो से अधिक लोगा के बीच जुर्म करने या जायज काम को नाजायज तरीको से करने पर सहमति बनी हो। ऐसी स्पष्ट सहमति के अभाव मे किसी को कानून के जरिए कायम की गयी सरकार का तख्ता पलटने की साजिश रचने का दोषी नही ठहराया जा सकता था।

सच मुलजिमो के साथ था। सचाई यही थी कि बैठक हुई थी ओर एक कार्यसूची को लेकर बुलायी गयी थी। मेजर जनरल अकबर खा ने साजिश का प्रस्ताव वाकायदा पेश किया, आठ घटे तक उसके अलग अलग पहलुओ पर गर्मागर्म बहस- मुवाहिसा भी हुआ, लेकिन आखिरकार कोई फैसला नही हो सका ओर बैठक बिना कोई फैसला लिए वर्खास्त हो गयी। फेज की दोस्त ओर जीवनीकार लुदमिला बेसिलेवा का दावा है कि कम्युनिस्ट प्रतिनिधियो ने जनरल अकबर खा की योजना को बचकाना कहकर रद्द कर दिया था। उनका ख़याल था कि पाकिस्तान की जनता ऐसे किसी कदम के लिए तेयार नही है ओर न पाकिस्तान की पार्टी ही इस हालत मे हे कि किसी वजह से कामयाबी की सूरत म दश की रहनुमाई की जिम्मेदारी निभा सके। कई हवालो से यह बात पुष्ट होती हे कि कम्युनिस्टो ने मेजर जनरल की योजना को खयाली पुलाव वताकर उसे खारिज कर दिया। बचाव पक्ष का कहना था कि अभियुक्ता के बीच जब कोई सहमति बनी ही नहीं, कोई फेसला हुआ ही नहीं, किसी निश्चित काय योजना को लागू करने का तहैया करके बेठक बर्ख़ास्त ही नही हुई तो साजिश रचने का सवाल ही कहा पदा होता है? मुल्जिमो मे से कुछ पर दवाव डालकर, डरा-धमकाकर या लालच देकर उनमे से दा-एक को इक़वालिया गवाह वना लेना और मनचाहा बयान दिला लेना कौन सा मुश्किल काम हे। यह तो हमारे उपमहाद्वीप की अदालता मे रोज होता ह। वेशक जितने दिन मुकद्दमा चलता हे, मुल्जिम ओर उसके घरवाला की जान सासत म फसी रहती है, लेकिन जुर्म सावित करने के लिए तो ठोस सबूत चाहिए ऐसे सबूत जो जुर्म सावित करते हा, जुर्म मे मुल्जिम की शिरकत सावित करते हा ओर इस वारे मे किसी किस्म का संदेह न छोड़ते हो।

असलियत तो यह है कि यह एक सरासर जाली केस था ओर पाकिस्तानी हुक्मरान ने अपने हितो की रक्षा के लिए यह कहानी गढ ली थी। इसमे शक नही कि पचास के दशक मे जार-शोर से शुरू हुई शीत युद्ध की राजनीति के तक़ाजे इसके पीछ काम कर रहे थे। अमरीकी साम्राज्यवादिया के लिए ना आजाद पाकिस्तान म कम्युनिस्ट पार्टी एक ऐसा ख़तरा था जिसे व पदा होने से पहले ही ख़त्म कर देना चाहते थे और इसमे क्या शुब्हा है कि लियाकत मिया की सरकार पूरी तरह अमरीक़ा के जेरे-असर थी ओर उनके इशारा पर नाचने के लिए खुशी खुशी तेयार थी। वेशक पाकिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी वहा के अवाम को इस कदर मकवूल नही हो गयी थी कि वह उसके इशारे पर सर पर कफन वाधकर घर

से निकल पडे, लकिन यह जरूर हे कि ट्रेड यूनियन फेडरशन, स्टूडट्स फडरशन आर अजुमन तरक्कीपसद मुसन्निफीन आदि जन सगठना का गठन हो चुका था ओर अवाम उनकी इब्तदाई सरगर्मियो को दिलचस्पी की नजर से देख रहा था। वेवुनियाद ओर ढुलमुलयकीन पाक हुक्मराना आर उनके सामराजी आकाओ के लिए इतना काफी था आर उन्हाने नवगठित कम्युनिस्ट पार्टी का जड से मिटाने पर कमर कस ली। क्या इस महज इत्तिफाक कहकर टाला जा सकता हे कि जिस पब्लिक सेफ्टी एक्ट को रद्द करने के लिए अजुमने तरक्कीपसद मुसन्निफीन न अपने अधिवेशन म प्रस्ताव पास किया था, उसके सवसे वडे नेता फेज को उसी इनसानदुश्मन कानून क तहत गिरफ्तार किया गया? पाक सरकार की ओर स जनता के सामने इस मामले को इस तरह पेश किया गया गोया वुनियादी तोर पर यह साजिश कम्युनिस्ट सोवियत सघ आर उसके पिलग्गू पाक कम्युनिस्टो की हो आर उन्होने इसे कामयाब वनाने के लिए पाकिस्तानी फोज के कुछ गुमराह अफसरान को भी इसमे शामिल कर लिया हो। पाक ससद मे यह मामला इस तरह पेश किया गया कि उसने प्रस्ताव पास करके अदालत से मुल्जिमा को सजाए-मोत सुनाने की दरखास्त की। न सिर्फ पाकिस्तान के वल्कि हिंदोस्तान के भी कई अखवारो ने माग की कि गद्दार फेज अहमद फेज का मोत की सजा दी जाये।

इस सिलसिले को एक आर नुक्तए नजर से देखना भी जरूरी हे। पाकिस्तान की फोज मे न जान कितने झगडे चल रहे थे। चीफ ऑफ स्टाफ, मेजर जनरल अकवर खा अपने अक्खड स्वभाव और अपनी घमडी ओर वडवोला वीवी के चलते सर्वोच्च सैनिक अधिकारियो की आख की किरकिरी बना हुआ था। कश्मीरी सघर्ष के वक्त पाकिस्तानी सेना के कमाडर इन चीफ का पद अग्रेज सनिक अधिकारी जनरल डगलस डेविड ग्रेसी के पास था ओर कश्मीरी सघर्ष मे पाक सेना की रहनुमाई करनेवाले अकवर खा म रणनीतिक सवालो पर उसका मतभेद था और अक्खड अकवर खा इस पर पर्दा डालने म यकीन नही करता था। वह कश्मीर पर धावा वोलकर सीधे श्रीनगर तक पहुचना आर पूरे कश्मीर पर कब्जा करने का हामी था, लकिन ग्रेसी सघर्ष को इस हद तक ले जाने के खिलाफ था। इसकी एक वजह यह भी थी कि एन उस वक्त पर भारतीय सेना की सर्वोच्च कमान भी ब्रिटिश अफसरो के हाथ म ही थी आर भारत-पाक युद्ध का अर्थ होता सीमा-पार अग्रेज अफसरो के बीच युद्ध जिस वे मजूर नही कर सकते थे। युद्ध की समाप्ति के बाद ओर मेजर जनरल बनकर चीफ ऑफ स्टाफ के ओहदे पर रावलपिडी आने के बाद अकवर खा और भी मगरूर हो गया। उसने अपनी गतिविधि के मामले म आवश्यक सतर्कता भी वरतना छोड दिया। अव वह यह परवाह भी नही करता था कि वह किसके सामने क्या कह रहा है। वेशक, वह एक वारसूक अफसर था ओर उसे यकीन था कि आला फौजी अफसरा के लिए भी उसे हाथ लगाना आसान नही होगा। आसान था भी नही। लेकिन, अकवर खा को यह मालूम नही था कि उस पर एक अर्से से नजर रखी जा रही थी। अपनी पुस्तक *ए फ्रेड्स नॉट मास्टर्स* म जनरल अयूव खान ने वताया हे कि उसने अकवर खा को जनरल हेड क्वार्टर्स म चीफ ऑफ द स्टाफ बनाकर वुलाया ही इसलिए था कि वह नही चाहता था कि एक मजर जनरल की हेसियत से एक या एक स ज्यादा डिवीजन के सनिका की सीधी कमान उसके हाथ म रहे आर वह सेना की मदद से किसी वडी साजिश को अजाम द सके। इसके अलावा रावलपिडी वुलाकर जनरल अयूव उससे अपनी निगरानी म काम ले सकता था। अन्य हवाला स पता चलता ह कि रावलपिडी मे उस पर न सिर्फ जनरल अयूव की नजर थी वल्कि तत्कालीन रक्षा सचिव इस्कदर मिर्जा भी उसकी गतिविधि से वाखवर रहते थे। लेकिन, पाक सेना क

बीच अपनी बहादुरी क चलते वह इतना लोकप्रिय था कि सामान्य परिस्थितिया मे उसके खिलाफ कुछ करना आसान न था। उसकी मकवूलियत आर अहमियत का अदाजा इस बात स लगाया जा सकता है कि जब जम्हूरियत बहाल हुई और जुल्फिकार अली भुट्टो पाकिस्तान के प्रधान मत्री बने तो उन्होने नेशनल सीक्योरिटी ऑर्गनाइजेशन कायम किया और रावलपिडी साजिश कस क सजायाफ्ता जनरल अकवर खा को उसका अध्यक्ष वनाया।

वहरहाल, जब अकवर खा ने तख्ता पलट की सभावना तलाश करते हुए पाक सेना मे अपने विरोधिया को वार करने का माका दे दिया तो उन्होने इस मोके को पूरी तरह भुनाने की कोशिश की और दो निचले सेनिक अधिकारियो को अपनी तरफ मिलाकर उनसे मनचाहा वयान उगलवा लिया। यह वयान जरूरी था क्योकि अगर ये दोनो इकवालिया गवाह वेठक म सहमतिमूलक निर्णय की वात न करते तो साजिश का इल्जाम सावित नही हो सकता था। आर अगर साजिश का इल्जाम सावित हो जाता तो हुक्मरान अकवर खा ओर कम्युनिस्टो को मुहमागी सजा, यहा तक कि सजाए मोत भी, दिला सकते थे।

दरअसल, पाकिस्तानी हुक्मरान ओर फौज के आलातरीन अफसरान इस एक तीर से दो शिकार करना चाहते थे। इससे एक तो अकवर खा को लवे अर्से के लिए जेल भेजकर निश्चिंत हुआ जा सकता था, दूसरे कम्युनिस्ट पार्टी को भी एक ताकतवर और मकवूल अवामी पार्टी बनने से पहले ही नष्ट किया जा सकता था, क्योकि उनकी तमाम कोशिशो के वावजूद वह अपने जन सगठनो की मदद से अपने प्रभाव का विस्तार करने म लगी हुई थी ओर उसे कुछ न कुछ सफलता भी मिल रही थी। ध्यान देने की वात है कि रावलपिडी केस का फेसला आते ही, 1954 म ही, पाकिस्तान म कम्युनिस्ट पार्टी को वाजाब्ता गेरकानूनी घोषित कर दिया गया ओर उसके तमाम जन सगठनो का, यहा तक कि अजुमन तरक्कीपसद मुसन्नफीन को भी, गेरकानूनी करार दे दिया गया। अब पार्टी को वाकायदा अडरग्राउड जाने पर मजबूर होना पडा।

ट्राइब्यूनल ने फेसला दिया कि पेश किये गये सवूतो से सम्राट् के खिलाफ साजिश सावित नही होती। यह सावित नहीं होता कि 23 फरवरी 1951 की वेठक किसी कार्य-योजना को क्रियान्वित करने का फेसला लेकर वर्खास्त हुई थी। उसने सभी सैनिक ओर असेनिक अभियुक्तो को चार चार साल की केद की सजा सुनायी। अकवर खा को चोदह साल की सजा सुनायी गयी। सजा मे से मुकद्दमे के दोरान अभियुक्तो द्वारा जेल मे विताया गया समय कम कर दिया गया।

फ़ेज वेहद सवेदनशील ओर सजीदा किस्म के इनसान थे। उन्होने अव तक के अपने जीवन मे सपन्नता तो नही देखी थी, लेकिन जिदगी से उन्हे कोई शिकायत भी न थी। 1941 मे एलिस से शादी के बाद उनकी जिदगी खुशियो से भर गयी थी, दो वच्चियो ने आकर उनका सुख दोवाला कर दिया था। *पाकिस्तान टाइम्स* की नोकरी उन्ह रास आ रही थी ओर अखवार के मालिक मिया इफ्तखारुद्दीन ओर अपने अजीज दोस्त मजहर खा की सोहवत म वे वहुत खुश थे। 1943 मे उनका पहला शेरी मजमूआ, *नक्शे फरियादी* , शाया हो चुका था ओर पाठको ने उसे हाथोहाथ लिया था खासकर छात्रो ओर नोजवाना के वीच एक शायर की हैसियत से उनकी लोकप्रियता तेजी से वढ रही थी आर रेडियो, कॉलजा ओर शहरो में होनवाले मुशायरों से उन्हे अपना कलाम पेश करने के वुलावे अक्सर आने लगे थे। उनकी जरूरते वहुत न थी और जो थी वे मजे से पूरी हो रही थी। जिदगी अपनी रफ्तार से लुढकती जा रही थी जिसे इस मुकद्दमे ओर जेल ने झटके से वाधित कर दिया और फज को गभीर सवालो पर नये सिरे से सोचने

पर मजबूर कर दिया। पत्रकारिता की भागमभाग ओर तनावभरी जिदगी मे शायरी उनसे छूट-सी गयी थी। अब जेल की तनहाइ ओर फुरसत म उसने नये सिरे स उन्ह गले लगा लिया ओर न सिर्फ बेपनाह शोहरत अता की वल्कि इसानियत के राशन मुस्तकबिल म उनका यकीन दुबारा से पुख्ता किया।

फेज की जगह कोई ओर हाता तो शायद टूट जाता, क्योकि उनके हालात म यकायक जो तब्दीला आयी थी वह बेहद दुखदायी थी। हम-यारा दोजख़ हमे-यारा बहिश्त फेज को अपनी बीवी आर बच्चिया से दूर केदे तनहाई मे डाल दिया गया था ओर एक कच्चे धागे म बाधकर सजाए-मात की तलवार उनक सर पर लटका दी गयी थी। वह तो कहिए कि उनके ठड, सूफियाना आर मस्त स्वभाव, एलिस की बेपनाह वफादारी ओर सज्जाद जहीर, सिब्त हसन ओर मजर मोहम्मद इसहाक जेसे लोगा की दोस्ती ने उन्ह बचा लिया। कारावास के लबे वक्फ का फायदा उठाकर उन्होने अपना मन काव्य रचना म लगाया आर जो कुछ उन्हे कहना था, शायरी म कहा ओर भयकर उत्तेजना आर तनाव के बीच भी, अपन स्वभाव क अनुरूप, शाति ओर आराम स फलसफाना अदाज मे कहा। 23 फरवरी की मीटिंग मे साजिश करने का फसला कतई नही हुआ था। फेज क वकील ने पुरजोर तरीके स ट्राइब्यूनल के सामने यह बात रखी था लेकिन फेज ने अपने एक छोट से शेर मे इस झूठ का जो पर्दाफाश किया वह तमाम दलीलो के मुकाबिल कही ज्यादा पुरअसर हे

वो बात सारे फसाने म जिसका जिक्र न था
वो बात उनको बहुत नागवार गुजरी हे।

जिदानामा की एक गजल म उन्होन इस हकीकत की तरफ ध्यान खीचा है कि उस वक्त के पाकिस्तान म आदमी पर जुल्म करने के लिए इस बात का इतजार नही किया जाता था कि वह कोई गुनाह करे। गुनाह करने से पहले ही उसे सजा सुना दी जाती थी, जेसाकि रावलपिडी साजिश के मामले म वाकई उनके साथ हुआ। वे कहते है कि ऐसा तो दुनिया मे कही भी नहीं हाता, हर जगह पहले जुर्म हाता है फिर उसकी सजा सुनायी जाती है

सितम की रस्मे बहुत थी लेकिन न थी तेरी अजुमन से पहले
सजा खताए नजर से पहले इताब जुर्मे सुखन से पहले।

अभी तो यह हालत हे कि सजा पानेवाला यह भी पूछ न सके कि उसे किस गुनाह की सजा दी जा रही है। कातिल मकतूल को अपनी तेग का हुस्न भी नही देखने देता कि वह किस अदा से गरदन को धड से अलहदा करती ह वल्कि खुद मकतूल को हुक्म सुना देता हे कि वह अपने हाथ से अपनी जान लेकर उसके हवाले कर दे

करे कोई तेग का नजारा अब उनको ये भी नही गवारा
बजिद है कातिल कि जाने बिस्मिल फिगार हो जिस्मो-तन से पहले।

अपने एक आर शेर म वे यह हकीकत बयान करते ह कि पाकिस्तान के किसी भी हुक्मरान ने वहा क अवाम की समस्याआ को हल करने मे कोई दिलचस्पी ली ही नही देखा जाये ता यह बात एक मुल्क नहीं बल्कि पूरे उप महाद्वीप क बारे म लागू होती ह, वर्ना जनता की समस्याए ऐसी न थीं जिनका समाधान नामुमकिन हो

हर चारागर को चारागरी से गुरेज था
वर्ना हमें जो दुख थे बहुत लादवा न थे।

यो तो उनके पहले मजमूए, *नक्शे फ़रियादी*, मे भी कहीं-कहीं व्यग्य मिलता है, ठडा और शालीन व्यग्य, लेकिन कारावास के दौरान यह व्यग्य वेधक और बेहद पुरअसर हो गया है। अब तो यह पैना व्यग्य उनकी *शायरी की एक खासियत बन गया, उनकी लोकप्रियता का मुख्य आधार।* यहा तक कि उन्होने क्लासिकल फार्म वासोख्त पर भी हाथ आजमाया, जिसमे दिलजला आशिक रवायती खुशामद-दरामद छोडकर माशूक़ को जली-कटी सुनाने पर आमादा हो जाता है, और उसमे ऐसे ऐसे शेर कहे जिनका सानी उर्दू शायरी मे आसानी से नहीं मिलता। वासोख़्त का एक ऐसा शेर मुलाहिजा हो, जिसमे पाकिस्तानी माहौल की केफ़ियत और उनकी अवामपरवर विचारधारा बोल रही है

गर फ़िक्रे-जख़्म की तो ख़तावार हैं कि हम
क्यूं महवे मदहे ख़ूबिए-तेग़-अदा न थे।

गोया जनता के दुखों और उस पर होनेवाले जुल्मों की बात करना शायर के लिए गुनाह है। हा जी! उसका काम तो यह है कि वह अवाम पर हुक्मरान के अत्याचारो की मगन-मन प्रशसा करे और अवाम की तकलीफ़ो की तरफ आख उठाकर भी न देखे। बेशक, हम तो आपकी तलवार की तारीफ मे तल्लीन हो जाना चाहिए था कि वह किस अदा से वार करके हमारी गरदन को धड से अलग कर रही है। अगर हमने ऐसा करने के बजाय अपने जिस्म और रूह पर लगे जख़्मो की परवाह की तो यह हमारा गुनाह है जिसके लिए हमे मजीद सजा मिलनी ही चाहिए।

आनेवाली मुसीबतो पर हसने का तो उन्होने जैसे अभ्यास ही कर लिया था और उसे अपनी फितरत का हिस्सा बना लिया था। उनके अध्येताओ मे इस बात पर पूर्ण सहमति है कि अगर रावलपिडी केस न हुआ होता तो शायद फैज इतने बडे और अपनी तरह के अकेले शायर न हो पाते। जेल मे उन्होने खूब लिखा, परिमाण की दृष्टि से खूब और गुण की दृष्टि से बहुत खूब। जेल मे उन्हे लिखने की आजादी थी और पद्रह दिन मे एक बार वे जेल के अपने साथियो को अपना कलाम सुना भी सकते थे। सुनाते ही थे और हर पखवाडे मे एक बार जेल मे छोटा-मोटा जलसा हो जाता था जिसमे फैज अपना ताजातरीन कलाम अपने साथियो को सुनाते थे। शायरी की मिठास और उजाले मे जेल की तलखी और तारीकी घुल जाती थी और निराशा के बादल छट जाते थे, सुबह की सुनहरी धूप जेल का अधेरा चीरकर अपनी मधुर मुस्कान बिखेरने लगती थी। फैज का कलाम जेल से बाहर भी जा सकता था नियमित रूप से जाता था। महीने मे एक बार एलिस जेल मे उनसे मिलने आतीं और महीने भर के भीतर जो कुछ उन्होने लिखा होता वह एलिस की नज्र कर दिया जाता था। वे बाकायदा सेसर से ठप्पा लगवाकर उसे अपने साथ ले जाती थीं। फैज के अध्येताओ को इस बात पर हैरानी हुई है कि जेल प्रशासन ने फैज को यह सुविधा क्यो और कैसे दे रखी थी? कुछ ने कयास लगाया है कि शायद इसकी वजह यह रही हो कि ऊपर से देखने मे यह शायरी रूमानी लगती है और यह रूमानी लबादा इतना भारी है कि इसके नीचे छिपी हुई क्राति चेतना जेल के अधिकारियो की समझ मे शायद ही आती रही हो। उनमे से एकाध यह अनुमान लगाने से भी बाज नहीं आया है कि हो सकता है जेल का एकाध जेलर आम तौर पर शायरी का या खास तौर पर फैज का मद्दाह रहा हो और दाद देने का उसका तरीका यह रहा हो कि उनकी शायरी को

जेल से वाहर जाने दिया जाय, आख़िर एक ऐसी हुकूमत से उनकी क्या हमदर्दी हो सकती थी जो जन मे पिट चुकी हो आर जो भ्रष्टाचार के लिए तजी से वदनाम हो रही हो।

वहरहाल, 1951 म फेज रावलपिडी साजिश केस म गिरफ्तार हुए आर एक ही साल वाद, यानी 1952 मे उनका दूसरा शेरी मजमूआ, *दस्ते सवा*, शाया हो गया। इसके वाजार म आते ही एक वागी शायर की हेसियत से फेज की धूम मच गयी। सज्जाद जहीर ने जेल स एलान किया, 'आग चलकर लाग रावलपिडी कासपिरेसी केस का भूल जायगे लेकिन पाक इतिहासकार 1952 की महत्वपूर्ण घटनाओ मे शायरी के इस छाटे से मजमूए का जिक्र करना नही भूलेगा ओर इसे एक विशेप महत्वपूर्ण घटना के रूप म याद करेगा।'

दस्ते सवा ओर उसके वाद 1956 म प्रकाशित तीसरे शेरी मजमूए, *जिदानामा* , में फज की काव्य-कला का पूरा निखार नजर आता हे। फज ने उर्दू शायरी म सेकडो सालो स प्रयोग किये जानवाले प्रतीका आर मिथका का खुलकर इस्तेमाल किया हे आर उन्ह नये अर्थ से गभित कर दिया ह। मिसाल के तोर पर नासेह का जिक्र किया जा सकता ह। यह वात गोरतलव हे कि उनके पहले शेरी मजमूए, *नक्शे-फरियादी* , की गजला मे ये हजरत एक वार भी तशरीफ नही लाये ह, अगर्चे उनका शुमार उर्दू की क्लासिकी महफिल म लाजिमी तार पर हाता ह ओर पहल मजमूए की वेशतर गजल क्लासिकी हे, शिल्प ओर कथ्य दोना की ही नजर से। नासह का सीधा सादा मतलव ह नसीहत देनेवाला। वह एसा शुभचितक ह जो वदे को दुनियावी आकपण स हटाकर खुदा की राह पर लाने की कोशिश करता हे ताकि उसकी आकवत सवर सके। लकिन *दस्त सवा* म पहली वार नमूदार हानेवाला नासेह शराव ओर दुनियादारी छोडकर खुदा की राह पर चलन की नसीहत देनवाला शख़्स नही हे, वह एक ऐसा दुनियादार शख्स हे जो आदमी को मस्लहत के फायद आर रास्ते वताकर आर क्रांति के रास्ते के जोखिम गिनाकर, उसे इकलाव के रास्ते से भटकाना चाहता ह आर शायद इसीलिए शायर के तजो मिजा का निशाना वन जाता हे। फज के लिए इकलाव उनका यार ह, माशूक हे जिसकी राह से वह कभी हट नही सकत, वला से नासेह कुछ भी कहता रहे

हुई ह हजरते नासेह से गुफ्तगू जिस शव
वो शव जरूर शवे-कू ए यार गुजरी हे।

एस नादा भी न थ जा स गुजरनवाल
नासेहो पदागरो राहे गुजर तो देखो।

जगह-जगह पे थे नासेह तो कू व-कू दिलवर
इन्ह पसद उन्हें नापसद क्या करत।

हे ख़वर गर्म कि फिरता हे गुरेजा नासेह
गुफ्तगू आज सरे-कू ए वुता ठहरी हे।

इकलाव के लिए उन्होन 'महवूव , 'जुनू 'यार', 'इश्क' आदि का प्रयाग किया हे

वा तो वा ह तुम्ह हा जायगी उल्फत मुझस
एक नजर तुम मेरा महवूव-नजर तो देखो।

कफस उदास है यारो सबा से कुछ तो कहो
कहीं तो बहरे खुदा आज जिक्रे यार चले।

मुकाम फज काई राह मे जचा ही नहीं
जो कू ए यार से निकल तो सू ए दार चल।

गर बाजी इश्क की बाजी हे जो कुछ भी लगा दो डर केसा
गर जीत गय तो क्या कहना हारे भी तो बाजी मात नहीं।

उनका यह शेर देखिए जिसका मतलब उनकी प्रतीक योजना ओर इकलाबी विचारधारा को समझे बिना खुलता ही नहीं, या फिर यह एक मामूली सा शेर होकर रह जाता हे

अब कूच ए दिलबर का रहरो रहजन भी बन तो बात बन
पहरे से अदू टलते ही नहीं आर रात बराबर जाती हे।

इस शेर म फैज पाकिस्तान की सियासी समाजी हकीकत बयान करते ह ओर इशारा करते ह कि अगर हमारे महबूब मुल्क के हालात बदलने हे तो शायद शातिपूर्ण तरीको से ऐसा करना मुमकिन न हा। दिलबर के कूचे का मुसाफिर ता वहा पहुचकर अपने माशूक का दीदार करना चाहता हे, लेकिन उसके दरवाजे पर दुश्मन पहरा दे रहे ह जो उसे घुसने नहीं देगे आर अगर वह वाकई वहा पहुचना ही चाहता हे तो शायद उसे रहजन बनकर वहा जबर्दस्ती दाखिल होना पडेगा। 'रात बराबर जाती हे' से शायर शायद यह कहना चाहता हे कि देश मे क्रातिकारी स्थितिया तो बनती ह लेकिन अगर उनका फायदा उठाकर इकलाबी कार्रवाई न की जाये तो वे गुजर जाती हे ओर दर-यार पर दुश्मनो का कब्जा बरकरार रहता हे। इसी गजल के एक ओर शेर म फेज पाकिस्तान के हालात पर एक ओर टिप्पणी करते ह

बेदादगरा की बस्ती हे या दाद कहा खरात कहा
सर फोडती फिरती हे नादा फरियाद जो दर दर जाती हे।

जालिमो की इस बस्ती म मागने से क्या मिलनेवाला हे? जुल्म करनवाले ख़रात देना क्या जाने? जालिमो से फरियाद करनेवाल तो नादान ह, पहले दर-दर जाकर अपना दामन फेलाते हे ओर जब किसी दर से कुछ नही मिलता तो अपना सर फोडते ह। इस शेर को पहलेवाले शेर स मिलाकर पढे ता यह बात पुख्ता हो जाती है कि जेल मे मथन करते-करते फेज इस बात पर मुतमइन हा चले थे कि उनके मुल्क मे शातिपूण तरीका से कुछ कर पाने की सभावना कम से कमतर होती जा रही है ओर यहा कुछ हो सकता हे तो शायद जारिहाना तरीको से ही हो सकता हे।

लेकिन जारिहाना तरीको से काम करने क अपने खतरे हे। ऐसा करनेवाला की जान जा सकती हे। तब तक तो यह भी तय नहीं हुआ था कि अदालत फेज को सजाए-मोत तो नही दे देगी? इसी गजल का एक ओर शेर देख तो जेल म फेज के चितन की पूरी नुमाइदगी हा जाती हे

हा जा के जिया की हमको भी तशवीश हे लेकिन क्या कीजे
हर रह जो उधर को जाती है मक्तल से गुजरकर जाती ह।

जान किसे प्यारी नही हे। कोई भी विवेकवान प्राणी बेमकसद जान देना नही चाहता। वह तो मक्तल या वधस्थल से दूर ही रहना चाहता ह क्योकि वहा तो उसे मोत और खूरेजी के मजर ही दखने का मिलगे।

लकिन इस मजबूरी का क्या किया जाये कि हमारी मंजिल को जानवाली हर राह मक्तल से गुजरकर ही जाती है, ऐसी कोई राह दिखायी ही नहीं देती जिस पर चलकर रक्तपात से बचा जा सके। इन्कलाब के तलबगारों को बड़ी से बड़ी कुरबानी देने के लिए तैयार रहना पड़ता है, सर हथेली पर लेकर मैदान में उतरना पड़ता है, वो अपनी जान की चिंता नहीं कर सकते, करेंगे तो कुछ कर ही नहीं पायेंगे। हुक्काम ने ऐसे हालात पैदा कर दिये हैं कि हिंसा के बिना यहां कुछ हो ही नहीं सकता। मार देने या मर जाने के अलावा उन्होंने कोई रास्ता छोड़ा ही नहीं है।

उर्दू अदब के सतर्क अध्येता गौर कर रहे थे कि जेल में फैज एक नयी शायरी की दाग बेल डाल रहे हैं जिसमें गजल का क्लासिकी रूप कायम रखते हुए नयी से नयी, प्रगतिशील से प्रगतिशील और इंकलाबी से इनकलाबी बात कही जा सकती है। मार्क्सवादी तनकीद इस बात पर भी गौर कर रही थी कि इससे एंगेल्स का वो इसरार भी पूरा होता है जो अदीब को हिदायत देता है कि आप अपनी आइडियोलॉजी को कला के पर्दे में जितनी बारीकी से छुपाकर पेश करेंगे आपकी शायरी उतनी ही ज्यादा कारगर और कामयाब हो सकेगी। गजल की सिन्फ के चाहनेवाले इस घटना विकास से खुश थे क्योंकि इन गजलों से उन गजल विरोधियों को ददांशिकन जवाब मिल रहा था जो यह कहते न थकते थे कि गजल का जमाना लद चुका है और उसमें अच्छी शायरी के जितने इमकानात थे, सब चुक गये हैं, लिहाजा अब जो लोग अपने फिक्र का दायरा वसीअ करना चाहते हैं और अपने सुखन में दुखों से भरी दुनिया के मरहलों से मुखातिब होना चाहते हैं या नये जमाने के सामने से शेर में कोई नयी बात पैदा करना चाहते हैं उन्हें गजल में तबा-आजमाई नहीं करनी चाहिए।

रावलपिंडी की यह फौजी बगावत या साजिश नाकाम रही, लेकिन कुछ ही अर्सा बाद वहां फौज ने हुकूमत का तख्ता उलट दिया और जब एक बार उसके मुंह कामयाबी का खून लग गया तो उसने ऐसा बार-बार किया। मुस्तकिल जमहूरियत पाकिस्तान में कभी आने ही नहीं दी गयी, आयी भी तो उसे रहने नहीं दिया गया। अवाम के जमहूरी हकूक हमेशा पैरों तले रौंदे गये और इसका सबसे बुरा असर उन दानिशवरों और अदीबों पर पड़ा जो इजहार की आजादी के बिना उसी तरह तड़पते हैं, जैसे पानी के बिना मछली। ऐसे खूंख्वार वक्फों में फैज की जेल में की गयी ईजाद बड़े काम आयी और उन्होंने बड़े से बड़ा खतरा उठाकर भी इजहारे ख़याल के नये-नये तरीके निकाले, जिन्होंने उर्दू शायरी को मालामाल कर दिया।

फैज की राह पर चलकर या उनकी शायरी से प्रेरणा पाकर पाकिस्तान के उर्दू शायर अहमद फराज इब्ने इंशा सैफ, फारिग बुखारी, इफ्तिखार आरिफ जेहरा निगाह और सरहद के इधर उधर दोनों मुल्कों के सैकड़ों नौजवान शायर नयी किस्म की गजल कह रहे थे जिसका सारतत्व जनवादी और क्रांतिकारी था लेकिन गजल का क्लासिकी ढांचा बरकरार था। अब भारतीय उपमहाद्वीप में एक नयी किस्म की गजल का आगाज हो रहा था और जेल में बैठे फैज इस कारनामे से खुद भी बाखबर थे

हमने जो अर्जे फुगां की है कफस में ईजाद
फैज गुलशन में वही तर्जे बयां ठहरी है।

जेल में फैज ने गजलों के अलावा नज्में भी कहीं जिनमें से कई तो ऐसी हैं जो उर्दू साहित्य के इतिहास में अमर रहेंगी। यहां उन पर विचार नहीं किया जा सकता लेकिन एक मिसाल लेकर यह समझने की कोशिश जरूर की जा सकती है कि एक बड़ा शायर जेल की दिलशिकन जिंदगी को किस तरह शेर में

ढालकर ख़ूबसूरत वना सकता है।

वात तव की हे जव फ़ेज केदे तनहाई काट रहे थे। उन्हे एक तग अधेरी कोठरी मे वद कर दिया गया था और यहा अकेले रहते हुए उन्हे वक्त का अदाजा भी न हो पाता था। कोठरी मे एक सूराख सा था जिससे छनकर सूरज की कोई भटकी हुई किरन उन्हे इत्तला दे जाती थी कि अभी दिन वाकी ह। जव इस सूराख़ से राशनी आना वद हो जाता था तो कदी समझ लेता था कि अव मेरे वतन मे रात हो गयी होगी। सुवह होते ही उस सूराख़ से सूरज की एक नन्ही सी किरन उनकी कोठरी को रौशन कर देती थी ओर उस गुनगुनी धूप मे उनके हाथो मे लगी लोहे की हथकडी चादी की तरह दमक उठती थी। यह क़ेदी के लिए सुवह होने की सूचना थी। अव देखा जाय कि फेज केदे-तनहाई की इस केफियत को अपनी वेहद मशहूर और मकवूल नज्म 'निसार म तेरी गलियो पे ऐ वतन' म किस तरह वाधते ह

बुझा जो रौजने जिदा तो दिल ये समझा ह
कि तेरी माग सितारो से भर गयी होगी
चमक उठे जो सलासिल तो हमने जाना है
कि अव सहर तेरे रुख़ पर निखर गयी होगी
गरज तसव्वुरे शामो सहर म जीते हे
गिरफ़्ते सायए दीवारो दर म जीते ह।

गोया, सुवह से शाम तक शायर को एक ही काम हे, मादरे-वतन के वारे म सोचना और जल की तग होती जा रही दीवारो के वीच वतन ओर हमवतनो से अपना रिश्ता वनाये रखना उसे आर पुख़्ता करते रहना ओर जीना। हालात कितने ही नागवार क्या न हो, शायर का यह फसला ओर हासला काविले गोर है कि उसे जीना हे, जल की तग दीवारो मे केद होकर भी उसे कल के लिए जीना है, एक शानदार कल के लिए जिससे वो ओर उसकी शायरी प्रतिवद्ध हे। कोई ताज्जुव नही कि जेल मे लिखे गये इस कलाम की वदोलत फेज की छवि एक वागी, इनकलावी, वतनपरस्त आर ऐसे इनसानदोस्त शायर की वनी, जो गजल ओर नज्म के क्लासिकल पेमानो पर भी पूरा उतरता हे। आखिरी दम तक फेज की यही छवि वनी रही, यह तो हम सव जानते हे लेकिन इसके पीछे उनका कितना सघर्ष, अटल निश्चय ओर अदम्य आत्मविश्वास छुपा है, इस पर ध्यान जाता तो है लेकिन हमेशा टिक नही पाता।

रावलपिडी कॉसपिरेसी केस फ़ेज को तो नही तोड पाया लेकिन उसने पाकिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी की रीढ जरूर तोड दी। 1954 में इस केस का फ़ेसला आते ही पाकिस्तानी हुकूमत ने न सिफ कम्युनिम्ट पार्टी को, वल्कि उसके तमाम जन सगठनो को भी गेरकानूनी घोषित कर दिया। ट्रेड यूनियन फडरेशन, स्टूडेंट्स फेडरेशन, मेडिकल एसासिएशन, पाकिस्तान पीपुल्स थियेटर एसासिएशन पाकिस्तान की अजुमने-तरक्कीपसद मुसन्निफ़ीन जेसे तमाम जन सगठनो को गेरकानूनी करार कर दिया गया ओर वामपथी कार्रवाइया एक झटके के साथ रोक दी गयी। सवसे घातक हमला पाक़िस्तानी पीपुल्स हाउस पर किया गया जिसकी स्थापना क़ायदे-आजम के चहेते ओर मुल्क के वामपथी लीडर मिया इफ्तिख़ारुद्दीन ने की थी और जो *पाकिस्तान टाइम्स, इमरोज लैलो निहार* जेसी पत्र पत्रिकाओ ओर वामपथी साहित्य का वडा प्रकाशक होने के नाते पचासो कम्युनिस्टो को रोजी रोटी मुहया कराता था। पीछे हटकर सघर्ष के नये तरीक़े ओर नयी सूरतें निकालने म वहुत वक़्त लग गया ओर वाद मे जव ये कारवाइया शुरू हुई भी तो इनमे पहले जैसा दम ख़म नही पेदा क़िया जा सका ओर फिर मुल्क म लगातार फाजी वगावत

भी होती रही, जिनका पहला शिकार वामपंथी ताक़तों को ही बनाया जाता था।

एलिस फ़ैज़ पर लौटे बिना इस प्रसंग को ख़त्म नहीं किया जा सकता। इस हादसे ने उन्हें न जाने कितनी ताक़त और आत्मविश्वास से भर दिया था। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी और बदनाम खुला हाथ फैलाये सामने खड़ा था। उन्होंने कमर कसकर *पाकिस्तान टाइम्स* में नौकरी की और दो नन्हीं बच्चियों के मां बाप दोनों की जिम्मेदारी अकेले संभाली। अपनी बच्चियों को महंगे और आधुनिक स्कूल से हटाकर उन्होंने मामूली स्कूल में दाख़िल करा दिया। कार खड़ी कर दी और रिक्शा में आना-जाना शुरू कर दिया। उन्होंने अपनी बच्चियों को मुल्क के तमाम बच्चों से वाबस्ता कर दिया और अख़बार में अपने कॉलम के ज़रिये न सिर्फ़ उनका मनोरंजन किया बल्कि एक प्यारी मां या बड़ी बहन की हैसियत से उन्हें साइंटिफ़िक और सेक्यूलर तालीम देकर उनका ज़हनी दायरा भी वसीअ किया। महीने में एक बार वो लाहौर से तीसरे दर्जे का टिकट लेकर लंबा और तकलीफ़देह फ़ासला तय करके सिंध के तपते रेगिस्तान से गुज़रकर हैदराबाद की जेल में अपने शौहर और शरीके हयात से मिलने पहुंचती थीं और बाहरी दुनिया से उसे रू-ब-रू कराती थीं। जेल से वो फ़ैज़ का कलाम लेकर आती थीं और फिर उनके दोस्तों की मदद से उसे शाया कराने के काम में जुट जाती थीं। यह सही है कि फ़ैज़ के दोस्तों ने उनका साथ निभाया, तो भी घर चलाने की पूरी जिम्मेदारी एलिस के कंधों पर आ पड़ी थी और फिर अकेलेपन में अपना विश्वास जगाये रखना और ख़ाविंद की सज़ाए मौत के ख़तरे के नीचे हंसते हंसते जीना और जेल में बंद क़ैदी का हौसला बनाये रखना आसान काम न था, लेकिन एलिस फ़ैज़ ने इस इस ख़ूबी से अंजाम दिया कि उनकी तारीफ़ में अल्फ़ाज़ छोटे पड़ जाते हैं। फ़ैज़ एलिस को सिर्फ़ बीवी नहीं मानते, उन्हें अपने दोस्त का दर्जा देते हैं। दोस्त की पहचान यही बतायी गयी है कि वो वक़्त ज़रूरत पर काम आता है, मुसीबत में साथ निभाता है और निराशा के क्षणों में हौसला बढ़ाता है। एलिस इन सारे पैमानों पर पूरी उतरीं और इसमें शक नहीं कि उनकी वजह से जेल में फ़ैज़ की ज़िंदगी इत्मीनान और पुरसुकून ढंग से गुज़री। उसी दौर का यह शेर देखिए जो एलिस की माहाना आमद के बारे में ही लगता है :

हम अहले-क़फ़स तनहा भी नहीं हर रोज़ नसीमे सुब्हे वतन
यादों से मुअत्तर आती है अश्कों से मुनव्वर जाती है।

मो. 09818367626

मैने फैज़ को देखा था

केदारनाथ सिह

फ़ेज की चर्चा हिदी म इतनी अधिक हुई ह कि उनकी शायरी पर काइ वात करना किसी कही हुई वात को वार-वार दोहराने की तरह लगता हे। मन उस वुलद शख्सियत को, जिस फज अहमद फेज कहा जाता हे, देखा था ओर थोडा करीव से देखा था, इसलिए उसी की चर्चा करूगा। वसे भी व्यक्ति फेज और शायर फेज दाना से मिलकर उस जीवत काव्य मिथक का निर्माण हुआ ह जिसे हम फेज के सृजन के रूप म जानते ह। पहली वार मेने फेज का नाम तव सुना था जव म इटरमीडिएट का विद्यार्थी था। यह वह दोर था जव प्रगतिशील कवियो का जिक्र छिडने पर कुछ नाम वार वार सामन आते थे, हिंदी आर उदू दोनो के। उनमे फज का भी नाम अक्सर सुनने म आता था। आज याद करता हू कि फज के किस पहल शेर से पहली वार मेरा साक्षात्कार हुआ था तो मुझे याद आता हे उनका एक पुराना रूमानी सा शेर जो इस तरह था

> आस उस दर से टूटती ही नही
> जा के देखा न जा के देख लिया

इस आख़िरी टुकडे पर म रुक गया था ओर कही उसी तरह वह आज भी मेरी स्मृति म अटका हुआ हे। पर यह असली फ़ेज न थे। जिस क्रातिकारी फेज को हम जानते हे, रूमानियत उसकी पूरी वनावट का एक हिस्सा जरूर थी, पर ख़ालिस फेज की पहचान उन दूसरी वहुत सी गजला के आधार पर वाद मे क्रमश वनती गयी और मेरे जेसे उस समय के असख्य युवा पाठकों के दिलो दिमाग म वनती गयी, जिस फ़ेज को आज हम जानते ह। इसी क्रम म यह तथ्य भी जोड दू कि अचानक एक दिन (सभवत यह मरे वी ए का अतिम वर्ष था या फिर एम ए का आरभ) जव मुझे श्री सच्चिदानद हीरानद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की ओर से एक छपा हुआ कार्ड मिला जिसमे किसी एशियाई लेखक सम्मेलन का जिक्र था। यह दिल्ली मे होनेवाला था जिसमे एशिया महाद्वीप के अनेक वडे साहित्यकार शामिल होनेवाले थे। मुझे अच्छी तरह याद हे कि वनारस के कुछ अन्य लेखको के साथ मे उस महत्त्वपूर्ण साहित्यिक समागम को देखने गया था। मे जान वूझकर 'देखने' शब्द का इस्तेमाल कर रहा हू क्योकि एक युवा लेखक के लिए सिर्फ यही सभव था। जिन व्यक्तित्वो को देखा, उनमे नि सदेह फेज अहमद फेज भी थे। मुझे मच का दृश्य अव तक याद हे। वहा जिन वडे व्यक्तित्वो की पक्ति वेठी थी, उसम कुछ नाम मुझे याद आ रह है राहुल साकृत्यायन लक्ष्मी प्रसाद दवकोटा ओर फेज। याद यह भी आ रहा हे कि जव स्वागताध्यक्ष

ने फ्ज के नाम का उल्लेख किया तो देर तक हाल में करतल ध्वनि होती रही। यह फ़ैज को पहला बार देखना था। विज्ञान भवन के हाल में यह आयोजन हो रहा था, जिसकी अंतिम पंक्ति से मेरी युवा आंख फ़ज को जितना देख सकी थी, उसमे सबसे आकृष्ट करनेवाली चीज उनकी ख़ामोशी थी, लगभग उस सुपरिचित शेर जैसी ख़ामोशी

इस तरह अपनी ख़ामुशी गूंजी
जैसे हर सिम्त से जवाब आये

उनके व्यक्तित्व से मेरी यह छोटी सी दूरस्थ जान पहचान कुल जमा यहीं तक थी, पर यह धुंधली सी याद एक खोयी हुई पूंजी की तरह मेरे काम आयी 1978 मे, जब मै जेएनयू आ चुका था और कुछ मित्रो के साथ उस समय के एक चर्चित नाटक 'बेगम का तकिया' देखने मेघदूत थिएटर गया था। वहा सबसे अंत मे बैठे-बैठे एकदम अगली पंक्ति मे एक चेहरा दिखायी पडा जो उस चेहरे से हल्का सा मिलता-जुलता था, जिसे मैने युवा नेत्रो से कभी विज्ञान भवन मे देखा था। नाटक की समाप्ति पर हम कुछ लोग उधर लपके, जिधर वह फैज जैसा शख़्स तेजी से बढा जा रहा था। निकट पहुचकर मै अपनी उत्सुकता को दबा न सका और एकदम पूछ बैठा, 'माफ करे। क्या आप फ़ैज अहमद फैज है?' वे चकित हुए और दबी जबान मे 'हा' जैसा कुछ कहा। यह तो मैने बाद मे जाना कि वे पाकिस्तान से छिपकर भारत आये थे और नही चाहते थे कि उनके होने की ख़बर सार्वजनिक हो। हा, चलते-चलते मैने और मेरे कुछ अन्य मित्रो ने भी उनसे यह अनुरोध ज़रूर किया कि आप एक दिन जेएनयू आये। उन्होने स्वीकृति मे सिर हिलाया।

उसके कई दिनो बाद फैज का जेएनयू मे आना हुआ। मै 23-24 वर्षो तक जेएनयू मे रहा हू पर न तो उसके पहले वैसा कुछ हुआ था न उसके बाद। फ़ैज का आना एक बहुत बडे जश्न की तरह था, एक छोटे-मोटे आदोलन की तरह, जिसमे सारी दिल्ली उमड पडी थी। भीड का आलम यह था कि उस बडे से पडाल मे सबसे अंतिम और सबसे लंबा जो व्यक्ति खडा था उसका नाम है मक़बूल फ़िदा हुसैन। वे अपने नियम के अनुसार नगे पाव खडे थे। यह शायर फैज के व्यक्तित्व का दुर्दम आकर्षण था जो इतने सारे लोगो को खीच लाया था। फ़ैज ने उस अवसर पर क्या कहा, यह ठीक-ठीक याद नही। वैसे भी फैज वक्ता न थे। इतना याद है कि उन्होने कुछ गजले पढी और इस तरह पढी जैसे पढना कोई सजा हो। बार-बार आग्रह किये जाने के बाद भी उन्होने वही चार-पाच गजले सुनायी थी जिन्हे वे सुनाना चाहते थे और चुप हो गये थे। फैज का इस तरह आना और सार्वजनिक मच पर लंबे अरसे बाद आना दिल्ली के सांस्कृतिक इतिहास की एक बडी घटना थी जिसकी समाचार पत्रो मे व्यापक चर्चा हुई थी।

इसके बाद की दो छोटी छोटी घटनाओ का जिक्र करूगा। इसी बीच एक दिन फैज से मिलने उनके होटल जाना हुआ। वह कौन सा होटल था यह ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा है मेरे साथ नामवरजी थे और संभवत एक कोई और। हमने देखा कि फ़ैज एक बडे से कमरे मे अकेले बैठे थे, लगभग दीवार के पास और दीवार की ओर मुह किये। बगल मे एक छोटी सी तिपाई पर एक भरा गिलास और बर्फ के कुछ टुकडे रखे हुए थे। दीवार की ओर मुह करके बैठना और अपने प्रिय भरे गिलास के साथ बैठना मुझे कुछ अजीब सा लगा। मुझ से रहा न गया और मै औचक पूछ बैठा

'फ़ैज साहब! दीवार की ओर मुह करके क्या पी रहे है?'

वे हसे ओर वोले, 'अच्छा सवाल पूछा, अकेले कभी नही पीना चाहिए।'

यह एक वडे शायर के अकेलेपन ओर उसकी अतर्निहित पीडा पर एक स्मित्ति भरी टिप्पणी थी - एक गहरी और वेधक टिप्पणी।

फेज स अंतिम वार मिलना एक फर्शी नशिस्त मे हुआ था, श्रीमती शीला सधू के आवास पर। उसमे अनेक लोग उपस्थित थे, जेसे डॉ कर्ण सिह आर पाकिस्तान के तत्कालीन उच्चायुक्त जनाव अब्दुल सत्तार। हिंदी के तो कई लोग थे ही। दो चीज मुझे ख़ास तौर पर याद है, वल्कि तीन।

डॉ कर्ण सिह ने फेज की कई चीजे उस मोके पर सुनायी थी, सीधे अपनी स्मृति से आर अत मे कुछ डोगरी लोकगीत भी सुनाये थे। उनका कठ इतना अच्छा है, इसका पता पहले न था। फ़ज ने उस मोके पर ज्यादातर नज्में पढी थीं ओर वेशक कुछ गजले भी। एक गजल पढते-पढते अचानक वे किसी जगह अटक गये थे, जेसे कुछ भूल रह हो कि अचानक पीछे से किसी ने मानो 'प्रॉम्प्ट' किया हो आर इस तरह उन्हे भूला हुआ मिसरा याद आ गया। लोगो ने देखा, जिस व्यक्ति ने 'प्रॉम्प्ट' किया था वे पाकिस्तान के हाई कमिश्नर थे। फ़ेज ने उनकी ओर देखा आर पढना जारी रखा। इमसे अधिक कोई तवज्जो न दी। हा, जव फेज का पाठ समाप्त हो गया तो उच्चायुक्त महोदय एकदम से भागे हुए आये और फ़ैज के सामने अभिवादन कर के खडे हो गये। वेठने का इशारा करने पर भी वेठे नही, अत तक खडे ही रहे। फेज से कुछ शिष्टाचार जसी वाते होती रहीं और फिर वे कही पीछे जाकर फर्श पर ही वेठ गये। पर इस पूरे प्रसग का अतिम हिस्सा उस नज्म से जुडा ह जो मेरी फेज की असख्य पसदीदा कविताओ म से एक ह। कविता का शीर्षक है, 'रकीव से' जिस पर फिराक गोरखपुरी का मशहूर लेख भी मेंने पढा था। जाहिर हे 'रकीव' शब्द का पूरी उर्दू परपरा मे एक रूढ अर्थ है ओर इस नज्म की सवसे वडी व्यूटी यही हे कि वह इस रूढ प्रतीक मे एक नयी मानवीय अर्थवत्ता भर देती है। ओर इस अर्थ म यह कविता प्रेम कविताओ की दुनिया मे एक ऐतिहासिक महत्व रखनेवाली कविता वन जाती हे। जव फैज अपनी कई गजल ओर नज्मे पढ चुके तो मेने अनुरोध किया कि कृपया 'रक़ीव से' पढे। वोले, 'ये तो नहीं पढूगा, कुछ चीजे अपनी ही जवान से निकलती है ओर हवा मे मडरा कर जेसे अपने ही सर पर गिर पडती हें, यह नज्म वेसी ही ह।' फिर कई लोगो के इसरार करने पर उन्होने यह नज्म पढी आर सिर्फ वही तक पढी जहा यह टुकडा आता है

हमने इस इश्क़ मे क्या खाया है, क्या सीखा है
जुज तेरे ओर को समझाऊ तो समझा न सकू।

वहुत कहने क वाद भी इसके वाद का हिस्सा उन्हाने नही पढा ओर धीरे से कहा 'नज्म यही खत्म होती हे।' उसक वाद नज्म मे ओर 14 लाइने हे जो थोडी लाउड ह ओर उम समय का जो एक तरक्कीपसद चलन था उसके अनुसार थीं। फ़ैज को वह वाद का हिस्सा अनावश्यक लगा ओर इसलिए उन्हान उसे छोड दिया। यह एक वडे शायर का आत्मालोचन था ओर कला की उसकी अपनी समझ का आईना भी। फेज म यह नेतिक साहस था ओर भरी सभा म उसे व्यक्त करन का अपना ख़ास तरीका भी।

मो 011-26531444

हमारे वजूद का एक हिस्सा

असगर वजाहत

मेरी उर्दू भाषा और साहित्य की पढ़ाई किसी तमीज और सलीके से नहीं हुई। पैदा तो आजादी मिलने से पहले हो गया था लेकिन स्कूल जाना शुरू किया आजादी के बाद। यह वह जमाना था जब उर्दू को देश निकाला दिया जा रहा था और स्कूलों मे, ख़ास तौर पर सरकारी स्कूलों में उर्दू की पढ़ाई बंद हो गयी थी। शायद यह मान लिया गया था कि सभी मुसलमान पाकिस्तान चले गये हैं और वहां उर्दू पढ़ रहे होंगे। लेकिन ऐसा नहीं था। हमारा परिवार तो एक छोटे शहर की परिधि पर पिछले सौ साल से जहां बसा हुआ था, वहां से टस का मस न हुआ था। लेकिन उर्दू खिसक कर पाकिस्तान जा चुकी थी। हां, घर का माहौल उर्दू-फारसी वाला माहौल था। हमारे दादा अपने समय की सामान्य सांस्कृतिक आवश्यकता के अनुसार शायर थे और 'जोश' तख़ल्लुस करते थे। कोई पाठक 'जोश' से मतलब जोश मलीहाबादी न निकाले। उस जमाने मे और अब भी कई शायरों का एक तख़ल्लुस हो सकता है। हमारी अम्मा उर्दू के क्लासिकल साहित्य *फसान-ए-आजाद, तिलिस्मे होशरूबा* आदि की रसिया थीं। शेरो शायरी में भी उन्हें वाजबी वाजबी दिलचस्पी थी। घर मे फूफियां (बुआएं) उर्दू की पत्रिका *ख़ातूने मशरिक* और *बीसवीं सदी, शमा* और बाद मे *जासूसी दुनिया* और *रूमानी दुनिया* मंगाती थीं। मुझे बचपन मे *जासूसी दुनिया* सुनने का शौक था। उर्दू नहीं आती थी लेकिन 'अलिफ', 'बे' वगैरह पहचान लेता था क्योंकि *कुरान शरीफ* पढ़वाने के सिलसिले मे यह पढ़ाया गया था। बहरहाल होता यह था कि अगर कभी किसी के पास मुझे *जासूसी दुनिया* सुनाने का समय नहीं होता था तो मैं खुद टटोल-टटोल कर पढ़ने की कोशिश करता था और इसमें थोड़ी-थोड़ी कामयाबी भी मिल जाती थी। यह पूरी दास्तान इसलिए सुना रहा हूं कि इसी पृष्ठभूमि मे मैंने पहली बार फैज को पढ़ा था।

पता नहीं क्या चक्कर था कि हमारे शहर के सरकारी स्कूल मे जहां से मैं और मेरा भाई हाई स्कूल कर रहे थे, वहां नवें दरजे तक उर्दू नहीं पढ़ायी जाती थी। लेकिन बोर्ड की परीक्षा यानी दसवीं क्लास मे उर्दू पढ़ाई जाती थी। हम लोग यानी मैं, मेरा भाई और क्लास के एक दो और मुसलमान लड़के जब दसवीं मे आये तो हमसे मिलने उर्दू के बुजुर्ग टीचर आये। अब उनका नाम तो याद नहीं पर बड़ा नूरानी चेहरा था। रंग अच्छा ख़ासा गहरा था। चेहरे पर सफ़ेद घनेरी दाढ़ी थी। नाक नक्शा खड़ा था। दोहरे बदन के आदमी थे। बुजुर्ग उर्दू टीचर ने कहा कि तुम लोगों (यानी मुसलमान लड़कों) ने हाई स्कूल में उर्दू न ली तो मेरी नौकरी चली जायेगी। हमने मौलाना को अपनी मजबूरी बतायी कि हमने तो उर्दू पढ़ी ही नहीं है तो वे बोले मैं तुम लोगों को 'अलिफ' 'बे' से पढ़ा दूंगा। कोई फेल नहीं होगा। अच्छे नंबर

आयेगे। और हुआ भी यही। बहरहाल उर्दू आ गयी।

अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय मे साइस के विषय लेकर दाखिला दिलाया गया तो उर्दू फिर गायब हो गयी। पर अलीगढ मे उन दिनो शेरो-अदब का माहोल था। फैज अहमद फेज का नाम सुना और कुछ मीर तकी 'मीर' जेसा ध्वनित हुआ। लगा यार ये फेज अहमद फेज, मीर तकी 'मीर' के जमाने के शायर मालूम होते ह। कई महीनो तक मे यही समझता रहा। किसी से पूछा भी नही क्योकि डरता था कि शायद लोग हसेगे। बहरहाल इसी दोरान मुझे फेज का सग्रह *दस्ते-सबा* की एक कापी मिल गयी। उस जमाने मे, रात के उन घटो को छोड जब सोता था, बाकी वक्त मित्र मुजफ्फर अली (जो अब विख्यात फिल्मकार हैं) के साथ गुजरता था। हम दोना ने *दस्ते-सबा* साथ-साथ पढना शुरू की ओर हमारे ऊपर उसका जादू जैसा असर हुआ। हास्टल के कमरे मे, क्लास रूप मे, चादनी रातो को पार्को म टहलते हुए हम फेज के शेर पढा करते थे। उनके कत्अे, उनकी नज्मे गुनगुनाया करते थे। फज हमारे बजूद का एक हिस्सा बन गये थे और हमे लगता था, हमारा नया जन्म हो रहा हे। फेज की शायरी के मूल्य ओर स्थापनाए हमे बहुत अच्छी ओर अपनी लगती थी ओर हम उन्हे स्वीकार कर चुके थे। उसी जमान म उर्दू के लोगो से फैज के व्यक्तित्व के बारे मे पता चला। यह भी बडा रोमाचक ओर हीरोइक प्रतीत हुआ। फैज सेना मे कप्टन थे, फेज लाहौर षड्यत्र केस मे फासी पर चढाये जाने वाले थे। फेज की पत्नी अग्रेज ह। फेज अग्रेजी के प्रोफेसर रह चुके ह। फैज को पाकिस्तान से जिलावतन कर दिया गया है। फज लदन/मास्को/बैरूत वगेरह मे रहते है।

फेज के जरिये मे प्रगतिशील आदोलन के पास आया ओर मुजफ्फर अली ने तो फेज पर बहुत काम किया। फेज से उनकी मित्रता भी हो गयी थी। फेज ने उन्हे अपनी शायरी फिल्मा मे इस्तेमाल करने के अधिकार भी दिये थे। लेकिन मेरा फैज से कोई निजी ओर व्यक्तिगत रिश्ता नही बन पाया या मने बनाना नही चाहा। इसके भी वह कई कारण थे।

दिल्ली मे आकर जामिया की नोकरी कर ली। इस दौरान *दिनमान* के लिए लगातार लिखता था और रघुवीर सहाय से बराबर मुलाकात रहती थी। उन्ही दिनो फैज के नये सग्रह *दस्ते-तहे-सग* को दिल्ली क किसी प्रकाशक ने वेसे ही छाप दिया था। यह 'कॉपी राइट पायरेसी' का मामला था। मैन सहाय जी को बताया तो उन्होने कहा इस बहाने फेज पर कुछ लिख दीजिए। मेने 'पायरेसी' से 'राइट अप शुरू किया और फेज की कविता के सरोकार तथा उपलब्धियो की चर्चा की। इस 'राइटअप का शीपक फज की एक कविता की पक्ति से लिया था 'मेरा सरमाया यही हाथ तो है।' यह *दिनमान* म छपा था। इसकी प्रति मेरे पास नही है।

प्रगतिशील आदोलन के प्रवर्तक सज्जाद जहीर की सन् 1973 मे हार्ट फेल होन से मृत्यु हो गयी थी। वे उन दिनो किसी मीटिग मे अल्माआता गये हुए थे, जहा फैज भी थे। खबर यह मिली कि सज्जाद जहीर की 'डेड बॉडी' के साथ फज दिल्ली आ रहे ह। भारत सरकार ने विशेष रूप से फेज को भारत आने का वीजा दे दिया है। सज्जाद जहीर को जामिया के कब्रिस्तान मे दफन किया गया। यहा मने फेज को पहली बार देखा। उन्हे देखना एक रोमाचक अनुभव था। जिस शायर के साथ आपने इतना वक्त गुजारा हो उसे साक्षात देखना एक बडी कल्पना ओर आकाक्षा के पूरा होने जेसा हे। फज के चहरे पर जो भाव थे, उनका जो अदाज था, उनकी जो सादगी थी, म सब देखता रहा लेकिन उनसे मिला नहीं। अगर म अजमल अजमली या अमीर आरफी या प्रो मुहम्मद हसन स कहता तो वे मुझे फज से मिलवा

सकते थे। पर मने किसी से नही कहा। क्यो' पहली वात तो यह कि जीवन भर मे मशहूर, वडे, विख्यात, नामी लोगो से मिलने मे हिचकिचाता रहा हू वल्कि नहीं मिलना चाहता। क्यो? कह नहीं सकता' शायद डर भय लेकिन क्यो? किसका डर? या नये आदमी, वह भी विख्यात आदमी का दबाव और फिर मिल पाने के वाद की निरर्थकता। मतलव जाहिर है अगर फ़ैज से कोई मुझे मिलवाता तो क्या होता? फैज हाथ मिला लेते। मुस्कुरा देते। हद से हद यह कि मुझे गले लगा लेते। तब? क्या उससे कुछ होता' वैस वड लोगों से सबध वनाना और उन्हे किसी पक्ष मे मोड देना मेरे लिए अब भी वहुत मुश्किल है। फ़ैज को दस मिनट देखता रहा था। फेज की पूरी शायरी उनके चेहरे पर खुदी हुई दिखायी पडी। मैं इससे वहुत खुश था कि फैज को देख लिया हे।

फेज ऐसे कम शायरो म हे जिनका 'ग्राफ़' ऊपर ही जाता है। *दस्ते-सबा* से लेकर *सरे वादिए सीना* तक फेज मे जबरदस्त जज्वा है। यह फ़ैज की ईमानदारी ओर वडी ईमानदारी है कि उन्होने समाजवादी सत्ता के विखरते, टूटते दु ख को भी अपनी कविता का विपय वनाया है।

मूलत पजावीभापी फेज अरवी और फारसी भापा के अच्छे जानकार थे। वे अपनी उर्दू कविता को ऊची काव्यात्मकता देने के लिए फ़ारसी और अरवी से शक्ति ग्रहण करते थे। वहरहाल चाहे जो हो, फेज पूर्वी देशो के महान कविया की उस परपरा मे आते हे जो शताब्दिया तक इनसान के दिलों और दिमागो को गरमाते रहते है।

मो 09818149015

हिंदुस्तान में जश्ने फ़ैज की एक रपट

शरद दत्त

आखो देखे हाल के रूप मे यह रपट 1980 के अप्रैल महीने के पूरे माहौल के खुलासे के लिहाज से बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है। दूरदर्शन पर कमर रईस भीष्म साहनी और इद्र कुमार गुजराल फ़ैज के साथ मोजूद थे। इस सस्मरणात्मक रपट को हमने साराश प्रकाशन की पुस्तक शरद की व्याप्ति से सकलित किया है।–स

फैज साहब से मिलने का चूंकि पहले कभी इत्तफाक नहीं हुआ था, इसलिए अप्रैल 1980 की एक शाम को जब हमे टीवी स्टूडियो के बाहर उनका इतजार करना पडा, तो मै अपने मन म उनकी तरह-तरह की तस्वीरे बनाता रहा—ऐसी तस्वीरे जो उनकी शायरी के पीछे से उभरती थी। लेकिन कुछ देर के इतजार के बाद फ़ैज अहमद फ़ैज के रूप में जो शख्स हमारे सामने आकर खडी हुई कार से उतरा, वह उन तस्वीरो से कही भी मेल नही खाता था। शानदार सफारी सूट पहने ओर हाथ मे विदेशी सिगरेट का पेकेट लिए वह शख़्स मुझे शायर कम और किसी वडी कपनी का मेनेजिग डायरेक्टर ज्यादा लग रहा था। फिर मुझे यह दखकर भी अजीब सा लगा कि हमारे साथ बेठकर उन्होने दुनिया के हर आमो-ख़ास मसले पर बाते कीं, लेकिन शायरी के बारे मे एक लफ्ज भी नही कहा। कहने का मतलब यह कि उस पहली मुलाकात मे मुझे फ़ेज साहब की शख़्सियत का पूरा अदाज एटी शायर लगा था। बाद मे मैने समझा कि उनका यह अदाज उनकी लीक छोडकर चलने की फितरत का ही एक हिस्सा था।

उस साल फैज साहब की सत्तरवीं सालगिरह पर दिल्ली मे जश्न ए फ़ेज का आयोजन हुआ था और उसम शरीक होने के लिए ही वे दिल्ली तशरीफ़ लाए थे। अप्रेल का वह तीसरा हफ्ता था, और मोसम की रवायत के मुताबिक दिल्ली काफ़ी गर्म हो चुकी थी। लेकिन वावजूद उस गर्मी के फिक्की सभागार मे फ़ेज साहब के इस्तकवाल के लिए जुटी-उमडी भीड का आलम देखते वनता था। पहली वार मैने जाना कि किसी शायर को देखने-सुनने के लिए भी ऐसी गरमी मे इतना जन-समूह उमड सकता है ओर तभी मै फ़ेज साहब के कविता-सग्रह *शामे शहरे यारा* की भूमिका मे उनके इस कथन की सच्चाई से भी रू-ब रू हुआ कि ‘हमारे शायरो को हमेशा यह शिकायत रही है कि जमाने ने उनकी कद्र नही की। हमे इससे उलट शिकायत यह हे कि हम पे लुत्फो-इनायात की इस कदर वारिश रही है— अपने दोस्तो की तरफ से, अपने मिलनेवालो की तरफ़ से और उनकी जानिब से भी जिन्हे हम जानते भी नही कि अक्सर दिल मे झिचक महसूस होती हे कि इतनी तारीफ ओर वाहवाही पाने का हकदार होने के लिए जो थाडा-वहुत काम हमने किया उससे ज्यादा हमे करना चाहिए।’ वेशक ज्यादा से-ज्यादा काम किया जाना चाहिए लेकिन जितना कुछ फेज साहब ने कर दिया हे वह ‘थोडा वहुत’ होते हुए भी ‘वहुत कुछ’ हे। उसकी

हेसियत क्लासिक की हे। उसे 'थोडा-वहुत कहना फेज साहव की विनम्रता ही हे।

13 फरवरी, 1911 को सियालकोट मे जनमे फ्ज को अदवी रुझान विरासत म मिला था। उनके वालिद चोधरी सुलतान मोहम्मद खान की साहित्य मे गहरी दिलचम्पी थी आर उन्हाने अफगानिस्तान के अमीर अव्दुल रहमान की जीवनी लिखकर प्रकाशित भी करायी थी। उर्दू के ख्यातनामा शायर अल्लामा इकवाल ओर अदीव सर अव्दुल क़ादिर के साथ उनके नजदीकी सवध थे। परिवार के इस अदवी माहोल का फेज पर असर पडना लाजिमी था। उन्होने अपने विद्यार्थी जीवन मे ही लिखना शुरू कर दिया था। पहली गजल उन्हाने सिर्फ 17 साल की उम्र मे कही थी।

फज ने 1933 मे अग्रेजी मे आर 1934 मे अरवी मे एम ए पास करने के वाद एम ओ यू कॉलिज, अमृतसर मे लेक्चररशिप से अपने केरियर की शुरुआत की। 1936 म लखनऊ म होनेवाली प्रगतिशील लेखक सघ की पहली मीटिग म उन्होने इस सस्था के सस्थापक-सदस्य के रूप मे हिस्सा लिया। तीसर दशक के अत मे विश्व युद्ध शुरू हो गया ओर फज ने लेक्चररशिप छोडकर 1942 म फोज की नाकरी कर ली। फिर देश के वटवारे के वाद *पाकिस्तान टाइम्स* तथा *इमरोज* का सपादन हाथ मे लिया। लेकिन फेज जिन सपादकीय नीतियो ओर विचारधारा को लेकर काम कर रहे थे, वे हुकूमत के लिए काविल-वर्दाश्त नही थी। लिहाजा 1951 मे उन्ह गिरफ्तार कर लिया गया, आर 1955 म जेल से रिहाई के वाद उनका ज्यादातर वक्त विदेशो म व्यतीत हुआ। फेज के पिता चोधरी सुलतान मोहम्मद ख़ा भी अफगानिस्तान मे एक महत्वपूर्ण पद पर काम कर रहे थे कि एक छोटी-सी वात पर वहा के शासक से मतभेद हो गया ओर आवेश म नोकरी को लात मारकर वे इग्लड चले गये, जहा उन्हाने केंब्रिज तथा लिकन इन म रहकर उच्चतर शिक्षा प्राप्त की। फेज मे अपने पिता का यही विद्रोही तेवर काम कर रहा था।

फेज एक वार पाकिस्तान से वतन-वदर हुए तो फिर सारी दुनिया के हो रहे। सारी दुनिया का हर मुल्क उनका अपना वतन वन गया। भारत की तो खेर वात ही दूसरी थी—पाकिस्तान ओर भारत उनके लिए एक ही जिस्म के दो हिस्से थे। भारत की जनता ने भी उन्हे जो वेपनाह प्यार दिया, उसकी जिदा मिसाल के रूप मे 'जश्न ए-फेज' मेरे सामन था। इस जश्न म सिर्फ आम आदमी की ही वड पेमान पर शिरकत नही थी वल्कि वुद्धिजीवियो ओर कलाकारो का एक वडा वर्ग भी इसम हिस्सा ले रहा था। प्रो कमर रईस की जवानी, 'हिंदुस्तान के हर शहर ओर गली-कूचे मे इनका (फ्ज साहव का) जन्मदिन जिस तरह से मनाया जा रहा है, मंने आज तक अपनी तमाम जिदगी मे किसी लिखनेवाले, किसी आर्टिस्ट या किसी शायर का जन्मदिन मनाते ऐसे नही देखा। प्रोफेसर रईस ने ये शब्द उस वातचीत को समेटते हुए कहे थे जा 'जश्न ए-फैज' के दोरान दिल्ली दूरदर्शन के लिए रिकार्ड की गयी थी ओर जिसम फैज साहव तथा प्रो कमर रईस के अलावा हिंदी के मशहूर कथाकार भीष्म साहनी तथा जाने मान वुद्धिजीवी ओर फेज साहब के दोस्त इद्रकुमार गुजराल भी शामिल थे।

मने सुना हुआ था कि फेज आदतन वहुत कम वोलते ह ओर जो वोलते हे वह भी वहुत नीचे सुर मे। 'जश्न-ए-फेज' के सिलसिले मे मुझे लगातार पाच दिन तक उनके साथ रहने आर छोटी-वडी महफिलो मे उन्हे सुनने का मोका मिला ओर मेने पाया कि सचमुच वे अपने वजाय दूसरो का वोलने देन म ज्यादा यकीन रखते ह। एक महफिल मे कर्तार सिह दुग्गल ने फेज साहव के वारे म अपने सस्मरण सुनाते हुए उनके कम वोलने का एक दिलचस्प वाकया वयान किया था '1966 की वात ह। म मास्को म था आर चद दिना के लिए वहा से वाहर घूम रहा था। जिस रोज म वापस मास्को पहुचा, हमारी एक

कॉमन फ्रेंड ह मरियम सल्गानिक, उनका टेलीफोन आया कि फेज तुम्हारी एब्सेस मे आये थे ओर उनको आज जाना था। लेकिन जव उनको पता लगा कि तुम आज ही मास्को लाट रहे हो तो उन्हाने अपनी फ्लाइट केसिल कर दी ओर वो कल जायेगे ओर आज शाम को उन्हाने कहा है कि हम मिल। म शाम को उनसे मिलने गया। जहा हमे मिलना था वहा खाने की कोई दावत थी ओर वो बहुत प्यार से मिले क्योकि 1965 की लडाई के वाद हम मिल रहे थे। उनकी आखो मे आसू थे आर सारा वक्त वे उस महफ़िल मे मेरे साथ बेठे रहे, मेरा हाथ पकडे हुए। और कोई बात नही की हमने। मे सोच रहा था कि जब महफिल खत्म होगी तो वात करेग। महफिल रात के दो बजे खत्म हुई। तो ऐसे हुआ कि हम एक ही मोटर मे बैठे। मेरा होटल रास्ते मे पडता था, फेज को आगे जाना था। मोटर मे वैठकर मने सोचा कि फैज कोई वात करेगे, लेकिन फिर भी कोई वात नही हुई। जव म अपने होटल तक पहुचा तो म उतर गया। फेज ने मुझसे हाथ मिलाया, मुझे गले लगाया और चले गये।' यह था फेज की चुप्पी का आलम कि जिस आदमी से मिलने के लिए उन्होने अपनी फ्लाइट कसिल कर दी थी उसके साथ इतनी देर रहकर भी कोई वात नही की।

फैज साहव के नीचे सुर मे बोलने का तो यह आलम था कि किसी महफिल में वे अपना कलाम सुनाते, तो शुरू के कुछ मिसरे यो निकल जाते जेसे वे कुछ सुना नही रहे वल्कि पास बैठे किसी व्यक्ति से वतिया रहे हे। थोडी देर वाद ही हम श्रोताओ को पता चलता था कि फेज साहव कुछ सुना रहे हे। उनके इस तरीके की कई लोग ख़राब अदायगी कहकर आलोचना करते ह, लेकिन मुझे लगता है कि यह फेज की अदायगी के बुरी या अच्छी होने का सवाल नहीं हे। इस बात का तअल्लुक़ अदब ओर शायरी के साथ उनक रिश्ते व रुझान से है। शायरी उनके खून मे थी, लेकिन शायरी उनका आख़िरी मकसद नहीं थी। इसीलिए वे वाहर से उस अदाज के कायल नहीं थे जो शायरी की निस्वत लोगो के जेहन मे बैठा हुआ है। लकिन भीतर से फेज पूरी तरह शायर थे—उतने ही लापरवाह, उतने ही भावुक और वैसा ही इनसानियत का दर्द अपने दिल मे छुपाये हुए। यह उनके जसा शायर ही कह सकता था कि 'मुझसे पहली सी मुहव्वत मेरी महवूव न माग।' यह नज्म उनके सबसे पहले कविता-सग्रह *नक्शे-फरियादी* मे सकलित है, जिसका प्रकाशन 1942 मे हुआ था। जब फेज कहते है—

ओर भी दुख ह जमाने म मुहव्वत के सिवा
राहते ओर भी हे वस्ल की राहत के सिवा
अनगिनत सदियो के तारीक वहीमाना तिलस्म
रेशमो अतलसो-कमख़्वाव मे वुनवाये हुए
जा-व-जा विकते हुए कूच-ओ वाजार म जिस्म
ख़ाक़ मे लिथडे हुए खून म नहलाये हुए
जिस्म निकले हुए अमराज क तन्नूरो से
पीप वहती हुई गलते हुए नासूरो से

लोट जाती हे उधर को भी नजर क्या कीजे
अव भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे
ओर भी दुख हे जमाने मे मुहब्वत के सिवा
राहतें ओर भी ह वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली सी मुहव्वत मेरी महवूव न माग

ता गोया वे अपनी शायरी की आतरिक प्रेरणा को ही हमारे सामने प्रकट करते हे। शायरी के इस मकसद को लेकर चलनेवाले शायर के लिए मच पर अशआर की रोबीली अदायगी की बात खुद ब खुद बेमानी हो जाती है।

फेज साहब का अपने पढने सुननेवालों क साथ जो रिश्ता था उसकी एक बहुत ही दिलचस्प दास्तान खुद फेज साहब ने सुनायी थी। दिल्ली आय हुए थे वे। उन्हीं के लफ्जा मे, 'तो एक साहब आये। हमसे अप्वाइटमट-सप्वाइटमेट करने की किसी को जरूरत हे ही नहीं। जसे अक्सर लोग आत ही रहते हैं। तो उन्होने आकर कहा कि देखिए, आपने जो लोरी सुनायी थी फिलिस्तीनी बच्चे की, उसका मुझ पर बहुत असर हुआ। लेकिन मे उसकी सिफ एक लाइन लिख सका हू। बाकी आप लिखवा दीजिए। मने कहा कि अच्छा चलो लिख लो। तो मने लिखवा दिया। फिर मने पूछा क्या करते हो, तो बोला कि दिल्ली क्लाथ मिल मे मजदूरी करता हू। मुझको भी बहुत खुशी हुइ कि वाकई यह बात इस हद तक पहुच गयी है तो इसका मतलब यह है कि शेर कामयाब हे। बात यह हे कि मेरा आपके ओर अपन लोगा के साथ रिश्ता हो तो वह रिश्ता खुद ही समझा देता हे कि किस किस्म से बात करनी है ओर किस जबान म करनी हं। अगर वह रिश्ता नही है तो आप कैसी भी बात क्या न कर, लोगा के दिला तक नहीं पहुचेगी। एक पुराने शायर के लफ्जो मे

> दिल का लगाने का ढग जानत ह
> वो तरकीब वरकीब सब जानते हे।

तो फेज साहब के दिल मे अवाम के लिए मुहब्बत का जज्बा भी है ओर उस जज्बे को अवाम तक पहुचाने का ढग और उसकी तरकीब वरकीब सब वे जानते हं। ओर शायद इस काम को अजाम देने मे उनकी सबसे बडी तरकीब उनकी जबान है जो पढने सुननेवाला के दिलो मे उतरती चली जाती हे। यहा फेज साहब से ही जबान का किस्सा सुने 'जबान तो समाज की जरूरत होती है, समाज का तकाजा होती है, उसके मुताबिक पेदा होती है। हमारे मुल्का म, समाजों म, जो जबान का किस्सा पैदा हुआ है वो इस वजह से हुआ है-- इन सारे मुल्को मे एशिया ओर अफ्रीका की बात कर रहा हू--कि यहा पर जिस दोर या जिस वक्त मे योरप की ताकता ने आकर कब्जा कर लिया, उसी वक्त से हमारी जबाना की, हमारे समाज की, हमारे एक्नामिक्स की, हर चीज की तरक्की रुक गयी। नतीजा इसका यह हुआ कि उनकी (यानी विदेशी शासको की) जबान जो थी यानी अग्रेजी, फ्रासीसी, पुर्तगाली या जो भी जबान थी वो बन गयी सरकारी जबान, वो बन गयी तालीमी जबान। हालाकि पहले भी यह था कि ऊचा तबका जो था उसकी एक जबान है ओर नीचेवालो की एक बोली है, लेकिन फिर भी वो जबान उसी जगह की थी। लेकिन वहा तो योरप की जबाना ने आकर इन मुल्का की अपनी जबान की जगह ले ली ओर लोग समझने लगे कि यही जबान पढ तो हम पढे-लिखे समझे जायेगे।'

फेज चूकि जबाना क इस फर्क को समझत थ इसलिए व यह भी समझते थे कि अवाम से अवाम की जबान मे ही 'कम्युनिकेट' किया जा सकता हे।

देश के चुनिदा बुद्धिजीवियो ओर साहित्यकारा ने 'जश्न ए फेज' म शिरकत की थी। इनम उल्लेखनीय थे जस्टिस जी डी खोसला प्रोफेसर मूनिस रजा, इद्रकुमार गुजराल, प्राफेसर कमर रईस, गुलाम रब्बानी ताबा खुशवत सिह कर्तार सिह दुग्गल, अमृता पीतम डॉ मोहम्मद हसन कमलेश्वर

भीष्म साहनी इत्यादि। इनके अलावा कुछ दूसरे फनकारों ने भी 'जश्न ए-फ़ेज' मे अपना योगदान किया था। जगजीत सिह और मदनवाला सिघू सरीखे गजल-गायकों ने फैज साहब की गजले अपनी सुरीली आवाज म पेश करके श्रोताओ को रस-विभोर किया, तो उमा शर्मा जेसी विशिष्ट नृत्यागना ने उनके अशआर पर तरतीव दिया हुआ कथक नृत्य प्रस्तुत करके दर्शको को मत्रमुग्ध किया। खुद फैज ने पहले सज्जाद जहीर मेमोरियल लेक्चर के रूप म अपना ऐतिहासिक पर्चा इसी 'जश्न-ए-फ़ेज' के दोरान पढा था जिसका विषय था 'मश्रिक और मग्रिव'। यह पर्चा अग्रेजी मे था, जिसका साराश हम यहा इसलिए दे रहे है कि इससे फ़ेज साहब की विचारधारा को समझने मे सहायता मिलेगी

'रुडयार्ड किपलिग का यह कहना कि मश्रिक-मश्रिक हे ओर मग्रिव-मग्रिव, उस साम्राज्यवादी घमड का इजहार हे जो अपने उस वक्त के सियासी और समाजी हालात को जिनमे मग्रिव का पलडा भारी है, हमेशा उसी तरह वने रहनेवाले मानकर चलना चाहता हे। यही नही, वह उस ऊच-नीच के नजरिये को यू वढा चढाकर पेश करता है मानो पहले भी मश्रिक-मग्रिव का रिश्ता उसी तरह रहा हो और आनेवाले वक्तो मे भी ऐसा ही होगा।

'यह दीगर वात है कि इनसानी तहजीव की तारीख साम्राज्यवाद की उस ख्वाहिश का कतई समर्थन नहीं करती। लवे अरसे तक मश्रिक की कल्चर ओर तहजीब आम तौर पर मग्रिब पर हावी रही। कल्चर के इस लेन-देन मे मग्रिव की हिस्सेदारी थी भी तो वहुत मामूली।

'हिदुस्तान के मामले मे यह वात और ज्यादा अहम हो जाती हे। यहा मग्रिबी कल्चर के झडावरदार वर्तानिया को ख़ास तौर पर तीन दोरो से होकर गुजरना पडा। मुगल वादशाह के उरूज के वक्त के वर्तानवी और दूसरे मग्रिवी सफ़ीरों ने हिदुस्तान की कल्चर और तहजीव के वेहिसाव गुण गाये है। उनका पहला रिएक्शन हैरत का था कि इतनी ऊची तहजीव का भी वजूद इस धरती पर है।

'वर्तानवी, फ्रासीसी ओर डच कपनियो ने हिदुस्तान के इलाको पर कब्जा करना शुरू किया तो उन्हाने जीते हुए इलाको की तहजीवी-तमद्दुन को, उनकी आर्ट को भी अपना लिया। दरअसल एक तरीक़े से उन्होने एक वेहतरीन कल्चर को अपने अदर जज्व किया था।

'आख़िरी दौर विजयी साम्राज्यवाद की अपनी जरूरतो से जुडा हुआ है। हिदुस्तान को पूरी तरह जीत लेने के वाद गोरे हुक्मरान को एक ऐसे निजाम की जरूरत थी जो उनके फायदो के लिए काम करे। अपने इस मकसद को पूरा करने मे उन्होने हिदुस्तानियों की मदद ली। अपनी मग्रिबी तालीम के जरिये उन्होने हिदुस्तानियो को उनकी सास्कृतिक जडो से काट दिया था। ये उस दोर की शुरुआत थी जिसमे मग्रिवी रहन सहन, पहनावे, जवान ओर तमद्दुन की नकल करना फेशन था, ओर हिदुस्तान से तअल्लुक रखनेवाली सव वातो को हिमाकत की नजर से देखा जाता था। लब्बोलुवाव यह कि देशी साहवो ने मान लिया था कि मग्रिव की कल्चर एक बेहतरीन कल्चर है जो हमेशा से ऐसी थी ओर आगे भी ऐसी ही रहेगी। किपलिग का घमड से भरा हुआ फिकरा उसी दौर की देन हे। हालाकि उसी दौर मे आजादी की लडाई भी लडी जा रही थी, जहा स्वदेशी वस्तुओ और विचारो को पूर्ण सम्मान दिया जा रहा था।

'इस सदी के चौथे दशक तक जहा एक तरफ मग्रिव मे ऐसे लोग पेदा हो रहे थे जो उपनिवेशा में चलनेवाली आजादी की लडाइयों के हामी थे, वहीं विश्व की चेतना नयी-नयी सस्कृतियों की जानकारी से प्रभावित भी हो रही थी। नतीजतन मश्रिक ओर मग्रिव की यह काल्पनिक रेखा उत्तरोत्तर क्षीण होती गयी है।'

जिन दिनो दिल्ली मे 'जश्न ए फेज' मनाया जा रहा था, उस दिनो इस महानगर के हर गली-कूचे म फेज की चर्चा थी—लोग फेज को देखने के लिए उतावले थे, उन्ह सुनने के लिए वेक़रार थे। छाेा या वडी जिस किसी महफिल मे फैज जाते, वही उनसे कुछ सुनाने की फरमाइश की जाती। ओर फैज साहब हर जगह कहते कि मुझसे क्या सुनना हे, अगर कुछ सुनना ही हे तो मेहदी हसन या नूरजहा की आवाज मे सुनो। लेकिन फिर सुनाने के लिए तेयार भी हो जाते। अक्सर फरमाइश 'ए शाम मेह्रबा हो' सुनाने के लिए होती थी ओर शायद फेज को भी अपनी यह नज्म प्यारी लगती थी। वे सुनाने लगते—

ए शाम, मेह्रबा हो।
ए शामे-शह्रे-यारा,
—हम पे मेह्रबा हो।

हमारी भापाओ मे एक ऐसा दोर भी गुजरा ह जवकि यह बहस काफी लवी चली, ओर काफ़ी तवील तरीके से चलती रही, कि आखिर हम क्यो लिखे—अपने लिए लिखे या दूसरो के लिए लिख। फैज साहव की शायरी इस बहस का दो टूक जवाव हे। उनकी सारी शायरी इनसान के वेहतर भविष्य के लिए, ज़ुल्मो-सितम से टक्कर लेने के लिए हे। इसीलिए वे कहते है

वोल, कि लव आजाद है तेरे
वोल, जवा अव तक तेरी हे
तेरा सुतवा जिस्म है तेरा
वोल, कि जा अव तक तेरी है।

फेज की शायरी हमे इस वात के लिए मजबूर करती रही हे कि जो कुछ उन्होने कहा है, उस पर हम वहुत गहराई से सोचे ओर उसे समझे। इनसानियत के भविष्य मे उनकी पूरी आस्था थी। उन्हे इस बात का पूरा यकीन है कि हमारी जो भी मुश्किलात ह, जो भी वुराइया हे, वो सब खत्म होगी आर सव लोग सुख चैन से, आराम से रहने लगेगे। वो वक्त जरूर आयेगा।

मो 09811205442

खड दो

ख़तोकिताबत और बातचीत

फ़ैज़–अपने खतों के आईने मे

जहूर सिद्दीकी

जो हम पे गुजरी सो गुजरी मगर शवे हिजरा
हमारे अश्क तेरी आक़वत सवार चले।

इसलिए *सलीवे मेरे दरीचे मे* को तख़्त-ए-मश्क बना बेठे हे। यह सग्रह हे उन पत्रा का जिन को फेज ने पाकिस्तान के भिन्न-भिन्न जेलख़ानो से अपनी पत्नी एलिस के नाम लिखा। फज ओर मिर्जा जफरुल हसन ने मिलकर इसका अनुवाद अग्रेजी से उर्दू मे किया। यह पूरा अनुवाद था और ऊचे दर्जे का। हम मिनी अनुवाद करने या यह कहे कि उर्दू को देवनागरी लिपि मे लिखने जा रहे हे। उसमे जो वाक्य हे वे फेज के है मगर जहा मोका मिल गया है, मने अपनी राय भी रखने की कोशिश की हे।

फ़ेज ने एक लबी उम्र (1911-1984) पायी लेकिन उनकी तहरीरे और तक़रीरे दोना ही कम रहीं। वह न लिखते ज्यादा थे आर न बोलते अधिक थे। ख़ास तोर पर अपने बारे मे बाते करने से या लिखने से वह हमेशा कतराते रहे। उनके ही शब्दो मे 'अपने बारे मे बात करने से मुझे सख़्त बहशत होती हे। इसलिए कि सब बोर लोगो का मरगूब शुगल (प्रिय व्यसन) यही हे।' ओर फैज पर सब छोड दिया जाता तो सिर्फ उनके शेर ही दिखायी पडते ओर शायद उनकी भी तादाद इतनी नहीं होती। भला हो उनके पीछे पडने वाला का जिनकी बदोलत उनके होठो की जुम्बिश जाती रही, चाहे मद गति से सही। ख़ास तोर पर इस दिशा म मिर्जा जफरुल हसन की भूमिका अहम थी। फेज के पत्रो को *सलीबे मेरे दरीचे मे* का रूप देना मिर्जा मरहूम का ही कारनामा था, जो बकोल फैज उनके 'सिर पर सवार हो गये। अनमोल पत्रो का यह सग्रह जून 1971 म छपा। उनके पहले खत (4 जून 1951) से किताब छपकर तैयार होने के बीच बीस साल का फ़ासला है। दो दशको तक ये पत्र एलिस ने सुरक्षित रखे जो फ़ज से उनके प्यार की आर साहित्य के प्रति उनकी जिम्मेदारी की एक बेहतरीन मिसाल है।

फेज की शख़्सियत के अनेक पहलू तो *सलीब मेरे दरीचे मे* मे उजागर होते ही ह, लेकिन इस पुस्तक मे जमा किये गये पत्र उनके माहाल और शायरी को समझने मे भी अत्यत मददगार हे। जहा तक फज के सवाल हे तो उन्होने कभी भी खुद को बढा-चढाकर पेश नहीं किया। अपनी कमिया को अक्सर बेशतर गिनाते रहे। वह अपनी शायरी का कभी ढिढोरा पीटते नजर नहीं आते ओर यही शाने बेनियाजी उनके पत्रो के इस सग्रह म भी स्पष्ट हे। वह लिखते हे 'जाहिर है कि यह काई अदबी तसनीफ (रचना) नहीं है, निजी ख़तूत ह, जा कलम उठाकर लिखे गये हा। किसी मरबूत (प्रसगयुक्त) ओर सजीदा बहस की तलाश बेकार हे।'

यह सरासर गलत राय है लेकिन इस तरह की बातें उन्होंने बार बार की है। अगर ये पत्र साहित्यिक रचना नहीं है तो दुनिया का कोई साहित्य, साहित्य नहीं है। इनमें क्या नहीं है? सही बात तो यह है कि इनमें बहुत से ऐसे वाक्य आते हैं जो उनके अनेक शेरों पर भारी हैं। इन वाक्यों में लिखा एक मुकम्मल रूप धारण किये हुए है जिसमें दर्द की कसक भी है, संघर्ष की लय भी है और आने वाला सुबह का पयाम भी। एक संजीदा शैली है जो दिलों में उतरती जाती है लेकिन बीच-बीच में विनोदप्रियता भी है और मजाह भी। कुछ नमूने इस प्रकार हैं

18 अगस्त, 1952 का खत

हैदराबाद (सिंध) जेल में फैज यूं चहकते हैं

'यहा रंज देने वाली बात सिर्फ एक है और वह यह है कि रेत और मिट्टी की वजह से सब लोग गंजे होते जा रहे हैं। मुझे डर है कि यहां से बाहर होने तक हमारी सब 'सेक्स अपील' खत्म हो चुकी होगी, यह बहुत ही दर्दनाक वाकया होगा। इसके बाद हम पर तोहमतें तराशने वाले बेचारे क्या करें? आखिर एक बूढे गंजे बुजुर्ग के बारे में कोई क्या स्कैंडल ईजाद कर सकता है!

22 जनवरी, 1952 का खत

'अब मैं यहां के अव्वल दरजे के खिलाडियों में हूं और इस बात से कुछ इत्मीनान होता है कि चालीस बरस के बावजूद बदन ज्यादा चीखने या कडकडाने के बगैर अब भी तेजी से भाग-दौड सकता है, अगरचे वह पहली सी बात न सही। यह उमर का एहसास बयान करना जरा मुश्किल है। हम सब पर उमर का गलबा (हमला) ऐसे सहज सहज (धीरे-धीरे) होता है कि कभी मुश्किल ही से जेहन में आता है कि हम बीस बरस पहले से बहुत ज्यादा मुख्तलिफ हो गये हैं। अपना नक्शा जो अपने जेहन में होता है वक्त के साथ इतना कम बदलता है कि हम फर्ज कर लेते हैं कि बाकी दुनिया के लिए भी यह नक्शा वैसा ही बरकरार है यह याद ही नहीं रहता कि उमर ने बदन के हर नक्शे पर खराबी और जवाल (पतन) की कितनी लकीरें खींच दी है। इसी खुदफरोमोशी (आत्म विस्मृति) की वजह से जब बडे-बूढे नौजवानों की सी चुहले करते हैं तो बिल्कुल उल्लू नजर आते हैं। इन्हे अपने आप में वह तगय्युर (परिवर्तन) बिल्कुल दिखायी नही देता जो बाकी सबकी नजरों पर अयां (प्रकट) होता है। कल जब मैं अचकन पहनकर नाश्ते पे पहुंचा (जेलखाने की नाजायज कमाई से फजूलखर्ची करके मैने इस खयाल से एक उम्दा गर्म अचकन बनवा ली है कि न जाने जेलखाने से बाहर इसके लिए दाम मयस्सर आयें या न आयें) तो किसी ने कहा आप जवानी में वाकई खूबसूरत होंगे। अगर एक बरस पहले यही बात कोई कहता तो हम जवाब देते--क्या बकते हो, हम अब भी जवान हैं। लेकिन कल यह बात सुनी तो हम सिर्फ मुस्कुरा दिये और इसी बात से दिल खुश हो गया कि किसी ने हमारी जवानी की तारीफ तो की जो अगरचे रुखसत हो चुकी है लेकिन है तो अपनी ही।

7 जुलाई, 1953 का खत

कान के दर्द जिसके इलाज के लिए पाकिस्तान की सरकार ने उन्हे हैदराबाद की जेल से कराची जेल भेजा को जिस अंदाज से उन्होंने बयान किया है वह अपना जवाब नही रखता। शायद ही कोई उर्दू का

अदीब हो जिसने दिल के दर्द ओर जिगर क दर्द का रोना न रोया हो लेकिन कान के दर्द को जिस बुलदी पर फेज ले गये ह वह उनके कलम का जादू है। लिखते ह

'मुझे यहा आये हुए एक हफ्ता हो चुका हे ओर इस दौरान हम वकोल बुखारी (पितरस बुखारी) साहब सीजेरियन के सिवा बाकी सब कुछ झेल चुके हे। खून का दबाव अब मामूल पर है ओर कान और दाता के सिवा ओर कोई शिकायत नही, लेकिन खुदा गवाह कि आदमी की खाना-वीरानी को यही क्या कम हे। मर्ज तो खैर अपनी जगह है, मे इलाज की बात कर रहा हू जो मर्ज से कही ज्यादा तकलीफदह ह। नाजिया ने इजारसानी (यत्रणा) आर अजाब देन के जो तरीके अख्तियार किये थे उनके बार म बहुत कुछ पढा हे लेकिन इसम 'अजाबे-गोश' (कान की सजा) का कही जिक्र नही जिससे जाहिर होता हे कि वह अपने महबूब मशगले मे पूरी तरह माहिर नही थे वरना अजाब व इजा की जो सूरत यह अजू (अग) पहुचाता हे बिल्कुल लासानी (बेमिसाल) ह। 'अजाबे-ददा' (दातो की सजा) तो खर मुसल्लमा (जिसे चुनोती न दी जा सके) ओर जानी पहचानी चीज है लेकिन इसके मुकाबले म हेच। जैसे तुम जानती हो उफ किये बगैर दर्द बरदाश्त करने म हम किसी साधु-सत स पीछ नहीं, लेकिन अबक मन महसूस किया हे कि सुबह कान पर कोई मश्के-नाज करे ओर सह पहर (तीसरे पहर) को दातो पर—तो यह कुछ ज्यादती ही हे।'

इससे पहले कि हम दर्दअगज बाता तक पहुच, लगे हाथा फज की जबानी एक तलीफा भी हो जाये जिसको उन्हाने 26 मई, 1952 क पत्र मे लिखा है

'तुम्हे शायद यह किस्सा मन सुनाया था कि गुजिश्ता बार जब मरा सियालकाट जाना हुआ तो एक पुराने स्कूल के हमजमात से मुलाकात हुई। मन उससे कहा—चलो जरा अपने मोहल्ले का एक चक्कर कर आय।' वो कहने लगे 'तो फिर बहुत से खिलोने साथ ले चलो'। पूछा 'वो किस लिए?' कहने लगे 'अब वो सब नानिया, दादिया हो गयी हे।

18 मार्च, 1953 का खत

जल की जिदगी रूह को कितनी घुलान वाली होती ह, इसकी अक्कासी फज ने इस तरह की है

'जब गलीज जर्द दीवारो, धूल आर मिट्टी, जजीरो, चहरो वरदियो ओर सब लानती चीजा पर नजर पडती हे जिसे जेलखाना कहते हे, ता यकायक कलेजा मुह को आने लगता हे। माज दर मोज काहत (जुगुप्सा) ओर बेजारी का सेलाब अदर से उठता ह जिसमे अपनी जात आर बाकी हर चीज गर्क हो जाती हे।

फेज ने कही-कही जेल की चुभती हुई जिदगी को दर्दअगेज शब्दा म जरूर पेश किया ह लकिन निराशा उनके कलम पर हावी नही हो पायी। नाउम्मीदी उनकी विशेषता कभी भी नहीं बन पायी। दद को दर्द ता जरूर कहगे लेकिन उनके बोझ से बैठ नही जायगे। घनघोर अधेरे म भी वह बुझे हुए चिरागा से रोशनी पेदा करत रहे। उसका कलेजा मुह को आन ता लगता ह मगर फौरन ही सभल भी जाते ह। उम्मीद का परचम उठाकर इसी खत म कहत ह

'फिर ऐसे लमहे भी आत ह कि कोई नन्हा सा बीज सियाह बोझल मिट्टी को बहुत सलीके से हटाकर एक नन्ही सी कापल जमीन से बरामद करता हे ओर उसे देखकर दिल बेपनाह आर नाकाबिल बयान मुसरत से लबरज हो जाता हे। आर तमाम वक्त दिल जानता ह कि इसी सब्ज कापल क नन्हे

हाथो म हकीकत भी है ओर अवदियत (शाश्वतता) भी। जेल की दीवार ओर पहरेदार ओर वरदियां सब झूठ है, सब गैर-हक़ीकी है।'

जेल के पडाव के दोरान फेज के कोमल व सवेदनशील दिल को कई करारी चोटो का सामना करना पडा। कई उनके प्यारे उनसे हमेशा के लिए जुदा हो गये। इनमे उनके बडे भाई तुफेल थे, एलिस के बाप थे, रशीद जहा थी, मटो थे। रोजनबर्ग जोडे पर जो बीती, लगता है कि वह फेज पर ही बीत रहा थी ओर जब इनसानी बिरादरी के लिए उनका प्यार उमडकर आता है तो कोरिया तथा ईरान के शहीदो की याद उनके दिल पर आरी चला जाती है।

17 जुलाई, 1952 का खत

अपने बडे भाई तुफैल अहमद खा की अचानक मोत की ख़बर सुनने के लिए फेज बिल्कुल तैयार नहीं थे। उनके दिल पर जो गुजरी वह इस खत मे साफ नजर आता है

'आज सुबह मेरे भाई की जगह मोत मेरी मुलाकात को आयी। सब लोग बहुत मेहरबानी से पेश आये। ये लोग मेरी जिदगी की अजीज-तरीन पूजी मुझे दिखाने ले गये, वह पूजी जो अब ख़ाक हो चुकी है, ओर फिर वो उसे अपने साथ ले गये।

मैने अपने गम के गरूर म सिर ऊचा रखा ओर किसी के सामने नजर नही झुकायी। यह कितना मुश्किल, कितना अजीयतनाक (तकलीफदेह) था, सिर्फ मेरा दिल जानता है।

अब मै अपनी कोठरी मे अपने गम के साथ हू। अब मुझे सिर ऊचा रखने की जरूरत नहीं। यहा इस गम के बेपनाह जुल्म से हार मान लेने मे कोई तजलील (अपमान) नही।'

तुफेल अहमद खा फेज के बडे भाई थे जो हेदराबाद (सिध) की जेल मे उनसे मिलने के इरादे से आये थे लेकिन मुलाकात से पहले 16 जुलाई, 1952 की सुबह दिल का दोरा पडने से उनकी मोत हो गयी।

8 अगस्त, 1952 का खत

डॉक्टर रशीद जहा के मरने की ख़बर जब उन्हे अखबार से मिलती है तो इस गहरे दुख को वह इस तरह बयान करते है

'रशीदा के मास्को मे मरने की खबर कल पढी। अगर म जेल से बाहर होता तो शायद जारो-कतार रोता। लेकिन अब तो रोने को आसू ही बाकी नही रहे। इस हादसे को सुनकर रोने धोने के बजाय दिल पर अजीब मुरदनी-सी छायी रही। शायद इसकी एक वजह यह भी थी कि अबके मोत रात के रहजन की तरह अचानक, बेइत्तला नहीं आयी थी या शायद अपने लाशऊर (अवचेतन) म यह ख़याल भी हो कि मरने वाली की बहादुर रूह बेकार ओर बुजदिलाना गम-अदोह (दुख) को पसद नही करेगी। जब से उसकी मुहलिक (घातक) बीमारी का सुना था, दिल मे बहुत शिद्दत स तमन्ना थी कि काश वह हमारे बाहर आने तक जिदा रहे ओर हम सब साथ उससे मिलने क लिए जा सक। उस बच्चा से बहुत प्यार था। म अक्सर सोचता था कि हमारे बच्चो को देखेगी तो कितना खुश होगी। अफसोस कि मोत क खिलाफ उसकी तवील (लबी) जग इतनी जल्दी खत्म हो गयी। उसके जाने से हमारे बर्रे सगीर (उपमहाद्वीप) से नेकी ओर इनसान-दोस्ती की बहुत बडी दोलत छिन गयी ओर उसके दोस्तो की महरूमी

का क्या कहिए जिनकी जिदगिया उसके असयार (कुरबानी) व मुरव्वत स इस कदर आसूदा (समृद्ध) ओर मज्जयन (सज्जित) हुई।'

6 जनवरी 1955 का खत

मटो की मृत्यु भी फेज के लिए कुछ कम जानलेवा नही थी। उनके शब्दा म

'मटो की वफ़ात (मोत) का सुनकर बहुत दुख हुआ। सब कमजोरियो के बावजूद वे मुझे निहायत अजीज थे ओर इस बात पर मुझे कुछ फख्र भी है कि वे अमृतसर मे मेरे शागिर्द थे। अगरचे यह शागिर्दी कुछ बराय-नाम ही थी इसलिए कि वह क्लास म तो शायद ही कभी आते हो। अलबत्ता मेरे घर पर अक्सर सोहबत रहती थी ओर चेखव, फ्रायड ओर मोपासा ओर न जाने किस किस मोजू (विषय) पर गर्म मुबाहिसे होते थ। बीस बरस गुजर चुके लेकिन यू लगता हे जेसे कल की बात है। हमारे शुरफा (भद्र लोग) जिन्हे दोरे-हाजिर के फ़नकार की शिकस्ते दिल का न एहसास हे न इससे कोई हमदर्दी, गालिबन यही कहेगे कि मटो मर गया तो उसका अपना कुसूर था। बहुत पीता था। बहुत बेकायदा जिदगी बसर करता था। सेहत का सत्यानाश कर लिया था, वगेरह, वगैरह। लेकिन यह कोई नही सोचेगा कि उसने ऐसा क्यो किया था? ऐसे ही कीट्स ने भी अपने को मार रखा था। बर्न्स ने भी, मोजार्ट ने भी। ओर भी कई नाम गिनवाये जा सकते है। बात यह है कि जब मआशरती (सामाजिक) हालात की वजह से फ़न आर जिदगी एक-दूसरे से बर-सरे-पैकार (सघर्षरत) हो तो दोनो मे से एक की कुरबानी देनी ही पडती है। दूसरी सूरत समझोताबाजी की ह जिसमें दोनो का कुछ हिस्सा कुरबान करना पडता हे ओर तीसरी सूरत इन दोनो को यकजा करके जद्दोजहद का मजमून पैदा करने की हे जो सिर्फ अजीम फनकारो का हिस्सा है। मटो अजीम नही था लेकिन बहुत दयानतदार, बहुत हुनरमद ओर कतई रास्तगो (स्पष्टवादी) था।'

22 मई, 1954 का खत

रोजनबर्ग जोडे की दर्दनाक विपदा, जो अत म उनको छीनकर ले गयी, फेज के लिए एक ऐसा खजर थी जो मानो उनके कलेजे मे उतार दिया गया हो। वह लिखते हैं

'मने रोजनबर्ग जोडे के खुतूत एक ही नशिस्त (बेठक) मे पढ डाले। अगरचे बार-बार, दिल ज्यादा भर आया तो किताब हाथ से रखनी पडी। मे समझता हू कि उनके अल्फ़ाज का साज आर उनकी अज्मत उसी अदीब को नसीब हो सकती है जिसकी मर्ग (मोत) व हयात (जिदगी) ऐसी ही अजीम और दर्दअगेज हो। उनका ओर उनके बच्चो का खयाल आता हे तो अपनी मुसीबत की बात करना (अगरचे यह मुसीबत भी कुछ कम नहीं) बेहूदापन मालूम होता हे।

8 अक्तूबर, 1952 का खत

बडे भाई का गम फेज को काफी दिनो तक सताता रहा जो एक फितरी बात थी लेकिन उन्हान इस दर्द को कोरिया के जियाला से जाड दिया। उनके ही शब्दो म

'शायद ऐसी ही किसी सुबह मे इसी चाद ने इसी जगह से थोडे फासले पर एक तनहा मुसाफिर को पुकारा था आर उसे किसी नामालूम दुनिया म ले गया था, और वह मुसाफिर मरा भाई था। शायद इस वक्त यही चाद ऐसे बहुत से चेहरो पर चमक रहा हे जो मर कर दर्द से आजाद हो चुके ह। कोरिया क कैपा म मकतूल (कत्ल किये गय) कदिया क चेहरे आर य सब मकतूल नाजवान भी मेरे भाई थ।

जब वे जिंदा थे तो ऐसी दूर-दराज सरजमीनों पर जिंदा थे जो मैंने नहीं देखीं लेकिन वे मेरे तन में भी जिंदा थे और मेरे लहू में उनका लहू भी शामिल था। जिन कातिलों ने उन्हें कत्ल किया है, उन्होंने मेरे तन का भी कोई हिस्सा कत्ल किया है और मेरा भी कुछ लहू बहाया है।'

जेल की सलाखें ही फ़ैज के जख्मों को छीलने के लिए काफी थीं, पर मौतों के इस लावे ने उनके दिल को गमों की भट्ठी बना दिया था। हर वह प्यारी हस्ती जो उनके दिल में जगह बनाये हुए थी उनसे दूर-से दूर होती जा रही थी। कोरिया में वर्बरता और ईरान के छात्रों पर दमन आग में घी का काम कर रहा था। फ़ैज इन हादसात के बीच अत्यंत बेचैन भी हुए, तड़पे भी, सिसके भी और जब जज्बात काबू से बाहर होते नजर आये तो उनकी आंखें भी भर आयीं। और यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। गम की एक चिंगारी में भस्म करने की ताक़त होती है, कितने लोग जलती हुई चिता बन जाते हैं, पर फ़ैज ने गमों की भट्ठी से इस लावे को निकालकर और अपने शब्दों को इसी से ढालकर ऐसी रचनाएं पेश कीं जिनको हजारों कयामतें भी तहस-नहस नहीं कर पायेंगी। सच्चाई जो चोट खाये हुए दिल की गहराई से निकलती है वह अमर होती है। एक मुल्क की बात नहीं जहां भी 'सुब्हे-बगावत का गुलशन' फूटेगा, जहां, भी 'उश्शाक के काफिले' निकलेंगे और जहां भी 'लहू की ताल' गूंजेगी, 'ईरानी तुलबा के नाम', 'हम जो तारीक राहों में मारे गये' और 'आ जाओ एफ़्रीका' जियालों के होंठों पर निखरते रहेंगे।

फ़ैज के खतूत की जान है जिंदगी की स्वस्थ मान्यताओं के नग्मे। अपने पहले के खत (18 जून 1951) में वह इनसानों की सोहबत को दुनिया की सबसे अजीज चीज बताते हैं। पत्र में लिखते हैं

'अपने चाहने वालों को किसी चीज की ख़ातिर दुख और अजीयत पहुंचाना, जो खुद को बहुत अजीज हो लेकिन उनके लिए कुछ मानी न रखती हो, गलत और नाजायज बात है। इस नजर से देखो तो विचारधारा इज़्म या उसूलपरस्ती भी खुदगरजी की एक सूरत बन जाती है। इसलिए कि अपने किसी उसूल की धुन में आप यह भूल जाते हैं कि दूसरों को क्या चीज अजीज है और इस तरह अपनी खुशनूदी की ख़ातिर दूसरों का दिल दुखाते हैं।

इसी पत्र में आगे चलकर लिखते हैं

'मैंने यह भी अच्छी तरह महसूस कर लिया है कि आदमी के लिए मुनासिब यही है कि जो कुछ वह है उस पर कनाअत (संतोष) करे और जो कुछ वह नहीं है, वैसा कुछ बनने की कोशिश में वक़्त और मेहनत जाया न करे। इस तरह की कोशिश से हिमाकत और खुदफरेबी के अलावा कुछ हासिल नहीं होता।'

उनका यह पहला खत इन शब्दों के साथ खत्म होता है

'और यह यकीन पहले से भी ज्यादा मोहकम (ठोस) हो चला है कि जिंदगी ख़्वाह (चाह) कुछ भी दिखाये, वह बिल-आख़िर बहुत ख़ूबसूरत शै (वस्तु) भी है और बहुत हसीन भी।

30 अक्तूबर, 1951 का खत

फ़ैज अपनी शादी की दसवीं सालगिरह पर लिखते हैं

'जो लमहा हक व सदाकत की परवरिश में गुजरे वह बजाय खुद (अपने-आप में) खुशी का ऐसा ख़ज़ाना (कोष) बन जाता है जिसे कोई रहज़न लूट नहीं सकता न कोई जाबिर (अत्याचारी) जब्त कर सकता है।

फैज इसी खत मे आगे लिखते हे

'ख्वावो को हकीकत की जजीरो से आजाद नही किया जा सकता। लेकिन इतना जरूर हे कि थोडी देर के लिए आदमी तखय्युल (कल्पना) के बल पर गिर्दो-पेश की दलदल से पाव छुडा सकता है। फरारियत (पलायन) वुरी बात है लेकिन जब हाथ-पाव जकडे हुए हो तो आजादी की वाहिद (अकेली) सूरत यही रह जाती हे। इसी नुस्खे के साथ मुझे जेल की सलाखे बहुत ही हकीर (तुच्छ) ओर बेहकीकत दिखायी देने लगी है ओर बेशतर-आकात (ज्यादातर समय) उनकी तरफ ध्यान ही नही जाता।'

15 जनवरी, 1953 का खत

'विल-आखिर अपनी तसकीन का सरचश्मा, अपनी ही नेकी ओर अच्छाई होती ह जिसका वजूद उस जमाने तक बरहक् (सत्य) हे जव तक दुनिया म नेकी आर अच्छाइ का वजूद बाकी है आर दुनिया म यह जरूर बाकी हे। इसी के तहत सवब सारे जमाने की दुश्मनी के वावजूद वहुत-से लाग दोस्ती करने के लिए भी मिल जाते हे और हर मारक (जग) म आखिरकार जीत नेकी आर दोस्ती की ही हाती है।

22 जनवरी, 1952 खत

'तजिया तहरीर (व्यग्य भरा लेखन) मे एक बात की एहतियास लाजिम ह ओर वह यह कि तलखी या हिकारत जराफत (मजाक) या मजाह (हास्य) पे गालिब (हावी) न हा जाये वरना तहरीर मे बदमिजाजी का रग पेदा हो जाता हे।'

इसी खत म आगे

'सच्चाई ओर इसाफ की जीत तो आखिरकार मुकद्दर ह ओर इसी पर तकिया (भरोसा) करना चाहिए। उम्मीद अफजा (आशावर्धक) अफवाहा पर भरोसा फजूल है लेकिन इनसे यह तो पता चलता हे कि हवा का रुख किधर है ओर लोग क्या सोचते हें। अपने जमीर के अलावा नेकी आर बुराई की कोई अदालते-आलिया (उच्चतम न्यायालय) ह तो वह यही राये-आम्मा (जनमत) होती हे।'

इसी खत के अत म कहते ह

'ओर ये चद राज कितने ही तवील क्यो न हा, आखिर चद ही रोज ह।'

25 मार्च, 1952 का खत

'अगर लडाई मे अपना पल्ला वहुत कमजोर हो तो फिर आदमी वददिली ओर कमहिम्मती एफोर्ड (afford) नहीं कर सकता जिदगी की जद्दोजहद म सिर्फ जद्दोजेहद की काफी नही। यह भी जरूरी हे कि इनसान यह लडाई यशाशत (हसी खुशी) आर खुश-तबई (प्रसन्नचित्त) से लडे ओर अपने पर दर्दमदी आर तरहम (रहम) के जज्वात न तारी हाने द। वरना गनीम (दुश्मन) का पल्ला ओर भी गिरा (भारी) वन जाता हे।'

22 अप्रैल 1952 का खत

'इनफ़रादी (व्यक्तिगत) रज व मलाल के ऐस असवाव भी वहुत ह जो थोडी-सी मुहव्वत शफकत (हमदर्दी) ओर समझ वूझ से अगर दूर नही किये जा सकत तो कमजोर किये जा सकते ह। लेकिन मुहव्वत आर शफ़कत की तलव म पुकारने वाले इतने ज्यादा ह आर दने वाले इतन कम कि दर्दे जिगर

ओर शिकस्ते दिल का मदावा (इलाज) दूर-दूर तक नजर नही आता। बहरहाल उसकी तलाश म तगो-दौ (भोग-दौड) फिर भी लाजिम हे ओर जैसा कि तुमने लिखा हे, अपनी भलाई इसी मे हे कि आदमी दूसरो से नेकी करता रहे। अलबत्ता, इसके एवज मे किसी सिले (इनाम) या एहसानमदी की तवक्को (आशा) न रखनी चाहिए वरना यकीनन मायूसी का सामना होगा। अगर आदमी नेकी के एवज म नेकी की तवक्को रखे तो इसके यह मानी हुए कि दुनिया का निजाम बजाये-खुद नक हे। जाहिर हे कि यह सोच गलत है, इसलिए कि एक नेकोकार निजाम (नेकी करने वाली व्यवस्था) मे सभी को नेक होना चाहिए ओर किसी को खास तोर से नेकी करने के लिए जहमत उठाने की जरूरत न होनी चाहिए।'

6 नवबर, 1952 का खत

'अगर अपना दिल बडा हो तो उसे इस वजह से छोटा नही करना चाहिए कि किसी दूसरे का दिल छोटा हे। दोस्तो के बारे मे अपने मुगालते (भ्रम) या खुशफहमी दूर कर लेना अच्छी बात ह लेकिन उनके छूट जाने पर अपना दिल जलाना या उन पर यह इलजाम धरना कि वह तुम्हारी खुशफहमियो क मुताबिक साबित नही हुए, सही बात नही है। किसी के बारे मे खुशफहमी या मुगालता तो अपनी ही खता होती ह न कि दूसरे की। जो कोई जेसा भी है उसे वेसा ही कबूल कर लेना चाहिए, इसस कता नजर कि तुम्हारे खयाल मे उसे केसा होना चाहिए था, और किसी से भी ज्यादा तवक्को वाबस्ता नहीं करनी चाहिए।'

10 नवबर, 1952 का खत

दुनिया मे दुख इतना ज्यादा ह और अपना अख्तियार इतना कम कि इस दुख से निपटने के लिए अपनी पूरी हिम्मत दरकार हे। इसी सबब उम्मीद की शमा जलाये रखना और भी ज्यादा जरूरी हे।

इसी पत्र म

'हम दूसरो का रज ओर नाखुशी बरदाश्त करने मे तभी इमदाद (मदद का बहुवचन) दे सकते है जब हम अपनी नाखुशी को काबू म रखे। किसी दूसरे को खुश करने का तरीका यही है कि आदमी खुद खुश नजर आये। यह बाज-ओकात (कभी-कभी) मुश्किल तो होता ह लेकिन करना ही चाहिए।

इस तरह, फेज का यह पत्र-सग्रह *सलीबे मेरे दरीचे मे* जिदगी का पेगाम देता हे। जिदगी फेज को बहुत अजीज थी। बुरे से बुरे हालात म व उसी के गीत गाते रह ओर आज मिट्टी म दब होने क बावजूद उनका रिश्ता इसस नहीं टूट सकता। वह कल भी जिदा थे ओर आज भी जिदा ह। चाद को कौन गुल कर सकता हे'?

मो 09971155799

एलिस के खत फैज़ के नाम

नूर जहीर

1941 मे फेज ओर एलिस की शादी हुई। 1938 मे एलिस अपनी वडी वहन क्रिस्टावल से मिलने हिदुस्तान आयी थी जो अमृतसर के एम ए ओ कॉलज के प्रिसिपल डा एम डी तासीर की पत्नी थी। फ्ज इसी कॉलेज मे अध्यापक थे।

शादी के वाद दोनो लाहार म रहने लगे ओर फज 1948 से *पाकिस्तान टाइम्स* म काम करने लगे। पाकिस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी क फेज पहले से सदस्य थे आर 1948 म जब हिदुस्तान से सज्जाद जहीर जनरल सेक्रेटरी बनाकर भेजे गये, तव फेज कम्युनिस्ट पार्टी ओर प्रगतिशील साहित्यिक आदोलन से आर भी आत्मीयता के साथ जुड गये।

9 मार्च 1951 को फज गिरफ्तार किये गये। तीन माह तक किसी को कोई खवर नही थी कि वे क्या गिरफ्तार हुए है, कहा कद हे, जिदा भी ह या नहीं। तीन महीने बाद एलिस का फज से मिलने की इजाजत भी मिली ओर उन पर लगे इल्जामा की फेहरिस्त भी दी गयी। जय फज पर ओर उनके साथ गिरफ्तार दूसरे लोगा पर मुकदमा चला ओर उन्हे हेदरावाद सिध की जेल मे रखा गया, तव एलिस को इजाजत मिली कि वे फेज के साथ ख़त-ओ कितावत कर सकती ह। अप्रेल 1955 म फेज रिहा हुए। इन चार सालो मे लिखे अपने खतो को एलिस ने खुद सपादित करके छपवाया। ये खत अग्रेजी मे ह।

इन चार सालो मे एलिस फैज ने अपनी जिदगी का सवसे मुश्किल इम्तिहान दिया। वह इम्तिहान कि उन्हे यकीन हे उस आदमी पर जिससे उन्हाने अपने वतन से हजारा मील दूर सभ्यता ओर सस्कृति के फासले पार करके मोहव्वत की थी, एक मा की जिम्मेदारी के साथ साथ एक पिता के फज भी अदा करने की ओर सबसे वढकर यह सावित करने कि वे एक मुखालिफ माहोल म इज्जत आर आत्मसम्मान के साथ जी सकती हे। ये खत सुवूत ह उनके इस इम्तिहान म खरे उतरने के, इस जद्दोजहद म वरावरी की हिस्सेदारी के।

ये ख़त इसलिए लिखे गये कि फैज को इत्मीनान रहे कि उनका परिवार हिम्मत के साथ, जुदाई ओर अन्याय के वार सह रहा ह, ओर उसी तरह डटा हुआ ह जेसा कि फज खुद चाहते थे। यह ख़त, एक कोशिश ह कुछ लम्हो के लिए फैज को जेल की कोठरी से निकालकार अपना की सगत मे ले आने की, ओर उनमे आने वाले कल के रोशन ओर ख़ूवसूरत होन की उम्मीद को पुख्ता करने की।

एलिस के ये ख़त, उनकी निजी पीडा को पूरी तरह रेखांकित तो नही करते, लेकिन अपने हालात की गुलावी तस्वीर भी नही खीचते। एलिस जानती थी कि फेज को भुलावे म नहीं रखा जा सकता।

इसीलिए यह खत सीधे, सच्चे और ईमानदार हैं। ये खत पाठक की मुलाकात उस औरत से करवाते हैं जिसका दिल मोम का सही मगर इरादा इस्पात के हैं।

जब एलिस ने इन खतों को छपवाने के खयाल से संपादित किया तो जानबूझ कर सबोधन हटा दिया। खतों के अंत से अपना नाम भी हटा दिया। ये किसी इंकलाबी का लिखे हुए खत हो सकते हैं क्योंकि जब सामाजिक न्याय की लडाई जारी है कहीं न कहीं, कोई न कोई जरूर शासकों का अत्याचार सहकर सलाखों में बंद यातनाएं झेल रहा होगा और बाहर से उससे मोहब्बत करने वाले इसी तरह के खतों के जरिए उसे जिंदा रहने में सहायता कर रहे होंगे।

इन खतों को पढ़कर अंधेरे में उजाला सा फैलता महसूस होता है। जब संघर्ष की शिद्दत या नाकामी घाव बनकर सालती है तब ये खत मरहम का काम करते हैं जो केवल तकलीफ से निजात नहीं दिलाते, आगे बढ़ते रहने की ताकत को भी जिंदा रखते हैं।

(नूर जहीर)

21 9 51

जुमे को तो सुर्ख़ अक्षरों में लिख देना चाहिए। हर जुमे को तुम्हारा खत पाती हूं। आज तीसरी बार ऐसा हुआ। हर लफ्ज को पढ़कर उसे टटोलती हू, छूती हू, तुम्हे उसको लिखते हुए कल्पना करती हूं।

तुम्हारी जेल कोठरी, वह बिल्ली का बच्चा, तुम्हारी कॉफीदानी सब कुछ हम भी कितना परिचित लगता है। मैं और बच्चियां, तुम्हारे हिस्से वाली दुनिया में होने वाली हर घटना पर बात करते हैं। और बगैर भावुक हुए उसे अपनी दुनिया से जोडने की कोशिश करते हैं। इतने इतने मील दूर।

कल मेरा जन्म दिन है और मेरे चारों ओर खुसुर-फुसुर चल रही है। बाली (फ़ैज की रिश्ते की बहन) तुम्हारी गैरमौजूदगी की कमी को, मुझे लाड प्यार से बिगाडकर पूरा कर रही है। मैंने उसे बताया नहीं कि तुम तो एक माह पहले ही मुझे जन्मदिन की बधाई दे चुके हो। मीजू (छोटी बेटी मुनीजा) की सालगिरह के धोखे में जो मुझसे ठीक एक महीने पहले पडती है।

हमारा आना अक्टूबर के दूसरे हफ्ते में होगा, बजाय पहले के। इससे बच्चियों को स्कूल से कम दिन गैरहाजिर होना पडेगा। उनकी प्रिंसिपल एक मादा राक्षस है जो उनके आने जाने पर कडी नजर रखता है। तुम्हारे लिए क्या लाये? कोई ऐश या मजा करने की चीज बताओ। कुछ नहीं मांगोगे तो बच्चियों की खुशी अधूरी रह जायेगी। बस सिगरेट के डिब्बे ना मांगना। कुछ खाने की चीजे लायें। मिठाई? बिस्कुट? जेम? बताओ ना क्या?

जेल वाले पैसों की बाबत मेरे खयाल से उस वक्त के हिंदुस्तान में, 1818 में, जेलर और आई जी जेल आज के जैसे रहे होंगे। जब उन्होंने इतना कुछ हडप लिया है तो चंद रुपयों को कोई क्या कहे? उन्होंने हमसे तुम्हे छीन लिया है तुमसे हम लोगों को छीन लिया है। बाकी सब बस रहने ही दो। शायद मुझे यह लिख भेजना चाहिए कि उन पैसों को तुम्हारे खाते में जमा कर दिया जाय ताकि आगे कभी तुम्हारे काम आयें।

क्या लडकियां तुम्हारी बिल्ली का बच्चा ला सकती हैं? वे बहुत मिन्नत कर रही हैं। हमारे पहुंचने से पहले पूछ लेना कि क्या हम उसे यहां ला सकते हैं। हां, इतना खयाल रखना कि मुकदमे का खुफिया ऐक्ट इससे खतरे में न पड जाये।

कुछ दिलचस्प कहानिया हे पर जब मिलेगे तो सुनाऊगी। ससर कमबख्त का मनोरजन क्यो करू। पता नहीं छह महीने की जुदाई के बाद तुम हमे केसा पाओगे। मुझे शायद काफी पतला पाओ, क्योकि साइकल पर दफ्तर आती जाती हू और भूख भी घट गयी है। तुम्हारी ताकीद याद रखने की कोशिश करती हू 'खाना एक शारीरिक जरूरत हे।'

हाल ही म जहागीर खान ने कहीं कहा कि तुम्हारे बच्चे हमेशा के लिए कलकित हो गये, कि वे एक देशद्रोही के बच्चे हे। ताहिरा (कामरेड ताहिरा अली, तारीक अली की मा) के शब्दा मे कहू तो मेरा तो हसते-हसते पेट फट गया। मेरे खयाल से तो हमारे बच्चे बिल्कुल बेदाग होग। उन्होने कभी हम बेइमानी, जालसाजी करते, रिश्वत लेते, अन्याय करते, यहा तक कि झूठ बोलते भी नहीं देखा जो वे दूसरा का अक्सर देखते हे।

हर किस्म के लोग तुम्ह प्यार भेज रहे ह। देर हो गयी ह ओर तुम्हारी तरह कल मेरा भी दफ्तर है। (फ़ेज सुबह से शाम, मुकद्दमे मे मोजूद रहने को मजाक म दफ्तर जाना कहते थे।)

28 8 51

तुम्हारे 24 के खत को देखकर हसी आयी। तुमने लिफाफे पर अर्जेन्ट लिखा हे तुम अब हमारी दुनिया के नहीं रह कामरेड भूल गये क्या कि पोस्टल डिपार्टमेट किस रफ्तार से काम करता हे?

सबसे पहले तो यह सफाई दू कि अक्टूबर के दूसरे हफ्ते म क्यो नही आ सकती चीसी (बडी बेटी सलीमा) के स्कूल म दाखिले का खर्च हे आर उससे भी अहम बात यह हे कि दफ्तर का काम नही निबट पाया ह। दो हफ्ते की 'कापी' तयार छोड़नी पडेगी आर यह मुमकिन ही नही हो पाया। बस एक हफ्ते की बात और ह। जहा इतना इतजार किया ह वहा कुछ दिन तो कर ही जायेगे।

तुम्हारे खत से हिम्मत बढी। जानते हो इस सारे गम ने कही न कही जिदगी सहल बना दी हे। यह समझ म आ गया ह कि सच ओर अपने ऐतमाद के अलावा आर कुछ माने नहीं रखता हे। सारा छुटभइयापन ओर झगडे झमेले खत्म हो गये है। आर जा सही है जो न्यायपूर्ण हे उसके लिए जिदा हू। म चाहती हू कि बच्चिया इस सबकी कुरूपता को हमारे चारा तरफ की सडाध को न महसूस कर। जो जरा सी भी सच्चाइ या साफगोई दिखायी दे उसका शुक्र मनाना चाहिए।

हाल ही म हसने का जी चाहा सो स्टीफन लीकाक उलटा पलटा। एक ओर खयाल जो ढाढस बधाता हे वह ह क्रिस* कितनी ज्यादा बहादुर ह वह। कभी कभी तो उसे जद्दोजहद म बहादुरी से जुटे देखकर होने वाली तकलीफ को सहना मुश्किल हो जाता हे। शायद तुम सही कहते हो कि दुख हममे से सबसे नाचीज के भीतर भी किरदार की वह गहराई पेदा करता हे कि देखने वाले हेरान रह जाते हे।

अमीना** ने अपने यहा कराची रहने को बुलाया है। हमारी जिदगी म उसका अनोखा ही रोल रहा हे, है ना? उम्मीद हे म उसके सामने रो न पडू आर खुद को शरमिदा न करू शिमला वह बाते याद हे जो हमारे आने वाली शादी के बारे मे उससे की थीं आर इतने कम पेसो मे क्या कुछ हो पायेगा या नहीं हो पायेगा। ओर दिल्ली मे अपना हनीमून वह एक रात अमीना के यहा वह लोधी रोड का

क्रिस एलिस की बडी बहन कामरेड डा एम डी तासीर की पत्नी

अमीना बेगम अमीना मजीद मलिक दोस्त ओर हमदर्द कर्नल मजीद मलिक की पत्नी

रूमानी महल ओर अमीना हमारे इतनी पास। और बीच का बाकी सब राउज एवेन्यू आर मीर दद लेन अमीना जो बजाते खुद एक इदारा हे। पत्ता चला है कि वह हमार लिए फिक्रमद रहती है। उसे याद दिलाना हे कि हम ऐग्लो सक्सन किस मिट्टी के बने ह।

पाकिस्तान टाइम्स के कुछ मुलाजिम मुझसे बात करने म गडबडा जाते ह और मुझे 'सर' कह बैठत ह। बेचारे बुजुर्ग बख़्श साहब तो हर जुमले मे एहतियातन 'सर' ओर 'मडम' दोना लगा देते ह।

बच्चिया तुम्हारे लिए कुछ खास ल जाने के ख़याल से बेहद खुश हे ह कि मीजू तब से ख़फा हे जब से मने बताया कि तुम्हे दूसर कैदिया के साथ बाट कर खाना होगा। मने उसे समझाने की कोशिश की है कि ऐसा करना क्यो जरूरी है। लेकिन वह बडबडाये जा रही ह। अपनी अग्रज़ी की टीचर के उच्चारण की नकल करती हे ओर अपने आपको बडी तोप चीज समझती है। बताती है क्लास क सारे लडके उसक दोस्त ह। न जाने किस पर पडी ह।

हैदराबाद से ख़बरो पर मुकम्मल पाबदी हे। पूरा ब्लक आउट लाग बेहद गुस्स म ह अफवाहो का बाजार गर्म है

22 10 51

मुझे यकीन है कि तुम इस खबर के इतजार म हो कि हम लोग खेरियत से पहुच गये। पहुच तो गये एक लबे लबे सफर क बाद जिसके बारे मे कोई नही कह सकता कि वह जरा सा भी खुशगवार था। अब कभी पजाब को बुरा भला नहीं कहूगी। सिध क लब, चटियल, रेगिस्तान के मुकाबले तो यह जन्नत है। हमारी मुलाकात ख़्वाब सी लगती हे। पल भर मे खत्म। ओर अब दिल को घेरता अकेलेपन का अधेरा लेकिन हम बहादुर होना होगा तुम्हारी तरह तुम्हे देख भर लेने से हमे कैसा सुकून मिला है हालाकि यह कोई नही जानता कि तुम्हारे मुस्कुरात हुए बाहर के भीतर क्या चल रहा हे। आने वाले साल यकीनन वे हमारे इतजार मे खडे हे। तुम्हारी कूवत-ए-बर्दाश्त आर हमारा इतजार याद आयेगा म इस इतजार म धैर्य नही रख पाती अपने दुख पर तो झुझला पडती ही हू, दूसरा का दुख भी दख नही पाती। घर पहुचे तो तुम्हारा खत इतजार करता हुआ मिला घर लोटना कम दुखदायक रहा।

बच्चियो को देख तुम्ह कैसा लगा? बहुत कुछ आर कह सकती थी, लेकिन एक ता इतनी बडी मेज थी बीच मे और उबासी लेत हुए वाडन घेरे हुए थे। अभी भी आखो के सामने तुम्हारी गोद मे लेटी तुम्हारे बाल सहलाती मीजू दिखायी दती है। शायद वह तुम्हारा चेहरा भूल गयी थी और हर नक्श फिर से टटोलकर याद रख रही थी। वे चद दिन और उनकी यादे हम आने वाले महीनो मे जिदा रखेगी।

नवाजिश (एलिस के वकील) स्टेशन पर मिले और राना (एक अजीज दोस्त) मुलतान मे। दोना रास्ते के लिए शानदार दावत बाधकर लाये थे।

हा म तुम्हे चेखव के ड्रामे भेज दूगी। 'ऐवरी मन सीरीज ने छापा है मुझे याद हे 1938 म हिदुस्तान आने से कुछ दिन पहले मेने 'थ्री सिस्टर्स का शो देखा था। शानदार प्राडक्शन था और उसम उस वक्त के बेहतरीन कलाकारा ने काम किया था।

चीमी को उसका ख़त बहुत अच्छा लगा। मीजू अचानक चिल्ला पडी यह याद करके कि तुमने उसे जेल की आईस्क्रीम तो खिलायी ही नहीं। तुम जरा वक्त निकालकर बानी का एक खत लिख देना। वह इतनी खुशी ओर गर्व महसूस करती हे तुम्हारा ख़त पाकर।

शामे इतनी अधेरी हो चली हे कि घर वेठने के अलावा कुछ करना मुमकिन नहीं हे   जैसे शरीफ पाकिस्तानी अमीरजादिया

3 11 51

गर्मिया ह कि गुजर जाने का नाम ही नही लेती। तुम तो अपने अजीज लाहौर को पहचानोगे ही नहीं। नववर की सुवहे तो ठडी ओर रोशन होनी चाहिए, जो गर्मियो से थके-मादे जिस्मो ओर दिलो को राहत पहुचा सके। लेकिन ऐसा हे नही। वस कहने भर को ठड होती हे।   तो तुम लोग आजकल इत्र लगे तकियो पर सो रहे हो? तभी तो तुम वदमाशो को घर लोटने की जल्दी नहीं है   ना जाने तुम लोग अपनी पुरानी, घिसी हुई वीवियो के बारे म क्या सोचोगे जो तुम्हे जेल के इत्रो के वगैर मिलगी?

तुम्हारे पब्लिशर ने तुम्हारी दो नयी नज्मे, वगर इजाजत के, 'अदब-ए-लतीफ' म छाप दी है। कहता फिरता हे कि वह हैदरावाद गया था आर वहा तुमने खुद उसे दी थी। क्या वकील से वात करू? तुम्हारी फ्रासीसी मे तरक्की के वारे मे जानकर अच्छा लगा। लेकिन बहुत तेज ना दोडना। किसी हलके मे तो मे तुमसे आगे रहू   यह फ्रासीसी भाषा ही क्यो न हा (ओर वच्चे पेदा कर पाने का कुदरती हक)।

क्या तुमने मोपासा की वात की? क्या वात है! जनाव को यह खयाल क्योकर आया! देखती हू अगर कोई आसान फ्रासीसी वाला एडीशन मिल जाये

प्रस्तुति एव अनुवाद   नूर जहीर
मो   9811772361

रज़िया सज्जाद ज़हीर के नाम फ़ैज़ का एक ख़त

फ़ैज की दिल की बीमारी सुनकर सज्जाद जहीर की बेगम रजिया जहीर ने उनका हाल चाल पूछा था। फ़ैज इसमें इशारो से अपनी बीमारी की बाबत बताते है लेकिन शब्दावली ऐसी है कि सामान्य पाठक समझ नहीं सकता। गौरतलब है कि फ़ैज दिल की बीमारी जैसे शदीद अजाब का भी किस कदर मजाक उडा सकते है। यह ख़त उनकी हास्य व्यग्य की शक्ति का अद्भुत उदाहरण है। —स

सेंट्रल जल
हैदराबाद, सिंध
22 मई

प्यारी रजिया भाभी - सलाम और प्यार

बहुत दिनो में आपका ख़त देखने में आया। दिल बहुत खुश हुआ। कुछ खुशी कि आप अपने को खतो के बारे मे मेरा मकरूज[1] समझती ह अगरचे मुझे पूरा यकीन है कि आपका एक आध खत मेरे जिम्मे है। 'हिसाब-दोस्ता पर दिल' रखने मे सबसे बडा फायदा यही ह कि हिसाब किसी को याद नहीं रहता और मुझ जैसे नादेहद[2] लोग अक्सर नफे म रहते ह, फिर यह भी है कि अगर कोई ज्यादा हिसाबदानी जतलाय तो हम कह सकते है कि यह दोस्ती नहीं बनियापन ह। आपकी मिजाजपुरसी का शुक्रिया लेकिन आपकी मालूमात सब गलत ह पहली बात तो यह है कि म साहबे-फराश[3] बिल्कुल भी नहीं हू दूसरी बात यह कि मेरा मेदा बिल्कुल वर्किंग आडर म है। आपकी इस बात से भी इकार नही कि यह इत्तला आपको उनसे पहुची है, मेने ऐतराज किया था कि आप इतनी जरा सी बात भी ठीक से रिपोर्ट नहीं कर सकते उन्होंने जवाब मे कहा--बस साबित हुआ कि हमारी वो हमारे ख़त को बिल्कुल एहतियात स नहीं पढतीं क्योंकि हमारी रिर्पोताज बिल्कुल मुख़्तलिफ थी--तो किस्सा दुश्मना की नासाजिए तबा[4] का यह है कि दो-तीन माह पहले एक दिन सुबह हम अच्छे खासे अपने पलग से उठे, मेज स पानी उठाने के लिए हाथ बढाया ही था कि कुछ 'इस्तेगराक'[5] की केफियत तारी हो गयी। जब यह कश्फ का आलम ख़त्म हुआ तो देखते क्या है कि तने मजर फर्शे खाकी से हमकिनार है और बाली पर अहबाब मुजतरिब

---

1 कर्जमंद
2 न देनेवाला
3 पतंगे की तरह जल मरने वाला का नायक
4 तबीयत की खराबी
5 तल्लीनता

र बेताब खडे है। ये लोग मुझे कुछ इस अंदाज से तक रहे थे कि मुझे देखते ही हँसी आ गयी, जब से अब तक डॉक्टरो की तहवील[6] मे हू। पहले Low blood pressure और anaemia तशख़ीस हुआ, फिर पता चला कि दिल कुछ जरूरत से ज्यादा कुशादा[7] हो गया है, फिर एक कान मे बहुत जोरों की सोजिश[8] हो गयी वगैरह। अभी दो चार दिन की बात है कि एक दाढ के ऊपर infection हो जाने से दिन मे तारे दिखायी दे रहे थे। शाम को आपके मिया मेरे पास बैठे थे। मैने कहा, हजरत गौर फरमाइए उस शख़्स की कैफियत पर कि एक शाम वीनस (Venus) उसके हुजरे मे उतर आये और कहे कि आज रात मे तुम्हारी हू, लेकिन उसी शाम उस शख़्स के कान या दात मे जोरों का दर्द हो—वह अपने मख़सूस अंदाज मे बोले कि इन हालात मे कोशिश तो बहरहाल यही होनी चाहिए कि किसी और दिन के लिए Appointment करनी चाहिए लेकिन मुझे यकीन है कि अगर दर्द काफी तेज है तो आदमी दूसरी Appointment की बहस और तकरार मे नही पडेगा यानी आप जरा गौर कीजिए कि जरा सा कान का दर्द एक तरफ और हेलेन का अथाह हुस्नो-जमाल दूसरी तरफ, और यह हकीर दर्द उस पर भारी है, फिर भी लोग कहते है कि तुम materialist क्यो हो? हा तो मे साहबे-फराश नहीं हू, सिर्फ इतना है कि कोई न कोई छोटा मोटा पुर्जा आजकल बिगडा रहता है जिससे मुझे सख़्त इख़्तेलाफ है। बात यह कि बीमारी के बारे मे मेरा मिजाज बिल्कुल गैर शायराना है और ख़ालिस 'पंजाबियाना' है और मे डाक्टर और दवाई को करीब भी फटकने नही देता। गुजश्ता दो तीन माह पहले जब हमारे नौजवान दोस्तो में से कोई सर पकड, कोई पेट पकडे दिखायी देता था तो हम उसकी जवानी पर अक्सर लान तान[9] किया करते थे, आज कल ये सब लोग खूब बगले बजा रहे है।

लाहौल विला कूवत क्या फुजूल मजमून शुरू हो गया। मुझे अफसोस है कि आपके यहा दस्ते-सबा अच्छी नही छपी। आप हिदुस्तानी लोग हमेशा अपनी नफ़ासत और सलीक़े का नक्कारा पीटते रहे लेकिन कुछ समझ मे नहीं आता कि आप ढब से किताब क्यो नही छाप सकते। तो कुलसूम[10] के कहने पर वहा भी कयास आराइया हुई है, यहा भी हो रही है, इसीलिए तो लिखा था— आप कही पास हो ना कान मे कह दू कि कौन है, ख़त मे लिखना ठीक नही, गप के लिए एक अच्छा खासा मजमून क्यो ख्वाहमख्वाह खत्म किया जाये। वैसे बात यह है कि जब शायर मोहब्बत की बात करते है तो रूए सुखन[11] किसी एक तरफ नहीं होता। इसमे सभी मोहब्बत शामिल होती है, मे तो यहा तक कहने को तैयार हू कि आशिक़ाना शेर अपनी सब हसीन मुलाक़ातो के अलावा माजी, हाल और मुस्तकबिल[12] की सब हसीन औरतो के नाम लिखा जाता है ख़्वाह वह कही भी हो।

आपने पूछा है कि लखनऊ मैने देखा है या नही देखा तो जरूर है लेकिन ज्यादा देखने की हवस है। लखनऊ मे कई दफा गया (दो तीन दिन के लिए आपके घर मे भी रह चुका हू) लेकिन कभी भी

---

6 हवाले
7 व्यापक फैल गया है
8 सूजन
9 हसी और व्यग्य
10 फैज की पत्नी एलिस का नाम
11 अतीत वर्तमान और भविष्य
12 कविता का मुह

रज़िया सज्जाद जहीर के नाम फ़ैज़ का

फैज की दिल की बीमारी सुनकर सज्जाद जहीर की बेगम रजिया जहीर ने उनका ग
इशारो से अपनी बीमारी की बावत बताते है लेकिन शब्दावली ऐसी है कि सामान्य
गौरतलब है कि फैज दिल की बीमारी जैसे शदीद अजाब का भी किस कदर मजाक उ
हास्य-व्यग्य की शक्ति का अद्भुत उदाहरण है। --स

प्यारी रजिया भाभी - सलाम ओर प्यार

बहुत दिनो म आपका खत देखने म आया। दिल बहुत खुश हुआ। कुछ
खतो के बारे म मेरा मकरूज[1] समझती हे अगरचे मुझे पूरा यकीन हे कि आपन
हे। 'हिसाबे-दोस्ता पर दिल' रखने मे सबसे बडा फायदा यही हे कि हिसाब
और मुझ जेसे नादेहद[2] लोग अक्सर नफे मे रहते हे, फिर यह भी है कि अ
जतलाये तो हम कह सकते हे कि यह दोस्ती नहीं बनियापन है। आपकी मिज
आपकी मालूमात सब गलत हे, पहली बात तो यह हे कि म साहबे-फराश
बात यह कि मेरा मेदा बिल्कुल वकिंग आर्डर मे है। आपकी इस बात से
आपको उनमे पहुची हे, मेने ऐतराज किया था कि आप इतनी जरा सी बात
सकत, उन्होने जवाब मे कहा--बस साबित हुआ कि हमारी वो हमारे खत व
पढती क्योंकि हमारी रिपोंताज बिल्कुल मुख्तलिफ थी--तो किस्सा दुश्मनो
है कि दो तीन माह पहले एक दिन सुबह हम अच्छे खासे अपने पलग से
लिए हाथ बढाया ही था कि कुछ 'इस्तेगराक'[5] की कैफियत तारी हो गयी
खत्म हुआ तो देखते क्या हे कि तने-नजर फर्श खाकी से हमकिनार है अ

---

1 कर्जमद
2 न देनेवाला
3 पतगे की तरह जल मरने वाला का नायक
4 तबीयत की खराबी
5 तल्लीनता

एक आध दिन से ज्यादा रुक नहीं सका, हर बार तस्कीन के बजाय प्यास का एहसास लेकर लौटा हूं लेकिन उसके बावजूद लखनऊ की ऐसी याद दिल में है जिनसे आज भी तस्कीन होती है, मिसाल के तौर पर एक पतली सी गली में एक बिल्कुल बसरो सामा और बेचिराग कमरे की याद है जहा मन मजाज अली सरदार, जज्बी, मख्दूम, जॉनिसार अख्तर वगैरह के साथ एक रात गुजारी थी लेकिन वह तो शायद लखनऊ की रात न थी हारू रशीद के बगदाद या आजकल के समरकन्द की रात थी। वह रात तो कदीम चजा की भी हो सकती थी और आजकल के पीकिंग की भी यानी हर उस खित्ते की रात जहा मोहब्बत और दोस्ती और हुस्नो फन का राज हो।

अच्छा साहब बहुत सी बात हो गयीं – आप कहिए कि आप यहा आयगी या नहीं, हर महीने दो महीने के बाद गुलगुला होता है कि–उगलिया सर्व[13] उठाते हैं कि वो आते हैं–'फिर सन्नाटा छा जाता है। यानी लोग उस शेर आया शेर आया से बिल्कुल आजिज आ गये है। आपने आशिकाना अशआर की फरमाइश की है लेकिन आजकल आशिकी का बिल्कुल मूड नहीं है। यू तुकबंदी तो हर वक्त की जा सकती है मसलन–

तमाम शब दिले-वहशी तलाश करता है।
हर एक सदा मे तेरे हर्फे-लुत्फ का आहंग।

हर एक सुब्ह मिलाती है बार बार नजर
तेरे दहन से हर इक लाला-ओ गुलाब का रंग

या

तुम्हारे हुस्न से रहती है हमकिनार नजर
तुम्हारी याद से दिल हमकलाम रहता है

लेकिन यह भला कोई बात है – अब खुदा हाफिज। सब दोस्तो को सलाम व प्यार।

फकत

फैज

उर्दू से हिंदी अली अहमद फातमी

13 सरो नामक लंबा पेड़

ज़बान सरकारों से नहीं, लोगो से चलती है

इब्बार रब्बी से बातचीत

1978 म फ़ेज अहमद 'फेज' भारत आये। चर्चा थी कि वह भुट्टो के बहुत करीब है, इसलिए पाकिस्तान मे सैनिक शासन उन्हे बरदाश्त नही करेगा। यह भी चर्चा थी कि वह पाकिस्तान से भागकर भूमिगत हो गये है। यह भी सुनने म आया कि दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय मे उन्ह काई पद प्रदान किया जा रहा है।

मन तभी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय म उन्ह पहली बार देखा। उनके बारे मे तरह तरह की बाते प्रचारित थी। वह पाकिस्तान जाने से पहले भारत मे लाकप्रियता की चोटी पर थे। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय मे उस दिन भारी भीड थी। हिदी-उर्दू के हर आयु के साहित्यकार वहा मोजूद थे। फ़ैज का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। पर मुझे उन्हे देखकर बहुत निराशा हुई क्योंकि वह सफारी सूट पहने थे। किसी भी तरह वह शायर नही लगते थे। किसी बडी फर्म के मेनेजिग डाइरेक्टर भले लगते हो पर तरक्कीपसद शायर उन्हे देखकर नही कहा जा सकता था। पर इस निराशा ने मुझे नयी आशा दी कि सच्चा कवि, कवि दिखायी देने की कोशिश क्यो करे, जैसा भी है वैसा ही रहे खर जब उन्होने अपनी नज्मे और गजले भी बिना तरन्नुम के पढी नही, कह दी तो और भी मायूसी छा गयी मुझ पर, यानी इन्हें जरा भी अपने को पेश करने की जरूरत महसूस नही होती। इतनी भारी भीड, इतने सार लोग इन्ह देखना-सुनना चाहते है पर फेज साहब मे शायरो वाली कोई अदा ही नही, कुछ नही।

लोगो ने 'तरन्नुम से पढिए शोर भी किया, पर वे जेसे मन ही मन कुछ कह रहे हो। सारी पुरानी नज्म सुना गये। उनकी गजलो के मने रिकार्ड सुने थे, वे सब कानो मे गूजने लगे, पर फेज साहब थे कि बाजार भाव की तरह ऐसे ही कुछ कहे जा रहे थे। वे धीरे-धीरे बोल रहे थे। लोग सुन रहे ह या नहीं इसकी परवाह नहीं कर रहे थे। कोई लाइन पूरी पढी कोई अधूरी, कोई मुह म ही चबा गये। उनकी आवाज बहुत भारी थी। वे खुद पर मजाक भी कर रहे थे, पर सारी बात साफ-साफ सुनायी दे—ऐसी कोई कोशिश उनकी नही थी। बाद म उन्होने अपनी नवीनतम रचनाए सुनायीं जो पजाबी म थी। फेज को देखना ओर सुनना एक अनुभव था।

फिर वे कइ बार भारत आये। जगह-जगह उनका स्वागत हुआ ओर दिल्ली म कइ जगह मने उन्हे देखा ओर सुना। अपन पुराने दोस्तो से मिलने आया हू' हर जगह व यही कहते थे। उन्ही दिना भाई भीष्म साहनी का फोन आया कि फेज साहब आय हुए ह, आप उनसे इटरव्यू कर लो। उन्हाने समय ले लिया था। 1 मई 1980 को म इंडिया इटरनेशनल सेटर मे शाम के वक्त फेज साहब से मिला। व

वाहर रिसेप्शन के पास वेठे थे। उनसे मिलने कुछ लाग आये थ, वे भी वही थे। वही जल्दी-जल्दी म वाहर उनसे वातचीत हुई। वे लगातार किग साइज सिगरेट पी रहे थे।

मे कठिन अरवी-फारसी नही समझ सकता था आर मने सोचा कि शायद हिंदी वे ठीक से नही वोल पायेगे, इसलिए सारी वातचीत अग्रेजी के टूटे-फूट प्रयागा के माध्यम से हुइ, जिसे हिंदी मे लिख दिया ह। मने उनकी पजावी की नवीनतम कविताआ के वारे मे पूछा तो कहने लगे—'जवानी म मने पजावी म नही लिखा। अभी किसी ने कहा कि आप पजावी मे लिख सकते है? तो मने लिख दिया।'

उन्हाने वताया कि 1942 से पहल वे अमृतसर और लाहोर म रहे। 1942 से 1946 तक वे दिल्ली म लोदी रोड के पास रहते थे। फोज म वे कनल थे, पर मोर्चे पर उन्ह कभी नही भजा गया। वैसे फौज म वर्मा तक गय थे।

1942 की दिल्ली आर 1980 की दिल्ली के वारे म उनका कहना था कि, यह शहर अव पहचाना नही जाता। तव नयी ओर पुरानी दोनो दिल्ली की सीमाए थी कि कहा शहर खत्म होता है आर कहा शुरू, पर अव तो कुछ पता नही चलता। पहले यहा सिर्फ दिल्ली क लाग थ, अव तो हर प्रात स हर जगह के लोग ह। तव दिल्ली का करेक्टर आर किस्म का था, हर मोहल्ले की अपनी शख्सियत थी। तव हर मोहल्ले का लहजा अलग था कूचा पंडित वल्लीमारान वगरह। हर गली की अपनी तारीख ओर केरेक्टर था, जो खत्म हो गया। 1947 मे फसाद हुआ। लोग उठ गये, वहुत से पाकिस्तान चले गये।

उन दिनो हिंदी-उर्द के अच्छे शायर दिल्ली म थे। ऑल इडिया रडिया की वजह से सव यही थे, जेसे हफीज जालधरी, हरीचद अख्तर, पतरस वुखारी वगरह। उन दिना के 4-5 सालो म सारे मुल्क के अदव का मरकज दिल्ली थी। 1857 म भी दिल्ली अदव का मरकज थी। आजादी के आसपास के वरसा म दिल्ली फिर मरकज हो गयी थी। विभाजन क वाद गडवड हो गया।

लेकिन, अव फिर दिल्ली मरकज वन रही हे। अव नक्शा मुख्तलिफ हे। 'अव दिल्ली अदव का मरकज तो हे पर उर्दू अदव का नही। अव यह मरकज कास्मोपालिटन हो गया ह।

'दिल्ली क वे दिन वेहतर थे या अव वेहतर ह', यह पूछन पर उन्हान कहा कि 'इसे अच्छा या वुरा नही कहना चाहिए पर दिल्ली हिंदुस्तानी कल्चर की प्रतिनिधि हे। तव दिल्ली का अदवी माहोल परपरागत ज्यादा था, अव प्रगतिशील आर कल्पनाशील अधिक हे। आज का माहोल अधिक डाइनमिक ओर प्रतिनिधि हे।'

'क्या आप अव पुरानी दिल्ली की उन गलियो म गये थे?' पूछन पर उन्होने कहा 'अव उन गलिया म जाकर क्या कर? अव वहा कोइ सूरत नजर नही आती।'

दिल्ली उन दिनो उर्दू का सेटर थी। अव लाहार आर कलकत्ता उर्दू के सेटर हे। कलकत्ता म अव उर्दू का नया मेटर उभर रहा है। वहा सरकार उर्दू को सरक्षण दे रही हे। वहा उर्दू म नारे आर इश्तहार नजर आते ह।

उर्दू दिल्ली के वाद कलकत्ता म ही पनपी थी। वही पहला कॉलज खुला। मीर अम्मन वगरह वहीं थ। पहली किताबे वहीं लिखी गयीं। वहा गालिव ने अपनी मसनवी लिखी। कलकत्ता की वह परपरा वीच मे खत्म हो गयी थी, उसे अव पुनर्जीवित किया जा रहा हे। अभी हम लोग कलकत्ता गये ता मदान म जलसा हुआ। उसमे सात आठ हजार लोग थ।

कलकत्ता से उर्दू के चार अखवार निकलने है। वगाल म जवान को लेकर कोइ भदभाव नहा ह।

यहा थोडा हिंदी या पजाबी का झगडा हो भी जाता है, पर वहा ऐसा कुछ नही हे। सरकार जबान के बारे मे दखल नही देती।

'क्या हिंदुस्तान म उर्दू खत्म हो रही ह।?' यह पूछने पर फेज साहब न कहा–'हिंदुस्तान म उर्दू खत्म नहीं हो रही है। जबान सरकार स नही चलती, वह लोगा स चलती है। वह लोगो की जरूरत है, सरकार ने उसे पदा नही किया। जब उर्दू पदा हुई तब सरकारी जबान फारसी थी। मुगलो के समय म उर्दू नही पढायी जाती थी। उसे लोगो ने पेदा किया।'

बातचीत अभी रग पर भी नहीं आयी थी कि सगीतकार अनिल विश्वास आ गये थ। किसी दूतावास के कुछ लोग भी आ गये। उनके पास बोतल भी थी। फज साहब का मन उखडने लगा। अनिल विश्वास उनके पुराने दोस्त हे। दोनो गले मिले। उनका चेहरा चमक रहा था। बातचीत करना अब मुश्किल था। इसलिए अगले दिन मिलना तय हुआ।

अगले दिन, यानी 2 मई को, शाम के वक्त फेज साहब के पास इंडिया इटरनेशनल सेटर पहुचा तो वे अपने कमरे म ले गये। दो पलग बिछे थे। पीछे सोफे पर उनकी पत्नी किसी भारतीय महिला मित्र स बातचीत कर रही थीं। उक्त महिला मित्र श्रीमती इदिरा गाधी की करीबी दोस्त थीं। आदमकद ड्रेसिंग टेबिल के पास तरह-तरह के नेल पालिश, लिपस्टिक और अन्य विदेशी सौदर्य प्रसाधन बिखरे थ। फैज साहब बेगम साहिबा की तरफ पीठ करके बैठ गय। व लगातार सिगरेट फूक रहे थे। आज भी कल जेसी ही जल्दबाजी और हडबडी थी कि किसी तरह इस मुसीबत से छूटे तो राहत हो। आज के उर्दू अदब के बारे म पूछा तो कहने लगे–'बहुत मुश्किल ह कुछ कहना। अदब दो तरह से पेदा होते है। एक अदीब करते हे और एक जिदगी पेदा करती हे। आज एक तरीके से अदीबो के लिए सहूलियत ज्यादा पैदा हुई हे। सरकार सरक्षण देती हे, भोतिक सुविधाए भी अदीबो को आज ज्यादा प्राप्त है। एक तबके के लिए अब ज्यादा आसानी हे। दूसरी तरफ 'रियल्टी' रिफ्लेक्ट करने के बजाय बहुत स अदीब आरामपसंद हो गये ह। वे सोचते ह, क्या जरूरत है ज्यादा दुख झेलने की उन्होने आसान रास्ते अख्तियार कर लिए ह। दूसरा कनफ्यूजन सियासी ओर समाजी जिदगी मे पैदा हुआ हे जिसकी वजह से बहुत से अदीब अपने खाल म बद हो गय हे।

दूसरी तरफ जेसे ही 'मेटीरियल' हालात कुछ आसान हुए सियासी हालात मुश्किल हो गये। प्रतिबध बढ गये। इतने अधिक अदीब जेलखाने पहले नहीं गये, जितने आजादी के बाद गये। इस वजह से ज्यादा जुझारू और ज्यादा जानदार अदब भी पेदा हुआ। मिसाले बहुत है, पर नाम लेने मे गडबड हो जाती है। एक का नाम लो तो दूसरा कहता हे, मेरा क्या नहीं?

दूसरी बात यह पेदा हुइ कि पहले लोग लिटररी शैली मे लिखत थ। उनका अदब पढे लिखे लोगो के लिए होता था। दायरा सीमित था। अब पाकिस्तान मे क्षेत्रीय जबानो मे भी लिखा जा रहा हे। सिंधी, पजाबी आदि क्षेत्रीय जबानो मे अब ज्यादा लिखा जा रहा हे।

यह तरक्की हुई या नही यह कहना मुश्किल ह। तरक्की इस मानी म हुई कि नये तजुरबे आये, नयी थीम्स आयीं। उपन्यास को पुनर्जीवन मिला। तीस चालीस साल तक कहानी का जमाना था अब उपन्यास का जमाना ह। जिदगी मे इतने बदलाव हुए हे कि व कहानी म समा नही सकते। तब ड्रामा ज्यादा नहीं था। पाकिस्तान म अब स्टेज आया। यहा भारत म, स्टेज का ज्यादा विकास हुआ। पाकिस्तान म कम हो पाया ह लेकिन वहा भी ड्रामा आगे बढा ह। हमारे यहा (पाकिस्तान) पढलिखे लोगो के तादाद

कम है। इससे समस्या बढ़ी है।

पहले शायरी सिर्फ जबानी सुनायी जाती थी। अब ड्रामा बढ रहा है। उसमे भी नया मीडियम टेलीविजन का पैदा हुआ। चुनाचे ज्यादा लोगा तक उर्दू पहुची। उसका रिफ्लेक्स एक्शन यह हुआ कि सिर्फ पढे-लिखे लोग ही आज दर्शक नहीं ह। टी वी का प्रेमी हर तरह का दर्शक है, खास तार पर हिदुस्तान मे

मने कहा कि 'उर्दू मे एक ही समय मे कइ बडे-बडे लेखक हुए जैसे आप, साहिर, लुधियानवी सरदार जाफरी ओर राजेद्र सिह बेदी वगैरा ' तो कहने लगे—'यह इत्तिफाक है। अदब कोई फसल नही है। आप नकली तरीके से अदव पैदा नही कर सकते। बीच मे अधेरा पीरियड आ गया। फिर कोई पीढी आ गयी पर 1930 वाला माहौल तो पैदा नही हुआ। पर, आज बहुत अच्छा लिखनेवाले लोग ह, खासकर नस्र मे। पाकिस्तान म एक नया विकास यह हुआ कि वहा अच्छा लिखनेवाले नये लेखको म औरते भी है। पहले परपरा ने ओरता की जबान पर ताले लगा रखे थे। अब सामाजिक ओर बोद्धिक ताले खुले है। सामाजिक परिस्थितियो के दबाव से अब केवल गृहिणी बनकर घर बैठना मुमकिन नही है। औरत न अब अपनी हेसियत पहचानी हे ओर उसम व्यक्त करने की हिम्मत भी हे। यह प्रक्रिया आजादी से पहले शुरू हो गयी थी। पहले चरण के बाद इस्मत चुगताई ने इसे आगे बढाया। अब यह चरमोत्कर्ष पर है।'

उनके कृतित्व को प्रभावित करनेवाले लेखको के बारे मे उन्हाने बताया कि 'इस शताब्दी मे सबसे महत्वपूर्ण लेखक गोर्की है, जिन्हाने कई पीढियो को प्रभावित किया। क्रम से ल तो दूसरा नाम लोर्का का है। फिर पाब्लो नेरूदा, सार्त्र आर एक हद तक टी एस एलियट—इन ए डिफरेंट वे। फिर ड्रामे मे ब्रेख्त ने प्रभावित किया।'

मेने कहा 'सिर्फ किसी एक लेखक का नाम लीजिए जिससे आप बेहद प्रभावित हुए हो, तो वे काफी देर तक सोचते रहे। नयी सिगरेट निकालकर पीने लगे। बोले 'एक नाम कोई नही है। पहले अदब सीमित होता था—किसी एक जबान म या मुल्क म या महाद्वीप मे। अब अदब यूनिवर्सल हो गया है। इसलिए, इतन महान लेखको मे स किसी एक का नाम नही लिया जा सकता, इसीलिए आज शेक्सपियर कोई नहीं है। जाहिर है उस वक्त ओर आज की जिंदगी मे फर्क ह। तब शिक्षा ओर अदब कम थे। तब अदब एक वर्ग तक सीमित था। अब ऐसा नही है। इसलिए आज शेक्सपियर होना मुश्किल है। तब एक बादशाह होता था ओर एक शायर। उस वक्त शेक्सपियर होना आसान था पर अब ऐसा नही है।

'क्या आप हिंदी की रचनाए पढते हे' इस प्रश्न के जवाब म उन्हाने कहा—'यहा आकर हिंदी का अदब पढता हू। हिंदी मे गालिबन सक्रियता ज्यादा है। पहले हिंदी एक वर्ग तक सीमित थी। प्रेमचद के वक्त हिंदी-उर्दू एक थीं। वे दोनो जबाना के थे। राजनीतिक कारणा से हिंदी-उर्दू का भेद बढता गया। उर्दूवालो के लिए सारे नक्शे परपरा के पहले से मोजूद थ। हिंदीवाला को नये सिरे से सब कुछ खोजना पडा, क्योकि हिंदी को सरकार का सरक्षण हासिल नही था। अग्रेजो ने कहा कि हिंदी हिदुआ की ओर उर्दू मुसलमाना की जबान हे। उसका नतीजा 50 साल बाद सामन आया—हिंदी काग्रस की आर उर्दू लीग की जबान हो गयी।

उर्दू को सरक्षण मिलने के अलावा मुशायरा की वजह से सुविधा थी। नस्र क लिए रिसाले थे जबकि हिंदी को सब-कुछ अपन आप जुटाना पडा।

जबान अंदर से आये, दिल से निकले, वह नकली न हो, रियल्टी से पैदा हो। चुनांचे पुराने जमाने मे जब थियेटर जिंदा था, उसमे एक जबान पैदा हुई। उसे लोग समझते थे। वही ड्रामा कलकत्ते से चलता सारे उत्तर भारत मे पेशावर, लाहौर तक फैल गया। हिंदी का ड्रामा धार्मिक था। दूसरा रोमाटिक क्लासिक्स था। जिसमे शीरी फरहाद, लैला मजनू, वगैरह होते थे। सियासी क्रिस्टलाइजेशन से जबानो मे फासला बढा, लेकिन, सिर्फ एक मीडियम कायम रहा। वह है फिल्म। उसमे कोई फर्क नहीं पडा। फिल्म वही रही। वह न हिंदी की है, न उर्दू की। उसे दोनो एक सा मानते है। संगीत भी ऐसे ही है, दोनो जबानो मे एक ही है। हिंदी मे गीत था ही, अब गजल भी लिखी जा रही है। दोनो मे कोई फर्क नही है।

आल इंडिया रेडियो की हिंदी ऐसी है जो किसी की समझ मे नही आती। वह कोई जबान नहीं है, बनावटी है। आप जबान पैदा नही कर सकते। एक जबान हिंदुस्तान के बाहर इंडोनेशिया, कीनिया तक मे तो है उसमे हिंदी, उर्दू, बंगाली, गुजराती सब शामिल है। रोजमर्रा के लिए तो वह जबान चलती है लेकिन जटिल अनुभव उसमे व्यक्त नही हो सकते। हमने पुराने लोक साहित्य से पूरी तरह फायदा नहीं उठाया।

उर्दू वालो ने क्या किया कि बहुत से पंजाबी के लफ्ज छोडकर अरबी फारसी के ले लिए। यही हिंदी ने किया। जो बोलते है, उसे छोडकर हम मुश्किल शब्द ले लेते है। जो बोलते है उसे ही क्या नही लिखते?

जनरलाइज करना ठीक नहीं होता पर अगर किसी को मुश्किल तरीके से लिखना ही ठीक लगता है तो लिखे। पर, आप जबान से ज्यादती नही कर सकते, मांग नही कर सकते कि आप आसान जबान मे ही लिखो। नही लिख सकते तो क्या करे। मुश्किल जबान कुछ लोग इसलिए लिखते है कि लोग कहेगे कि इसे कुछ नही आता।

मै पिछली बार जब दिल्ली आया था तो शीला संधू के यहा ठहरा था। वहा हिंदी के कवि बुलाये गये थे। मुझे खास दिक्कत नही हुई। कुछ लोग शायरी मे प्रयोग करते है, इसलिए नही कि उन्हे सीधे तरीके से लिखना नही आता।

पर एक चीज बहुत जरूरी है। कोई अदब तब अदब बनता है जब उसमे श्रोता की भी हिस्सेदारी हो। मेरे लिखने से काम नही चलता सुनने वालो की भी हिस्सेदारी हो, तभी अदब संपूर्ण बनता है। यह इम्तिहान पास करना जरूरी है। इसके बिना कला की प्रक्रिया पूरी नही होती।

'साहित्य मे वन वे ट्रेफिक नही चलता। लेखक और जनता दोनो मे तालमेल हो ' मैने कहा। फैज साहब ने अपनी कविता-यात्रा पर प्रकाश डालते हुए बताया 'मैने अपना आधार क्लासिकल रखा। उससे आगे बहुत से रास्ते निकलते है। नीव एक होनी चाहिए बाद मे हम इमारत चाहे जैसी, मनमाफिक बनाये। अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, हिंदी, पंजाबी हर जगह जहा जो मिला, उससे मै प्रभावित हुआ।

मेरे लेखन का शुरू मे रोमाटिक जमाना था। यह 20 के दशक की बात है। तब मै अपने समकालीनो से प्रभावित होता रहा। इकबाल का तो टावरिंग व्यक्तित्व था। हमारे समकालीन थे तासीर, अख्तर शीरानी वगैरह। उनमे से बहुतो को लोग अब जानते भी नही। फिर साथी बने मजाज और मख्दूम वगैरह। हम शायरो मे आपस मे विचार विनिमय भी होता रहा। पर, बाहर से बहुत प्रभाव पडा। असर ज्यादातर उपचेतन मे होता है। कोशिश मैने परंपरा को पुनर्जीवित करने की कोशिश करता हू। परंपरा को हम भूल गये थे। अमीर खुसरो गालिब मीर फारसी के हाफिज अमीर तक—इनसे दोबारा नाता जोडने की कोशिश मैने की। मैने इनसे 'बोरो किया।

मैने जीवन के आरंभिक दिनो म अमृतसर मे पढाना शुरू किया। हमार साथी थ महमूदुज्जफर। उनकी वगम थी डॉ रशीद जहा। उनके जरिय तरक्कीपसदा स सपर्क वढा। मुल्कराज आनद सज्जाद जहीर वगरह सव उस ग्रुप म थे। फिर मने राजनीति पढनी शुरू की, तभी प्रगतिवाद का आदालन चला। हम ट्रड यूनियन म भी गये। हम तव अमृतसर मे पढाते थे। शाम का मजदूरा की क्लास लगाते थे। आजादी क वाद म पाकिस्तान ट्रेड यूनियस फेडरेशन का वाइस प्रेसीडेट था। वार्षिक सम्मेलन म पाकिस्तान से म मजदूरा क प्रतिनिधि के रूप म जाता था। वाद म मजदूर आदोलन भग हो गया टूट-फूट गया। तव हमन भी छाड दिया।

मुझस पहली सी मुहव्वत मरी महवूव न माग इस नज्म क पीछ क्या प्रेरणा थी? क्या कोइ घटना या स्मृतिविशेष इसके पीछ ह? इस प्रश्न क उत्तर म उन्हाने कहा काइ घटना नही इस नज्म क पीछे का हादसा सिर्फ कार्ल मार्क्स का कम्युनिस्ट मेनिफेस्टा पढना था। सिफ 'मनिफेस्टा पढने स लगा कि हम कहा पड ह। तव यह नज्म लिखी थी। यह रचना कम्युनिस्ट मनिफस्टा का प्रत्यक्ष परिणाम ह। व्यक्तिगत घटनाए हाती रहती ह। इसस पहल भी हाती थी पर समझ तभी आया।

आपकी एक ओर नज्म ह कही नही ह कही भी नहा लहू का सुराग —इसक पीछे क्या वाकयात थ?

फज साहव न कहा मार्शल अय्यूव न सत्ता का तख्ता पलट दिया। फिर उन्हाने चुनाव जीता। कराची म विजय जुलूस निकला। जिन लोगा ने अय्यूव खा क विराधी का वाट दिया था जुलूस वाला ने उन पर हमला कर दिया। वे रिफ्यूजी कालाना म रहने वाले लाग थे। वचारे गरीव मार गये। इस पर वडा हल्ला हुआ ता एक जाच कमटी वठी। कमटी न कहा काइ प्रमाण नही ह कि गाली चली या दगा हुआ यानी कुछ हुआ ही नहा। वह घटना प्रतीक रूप म इस नज्म म आयी भी उसी का आफ्टर इफेक्ट यह नज्म है।

क्या आप आत्मकथा लिखन की साच रहे ह? फज साहव न कहा नही अभी म रिटायर नही हुआ। लोग रिटायर हान क वाद आत्मकथा लिखते है।

इस महाद्वीप म क्राति बराबर टलती जा रही ह। जवानी क दिनो म आप लागा का सपना भी क्राति ही था। अव तो वह दूर दूर तक कही नजर नही आती।

उन्हाने कहा क्राति ऐसे नही होती। आज वीज डाला कल हा गयी। लवी प्रक्रिया ह। अग्रज हमार यहा उस शार्ट सर्किट कर गये। अग्रज गय तो लगा कि अव हम आजाद ह। क्राति ता हा गयी। इसस वडी गडवड हुई।' यदि अग्रेज यहा रहत ता क्राति हा जाता। यह भ्रम अभी तक चल रहा ह कि आजादी तो मिल गयी अव क्राति की क्या जरूरत ह। 1947 म मन लिखा था—

नजाते दीदाओ दिल की घडी नहीं आयी
चले चला कि वो मंजिल अभी नही आयी

लागा न कहा कि आयी। व आज भी यही मान रहे ह। अभी चेतना सुप्त ह। जव चेतना अधिक पक जायेगी अधिक सगठित हा जायगी तव क्राति हाती।

महान शायर क वार म उनका कहना था

आर्टिकुलेशन ऑफ टोटेलिटा ऑफ एक्सपीरियसज ऑफ टाइम। टाटलिटा ऑफ रियलिटा आफ

एक्सपीरियेंसेज।' जहा ये ह वहीं अजीम शायर है, बोद्धिक रूप से नहीं, सवेदना क स्तर पर। केवल फील करना और समझना काफी नहीं। बढइ का काम भी आपको आना चाहिए। यानी शिल्प भी मजबूत हो। कला की अपनी माग होती हे, रियल्टी की अलग। दोना को आप जिस हद तक पूरा कर सकते ह, उसी हद तक आप महत्व प्राप्त कर सकते हे।

म बात ओर आगे बढाना चाहता था पर लगता था कि वह अब थक गये ह। उन्हे कहा और भी जाना था। बोल—'अब बहुत हे इसी को कुछ कर दीजिए। अखबार के लिए तो इतना ही काफी है।'

फो 011 22724591

दृष्टिकोण कला का अभिन्न अंग है

नईम अहमद से बातचीत

प्र फ़ेज साहब शायरी मन की मोज होती है या वह किसी दृष्टिकोण के तहत की जाती है?

उ दृष्टिकोण तो मन की मोज का भी होता है। अगर आदमी बिल्कुल ख़ाली दिमाग न हो तो उसका कोई दृष्टिकोण जरूर होगा। वह मन की बात करेगा तो दृष्टिकोण उसमे भी शामिल होगा। अगर कोई शायर सिर्फ़ अपनी ही बात करे अपनी ही निजी भूलभुलेया मे गुम हो जाये तो कोई शख़्स उसका कलाम किसलिए पढेगा? लिखना एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह तकाजा उस वक्त तक पूरा नही हो सकता जब तक कविता संप्रेषित न हो, बात पढने या सुनने वाले तक न पहुचे। इसका मतलब यह हुआ कि पढने व सुननेवाले की उपस्थिति आवश्यक है--चाहे वह सशरीर उपस्थित हो या अनुपस्थित हो, शायर के सामने मोजूद हो या न हो। यू भी होता है कि लिखने वाला या शेर कहनेवाला खुद ही सुनने ओर पढनेवाला बन जाता है। इस लिहाज से दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हो जाता है, अर्थात शेर कहनेवाला अपने अनुभवो मे सुनने ओर पढनेवाले को शामिल करे। जेसे-जैसे पढने और सुननेवाले बदलते है साहित्य बदलता रहता है। दृष्टिकोण ओर व्यक्तित्व दो अलग-अलग चीजे नही हे दृष्टिकोण व्यक्तित्व ओर कला का हिस्सा होता है।

प्र फ़ेज साहब, क्या आप कुछ बातो को ख़ास तोर से सामने रखते हुए शेर कहते हे?

उ आप बातो को सामने रखे या न रखे वे खुद सामने आ जायेगी यह आपकी कल्पना क्षमता पर निर्भर है कि आपने उनकी कल्पना किस तरह की। बात सामने रखने का मतलब यथार्थ को सामने रखना है इसका दारामदार आपकी दृष्टि पर हे--इस वास्तविकता पर कि आपको क्या दिखायी देता है। यथार्थ से आखे बद करके आप कुछ नही देख सकते सब कुछ बाहर से उपलब्ध होता हे। बेहद व्यक्तिगत अनुभव भी बाहर के वातावरण, परिस्थितिया और घटनाओ से जो असर पडे भावनाओ ओर अनुभूतियो मे जो हलचल पेदा हो, उसके नतीजे होते है सारी चीजे आपके अवचेतन का हिस्सा बन जाती हे।

प्र फेज साहब, यथार्थ को साहित्य बनाने के लिए कल्पना की किस सीमा तक आवश्यकता होती है या आपकी शायरी मे यथार्थ ओर कल्पना का क्या सबध होता हे?

उ साहित्य म आप यथार्थ की अपनी कल्पना की मदद से नये सिरे से रचना करते है। कलाकार भी यही करता हे ओर वेज्ञानिक भी। वैज्ञानिक सिर्फ़ बाहर के यथार्थ के सबधो का वर्णन करता हे कलाकार उसी यथार्थ का, कल्पना की मदद से नये सिरे से सृजन करता है इसीलिए वह यथार्थ

का एक सापेक्ष पहलू प्रदान करता है। वज्ञानिक यह काम नहीं करता, विज्ञान म एसा नहा हो सकता। यथार्थ क इस सबध स हम विज्ञान का फोटाग्राफी आर कला तथा साहित्य का चित्रकारी कह सकते है।

प्र यथार्थ का नये सिरे से सृजन तो 'नासिख़' न भी किया , 'गालिब' न भी अपनी शायरी क आरंभिक दिना म किया। वह कोन सी खूबी या विशेषता है जिसकी वजह स यथार्थ क नय सिरे स किये गये एक सृजन को तो स्वीकृति मिलती हे जबकि दूसरे सृजन का वह लोकप्रियता नहीं मिलती?

उ हा! 'नासिख' ओर 'गालिब' दोना न ही यथार्थ का नये सिर स सृजन किया। 'गालिब' न सामती व्यवस्था की जानलेवा प्रकृति का नक्शा पेश किया उन्होने सामती व्यवस्था क अतीत की तडपानेवाली यादा का खुलासा सामने रखा, उन्होने अपन से पहले की दो सा साल की शायरी का भरपूर अनुभव किया, आर उसमे अपनी की हुई वृद्धि को बिबो या रूपका के साथ गजल म पेश किया। 'नासिख़' मे यह सवदना नही थी। उन्होने सिर्फ भाषाशास्त्रीय ढग स शब्दो क प्रयोग किय। इसीलिए उन्हे कोन पढता है? सिवाय उन लोगो के जिन्हे शोध कार्य करना हो या शब्दो की छानबीन करनी हो या फिर शब्दो के उपयोग पर विचार करना हो। लेकिन 'गालिब' आज भी हमारे जमाने से जुडे हुए है।

प्र फेज साहब, 'गालिब' 'गोयम मुश्किल वगरना गोयम मुश्किल' (शेर कहू तो मुश्किल वरना कुछ न कहना भी मुश्किल) का जो शिकार हुए थ ओर उन्होने जो चिढकर कहा था कि 'गर नहीं है मेरे अशआर म मानी न सही', तो इस उलझन के सिलसिले म आपकी क्या राय है?

उ यह सप्रेषणीयता मे, पढने या सुननेवाले का बात समझान म नाकाम रह जाने की समस्या थी। इस कशमकश के पीछ यह बात नहीं थी कि 'गालिब' को यथार्थ की अभिव्यक्ति पर अधिकार प्राप्त नही था। उस वक्त जो परपरा थी, 'गालिब' उससे हटकर बात कह रहे थे। वह तत्कालीन सामाजिक स्थिति की बात कह रहे थे ओर वह भी ऐसे शब्दो म जिनसे लोग परिचित नही थे। यही वह मुकाम हे जहा कल्पना ओर कला का प्रवेश होता है। सवाल यह पेदा हो जाता है कि आप यथार्थ का किस सीमा तक खाका पेश कर सकते है ओर आप म उसकी अभिव्यक्ति की कितनी क्षमता है। इन दोनो के मिलने स यह मुकाम यह सरहद पार होती है—एक तो यथार्थ का अनुभव करने व देखने की क्षमता दूसरे उसे शब्दो मे ढालने की और पेश करने की योग्यता।

प्र इसका मतलब यही हुआ न, कि शायरी करते हुए सुनने व पढनेवाले दोनो को ध्यान म रखना पडता है?

उ जी हा! यकीनन।

प्र फेज साहब, यथार्थ व कल्पना म से कोन सा तत्व आपके कलाम पर हावी है?

उ दोनो एक ही चीज के दो पहलू है। यथार्थ का अनुभव करके कल्पना क जरिये उसे अभिव्यक्त किया जाता है।

प्र फ़ेज साहब कुछ आलोचक यह कहते है कि आपकी शायरी फार्मूलाबद्ध है। आप कुछ शेर रूमानी रगत म कहते है और कुछ राजनीतिक अदाज म गम दोरा क शेर जोड देते है। इस आरोप के बारे म आपका क्या विचार है?

उ यह आरोप बिल्कुल गलत है। आरभ म जब प्रगतिशीलता अच्छी तरह समझ म नहीं आती थी

तरह एकाध नज्म में ऐसा किया था। फिर, देखा कि यह गलत बात है। फार्मूला तो शेर खुद बनाता है।

प्र फ़ैज साहब अलामत (प्रतीकों) का आपकी शायरी में क्या और किस हद तक असर है?

उ अलामत दो तरह होती हैं। एक तो वे जो परंपरागत ढंग से परंपरागत अर्थों में इस्तेमाल की जाती हैं। दूसरी वे कि परंपरागत को आप समसामयिक या तात्कालिक परिस्थितियों के मुताबिक अर्थ दें। इसे हमने बहुत इस्तेमाल किया है। इसका कारण यह है कि अलामत लोगों के दिमाग में बैठी हुई चीज है। जो चीज सिर्फ आपसे संबंधित हो उसे आप बदलते रहते हैं। जैसे आशिक को समसामयिक अर्थ में आप मरननकश बना सकते हैं मजरूह (घायल) को आप इंकलाबी बना सकते हैं। अलामत को समसामयिक बनाना, मौजूदा हालात के अनुसार अर्थ देना शायर के पास एक बहुत अच्छा नुस्खा है। इसके जरिये लोगों तक पहुंचने में मदद मिलती है।

प्र प्रगतिशील शायरी के समग्र मूल्यांकन के बारे में आपकी क्या राय है?

उ प्रगतिशील शायरी के बारे में हर व्यक्ति की अपनी-अपनी धारणा है। बहुत सी शायरी जो प्रगतिशील नहीं है उसे बहुत से लोग प्रगतिशील समझते हैं और जो शायरी प्रगतिशील है उसे प्रगतिशील नहीं मानते। शायरी की पहली शर्त तो शायरी है। अगर, वह शायरी नहीं है तो फिर प्रगतिशील नहीं है। यह सही है कि शायरी खास सामयिक रूप में आंदोलन के लिए भी लिखी जाती है। इसका अपना एक उपयोग है जो शुद्ध राजनीतिक होता है। ऐसी शायरी भी अपनी जगह आवश्यक है। राजनीतिक तौर से जरूरी है। दूसरी शायरी वह है जिसका मकसद सिर्फ राजनीतिक संदेश देना नहीं होता बल्कि उसमें कला और सौंदर्यशास्त्र के तकाजे भी पूरे किये जाते हैं। असल प्रगतिशील शायरी वह है जो इन दोनों बातों पर पूरी उतरे, उसमें संदेश भी हो और उससे सौंदर्यशास्त्रीय रुचि की तस्कीन भी हो। इसके अलावा, बाकी सब कुछ महज प्रगतिशीलता है या सिर्फ शायरी। खराब शायरी का आरोप सिर्फ प्रगतिशीलता पर ही क्यों लगाया जाय? यह बात तो हर तरह की शायरी के बारे में कही जा सकती है कि उसका खासा बड़ा हिस्सा कला के मानदंडों पर पूरा नहीं उतरता। यह सिर्फ प्रगतिशील शायरी तक ही सीमित नहीं है।

प्र मौजूदा हालात में क्या प्रगतिशीलता के तकाजे बदलने चाहिए?

उ तकाजा वक्त के साथ हमेशा बदलता रहता है। जैसे-जैसे हालात बदलते हैं, नये नये तकाजे पैदा होते हैं—अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर। प्रगतिशीलता की प्रक्रिया एक अनवरत प्रक्रिया है जिसे एक बिंदु पर नहीं रोका जा सकता। यह अगर रुक जाये तो पतनोन्मुख हो जाती है। अलबत्ता, यह आवश्यक होता है कि कभी-कभी हालात एक खास तरह के होते हैं, जैसे आज से तीस चालीस साल पहले थे। उस समय एक जानदार आंदोलन पैदा हुआ। विषयों, लहजा और शब्दों में एक साथ परिवर्तन हुए। ऐसा वक्त भी आता है जब आंदोलन की आवश्यकता बाकी नहीं रहती। ऐसे में कवि और लेखक व्यक्तिगत स्तर पर यथार्थ का चित्रण करने की कोशिश करते हैं। पिछले दिनों यही कुछ होता रहा है। ऐसी स्थिति होने पर आंदोलन की शक्ल तैयार करने में देर लगती है।

प्र फ़ैज साहब क्या सृजन के लिए आंदोलन आवश्यक है?

उ हां! महान साहित्य के लिए दोनों आवश्यक हैं—साहित्य सृजन भी और सामाजिक राजनीतिक

आदोलन भी।

प्र प्रगतिशील शायरी म कोन से शायर आपके विचार म विशिष्ट साहित्यिक स्थान रखते ह?

उ मजाज, मख़दूम मुहीद्दीन, मजरूह सुल्तानपुरी, अली सरदार जाफरी। जज्बी आर जानिमार अख़्तर ने साथ दोड दिया था, हमारे साथ साहित्य का सफर जारी नहीं रखा। मुझसे उम्र मे छाटे शायर ह साहिर लुधियानवी ओर केफी आजमी।

प्र फेज साहव, सक्षेप मे आपकी राय मे इन शायरा के कलाम की क्या विशेपताए ह?

उ ये सव इसलिए पसद हे क्याकि वे प्रगतिशील भी ह ओर शायर भी। मजाज न गजल म प्रगतिशीलता को तगज्जुल के रूप मे पेश किया जो वहुत ही ख़ूवसूरत चीज हे। मख़्दूम न दानों तरह की शायरी की—एजिटेशन वाला भी ओर गजलिया भी। मजाज को उम्र ज्यादा नहीं मिली। मखदूम बहुत ही राजनीतिक व्यस्तताआ मे रहे। अली सरदार जाफरी ने अधिक लिखा। उनके पास फुर्सत भी थी, उन्हाने ध्यान भी केद्रित किया। असल, चीज तो जोहर (गुण) हे।

प्र फ़ेज साहव, एक राष्ट्र के निर्माण के लिए भागोलिक लिहाज से क्षेत्र विशेप, भापा या लिपि के एक होने पर कुछ लोग वहुत जोर देते ह। वे एकीकृत राष्ट्र के निर्माण की एक वडी माग भी वतलाते हे। मोजूदा पाकिस्तान तो इन तकाजा पर पूरा उतरता है, फिर वह एक एकीकृत राष्ट्र क्यो नही वन सका? वहा जातीयताओ की समस्या के हल की सूरत क्या नही निकल रही?

उ बात सिर्फ़ पाकिस्तान की नही। दुनिया के हर हिस्से मे जहा देश नये-नये आजाद हुए हैं, जहा-जहा एक से अधिक सभ्यताए हे, और भापाए ह, वहा राष्ट्रीय एकीकरण का मसला सामने आया है। यह सवाल पेदा हुआ कि एकता केसे कायम की जाये। यह एक लबी प्रक्रिया होती हे। जो बहुत गठे हुए और एकीकृत देश समझे जाते थे, जिनका इतिहास है एक ही राष्ट्र बन जाने का, वहा भी ये मसले उठ खडे हुए हे। फ्रास मे ब्रिटेनी के ओर स्पेन म वास्क के आदोलन सदियो बाद जोर पकडने लगे। ब्रिटेन मे आयरलेड के बाद अब वेल्स और स्काटलेड के मसले चल रहे हे।

इस मसले को हल करन के लिए बडी दूरदृर्शिता, सूक्ष्म दृप्टि, बुद्धि ओर दयानतदारी की आवश्यकता है। इसे सुलझाने के लिए एक हद तक वही नुस्खा इस्तेमाल किया जा सकता हे जो सोवियत सघ ने किया अथात सारी जातीयताओ को बराबर के अधिकार दिये जाय।

प्र फेज साहब, अपकी 70वीं सालगिरह के जश्न हिदुस्तान म हो रहे ह

उ ये जश्न पाकिस्तान मे हो चुके हे।

प्र फेज साहब इसका मतलब तो यही हुआ न कि जमीन के बटने से भापा और साहित्य का बटवारा नही हो सकता?

उ हा। भापा ओर साहित्य सवकी साझी पूजी हाती ह। यह कभी विभाजित नही हो सकती।

प्र आपकी सालगिरह के जश्न बार बार आपकी मोजूदगी मे मनाये जाय, इकलाव के वे सपने आपके सामने पूरे हो जो आप नाजवानी से देखते आये है। आज के नोजवान साहित्यकारो ओर कविया को आप क्या संदेश देना पसद करेगे?

उ सच वोला करे ओर 'जो दिल पे गुजरती हे वही रकम करते रह। परवरिशे-लोहो-कलम' करते रहे। म आज के नाजनवाना से वस यही चाहता हू।

बुद्धिजीवी और राष्ट्रीय एकता

सुनीत चोपडा से बातचीत

प्रश्न नवस्वतत्र दशा को मुक्ति सघर्प मे जिस विकट समस्या का सामना करना पडा, वह है औपनिवेशिक राज में गठित सभी जातिया ओर अल्पसख्यको को सघर्प मे एकजुट करना। आपकी राय म हम लोग इस उपमहाद्वीप मे इस समस्या को कहा तक हल कर सके है?

फ़ैज़ वहुभायी ओर वहुजातीय राज्य की समस्याओ को समझने के लिए पहले तो हमे यह समझना पड़ेगा कि ऐसे राज्य अस्तित्व मे कैसे आते है? लेनिन ने अपने एक लेख मे लिखा है कि वहुजातीय समाज वाधित विकास की उपज हे। विकास मे यह वाधा कई कारणो से पड सकती है। वाहरी हमला विकास की प्रक्रिया को अवरुद्ध कर सकता है या उसी समाज के भीतर एक या एक से ज्यादा प्रवल जातीयताए राजनीतिक शक्ति का इस्तेमाल करते हुए दूसरी छोटी, कमजोर ओर कम विकसित जातीयताओ पर हावी होकर उनकी प्रगति और विकास को रोक सकती ह। जहा तक इस महाद्वीप के देशों का सवाल है, यह समस्या इसलिए उत्पन्न हुई कि हमारे देश के अधिक शक्तिशाली, सवसे व्यापक ओर सवसे वढकर अत्याचारी साम्राज्यवादी शक्ति, यानी ब्रिटिश उपनिवेशवाद, के अधीन साम्राज्यवादियो की प्रशासनिक जरूरता के कारण पहले से मोजूद जातीय, भापाई और सास्कृतिक सीमाओ का उल्लघन हुआ जिन्होने आगे चलकर सघर्पो ओर वैर भाव के लिए एक उपजाऊ जमीन तयार कर दी। विभिन्न प्रवल समूहो के निहित स्वार्थो ने वर्ग समाजो मे इन सघर्पो ओर वैर-भाव को ओर दृढ किया।

सरसरी तोर पर इसे सुलझाने के दो उपाय ह। पहला, विभिन्न समूहो की विशिष्ट भापाई, सास्कृतिक तथा जातीय पहचान को स्वीकार करते हुए उनके वीच मौजूद समान तत्वो की खोज करना। इसे राजनीतिक ओर सास्कृतिक अनेकवाद की नीति कहते है। दूसरे उपाय—सुदृढ केंद्रीकृत नीति—की वकालत करनेवाले यह कहकर पहली नीति की आलोचना करते ह कि इसमे फूटपरस्त तत्वो को वढावा मिलेगा। इतिहास गवाह है कि दूसरी नीति हर जगह नाकाम रही है। इस नीति की वकालत करनेवालो की वुनिदादी गलती यह है कि ये जातीय, भापायी और अन्य सास्कृतिक विभेदों को वेर भाव मान बेठते ह। सास्कृतिक विभेदो मे शत्रुतापूर्ण अतर्विरोध देखना गलत हे।

जाहिर है कि इन दोनो नीतियो मे से किसका पालन किया जाये यह बात इन देशो के सामाजिक-आर्थिक ढाचे पर निर्भर करती थी क्याकि निर्णायक तत्व यही था। स्वाभाविक रूप

स वग समाज म उसका रूप यह होना ह कि विभिन्न निहित स्वार्थ राष्ट्र म व्याप्त विभिन्न का कटु बनाकर न सिर्फ अपन समूह पर, बल्कि अन्य समूहा पर भी हावी होन की कोशिश करत ह।

जातीय पहचान क दाव क भी दो पहलू है। जब यह दावा जनहित का ध्यान म रखकर पेश किया जाता ह तो यह एक प्रगतिशील नारा हो सकता है। लकिन जब वह कवल मुट्ठी भर निहित स्वार्थो क हित को ध्यान म रखत हुए किया जाता है तो इसका चरित्र प्रतिक्रियावादी हो सकता है। राष्ट्रीय एकीकरण तभी सभव है जब हम सबस पहल और सबस जोरदार ढग स इस बात पर बल द कि इस बहुजातीय राज्य क तमाम समूहो के बीच समान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक हित मौजूद है, और इसके साथ हक गरीबी और उन दूसरी समस्याओ को रेखांकित करन के लिए तैयार रह जो सबको समान रूप स पीडित कर रही ह। इसके बाद हमारा काम होना चाहिए—तमाम विभिन्न जातीयताओ क बीच समान एतिहासिक अनुभव की खोज करना ओर उस पर बल देना ओर उन तत्वो को खोज निकालना जो उन सबम समान रूप से मोजूद ह।

इनम लेखक की भूमिका कवल सहजातीय हितो का विश्लेषण करने की ही नही है, बल्कि उनके एतिहासिक अनुभवो, सामाजिक मूल्यो और उनकी व्यावहारिक आचरण पद्धतियो की छानबीन करन की भी हे। अपनी ग्रहण-क्षमता द्वारा लेखक को इन्ह सृजनात्मक और सद्धांतिक रूप देना चाहिए। लेखक को चाहिए कि वह निहित स्वार्थो द्वारा भडकायी गयी अधराष्ट्रवादी ओर पृथकतावादी प्रवृत्तियो का विरोध करे ओर अनुभव ओर अभिव्यक्तियो के आदान प्रदान को बल प्रदान करे। भारत म प्रगतिशील लेखक सघ को ही ले। यह इस दृष्टि की ठोस अभिव्यक्ति था। फिर वह स्वाधीनता के बाद विघटित क्या हो गया? आजादी से पहले स्वतत्रता आदोलन म साम्राज्यवाद-विरोध के समान उद्देश्य ने उसे एकजुट बनाये रखा। लेकिन, आजादी के बाद देश की नयी परिस्थितियो मे ऐसा कोई समान आधार नही बन सका। इसलिए, यह आदोलन टूट गया। मै यहा सीमित अर्थो म किसी दल या राजनीतिक उद्देश्य से प्रतिबद्ध किसी लेखक सगठन का आह्वान नही कर रहा हू। इस तरह के किसी भी प्रस्ताव को आम लेखक स्वीकार नही करेगे। मेरा मतलब आजादी के बाद की नयी सामाजिक-आर्थिक और सास्कृतिक स्थितियो के सदर्भ मे एक व्यापक आधार वाला सगठन बनाने से है। इन परिस्थितियो मे ऐसे किसी नये सामाजिक-राजनीतिक आदर्श स्थापित न कर सकने के कारण ही प्रगतिशील लेखक सघ टूट गया था।

प्रश्न साम्राज्यवाद ने सचेत रूप से लोगो को बाटने के लिए जो कुछ दिया, उसके सबध म आपके क्या विचार है?

फ़ेज हमारे उपमहाद्वीप मे सत्ता हस्तातरण के दोरान साम्राज्यवादियो की तिकडमे अपने नगे रूप मे सामने आयी। ब्रिटिश शासको ने विभिन्न जातीयताओ और वर्गो के लिए अनेक तरीके अख़्तियार किये जिससे वे ब्रिटिश शासन की जूठन के टुकडो के लिए आपस मे लडना शुरू कर दे। ये तरीके क्या थे? एक सवाल था विधानसभाओ मे सीटे देने का। उन्होन साप्रदायिक आधार पर, भूस्वामियो, नवाबो ओर राजाओ को विशेष छूट देकर तथा एक खास मात्रा मे कर

देनवाल ऊपरी सवका का य सीट दी। उसक बाद सवाओ म आरक्षण का सवाल था, जा पिछड हिस्सो का न देकर साप्रदायिक आधार पर तय किया गया ओर अतत शिक्षा को भी साप्रदायिक आधार पर सगठित किया गया। उन्हान भाषा के सबध म जो नीतिया अपनायी उन्हे विभिन्न निहित स्वार्थो क प्रतिनिधि उन नताओ न जनता म प्रचारित किया जिनका उद्देश्य था जनता के हितो के नाम पर अपने क्षुद्र स्वार्थो का सामन रखना। य नीतिया बहुत ही घातक थीं आर गहरी जड जमा चुकी थीं। साथ ही आदर्श हिंदू आर आदर्श मुस्लिम अतीत की काल्पनिक तस्वीर बनाकर सास्कृतिक आदान प्रदान की प्रक्रिया को अवरुद्ध कर हमारी सस्कृति आर साहित्य क लिए केवल आपनिवशिक विचारधारा का ही आधार रूप म प्रस्तुत करना ब्रिटिश शासको का उद्देश्य था। इससे हिंदी उर्दू का झमला खडा हुआ। उर्दू ही हिंदी थी जो अपने में एक फारसी शब्द ह, वास्तव म इन दोना की लिपिया अलग-अलग ह, लकिन इनका मुहावरा एक ही हे। प्रमचद न बिना भाषा का बदले हिंदी और उर्दू म लिखा। आगा हश्र कश्मीरी हिंदुस्तानी रगमच क जनक थ जिन्होने *पूरन भगत* जसी हिंदू दतकथा क साथ ही *लैला मजनू* की कथा को भी प्रसारित किया, आर साथ ही शेक्सपियर क *मर्चेंट आफ वेनिस* का *यहूदी की लडकी* नाम से भावानुवाद प्रस्तुत किया। फिल्मा की भाषा भी इसका एक ओर प्रमाण हे कि इन दोना म एक सामान्य मुहावरा मोजूद ह। हालांकि, यह सच ह कि अधिकाश फिल्मो का लोगो पर बडा घातक असर पडता है आर उनसे घटिया अभिरुचि को बढावा मिला हे लेकिन सही दृष्टिकोण द्वारा इसे बदला भी जा सकना हे। यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि गाधी जसे स्वाधीनता आदोलन क नताओ न हिंदुस्तान क विकास के लिए प्रयास बड ही अधूरे मन से किय आर वह भी तब जबकि बहुत देर हो चुकी थी।

प्रश्न राष्ट्रीय आदोलन के नेताओ ने इस समस्या के समाधान के लिए क्या किया?

फ़ैज उन्हाने भी पुलिस आर रक्षा आदि के प्रशासन क उसी तत्र को अपनाया जिसे ब्रिटिश छोड गये थे। इस ढाचे के साथ ही उन्हाने उसस जुडे सामाजिक-आथिक शोषण ओर सामाजिक दमन का भी जारी रखा। इसलिए, आथिक रूप से जा चीज पदा हुई वह थी सामतवाद ओर पूजीवाद की साठगाठ, न कि एक जनतात्रिक समाज। उसने सामतवाद ओर पूजीवाद की विकृतिया को तो अपनाया, लेकिन उनकी अच्छी चीजो को छोड दिया। उन्हाने उसी पुरानी व्यवस्था का अपना लिया ओर कभी भी आधारभूत ढाचे को बदलने की चिता नही की।

प्रश्न राष्ट्रीय एकता म आपके अनुसार लखका ओर बुद्धिजीविया की क्या भूमिका ह? वह हमारे उपमहाद्वीप म विभिन्न जातीयताओ आर जातीय अल्पमता की जरूरता को कहा तक पूरा करती हे?

फ़ैज लेखक यथाथ का उसी रूप म बोध करता हे, जेसा वह है। वह उसकी सपूर्ण असगतियो आर अतर्विरोधा क साथ उसे अभिव्यक्ति देता हें। वह राज्य की मशीनरी का नियता नही ह। वह अपने पाठको की चेतना को बदलने का प्रयत्न कर सकता ह जिसस वे भी ठीक उसी की नजर से देखे ओर उसी की तरह महसूस करें। एक तरह से वह हमारे समाज म वेसी ही भूमिका अदा करता है जेसी अतीत मे हमारे गावा मे सूफिया भक्ता आर मानवतावादी चितका ने की। हालाकि, उसकी आधारभूत राजनीति उसका लेखन ही हे लेकिन वह तभी प्रभावी हो सकता

है जब वह लोगो की जिदगी के अनुभवो मे हिस्सा ले, अर्थात् उनकी राजनीति मे भागीदार बने। इसका यह कतई अर्थ नहीं है कि वह पूर्णकालिक राजनीतिज्ञ बन जाय, लेकिन उसके लिए जरूरी है कि वह आम लोगो के राजनीतिक जीवन मे हिस्सेदार हो और उनके अनुभव मे शरीक हो। बोध के माध्यम के रूप मे लेखक के लिए जरूरी है कि वह व्यक्तिगत रूप मे भावना और अनुभूति की जमीन पर जनता से अपनी एकात्मता स्थापित करे। इसे शाब्दिक रूप मे ग्रहण नहीं करना चाहिए। वियतनाम के सबध मे लिखते समय जरूरी नहीं है कि मै वियतनाम ही जाऊ। मै अपनी समझ से भी वहा के बारे मे लिख सकता हू।

प्रश्न आपने किन जातीय अल्पमतो के बीच कार्य किया है? और आपके अनुभव क्या रहे है?

फैज ट्रेड यूनियन आदोलन के कार्यकर्त्ताओ के बीच जातीयताओ का प्रश्न उतना प्रमुख नहीं होता। लेकिन, विभाजन के बाद लेखको और छात्रो के बीच यह सवाल महत्वपूर्ण बन गया। 1960 मे राष्ट्रीय भाषाओ की समस्या का अध्ययन करने के लिए बनी प्रथम समिति का मैं एक सदस्य था। हमने इस दृष्टि से एक रिपोर्ट तैयार की कि सभी जातीय सस्कृतियो का विकास का समान अधिकार है और इसका राष्ट्रीय एकता से कोई विरोध नहीं है। छठे दशक के अत मे मै उस समिति का अध्यक्ष था, जो अधिक बडी और प्रतिनिधित्व की दृष्टि से अधिक लोकतांत्रिक थी। हम प्रश्न की गहराई मे गये, 500 लोगो से मिले तथा पशावर से लेकर चटगाव तक के करीब तीन सौ सास्कृतिक सगठनो से सपर्क स्थापित करने मे सफल रहे। इस आधार पर हमने एक विस्तृत रिपोर्ट बनायी, जिसे भुट्टो सरकार ने स्वीकार किया। उसके परिणामस्वरूप 1972 मे पाकिस्तान मे कला और सस्कृति की राष्ट्रीय परिषद का गठन हुआ। इसके द्वारा हमने लोक सस्कृति के विकास के लिए कुछ अच्छा काम किया। हमारे देश मे जहा क्लासिक परपरा सब लोगो के बीच एक समान है, वही लोक कला की परपरा हर क्षेत्र मे अलग-अलग रही है। उसका एक प्रतिनिधि सकलन निकालकर आप उन पर समान तत्वो को देख सकते है जो उनके निर्माण के पीछे रहे है। बहुत-सी सास्कृतिक विशेषताए ऐसी है जिनका निर्धारण जातीय कारणों से नहीं बल्कि भोगोलिक परिस्थिति और अन्य कारणो से होता है। ये कारण जातीय सीमाओ को तोड देते है। मुझे यह बात बराबर याद रही है कि कैसे बडे गुलाम अली खा पहाडी रागों से बने पहाडी गीतो और आल्प्स और स्पेन की पहाडियों के गीतो की समानता उद्घाटित कर देते थे। आज हमारे बीच ऐसे अनेक रचनाकार मोजूद है जो हमारी बहुजातीय जनसमूह की आकाक्षाओ को मुखर करते है। इसमे से कुछेक नाम गिनवाऊ—सिधी के कवि शेख अयाज, बलूची के गुल खा नसीर पश्तो के अजमल खटक और पजाबी के मुनीर नियाजी।

प्रश्न आपने एक लेखक के रूप मे अपनी जन्मजात सस्कृति की सीमाओ और पूर्वाग्रहो पर विजय कैसे पायी?

फैज अपने से बडी चीज के साथ इनसान को एक होना होता है। मै अमृतसर मे जब अध्यापक था तो ट्रेड यूनियन आदोलन के सपर्क मे आया। मैने मुख्य रूप से कपडा मिल के मजदूरो के बीच, जिनमे अधिकाश बुनकर थे इस्लामाबाद क्षेत्र के छहरटा कस्बे मे काम किया। हम वहा रात को जाते थे और उन्हे पढाते थे। आजादी के बाद मै लाहोर चला गया। वहा मैने डाक मजदूर यूनियन और रेलवे कर्मचारियो के बीच काम किया। उनके अध्यक्ष मिर्जा इब्राहीम

अधिकाश समय जेल मे ही रहे। उनकी जगह मने उपाध्यक्ष के रूप म काम किया। पाकिस्तानी मजदूरो का प्रतिनिधित्व करने के लिए म विश्व श्रम सगठन के सम्मेलन मे डेलीगेट बनाकर भेजा गया। यह मेरा पहला विदेशी दौरा था। ट्रेड यूनियन आदोलन के साथ इस लगातार सपर्क ने मुझे अपनी तग हदो से ऊपर उठा दिया।

प्रश्न आपकी राय मे वे कोन से गुण है जिनका लेखको और बुद्धिजीविया को अपने अदर विकास करना चाहिए जिससे कि वे निहित स्वार्थो ओर साम्राज्यवादिया द्वारा सास्कृतिक ओर भापायी आधार पर जनता मे फूट डालने की तिकडमो से लड सके?

फैज पहले तो उन्हे अच्छा लेखक आर बुद्धिजीवी बनना चाहिए। बुरे लेखन ओर अधकचरे विचारो का कोई असर नहीं पडता। चाहे उनमे भरी हुई भावना कितनी ही अच्छी क्या न हा' उनको सामाजिक यथार्थ की सतह के नीचे जाकर यथार्थ को पकडने मे सक्षम होना चाहिए। दूसरे शब्दा मे, सार से थोथे को अलग करने मे लेखक को समर्थ होना चाहिए। सबसे जरूरी चीज ह कि वह कभी भी अपनी गलत आवश्यकताओ के अनुसार यथार्थ को गलत रूप म पेश न करे। यह जीवन की सपूर्णता पर ही सारा ध्यान केंद्रित करे आर अपनी व्यक्तिगत विकृतियो मे ही फसकर न रह जाये। लेखक वही कहे जो लोग कहना चाहते हे, लेकिन कह नही पाते। लेखको को गूगी जनता के बहुमत की आवाज बनना चाहिए जिसे वह अपनी आवाज मान सक। समस्या का समाधान तो जनता ही करेगी, लेखक नही। लेकिन, लेखक कम से कम स्पष्ट रूप म समस्याओ को सामने रखने म मदद तो कर ही सकते ह।

मो 09868210135

खड तीन

चुनी हुई रचनाएं

रख दी है हरेक हलका-ए-ज़ंजीर में ज़बां मैंने

जबा पे मुहर लगी है तो क्या के रख दी है
हर एक हलका-ए-जजीर मे जबा मैने

फैज की शायरी का यह खड सारे सुखन हमारे (स अब्दुल बिस्मिल्लाह प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा लि नयी दिल्ली) से अनुमतिपूर्वक साभार लिया गया है। —स

दोनो जहान तेरी मुहब्बत म हार के
वो जा रहा हे कोई शबे गम गुजार के

वीरा हे मयकदा, खुमो सागर उदास है
तुम क्या गये कि रूठ गये दिन वहार के

इक फुर्सते-गुनाह मिली, वो भी चार दिन
देखे है हमने होसले परवरदिगार के

दुनिया ने तेरी याद से बेगाना कर दिया
तुझ से भी दिलफरेव है गम रोजगार के

भूले से मुस्करा तो दिये थे वो आज 'फेज'
मत पूछ वलवले दिले-नाकर्दाकार[1] के

1 अनुभवहीन दिल

कइ वार इसका दामन भर दिया हुस्ने-दो आलम[1] से
मगर दिल हे कि उसकी ख़ानावीरानी नही जाती

कइ वार इमकी खातिर जर्रे-जर्रे का जिगर चीरा
मगर ये चश्म हरा, जिसकी हरानी नही जाती

नही जाती मताए-लालो-गाहर[2] की गरायावी[3]
मताए-गेरतो-ईमा[4] की अरजानी[5] नही जाती

मेरी चश्मे-तन आसा[6] का वसीरत[7] मिल गयी जव स
वहुत जानी हुई सूरत भी पहचानी नही जाती

सरे-खुसरा[8] से नाजे-कजकुलाही[9] छिन भी जाता हे
कुलाहे-खुसरो[10] से वू-ए-सुल्तानी नही जाती

व-जुज दीवानगी वा ओर चारा ही कहो क्या हे
जहा अक्लो-ख़िरद[11] की एक भी मानी नही जाती

1 लोक परलोक की सुदरता 2 हीरे मोती की दौलत 3 महगापन 4 स्वाभिमान और सच्चाइ की दोलत 5 सस्तापन 6 आलसी निकम्मा 7 ज्ञान चक्षु देखन की शक्ति 8 वादशाह खुसरा का सर 9 राजत्व का गारव 10 खुसरो का ताज, 11 समझ बूझ

इज्जे-अह्ले सितम[1] की वात करो
इश्क के दम कदम की वात करो

वज्म-अह्ले तरव[2] को शरमाओ
वज्मे-असहावे गम[3] की वात करो

वज्म सरवत[4] के खुशनसीवा से
अज्मते चश्मे-नम[5] की वात करो

हे वही वात यू भी ओर यू भी
तुम सितम या करम की वात करा

खर ह अह्ल दर जस ह
आप अह्ले हरम की वात करा

हिज्र की शव तो कट ही जायेगी
रोज-वस्ल सनम[6] की वात करो

जान जायग जानन वाल
फ्न फग्हान जम[7] की वात करा

1 अत्याचार करनवाला की नम्रता 2 सुखी लाग 3 दुखा लागा का दुनिया 4 समृद्धि का मस्तिप्क 5 भीगी आखा की महानता 6 प्रिय मिलन का दिन 7 फरहाद और वादशाह जमशद

रग पराहन का, खुशबू जुल्फ लहराने का नाम
मासमे-गुल ह तुम्हार बाम पर आने का नाम

दोस्तो उस चश्मो-लव की कुछ कहो जिसके वगैर
गुलसिता की वात रगी हे न मयखाने का नाम

फिर नजर म फूल महक, दिल मे फिर शम्ए जली
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म मे जाने का नाम

दिलबरी ठहरा जवाने-खल्क[1] खुलवाने का नाम
अब नही लेते परी-रू[2] जुल्फ बिखराने का नाम

अब किसी लेला को भी इकरारे-महवूवी नही
इन दिना बदनाम है हर एक दीवाने का नाम

मुहतसिब की खैर, ऊचा हे उसी के फैज से
रिंद का, साकी का, मय का, खुम का, पेमाने का नाम

हमसे कहते है चमन वाले, गरीबाने चमन[3]
तुम कोई अच्छा सा रख लो अपने वीराने का नाम

'फैज' उनको ह तकाजा-ए वफा हमसे जिन्ह
आशना के नाम से प्यारा हे वेगाने का नाम

1 दुनिया की जवान 2 परियों जैसे चेहरेवाले 3 जो चमन से बाहर चले गये या कर दिये गये

अव वही हर्फ़े-जुनू[1] सवकी जवा ठहरी है
जो भी चल निकली है, वो वात कहा ठहरी हे

आज तक शेख़ के इकराम[2] मे जो शे थी हराम
अव वही दुश्मने-दीं[3] राहत-जा[4] ठहरी है

हे ख़वर गर्म कि फिरता हे गुरेजा[5] नासेह
गुफ्तगू आज सरे-कू-ए-वुता[6] ठहरी है

है वही आरिजे-लैला,[7] वही शीरी का दहन[8]
निगाहे-शाक़ घडी-भर का जहा ठहरी हे

वस्ल की शव थी तो किस दर्जा सुवुक[9] गुजरी थी
हिज्र की शव हे तो क्या सख़्तगरा ठहरी है

विखरी इक वार तो हाथ आयी है कव मौजे-शमीम
दिल से निकली है तो कव लव पे फ़ुगा ठहरी है

दस्ते-सैयाद[10] भी आजिज हे, कफे-गुलचीं[11] भी
वू-ए-गुल ठहरी न वुलवुल की जवा ठहरी है

आते-आते यू ही दम भर को रुकी होगी वहार
जाते-जाते यू ही पल-भर को खिजा ठहरी है

हमने जो तर्जे-फ़ुगा की है कफ़स मे ईजाद
'फ़ैज' गुलशन म वहीं तर्जे-वया ठहरी है

---

1 उन्माद का शब्द 2 अनुकम्पा कृपादृष्टि 3 दीन धर्म की दुश्मन 4 प्राणा को सुख देनवाली 5 भागा भागा 6 हसीनां की गली म 7 लैला के गाल 8 मुह 9 हल्की 10 शिकारी का हाथ 11 फूल चुननेवाले का हाथ

सितम की रस्मे वहुत थीं लेकिन, न थीं तेरी अजुमन से पहले
सजा ख़ता-ए-नजर से पहले, इताव[1] जुर्मे-सुख़न से पहले

जो चल सको तो चलो कि राहे-वफ़ा वहुत मुख़्तसर हुई है
मुकाम हे अव कोई न मंजिल, फ़राजे दारो रसन[2] से पहले

नहीं रही अव जुनू की जजीर पर वो पहली इजारेदारी
गिरफ्त करते हे करनेवाले ख़िरद[3] पे दीवानापन से पहले

करे कोई तेग का नजारा, अव उनको यह भी नही गवारा
व-जिद हे कातिल कि जाने-विस्मिल फ़िगार[4] हो जिस्मो-तन से पहले

गुरूरे-सर्वो-समन से कह दो कि फिर वही ताजदार हागे
जो ख़ारो ख़स वाली-ए-चमन थे उरूजे-सर्वो समन[5] से पहले

इधर तकाजे हे मसलहत के, उधर तकाजा-ए दर्दे-दिल है
जवा सभाले क दिल सभाल, असीर[6] जिक्रे-वतन से पहले

हेदराबाद जेल 17 22 मई 1954

1 कोप 2 फासी का तख़्ता 3 अक्ल 4 घायल 5 सरो के लंबे गर्वीले पेड आर चमेली की वेल के उत्थान 6 वदी

कव याद मे तेरा साथ नही, कव हात मे तेरा हात नहीं
सद शुक्र कि अपनी राता मे अव हिज्र की कोई रात नही

मुश्किल है अगर हालात वहा, दिल बेच आय जा दे आये
दिलवालो कूचा ए-जाना मे क्या ऐसे भी हालात नही

जिस धज से कोई मकतल मे गया, वो शान सलामत रहती है
ये जान तो आनी-जानी हे, इस जा की तो कोई यात नही

मेदाने-वफा दरवार नही, या नामो-नसव[1] की पूछ कहा
आशिक तो किसी का नाम नहीं, कुछ इश्क किसी की जात नही

गर वाजी इश्क की वाजी हे, जो चाहो लगा दो डर कैसा
गर जीत गये तो क्या कहना, हारे भी तो वाजी मात नही

मटगोमरी जेल

1 नाम और ख़ानदान

गुलों में रंग भरे बादे-नौबहार चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले

कफ़स उदास है यारो सबा से कुछ तो कहो
कहीं तो बहरे-ख़ुदा आज ज़िक्रे-यार चले

कभी तो सुब्ह तेरे कुंजे-लब[1] से हो आगाज
कभी तो शब सरे-काकुल[2] से मुश्कबार चले

बड़ा है दर्द का रिश्ता ये दिल गरीब सही
तुम्हारे नाम पे आयेंगे गमगुसार चले

जो हम पे गुजरी सो गुजरी मगर शबे-हिज्रां
हमारे अश्क तेरी आकबत सवार चले

हुजूरे-यार हुई दफ़्तरे-जुनूं की तलब
गिरह में लेके गरेबान-तार-तार चले

मुकाम, 'फ़ैज' कोई राह में जचा ही नहीं
जो कू-ए-यार से निकले तो सू-ए-दार चले

मटगोमरी जेल [redacted] जनवरी, 1954

1 होंठ का कोना, 2 लटों का सिरा

गर्मि-ए-शौके-नजारा[1] का असर तो देखो
गुल खिले जाते हैं वो सायए-दर तो देखो

ऐसे नादां भी न थे जां से गुजरने वाले
नासेहो पंदगरों[2], राहगुजर तो देखो

वो तो वो है, तुम्हें हो जायेगी उल्फ़त मुझसे
इक नजर तुम मेरा महबूब-नजर तो देखो

वो जो अब चाक गरेबां भी नहीं करते हैं
देखनेवालो कभी उनका जिगर तो देखो

दामने-दर्द को गुलजार बना रक्खा है
आओ, इक दिन दिले पुरखूं[3] का हुनर तो देखो

सुब्ह की तरह झमकता है शबे-गम का उफ़क
'फ़ैज' तावदगिए दीदए-तर तो देखो

मटगोमरी जेल 4 मार्च 1954

1 दर्शन की अभिलाषा का उत्साह 2 उपदेश देनेवाला 3 खून से भरा हुआ दिल

जमेगी कैसे बिसाते यारा कि शीशा-आ-जाम बुझ गये ह
सजेगी केसे शबे-निगारा[1] कि दिल सरे शाम बुझ गये ह

वो तीरगी[2] है रहे-बुता म चिरागे रुख़ है न शम्ए-वादा
किरन कोई आरज़ू की लाओ कि सब दरो बाम बुझ गये ह

वहुत सभाला वफ़ा का पमा मगर वो वरसी हे अवके वरखा
हर एक इकरार मिट गया हे, तमाम पेगाम बुझ गये ह

क़रीब आ ऐ महे-शबे-गम[3] नजर पे खुलता नहीं कुछ इस दम
कि दिल पे किस-किसका नक्श बाक़ी हे कौने से नाम बुझ गये है

बहार अब आके क्या करेगी कि जिनसे था जश्न-रगो-नग्मा
वो गुल सरे-शाख़ जल गये है, वो दिल तहे-दाम बुझ गये ह

1 प्रमिकाओं की रात 2 अधेरा दर्द की रात के चाद

तेरे गम को जा की तलाश थी, तेरे जा-निसार चले गय
तेरी रह मे करते थे सर तलब, सरे-रहगुजार चले गय

तेरी कज-अदाई[1] से हारके शब इतजार चली गयी
मेरे जब्ते-हाल[2] स रूठ कर मेरे गमगुसार चले गये

न सवाले वस्ल न अर्जे-गम, न हिकायत न शिकायते
तेरे अहृद[3] म दिले-जार के सभी इख़्तियार चले गये

ये हमी थे जिनके लिबास पर सरे-रू सियाही लिखी गयी
यही दाग थे जो सजा के हम सरे-बज्मे यार चले गये

न रहा जुनूने रुख वफ़ा, ये रसन ये दार करोगे क्या
जिन्हे जुर्मे-इश्क पे नाज था वा गुनाहगार चले गये

जुलाई 1959

1 ख़ामोशी 2 अपनी दशा पर सतोष 3 वफा की कसम

न गवाओ नावक़-नीमक़श[1], दिले रजा रजा गवा दिया
जो यचे है सग समेट ला, तन-दाग-दाग लुटा दिया

मरे चारागर का नजद[2] हा, सफ़-दुश्मना का खवर करा
जा या कर्ज रखत थे जान पर वा हिसाव आज चुका दिया

करा कज जवी प सरे-कफ़न, मरे क़ातिला का गुमा न हा
कि गुरूरे-इश्क का वाक़पन पस-मर्ग[3] हमने भुला दिया

उधर एक हर्फ़ कि कुश्तनी[4], यहा लाख उज्र[5] था गुफ़्तनी[6]
जो कहा तो सुन के उड़ा दिया, जो लिखा तो पढ़के मिटा दिया

जो रुके तो कोहे-गरा[7] थे हम, जो चले तो जा से गुजर गये
रहे-यार हमने कदम-कदम तुझे यादगार वना दिया

---

1 आधा खिचा हुआ तीर, 2 खुशखवरी 3 मरने के बाद 4 मार देनेवाला 5 विवशता 6 कहने योग्य 7 बहुत यड़ा पहाड़

ये मोसमे-गुल गर्चे तरवख़ेज[1] वहुत है
अहवाले-गुलो-लाला गमअगेज[2] वहुत है

खुश[3] दावते यारा भी है, यल्गारे-उदू[4] भी
क्या कीजिये दिल का जो कमआमेज[5] वहुत है

यो पीरे-मुगां[6] शेख़े हरम[7] से हुए यक्जा[8]
मयख़ाने मे कमजर्फ़िए-परहेज[9] वहुत है

इक गर्दने-मखलूक[10] जो हर हाल मे ख़म[11] है
इक वाज़ुए कातिल है, कि ख़ूंरेज[12] वहुत है

क्यो मश्अले दिल[13] 'फ़ेज छुपाओ तहे दामा
वुझ जायेगी यो भी, कि हवा तेज वहुत है

1975

---

1 आनदवर्धक [illegible] दु खद [illegible] प्रसन्नता की वात 4 दुश्मन का हमला 5 मिलना-जुलना कम पसद करनेवाला 6 पीनेवालों यानी मस्ता के सरदार 7 धर्मगुरु [illegible] एकजान 9 परहेज की तगदिली 10 अवाम की गर्दन 11 टेढ़ी 12 ख़ून वहानेवाला 13 दिल की मशाल।

मख़दूम* की याद में-1

'आपकी याद आती रही रात भर'
चादनी दिल दुखाती रही रात भर

गाह जलती हुई, गाह वुझती हुई
शम ए-गम झिलमिलाती रही रात भर

कोई खुशबू बदलती रही पैरहन[1]
कोई तस्वीर गाती रही रात भर

फिर सबा[2] साय-ए-शाखे़-गुल[3] के तले
कोई किस्सा सुनाती रही रात भर

जो न आया उसे कोई जजीरे-दर[4]
हर सदा पर बुलाती रही रात भर

एक उम्मीद से दिल बहलता रहा
इक तमन्ना सताती रही रात भर

मास्को, सितबर 1978

उर्दू के मशहूर कवि जिन्होंने तेलगाना आदोलन मे हिस्सा लिया था। उनकी दो गजलो से प्रेरित होकर फ़ेज ने द
गजले लिखी है।

1 वस्त्र 2 हवा 3 फूल की टहनी की छाया 4 दरवाजे की साक़ल।

एक दक्खनी गज़ल

कुछ पहले इन आखो आगे क्या क्या न नजारा गुजरे था
क्या रोशन हो जाती थी गली जब यार हमारा गुजरे था

थे कितने अच्छे लोग कि जिनको अपने गम से फुर्सत थी
सब पूछे थे अहवाल[1] जो कोई दर्द का मारा गुजरे था

अब के तो ख़िजा[2] ऐसी ठहरी वो सारे जमाने भूल गये
जब मौसमे-गुल[3] हर फेरे मे आ आ के दुबारा गुजरे था

थी यारो की बहुतात तो हम अगयार[4] से भी बेजार न थे
जब मिल बैठे तो दुश्मन का भी साथ गवारा[5] गुजरे था

अब तो हाथ सुझाइ न देवे लेकिन अब से पहले तो
आख उठते ही एक नजर मे आलम सारा गुजरे था

मास्को अक्टूबर 1978

1 दशा 2 पतझड 3 बसत 4 गेर 5 सहन करना।

कब तक दिल की खेर मनाये कब तक रह दिखलाओगे
कब तक चैन की मोहलत[1] दोगे, कब तक याद ना आओगे

बीता दीद-उमीद[2] का मोसम, खाक उडती है आखा म
कब भेजोगे दर्द का बादल, कब बरखा बरसाओगे

अह्दे-वफा या तर्के-मुहब्बत[3], जो चाहो सो आप करो
अपने बस की बात ही क्या हे, हमसे क्या मनवाओगे

किसने वस्ल का सूरज दखा, किस पर हिज्र की रात ढली
गसुआ वाले[4] कोन थे क्या थे, उनको क्या जतलाओगे

'फज दिला क भाग म है घर बसना भी लुट जाना भी
तुम उस हुस्न क लुत्फो-करम[5] पर कितने दिन इतराओगे

अक्टूबर 1968

1 अवकाश 2 दर्शन की आशा 3 वफादारी का प्रण या प्रेम सबध का विच्छेद 4 जुल्फोवाले 5 कृपाओं।

कही तो कारवाने - दर्द की मजिल ठहर जाये
किनारे आ लगे उम्रे - रवा या दिल ठहर जाये

अमा[1] कसी कि मोजे - खू अभी सर से, नही गुजरी
गुजर जाये तो शायद बाजुए—कातिल ठहर जाये

कोई दम बादवाने कश्तिए - सहबा[2] को तह रक्खो
जरा ठहरो गुबारे - खातिरे - महफिल[3] ठहर जाये

खुमे - साकी मे जुज[4] जहरे - हलाहल कुछ नही बाकी
जो हो महफिल मे इस इकराम[5] क काबिल ठहर जाये

हमारी खामुशी बस दिल से लब तक एक वक्फा[6] हे
य' तूफा हे जो पल भर बर-लबे - साहिल ठहर जाये

निगाहे - मुतजिर[7] कब तक करेगा आइनाबदी
कहीं तो दश्ते - गम[8] मे यार का महमिल[9] ठहर जाये

---

1 शांति सुरक्षा भाव 2 शराब की कश्ती का बादवान शराब के दोर को मस्ती के झोके देनेवाली सोहबत ('कश्ती' शराब के एक किस्म के प्याले को भी कहते हैं) 3 महफिल के दिल का गुबार 4 सिवाय 5 सत्कार 6 बीच का अवकाश 7 इतजार करनेवाली निगाह प्रतीक्षा दृष्टि 8 दुख आर सताप का बियाबान 9 ऊट पर स्त्रियों के बैठने क लिए बनी हुई डोलीनुमा जगह।

ख़ुदा वह वक्त न लाये

ख़ुदा वह वक्त न लाये कि सोगवार[1] हो तू
सुकू की नींद तुझे भी हराम हो जाये
तेरी मसर्रते-पेहम[2] तमाम हो जाये
तेरी हयात तुझे तल्ख़ जाम हो जाये

गमो से आईन ए-दिल गुदाज[3] हो तेरा
हुजूमे-यास[4] से बेताब होके रह जाये
वफूरे-दर्द[5] से सीमाव[6] होके रह जाये
तेरा शबाब फकत ख़्वाब होके रह जाये

ग़ुरूरे-हुस्न सरापा नियाज[7] हो तेरा
तवील रातो मे तू भी करार को तरसे
तिरी निगाह किसी गमगुसार को तरसे
ख़िजारसीदा तमन्ना बहार को तरसे

कोई जबी न तिरे सगे-आस्ता[8] पे झुके
कि जिन्से इज्जा-अकीदत[9] से तुझको शाद करे
फरेबे-वादा - ए-फर्दा[10] पे एतमाद करे
ख़ुदा वह वक्त न लाये कि तुझको याद आये

वो दिल कि तेरे लिए बे-करार अब भी है
वो आख जिसको तेरा इतजार अब भी है

---

1 उदास 2 निरतर सुख 3 नर्म बोझिल 4 निराशाओ की भीड 5 पीडा की अति 6 पारा 7 श्रद्धा 8 चौख' का पत्थर 9 नम्रता और श्रद्धा 10 भविष्य के वादे का धोखा।

मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग

मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग
मने समझा था कि तू हे तो दरख्शा[1] है हयात[2]
तेरा गम हे तो गमे-दह्र[3] का झगडा क्या है
तेरी सूरत से है आलम मे बहारो को सबात[4]
तेरी आखो के सिवा दुनिया मे रक्खा क्या हे
तू जो मिल जाये तो तकदीर नगू[5] हो जाये
यू न था, मेने फकत चाहा था यू हो जाये

ओर भी दुख हें जमाने मे मुहब्वत के सिवा
राहते ओर भी हे वस्ल[6] की राहत के सिवा

अनगिनत सदियो के तारीक बहीमाना[7] तिलिस्म
रेशमो–अतलसो–किमख्वाब मे बुनवाये हुए
जा-ब-जा बिकते हुए कूचा-ओ बाजार मे जिस्म
ख़ाक मे लिथडे हुए ख़ून मे नहलाये हुए
जिस्म निकले हुए अमराज[8] के तन्नूरो से
पीप बहती हुई गलते हुए नासूरो से
लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजे
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे

ओर भी दुख है जमाने मे मुहब्बत के सिवा
राहतें और भी है वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरे महबूब न माग

1 चमकदार 2 जीवन 3 दुनिया का दुख 4 स्थिरता 5 उलट जाना बदल जाना 6 प्रणय मिलन 7 पाशविक वर्बर 8 बीमारिया।

रक़ीब से

आ कि वाबस्ता[1] है उस हुस्न की यादे तुझसे
जिसने इस दिल को परीखाना बना रक्खा था
जिसकी उल्फत मे भुला रक्खी थी दुनिया हमने
दहर[2] को दह्र का अफसाना बना रक्खा था

आशना है तेरे क़दमो से वो राहे जिन पर
उसकी मदहोश जवानी ने इनायत की है
कारवा गुजरे है जिनसे उसी रानाई[3] के
जिसकी इन आखा ने बे–सूद[4] इबादत[5] की है

तुझसे खेली है वो महबूब हवाए जिनमे
उसके मलबूस[6] की अफसुर्दा[7] महक बाकी है
तुझ पे भी बरसा है उस बाम से महताब का नूर
जिसमे बीती हुई रातो की कसम बाकी है

तूने देखी है वो पेशानी[8] वो रुखसार[9] वो होठ
जिदगी जिनके तसव्वुर[10] मे लुटा दी हमने
तुझपे उट्ठी है वो खोई हुई साहिर[11] आखे
तुझ को मालूम ह क्यो उम्र गवा दी हमने

हम पे मुश्तरिका[12] है एहसान गमे–उल्फत के
इतने एहसान कि गिनवाऊ तो गिनवा न सकू
हमने इस इश्क मे क्या खोया है क्या सीखा है
जुज[13] तेरे आर को समझाऊ तो समझा न सकू

आजिजी[14] सीखी गरीबो की हिमायत सीखी
यासो–हिरमान[15] के दुख दर्द के मानी सीखे
जेरदस्तो के मसाइब[16] को समझना सीखा
सर्द आहा क रुख़े-जर्द[17] के मानी सीखे

जब कही बेठ के रोते हैं वो बेकस जिनके
अश्क आखो मे बिलकते हुए सो जाते ह
नातवानो[18] के निवाला पे झपटते हे उकाब[19]
बाजू तोले हुए मडलाते हुए आते है

जब कभी बिकता हे बाजार मे मजदूर का गोश्त
शाहराहों[20] पे गरीबो का लहू बहता है
या कोई तोद का बढता हुआ सैलाब लिये
फाकामस्तों[21] का डुबोने के लिए कहता हे
आग-सी सीने मे रह रह के उबलती हे न पूछ
अपने दिल पर मुझे काबू ही नही रहता ह

1 जुडी हुई 2 दुनिया 3 छटा 4 व्यर्थ 5 उपासना पूजा 6 वस्त्र 7 उदास 8 माथा 9 गाल 10 कल्पना 11 जादूगर 12 समान 13 अतिरिक्त 14 विनम्रता 15 आशा व निराशा 16 निर्बलो की व्यथाए 17 पीला चेहरा 18 शक्तिहीन 19 गीध 20 राजपथ 21 फाका कर रहे मूर्ख

तनहाई

फिर कोई आया दिल-जार नही कोई नही
राहरौ[1] होगा, कही और चला जायेगा
ढल चुकी रात, बिखरने लगा तारा का गुबार[2]
लडखडाने लगे एवानो[3] मे ख़्वाबीदा चिराग
सो गयी रास्ता तक-तक के हर इक राहगुजार
अजनबी ख़ाक ने धुदला दिये कदमो के सुराग
गुल करो शम्एं बढा दो मयो-मीना-ओ-अयाग[4]
अपने बे ख़्वाब किवाडो को मुकफ्फल[5] कर लो
अब यहा कोई नही, कोई नहीं आयेगा

1 पथिक 2 धूल 3 महला 4 शराब सुराही और प्याला 5 ताला लगाना

चंद रोज़ और मेरी जान

चद रोज और मेरी जान फ़कत चद ही रोज
ज़ुल्म की छाव में दम लेने पे मजबूर है हम
और कुछ देर सितम सह ले, तड़प लें, रो लें
अपने अजदाद[1] की मीरास[2] है माज़ूर[3] है हम
जिस्म पर क़ेद है, जज्बात पे जजीरे है
फ़िक्र महबूस[4] है, गुफ्तार पे ताज़ीरें[5] है
अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिये जाते ह
जिदगी क्या किसी मुफलिस की क़बा है जिसमे
हर घडी दर्द के पेबद लगे जाते हे
लेकिन अब ज़ुल्म की मीयाद क दिन थाडे हे
इक जरा सब्र, कि फरियाद के दिन थोडे ह
अर्सा-ए-दहर[6] की झुलसी हुई वीरानी मे
हमको रहना हे पे यू ही तो नही रहना हे
अजनबी हाथो का बे-नाम गरावार[7] सितम
आज सहना हे हमेशा तो नही सहना हे
ये तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम[8] की गर्द
अपनी दो-रोजा जवानी की शिकस्तो का शुमार
चादनी रातो का बेकार दहकता हुआ दर्द
दिल की बे-सूद तडप, जिस्म की मायूस पुकार
चद रोज ओर मरी जान फ़कत चद ही रोज

---

1 पूर्वज 2 देन धरोहर 3 लाचार 4 बदी, 5 प्रतिबध 6 ससार का मैदान 7 भारी बोझिल 8 दुख।

कुत्ते

ये गलियों के आवारा बेकार कुत्ते
कि बख़्शा गया जिनको जोके-गदाई[1]
जमाने की फटकार सरमाया[2] इनका
जहा भर की दुतकार इनकी कमाई

न आराम शब को, न राहत सवेरे
गलाजत मे घर, नालियो मे बसेरे
जो बिगडे तो इक दूसरे से लडा दो
जरा एक रोटी का टुकडा दिखा दो

ये हर एक की ठोकरे खाने वाले
ये फाका से उकता के मर जाने वाले
ये मजलूम[3] मख़्लूक[4] गर सर उठाये
तो इनसान सब सरकशी[5] भूल जाये

ये चाहे तो दुनिया को अपना बना ले
ये आकाओं[6] की हड्डिया तक चबा ले
कोई इनको एहसासे-जिल्लत[7] दिला दे
कोई इनकी सोई हुई दुम हिला दे

---

1 भीख मागने की रुचि 2 पूजी 3 दलित पीडित, 4 प्राणी 5 घमड 6 मालिकों 7 अपमान का एहसास।

बोल

बोल कि लब आजाद है तेरे
बोले जबां अब तक तेरी है
तेरा सुतवा[1] जिस्म है तेरा
बोल कि जां अब तक तेरी है
देख के आहनगर[2] की दुकां[3] में
तुंद[4] हैं शोले, सुर्ख़ है आहन[5]
खुलने लगे कुफ्लों के दहाने[6]
फैला हर एक जंजीर का दामन
बोल, ये थोड़ा वक्त बहुत है
जिस्मो-जबां की मौत से पहले
बोल, कि सच जिंदा है अब तक
बोल, जो कुछ कहना है कह ले

1 सुडौल 2 लोहार 3 दुकान 4 तेज 5 लोहा 6 ताला के मुंह।

मेरे हमदम, मेरे दोस्त

गर मुझे इसका यकी हो, मेरे हमदम, मेरे दोस्त
गर मुझे इसका यकीं हो कि तेरे दिल की थकन
तेरी आखो की उदासी, तेरे सीने की जलन
मेरी दिलजोई, मेरे प्यार से मिट जायेगी
गर मेरा हर्फे - तसल्ली वो दवा हो जिससे
जी उठे फिर तेरा उजडा हुआ बे - नूर दिमाग
तेरी पेशानी से धुल जाये ये तजलील[1] के दाग
तेरी बीमार" जवानी को शफा हो जाये
गर मुझे इसका यकी हो, मेरे हमदम, मेरे दोस्त

रोजो - शब, शामो - सहर, मै तुझे बहलाता रहू
मै तुझे गीत सुनाता रहू हल्के, शीरी
आबशारो के, बहारा के, चमनजारा के गीत
आमदे - सुब्ह के, महताब के सय्यारो[2] के गीत

तुझसे मे हुस्नो-मुहब्बत की हिकायत[3] कहू
कैसे मगरूर हसीनाओ के बर्फाब[4] से जिस्म
गर्म हाथो की हरारत मे पिघल जाते ह
कैसे इक चेहरे के ठहरे हुए मानूस[5] नुकूश
देखते-देखते यकलख्त बदल जाते ह
किस तरह आरिजे महबूब का शफ्फाफ बिल्लूर[6]
यकबयक बादा ए-अहमर[7] से दहक जाता है

कैसे गुलचीं के लिए झुकती है खुद शाखे-गुलाब
किस तरह रात का ऐवान[8] महक जाता है
यू ही गाता रहू, गाता रहू, तेरी ख़ातिर
गीत बुनता रहू, बेठा रहू, तेरी ख़ातिर

पर मर गीत तरे, दुख का मदावा[9] ता नहीं
नग्मा जर्राह नहीं, मूनिसो गमख्वार[10] सही
गीत नश्तर तो नहीं, मरहमे-आजार[11] सही
तेरे आजार का चारा नहीं नश्तर के सिवा
और ये सफ्फ़ाक़[12] मसीहा मेरे कब्जे म नहीं
इस जहा के किसी जी रूह[13] के कब्जे मे नहीं
हा मगर तेरे सिवा, तेरे सिवा, तेरे सिवा

बादे सबा के एक सस्करण मे 'बीमार' शब्द के स्थान पर 'मदकूक (क्षयग्रस्त) शब्द का प्रयोग मिला है।
1 अपमान 2 सितारो 3 कहानिया 4 ठडे 5 परिचित 6 सुरा पात्र 7 लाल रग की शराब 8 महल 9 इलाज 10 दास्त आर दु ख बटानवाला 11 कष्ट को कम करनेवाला मरहम 12 निर्मम 13 प्राणी जिसके रूह हो।

सुब्हे-आज़ादी

(अगस्त, '47)

ये दाग-दाग उजाला, ये शबगजीदा[1] सहर
वो इंतिजार था जिसका, ये वो सहर तो नही

ये वो सहर तो नही जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार को मिल जायेगी कहीं न कही
फलक के दश्त मे तारो की आखिरी मजिल
कही तो होगा शबे सुस्तमोज का साहिल
कहीं तो जाके रुकेगा सफीनए-गमे-दिल
जवा लहू की पुर-असरार[2] शाहराहो से
चले जो यार तो दामन पे कितने हाथ पडे
दयारे-हुस्न की बे सब्र ख़्वाबगाहो से
पुकारती रहीं बाँहे, बदन बुलाते रहे
बहुत अजीज थी लकिन रुखे सहर की लगन
बहुत करी[3] था हसीनाने नूर का दामन
सुबुक-सुबुक थी तमन्ना दबी-दबी थी थकन

सुना हे हो भी चुका है फिराके-जुल्मते नूर[4]
सुना है हो भी चुका है विसाले-मजिलो गाम[5]
बदल चुका है बहुत अह्ले-दर्द का दस्तूर
निशाते-वस्ल हलालो-अजाबे-हिज्रे[6]-हराम
जिगर की आग, नजर की उमग, दिल की जलन
किसी पे चाराए-हिज्रा[7] का कुछ असर ही नहीं
कहा से आयी निगारे–सबा[8] किधर को गयी
अभी चिरागे–सरे-रह को कुछ खबर ही नहीं
अभी गरानी ए शब में कमी नहीं आयी
नजाते दीदा-ओ-दिल[9] की घडी नही आयी
चले चलो कि वो मंजिल अभी नहीं आयी

---

1 रात की डसी हुई 2 रहस्यमय 3 निकट 4 अधेरे और रोशनी का अलगाव 5 मंजिल और कदम का मिलन 6 विरह की मुसीबत 7 विरह का समाधान।

लौहो-क़लम

हम परवरिशे–लाहो–क़लम करत रहगे
जो दिल पे गुजरती है रक़म करते रहग
असबाव–गमे इश्क़ वहम[1] करते रहेंगे
वीरानी ए-दारा प करम करते रहेगे
हा, तलख़ी ए-अय्याम[2] अभी और बढ़ेगी
हा, अह्ले सितम मश्क़े-सितम करते रहेगे
मजूर ये तलख़ी, ये सितम हमको गवारा
दम है तो मदावा ए-अलम[3] करते रहेगे
मयख़ाना सलामत हे तो हम सुर्ख़ी-ए-मय से
तजईने-दरो-बामे-हरम[4] करते रहेगे
बाक़ी है लहू दिल मे ता हर अश्क स पेदा
रगे-लवो-रुख़सारे-सनम करत रहेगे
इक तर्जे-तगाफुल हे सो वो उनको मुबारक
इक अर्जे तमन्ना ह सो हम करते रहेगे

1 जुटाना ■ दिनो की कटुता 3 दु ख का इलाज 4 मस्जिद के दर और छत की सजावट।

तराना

दरबारे-वतन मे जब इक दिन सब जाने वाले जायेगे
कुछ अपनी सजा को पहुचेगे कुछ अपनी जजा[1] ले जायेगे

ऐ ख़ाकनशीनो, उठ बैठो, वो वक्त करीब आ पहुचा हे
जब तख़्त गिराये जायेगे, जब ताज उछाले जायेगे

अब टूट गिरेगी जजीरे, अब जिदानो[2] की ख़ैर नही
जो दरिया झूम के उट्ठे है, तिनको से न टाले जायेगे

कटते भी चलो, बढते भी चलो, बाजू भी बहुत हे, सर भी बहुत
चलते भी चलो कि अब डेरे मजिल ही पे डाले जायेगे

ऐ जुल्म के मातो, लब खोलो, चुप रहनेवालो, चुप कब तक
कुछ हश्र तो उनसे उट्ठेगा, कुछ दूर तो नाले जायगे

---

1 पुरस्कार ▪ जेलख़ानों।

दो इश्क़

(1)

ताजा ह अभी याद म ऐ साक़ी ए गुलफ़ाम[1]
वो अक्से--रुखे--यार से लहके हुए अय्याम[2]
वो फूल-सी खिलती हुई दीदार की साअत
वो दिल-सा धडकना हुआ उम्मीद का हगाम

उम्मीद कि लो जागा, गमे-दिल का नसीबा
लो शोक़ की तरसी हुइ शव हो गयी आख़िर
अब चमकेगा ये - सब्र निगाहा का मुकद्दर

इस बाम से निकलेगा तेरे हुस्न का ख़ुरशीद[3]
उस कुज से फूटेगी किरन रगे — हिना की
इस दर से बहेगा तरी रफ्तार का सीमाब[4]
उस राह प फूलगी शफ़क[5] तेरी कबा की

फिर देखे है वो हिज्र कि तपते हुए दिन भी
जब फ़िक्रे-दिलो-जा मे फुगा[6] भूल गयी हे
हर शब वो सियह बोझ कि दिल बेठ गया हे
हर सुब्ह की लो तीर-सी सीने म लगी है

तनहाई मे क्या-क्या न तुझे याद किया हे
क्या - क्या न दिले - जार ने ढूढी ह पनाहे
आखो स लगाया है कभी दस्ते-सबा को
डाली हे कभी गर्दने - महताब मे बाहे

(2)

चाहा है उसी रग म लेला-ए-वतन को
तडपा है उसी तौर से दिल उसकी लगन मे
ढूढी है यू ही शौक ने आसाइशे - मंजिल[7]
रुख़सार के खम मे कभी काकुल[8] की शिकन मे

इस जाने-जहा को भी यू ही कल्बो-नजर[9] ने
हस-हस के सदा दी, कभी रो-रो के पुकारा
पूरे किये सब हर्फ़े - तमन्ना के तकाजे
हर दर्द को उजियाला, हर इक गम को सवारा

वापस नही फेरा कोई फरमान जुनू का
तनहा नहीं लौटी कभी आवाज जरस[10] की
ख़ैरीयते — जा, राहते तन,[11] सेहते-दामा[12]
सब भूल गयी मसलहते अह्ले - हवस की

इस राह मे जो सब पे गुजरती है वो गुजरी
तनहा पसे - जिदा कभी रुस्वा[13] सरे- बाजार
गरजे है बहुत शेख़-सरे-गोशा-ए-मिबर[14]
कडके है बहुत अह्ले हकम[15] बर-सरे-दरबार[16]

छोडा नहीं गैरो ने कोइ नावके-दुश्नाम[17]
छूटी नही अपनो से कोई तर्जे-मलामत[18]
इस इश्क न उस इश्क पे नादिम[19] है मगर दिल
हर दाग है इस दिल मे ब-जुज दागे नदामत[20]

---

1 फूल-जैसा साक़ी 2 दिन 3 सूरज 4 पारा 5 सूर्यास्त की लाली 6 विलाप 7 मंजिल का सहारा 8 केश 9 हृदय और दृष्टि 10 घटा। 11 शरीर का सुख 12 दामन का सुरक्षित रहना 13 बदनाम 14 मच पर से 15 अधिकारी 16 दरबार में 17 गाली का तीर 18 निन्दा का ढग 19 लज्जित 20 लज्जा का कलक।

दो इश्क

(1)

ताजा हे अभी याद मे ऐ साकी ए गुलफाम[1]
वो अक्स–रुखे–यार मे लहके हुए अय्याम[2]
वो फूल-सी-खिलती हुई दीदार की साअत
वो दिल-सा धडकता हुआ उम्मीद का हगाम

उम्मीद कि लो जागा, गम-दिल का नसीबा
लो शोक की तरसी हुई शब हो गयी आखिर
अब चमकेगा बे - सब्र निगाहा का मुकद्दर

इस बाम से निकलगा तेर हुस्न का खुरशीद[3]
उस कुज से फूटेगी किरन रगे – हिना की
इस दर से बहगा तरी रफ्तार का सीमाब[4]
उस राह पे फूलेगी शफक[5] तेरी कबा की

फिर देखे ह वो हिज्र कि तपते हुए दिन भी
जब फिक्रे-दिलो-जा म फुगा[6] भूल गयी हैं
हर शब वो सियह बाझ कि दिल बठ गया है
हर सुब्ह की लो तीर सी सीने मे लगी है

तनहाई म क्या-क्या न तुझे याद किया है
क्या - क्या न दिले - जार ने ढूढी है पनाह
आखो से लगाया हे कभी दस्ते-सबा को
डाली ह कभी गर्दने - महताब म बांहे

सुब्हे-बगावत का गुलशन
ओर सुब्ह हुई मन-मन, तन-तन।

इन जिस्मो का चादी-सोना
इन चेहरो के नीलम-मर्जा
जगमग, जगमग, रख़्शा-रख़्शा[8]
जो देखना चाहे परदेसी
पाय आये देखे जी भर कर
यह जीस्त[9] की रानी का झूमर
यह अम्न की देवी का कगन।

---

1 दानी 2 निरतर 3 भिक्षापात्र 4 इरान की धरती 5 मूगे 6 बच्चे आर युवक 7 नये 8 दमकते हुए, 9 जिदगी।

ईरानी तुलबा के नाम

(जो अम्न ओर आज़ादी की जद्दोजेह्द में काम आये)

'यह कौन सख़ी' ह[1]
जिनक लहू की
अशरफ़िया छन् छन्, छन् छन्
धरती क पैहम[2] प्यासे
कशकाल[3] म ढलती जाती है
कशकोल को भरती जाती है

ये कौन जवा हे, अर्जे-अजम,[4]
ये लखलुट
जिनके जिस्मा की
भरपूर जवानी का कुदन
यू ख़ाक मे रेजा रेजा हे
यू कूचा-कूचा बिखरा हे
ऐ अर्जे-अजम ऐ अर्जे-अजम,
क्या नोच के हस-हस फेक दिये
इन आखा ने अपने नीलम
इन होठो ने अपने मर्जा[5]
इन हाथो की वेकल चादी
किस काम आयी, किस हाथ लगी?

'ऐ पूछनेवालो परदेसी,
ये तिफ्लो-जवा[6]
उस नूर के नोरस[7] मोती हे
उस आग की कच्ची कलिया हे
जिस मीठे नूर आर कडवी आग
से जुल्म की अधी रात मे फूटा

सुर्खे-बगावत का गुलशन
और सुर्ख हुई मन-मन, तन-तन।

इन जिस्मो का चादी-सोना
इन चेहरो के नीलम-मर्जा
जगमग, जगमग, रख़्शा-रख़्शा[8]
जो देखना चाहे परदेसी
पाय आये देखे जी भर कर
यह जीस्त[9] की रानी का झूमर
यह अम्न की देवी का कगन।'

1 दासी 2 निरतर 3 भिक्षापात्र 4 इरान की धरती 5 भूगे ■ बच्चे और युवक 7 नये 8 दमकते हुए, ■ जिदगी।

ईरानी तुलबा के नाम

(जो अम्न और आजादी की जद्दोजेह्द में काम आये)

'यह कौन सखी'[1] है
जिनके लहू की
अशरफिया छन्-छन्, छन् छन्
धरती के पेहम[2] प्यासे
कशकोल[3] मे ढलती जाती है
कशकोल को भरती जाती है

ये कोन जवा है, अर्जे-अजम,[4]
ये लखलुट
जिनके जिस्मो की
भरपूर जवानी का कुदन
यू ख़ाक मे रेजा-रेजा है
यू कूचा-कूचा बिखरा है
ऐ अर्जे-अजम ऐ अर्जे-अजम,
क्यो नोच के हस-हस फेक दिये
इन आखा ने अपने नीलम
इन होठो ने अपने मर्जा[5]
इन हाथो की बेकल चादी
किस काम आयी, किस हाथ लगी?

'ऐ पूछनेवाले परदेसी,
ये तिफ्लो-जवा[6]
उस नूर के नोरस[7] मोती है
उस आग की कच्ची कलिया है
जिस मीठे नूर ओर कडवी आग
से जुल्म की अधी रात म फूटा

सुब्हे-बगावत का गुलशन
ओर सुब्ह हुई मन-मन, तन-तन।

इन जिस्मो का चादी सोना
इन चेहरो के नीलम-मर्जा
जगमग, जगमग, रख्शा-रख्शा[8]
जो देखना चाहे परदेसी
पाय आये देखे जी भर कर
यह जीस्त[9] की रानी का झूमर
यह अम्न की देवी का कगन।'

1 दानी 2 निरतर 3 भिक्षापात्र 4 ईरान की धरती 5 भूगे 6 बच्चे और युवक 7 नय 8 जिदगी।

ईरानी तुलबा के नाम

(जो अम्न और आजादी की जद्दोजेह्द मे काम आये)

'यह कान सखी[1] है
जिनके लहू की
अशरफिया छन्-छन्, छन्-छन्
धरती के पेहम[2] प्यासे
कशकोल[3] मे ढलती जाती है
कशकोल को भरती जाती हे

ये कौन जवा है, अर्जे-अजम,[4]
ये लखलुट
जिनके जिस्मो की
भरपूर जवानी का कुदन
यू ख़ाक मे रेजा-रेजा है
यू कूचा-कूचा बिखरा हे
ऐ अर्जे-अजम ऐ अर्जे-अजम,
क्यो नोच के हस-हस फेक दिये
इन आखो ने अपने नीलम
इन होठो ने अपने मर्जा[5]
इन हाथो की बेकल चादी
किस काम आयी, किस हाथ लगी?

'ऐ पूछनेवालो परदेसी,
ये तिफ्लो-जवां[6]
उस नूर के नौरस[7] मोती हे
उस आग की कच्ची कलिया ह
जिस मीठ नूर आर कड़वी आग
से जुल्म की अधी रात म फूटा

सुब्हे-वगावत का गुलशन
ओर सुब्ह हुई मन-मन, तन-तन।

इन जिस्मों का चादी-सोना
इन चेहरो के नीलम मर्जा
जगमग, जगमग, रख्शा-रख्शा[8]
जो देखना चाहे परदेसी
पाय आये देखे जी भर कर
यह जीस्त[9] की रानी का झूमर
यह अम्न की देवी का कगन।"

1 दानी 2 निरतर 3 भिक्षापात्र 4 इरान की धरती 5 भूगे 6 यच्चे और युवक 7 नये 8 दमकते हुए
जिदगी।

निसार मै तेरी गलियों पे.

निसार म तेरी गलियो पे ऐ वतन, कि जहा
चली है रस्म कि कोई न सर उठा के चले
जो कोई चाहनेवाला तवाफ[1] को निकले
नजर चुरा के चले जिस्मो-जा वचा के चले

है अह्ले-दिल के लिए अव ये नज्मे वस्तो-कुशाद[2]
कि सगो खिश्त[3] मुकय्यद[4] है ओर सग[5] आजाद

वहुत है जुल्म के दस्ते-वहाना-जू[6] के लिए
जो चद अह्ले-जुनू तेरे नामलेवा हे
बने है अह्ले-हवस, मुद्दई भी, मुंसिफ़ भी
किसे वकील करे, किससे मुंसिफी चाहे

मगर गुजारनेवालो के दिन गुजरते है
तेरे फिराक मे यू सुब्हो-शाम करते है—

बुझा जो रोजने-जिदा तो दिल ये समझा है
कि तेरी माग सितारो से भर गयी होगी
चमक उठे हे सलासिल[7] तो हमने जाना है
कि अव सहर तेरे रुख़ पर विखर गयी होगी

गरज तसव्वुरे-शामो सहर मे जीते है
गिरफ्ते साया-ए-दीवारो दर मे जीते हे

यू ही हमेशा उलझती रही हे जुल्म से ख़ल्क
न उनकी रस्म नयी हे न अपनी रीत नयी
यू ही हमेशा खिलाये ह हमने आग मे फूल
न उनकी हार नयी हे, न अपनी जीत नयी

इसी सबब से फलक का गिला नही करते
तिरे फिराक मे हम दिल बुरा नहीं करते

गर आज तुझसे जुदा है तो कल बहम[8] होगे
ये रात-भर की जुदाई तो कोई बात नही

गर आज ओज[9] पे हे ताला ए-रकीब[10] तो क्या
ये चार दिन की खुदाई तो कोइ बात नही

जो तुझसे अह्द-वफा उस्तवार[11] रखते हे
इलाजे-गर्दिशे-लैलो निहार[12] रखते हैं

पाठातर *निसार मै तिरी गलियो पे (शीशो का मसीहा स अली सरदार जाफरी*

1 परिक्रमा 2 बधने ओर खुलने की व्यवस्था 3 ईंट पत्थर 4 कैद 5 कुत्ते 6 बहाना ढूढनेवाले हाथ 7 जजीरें 8 मिलेंगे 9 शिखर 10 प्रतिद्वद्वी का भाग्य 11 पक्का 12 रात और दिन के क्रम का इलाज।

वासोख़्त*

सच है हमीं को आपके शिकवे बजा न थे
बेशक सितम जनाब के सब दोस्ताना थे

हा, जो जफा भी आपने की, कायदे से की
हा, हम ही कारबंदे-उसूले-वफा[1] न थे

आये तो यू कि जसे हमेशा थे मेहरबा
भूले तो यू कि गोया कभी आश्ना[2] न थे

क्यो दादे गम हमीं ने तलब, की बुरा किया
हमसे जहा मे कुश्ता ए-गम[3] ओर क्या न थे

गर फिक्रे-जख़्म की तो खतावार है कि हम
क्यू महवे-मदहे ख़ूबी-ए-तेगे अदा[4] न थे

हर चारागर को चारागरी से गुरेज था
वरना हमे जो दुख थे, बहुत ला-दवा न थे

लब पर है तलखी-ए मये-अय्याम[5], वरना 'फेज'
हम तलख़ी-ए-कलाम[6] पे माइल[7] जरा न थे

मटगोमरी जेल 24 नवबर, 1955

उर्दू पद्य की एक किस्म जो मुसद्दस के रूप मे होता है और जिसमें प्रेमिका के व्यवहार से नाराज होकर प्रेमी उसे जली-कटी सुनाने पर उतारू हो जाता है।

1 वफा के उसूल के पाबन्द 2 परिचित 3 गम के मारे हुए 4 अदा की तलवार के गुणों की प्रशसा मे व्यस्त 5 समय की शराब की कडवाहट 6 बात की कटुता 7 प्रवृत्ति रखना।

हम जो तारीक राहो मे मारे गये

(ईथेल और जूलियस रोज़नबर्ग के ख़तो से मुतास्सिर होकर लिखी गयी)

तेरे होठो के फूलो की चाहत में हम
दार[1] की ख़ुश्क टहनी पे वारे गये
तेरे हाथो की शम्आ की हसरत मे हम
नीम-तारीक राहों मे मारे गये

सूलिया पर हमारे लबों से परे
तेरे होठो की लाली लपकती रही
तेर जुल्फो की मस्ती बरसती रही
तेरी हाथों की चादी दमकती रही

जब घुली तेरी राहो मे शामे सितम
हम चले आये लाये जहा तक क़दम
लब पे हर्फ़े-गजल, दिल मे क़दीले-गम
अपना गम था गवाही तेरे हुस्न की
देख क़ायम रहे इस गवाही पे हम
हम जो तारीक राहो पे मारे गये

ना रसाई[2] अगर अपनी तक़दीर थी
तेरी उल्फत तो अपनी ही तदबीर थी
किसको शिकवा है गर शौक[3] के सिलसिले
हिज्र की कत्लगाहो से सब जा मिले

कत्लगाहो से चुनकर हमारे अलम[4]
और निकलेंगे उश्शाक[5] के काफ़िले
जिनकी राहे-तलब से हमारे क़दम
मुख़्तसर कर चले दर्द के फ़ासले

कर चले जिनकी ख़ातिर जहागीर[6] हम
जा गवाकर तिरी दिलबरी का भरम
हम जो तारीक राहो मे मारे गये

मटगोमरी जेल 15 मई 1954

---

2 विफलता 3 उत्कठा 4 झडे 5 प्रेमी 6 विश्वव्यापी।

दर्द आयेगा दबे पांव

ओर कुछ देर मे, जब फिर मेरे तनहा दिल को
फ़िक्र आ लेगी कि तनहाई का क्या चारा करे
दर्द आयेगा दबे पाव, लिये सुर्ख़ चिराग
वह जो इक दर्द धड़कता है कहीं दिल से परे
शोला ए दर्द जो पहलू में लपक उट्ठेगा
दिल की दीवार पे हर नक्श दमक उट्ठेगा

हल्क़ा ए-ज़ुल्फ़[1] कहीं, गोशा ए रुख़सार[2] कहीं
हिज्र का दश्त कहीं, गुलशने-दीदार कहीं
लुत्फ़ की बात कहीं, प्यार का इक़रार कहीं
दिल से फिर होगी मेरी बात कि ऐ दिल, ऐ दिल
ये जो महबूब बना है तेरी तनहाई का
ये तो मेहमा है घड़ी भर का चला जायेगा
इससे कब मेरी मुसीबत का मदावा[3] होगा
मुश्तइल[4] होके अभी उट्ठेंगे वहशी साये
ये चला जायेगा रह जायेगे बाक़ी साये
रात भर जिनसे तेरा ख़ून-ख़राबा होगा
जग ठहरी है कोई खेल नहीं है ऐ दिल
दुश्मने-जा, है सभी सारे के सारे क़ातिल
ये कड़ी रात भी ये साये भी, तनहाई भी
दर्द ओर जग मे कुछ मेल नही है ऐ दिल
लाओ, सुलगाओ कोई जोशो गजब का अंगार
तैश की आतिशे-जर्रार[5] कहा है, लाओ
वो दहकता हुआ गुलजार कहा है, लाओ
जिसमे गर्मी भी है, हरकत भी, तवानाई[6] भी
हो न हो अपने कबीले का भी कोई लश्कर
मुतंजिर होगा अंधेरे की फ़सीलों[7] के उधर
उनको शोलों के रजज[8] अपना पता तो देंगे
ख़ैर हम तक वो न पहुचे भी सदा तो देंगे
दूर कितनी हैं अभी सुब्ह बता तो देंगे

मटगोमरी जेल, 1 दिसबर 1954

---

1 बालों के घेरे 2 गालो के कोने 3 इलाज 4 उत्तेजित 5 तेज आग 6 ताकत 7 प्राचीरो 8 वीर गाथा।

AFRICA COME BACK*

(एक रजज)[1]

आ जाओ, मैने सुन ली तेरे ढोल की तरग
आ जाओ, मस्त हो गयी मेरे लहू की ताल
'आ जाओ, अफ्रीका'
'आ जाओ, मैने धूल से माथा उठा लिया
'आ जाओ, मैंने छील दी आखा से गम की छाल
आ जाओ, मैने दर्द से बाजू छुडा लिया
आ जाओ, मैने नोच दिया बेकसी का जाल
'आ जाओ, अफ्रीका'
पजे मे हथकडी की कडी बन गयी हे गुर्ज[2]
गर्दन का तौक तोड के ढाली है मने ढाल
'आ जाओ, अफ्रीका'
जलते हे हर कछार मे भालो के मिरग-नैन
दुश्मन लहू से रात की कालिख हुई है लाल
'आ जाओ, अफ्रीका'
धरती धडक रही है मेरे साथ, अफ्रीका
दरिया थिरक रहा है तो बन दे रहा हे ताल
म अफ्रीका हू, धार लिया मेने तेरा रूप
मै तू हू, मेरी चाल हे तेरे बबर की चाल
'आ जाओ, अफ्रीका'
आओ, बबर की चाल
'आ जाओ अफ्रीका'

मटगोमरी जेल 14 जनवरी 1955

अफ्रीकी स्वतन्त्रता प्रेमियो का नारा।
1 वीरोचित गर्वोक्ति के पद 2 गदा।

आज बाज़ार में पा-ब-जौलां चलो

चश्मे - नम, जाने - शोरीदा[1] काफ़ी नहीं
तुहमते - इश्क़े - पोशीदा[2] काफ़ी नहीं
आज बाजार मे पा - ब - जौलां[3] चलो

दस्त-अफ्शा[4] चलो, मस्तो - रक्सा[5] चलो
ख़ाक - बर - सर चलो, ख़ू - ब - दामा चलो
राह तकता है सब शह्रे - जाना चलो

हाकिमे - शह्र भी, मजमए - आम भी
तीरे इल्जाम भी, सगे - दुश्नाम[6] भी
सुब्हे - नाशाद भी, रोजे - नाकाम भी

इनका दमसाज[7] अपने सिवा कौन है
शह्रे - जाना मे अब बा - सफा[8] कौन है
दस्ते - क़ातिल के शाया[9] रहा कौन है

रख़्ते - दिल[10] बाध लो दिलफिगारो चलो
फिर हमीं क़त्ल हो आये यारो चलो

लाहौर जेल 11 फरवरी 1959

1 उद्विग्न प्राण 2 गुप्त प्रेम का लाछन 3 पैर मे जजीर डाले 4 हाथ छोडकर 5 मस्त और नाचते हुए 6 गली का पत्थर 7 हमदर्द 8 पवित्र 9 योग्य 10 दिल के सफ़र का सामान।

इन्तिसाब

आज के नाम
और
आज के गम के नाम
आज का गम कि है जिदगी के भरे गुलसिता से खफ़ा
जर्द पत्तो का वन
जर्द पत्तो का बन जो मेरा देश है
दर्द की अजुमन जो मेरा देस है
किलर्को की अफसुर्दा जानो के नाम
किर्मखुर्दा[1] दिलो और जबानो के नाम
पोस्टमैनो के नाम
तागेवालो के नाम
रेलबानो के नाम
कारखानो क भाल जियालो के नाम
बादशाहे-जहा, वालिए-मासिवा[2], नायबुल्लाहे-फिल-अर्ज[3], दहका[4] के नाम

जिसके ढोरो को जालिम हका ले गये
जिसकी बेटी को डाकू उठा ले गये
हाथ भर खेत से एक अगुश्त[5] पटवार ने काट ली है
दूसरी मालिये[6] के बहाने स सरकार ने काट ली है
जिसकी पग जोर वालो के पावो तल
धज्जिया हो गयी है

उन दुखी माओ के नाम
रात मे जिनके बच्चे बिलखते है और
नीद की मार खाये हुए बाजुओ से सभलते नहीं
दुख बताते नही
मिन्नतो जारियो[7] स बहलते नहीं

उन हसीनाओ के नाम
जिनकी आखो के गुल

चिलमनो[8] और दरीचों[9] की बेला पे बेकार खिल खिल के
मुरझा गये है
उन ब्याहताओ के नाम
जिनके बदन
बे-मुहब्बत रियाकार[10] सेजो पे सज-सज के उकता गये हे
बेवाओ[11] के नाम
कटरियो[12] और गलियो, मुहल्लो के नाम
जिनकी नापाक खाशाक[13] से चाद रातो
को आ-आ के करता हे अक्सर वजू[14]
जिनके सायो मे करती है आहो-बुका[15]
आचलो की हिना
चूडियो की खनक
काकुला[16] की महक
आरजूमद[17] सीनो की अपने पसीने मे जलने की बू

पढनेवालो के नाम
वो जो असहावे-तब्लो-अलम[18]
के दरो पर किताब और कलम
का तकाजा-लिये, हाथ फेलाये
पहुचे, मगर लाटकर घर न आये
वो मासूम जो भोलेपन मे
वहा अपने नन्हे चिरागा मे लौ की लगन
ले के पहुचे, जहा
बट रहे थे घटाटोप, बेअत रातो के साये
उन असीरो[19] के नाम
जिनके सीनो मे फर्दा[20] के शबताब गौहर[21]
जल-जल के अजुम-नुमा[23] हो गये हे

आने वाले दिनो के सफीरों[24] के नाम
वो जो खुशबू ए-गुल[25] की तरह
अपने पेगाम[26] पर खुद फिदा हो गये हे

(अपूर्ण)

---

1 कीड़ों का खाया हुआ 2 सर्वोच्च स्वामी 3 धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि 4 किसान 5 उगली भर 6 लगान 7 रोन 8 परदों 9 झरोखों 10 दुष्टतापूर्ण 11 विधवाओं 12 कटरा मकानों का समूह (पजाबी) 13 कूड़ा-करकट 14 नमाज के लिए हाथ पैर धोकर पवित्र करना 15 बैन 16 जुल्फों 17 आशावान 18 नगाड़े व पताका के मालिक 19 बंदियों 20 भविष्य 21 रात को चमकनेवाले मोती 22 परेशान [illegible] सितारों-जैसे 24 दूतों 25 फूल की महक 26 संदेश।

सिपाही का मर्सिया

उट्ठो अब माटी से उट्ठो
जागो मेरे लाल
अब जागो मेरे लाल
तुम्हारी सेज सजावन कारन
देखो आयी रैन अँधियारन
नीले शाल दोशाले लेकर
जिनमे इन दुखियन अखियन ने
ढेर किये है इतने मोती
इतने मोती जिन की जोती
दान से तुम्हरा
जगमग लागा
नाम चमकने

उट्ठो अब माटी से उट्ठो
जागो मेरे लाल
अब जागो मेरे लाल
घर-घर बिखरा भोर का कुदन
घोर अधेरा अपना आगन
जाने कब से राह तके है
बाली दुल्हनिया, बाके वीरन
सूना तुम्हरा राज पडा हे
देखो कितना काज पडा है

बैरी बिराजे राज सिहासन
तुम माटी मे लाल
उट्ठो अब माटी से उट्ठो, जागो मेरे लाल
हठ न करो माटी से उट्ठो, जागो मेरे लाल
अब जागो मेरे लाल

अक्तूबर 19

दुआ

आइए, हाथ उठायें हम भी
हम जिन्हे रस्मे-दुआ याद नही

हम जिन्हें सोजे-माहब्बत[1] के सिवा
कोई बुत कोई ख़ुदा याद नहीं

आइए, अर्जु गुजारे कि निगारे-हस्ती[2]
जह्रे-इमरोज[3] म शीरीनी-ए-फ़र्दा[4] भर दे

वो जिन्हे तावे-गराबारी ए-अय्याम[5] नहीं
उनकी पलको पे शबो-रोज को हल्का कर दे

जिनकी आखो को रुखे-सुव्ह[6] का यारा[7] भी नहीं
उनकी रातो मे कोइ शम्अ मुनव्वर[8] कर दे

जिनके कदमो को किसी रह का सहारा भी नही
उनकी नजरो पे कोई राह उजागर कर दे

जिनका दीं[9] पैरविए-कज्बो रिया[10] है उनको
हिम्मते-कुफ्र[11] मिले, जुरअते-तहकीक[12] मिले

जिनके सर मुतजिरे-तेगे-जफ़ा[13] है उनको
दस्ते-क़ातिल को झटक देने की तोफीक[14] मिले
इश्क का सर्रे-निहा[15] जान तपा[16] है जिससे
आज इकरार करे और तपिश मिट जाये
हर्फ़े-हक्[17] दिल मे खटकता हे जो काटे की तरह
आज इजहार करे और खलिश मिट जाये

---

1 प्रेम की ज्वाला 2 जीवन का सोंदर्य 3 वर्तमान का विप 4 भविष्य की मिठास 5 जीवन का बोझ उठाने की शक्ति 6 प्रात काल का मुखडा 7 सहन शक्ति 8 प्रकाशमान 9 धर्म 10 झूठ और मक्कारी का समर्थन 11 धर्मद्रोह का साहस 12 जिज्ञासा का साहस 13 अत्याचार की तलवार की प्रतीक्षा 14 सामर्थ्य 15 चुभा हुआ तीर 16 तपते हुए प्राण 17 सत्यवाणी।

सज्जाद ज़हीर के नाम

न अब हम साथ सैरे-गुल[1] करेंगे
न अब मिलकर सरे-मक्तल[2] चलेंगे
हदीसे दिलबरा बाहम करेंगे[3]
न खूने दिल से शरहे-गम[4] करेंगे
न लैला - ए - सुख़न[5] की दोस्तदारी
न गमहा - ए - वतन पर अश्कबारी[6]
सुनेंगे नग्मए-जजीर[7] मिलकर
न शब-भर मिलके छलकायेंगे सागर

ब-नामे - शाहिदे - नाजुकख़याला[8]
ब - यादे - मस्तिए - चश्मे - गिजाला[9]
ब - नामे - इम्बिसाते - बज़्मे - रिंदा[10]
ब - यादे - कुल्फ़ते - अय्यामे - जिंदा[11]

सबा[12] और उसका अदाजे - तकल्लुम[13]
सहर[14] और उसका अदाजे तबस्सुम[15]

फ़िज़ा में एक हाल - सा[16] जहा है
यही तो मसनदे - पीरे - मुगा[17] है
सहरगह[18] अब उसी के नाम, साकी
करे इत्मामे[19] दौरे - जाम, साकी

बिसाते - बादा - ओ - मीना उठा लो
बढा दो[20] शम्ए - महिफल, बज़्मवालो
पियो अब एक जामे - अलविदाई
पियो, और पीके सागर तोड डालो

दिल्ली, सितबर, 1973

---

1 बाग की सैर करेंगे अर्थात् सौंदर्य और कला का साथ साथ आनद लेंगे 2 शहादत के स्थान तक, 3 न तो चित्ताकर्षक प्रेमिकाओं के आख्यान या अफ़साने एक-दूसरे को सुनायेंगे 4 और न दिल के ख़ून से दुख-दर्द की व्याख्या करेंगे 5 काव्यरूपी लैला 6 वतन के दुखड़ों पर आसू बहाना 7 वदीगृह मे पावों की बेडियों का सगीत 8 कोमल भावनाओं-कल्पनाओं मे निहित प्रेमिकाओं के नाम 9 मृगनयनियो की मस्ती की याद में 10 रिंदों-की महफ़िल की मस्ती और आनद के नाम पर 11 जेल की मुसीबतो की याद में 12 मलयानिल 13 बात करने का अदाज 14 भोर प्रभात 15 मुस्कान का आरभ 16 प्रभामडल सा 17 मस्तो के गुरु की मसन" (आसन) 18 भोर बेला में 19 इत्माम = समाप्ति (जाम का दौर समाप्त करें) 20 अब गुल कर दो बुझा दो।

गीत

चलो फिर से मुस्कराय
चलो फिर से दिल जलाये

जो गुजर गयी हे रात
उन्हे फिर जगा के लाय
जो विसर गयी ह वाते
उन्हे याद मे बुलाये
चलो फिर से दिल लगाये
चलो फिर से मुस्कुराये

किसी शहन्नशी[1] पे झलकी
वो धनक किसी कबा[2] की
किसी रग म कसमसाई
वो कसक किसी अदा की
कोई हर्फे - बे - मुरव्वत[3]
किसी कुजे - लब से फूटा
वो छनक के शीशा ए-दिल
तहे-बाम फिर से टूटा[4]

ये मिलन की नामिलन की
ये लगन की ओर जलन की
जो सही हे वारदाते
जो गुजर गयी है राते
जो बिसर गयी है बाते

कोई इनकी धुन बनाये
कोई इनका गीत गाये
चलो फिर से मुस्कुराये
चलो फिर से दिल जलाये

1974

1 बैठने का उच्च स्थान 2 अगरखा 3 निष्ठुर 4 छत के नीचे।

ढाका से वापसी पर

हम कि ठहरे अजनवी इतनी मदारातो[1] के वाद
फिर बनेगे आशना[2] कितनी मुलाकातो के वाद

कव नजर मे आयेगी बे-दाग सब्जे की बहार
खून के धब्वे धुलेगे कितनी बरसातो के वाद

थे बहुत वेदर्द लम्हे खत्मे-दर्दे-इश्क के[3]
थी वहुत वे महर[4] सुब्हे महरवा रातो के वाद

दिल तो चाहा पर शिकस्ते दिल[5] ने मोहलत[6] ही न दी
कुछ गिले-शिकवे भी कर लेते, मुनाजातो[7] के वाद

उनसे जो कहने गये थे 'फैज' जा सदका[8] किये
अनकही ही रह गयी वो बात सब बातो के वाद

1974

1 आवभगत 2 परिचित 3 प्रेम की पीड़ा की समाप्ति क क्षण 4 निर्दयी 5 दिल की हार 6 अवकाश 7 प्रार्थना गीत 8 प्राण न्यौछावर

कुछ इश्क़ किया कुछ काम किया

वो लोग बहुत ख़ुश क़िस्मत थे
जो इश्क़ को काम समझते थे
या काम से आशिक़ी करते थे
हम जीते-जी मसरूफ़ रहे
कुछ इश्क़ किया, कुछ काम किया

काम इश्क़ के आड़े आता रहा
ओर इश्क़ से काम उलझता रहा
फिर आख़िर तग आकर हमने
दोनो को अधूरा छोड़ दिया

1976

दिले-मन मुसाफ़िरे-मन

मेरे दिल, मेरे मुसाफिर
हुआ फिर से हुक्म सादिर[1]
कि वतन-बदर[2] हो हम तुम
दे गली-गली सदाए
करे रुख़ नगर-नगर का
कि सुराग कोई पाये
किसी यार ए-नामा-बर[3] का
हर एक अजनबी से पूछ
जो पता था अपने घर का
सर - ए - कू - ए - नाशनाया[4]
हमे दिन से रात करना
कभी इस स बात करना
कभी उस से बात करना
तुम्हे क्या कहू कि क्या हे
शब-ए-गम बुरी बला ह
हमे ये भी था गनीमत
जो कोई शुमार होता
'हम क्या बुरा था मरना
अगर एक बार होता'

लदन 1975

1 घोषित 2 देश निकाला 3 पत्रवाहक 4 अजनबी गलियो में
गालिब क शर का दूसरा मिसरा

हम तो मजबूरे-वफ़ा हैं

तुझको कितना का लहू चाहिए ऐ अर्जे वतन[1]
जो तेरे आरिजे-बरग[2] को गुलनार[3] करे
कितनी आहो से कलेजा तेरा ठडा होगा
कितने आसू तेरे सहराओं[4] को गुलजार करे
तेरे ऐवानो[5] मे पुर्जे हुए पमां[6] कितने
कितने वादे जो न आसूदा-ए-इकरार[7] हुए
कितनी आखो को नजर खा गयी बदखाहों[8] की
ख्वाब कितने तेरी शहराओं[9] म सगसार[10] हुए
'बला कशाने[11] मुहब्बत पे जो हुआ सो हुआ
जो मुझ पे गुजरी मत उस से कहो, हुआ सो हुआ
मबादा[12] हो कोई जालिम तेरा गरेबागीर[13]
लहू के दाग तू दामन से धो, हुआ सो हुआ
हम तो मजबूरे-वफ़ा हे मगर ऐ जाने-जहा
अपने उश्शाक[14] से ऐसे भी कोई करता है
तेरी महफिल को खुदा रक्खे अबद[15] तक कायम
हम तो मेहमा हे घडी भर के हमारा क्या है

1 वतन की जमीन 2 मुरझाय हुए गाल 3 फूलों (गुलाब) जैसे सुर्ख़ 4 रेगिस्तान 5 महलो 6 प्रतिज्ञा 7 मान्यता से परिपूरित 8 बुरा चाहनेवालो 9 सड़क मार्ग 10 पत्थर मारना 11 सख़्तिया झेलनेवाले 12 कहीं ऐसा न हो 13 गरेबा पकड़नेवाला 14 चाहनेवाले 15 हमेशा दुनिया के अंतिम दिन तक।

फिलिस्तीन के लिए-2

(फ़लिस्तीनी बच्चे के लिए लोरी)

मत रो बच्चे
रो रो के अभी
तेरी अम्मी की आख लगी है

मत रो बच्चे
कुछ ही पहले
तेरे अब्बा ने
अपने गम से रुख़्सत ली है

मत रो बच्चे
तेरा भाई
अपने ख़्वाब की तितली पीछे
दूर कहीं परदेस गया है

मत रो बच्चे
तेरी बाजी का
डोला पराये देस गया हे

मत रो बच्चे
तेरे आगन मे
मुर्दा सूरज नहला के गये हैं
चदरमा दफ़ना के गये है

मत रो बच्चे
गर तू रोयेगा तो ये सब
अम्मी अब्बा, बाजी, भाई
चाद ओर सूरज
और भी तुझको रुलवायेगे
तू मुस्कायेगा तो शायद
सारे इक दिन भेस बदल कर
तुझसे खेलने लौट आयेगे

बैरूत 1980

मेजर इसहाक की याद मे

लो तुम भी गये हमने तो समझा था कि तुमने
बाधा था कोई यारो से पैमाने वफ़ा और
ये अहद कि ताउम्रे-रवा साथ रहोगे
रस्ते मे बिछड जायेगे जब अहले-सफा और
हम समझे थे सैयाद का तरकश हुआ ख़ाली
बाकी था मगर उसम अभी तीरे-कजा और
हर ख़ार रहे-दश्त वतन का हे सवाली
कब देखिए आता हे कोई आबला-पा ओर
आने मे तअम्मुल था अगर रोजे-जजा को
अच्छा था ठहर जाते अगर तुम भी जरा ओर

बैरूत, 3 जून, 1982

एक तराना पंजाबी किसान के लिए

उठ उताह नू जट्टा
मरदा क्यू जानै
भुलिया, तू जग दा अनदाता
तेरी बादी धरती माता
तू जग दा पालण हारा
ते मरदा क्यू जानै
उठ उताह नू जट्टा

मरदा क्यू जाने
जनरल, करनल, सूबेदार
डिप्टी, डी सी, थानेदार
सारे तेरा दित्ता खावण
तू जे न बीजे, तू जे न गाहवे
भुक्खे, भाणे सब मर जावन
इह चाकर, तू सरकार
मरदा क्यू जानै
उठ उताह नू जट्टा

मरदा क्यू जानै
विच कचहरी, चगी, थाणे
कीह अनभाल ते कीह सयाण
कीह अशराफ ते कीह निमाणे
सारे खज्जल ख़्वार
मरदा क्यू जान
उठ उताह नू जट्टा

एका कर लो हो जओ कट्ठे
भुल जओ रागड, चीमे चट्ठे
सब्भे दा इक परवार
मरदा क्यू जाने

जे चढ आवन फौजा वाले
तू वी छविया लब करा लँय
तेरा हक तेरी तलवार
तू मरदा क्यू जानै
दे 'अल्लाह हू' दी मार
तू मरदा क्यू जाने
उठ उताह नू जट्टा

फ़ैज़ का आख़िरी कलाम

बहुत मिला न मिला जिदगी से गम क्या है
मताए-दर्द बहम हे तो बेशो-कम क्या है

हम एक उम्र से वाकिफ हे अब न समझाओ
कि लुत्फ क्या है मेरे मेहरवा सितम क्या है

करे न जग मे अलाओ तो शेर किस मकसद
करे न शह्र मे जल-थल तो चश्मे-नम क्या है

अजल के हाथ कोई आ रहा है परवाना
न जाने आज की फेहरिस्त मे रकम क्या है

सजाओ बज्म गजल गाओ जाम ताजा करो
वहुत सही गम गेती शराव कम क्या है।

नवबर, 1984

फ़ैज़-अज़-फ़ैज़

अपने बारे मे बाते करने मे मुझे डर लगता है। इसलिए कि सभी बोर लोगो का मनपसद शगल यही है। इस अग्रेजी लफ्ज के लिए माजरत चाहता हू, लेकिन अब तो हमारे यहा इसके रूप बोरियत वगैरा भी इस्तेमाल मे आने लगे है। इसलिए अब इसे उर्दू रोजमर्रा मे शामिल समझना चाहिए। तो म यह कह रहा था कि मुझे अपने बारे मे कीलो-काल बुरी लगती है, बल्कि म तो शर म भी भरसक एकवचन उत्तमपुरुप का इस्तेमाल नही करता और 'मे' के बजाय हमेशा से 'हम' लिखता आया हू। चुनाचे जब अदबी सुरागसाने हजरात मुझ से ये पूछने बैठत हैं कि तुम शर क्यो कहते हो तो बात का टालन के लिए जो दिल मे आये कह देता हू। मसलन ये कि भई, मे जैस भी कहता हू, जिस लिए भी कहता हू, तुम शर म से खुद ढूढ लो, मेरा सर खाने की क्या जरूरत है। लेकिन उनमे से ढीठ किस्म के लोग तब भी नहीं मानते। चुनाचे आज की गुफ्तगू की सब जिम्मेदारी उन हजरात के सर है, मुझ पर नहीं।

शरगोई का वाहिद उज्र गुनाह तो मुझ नही मालूम। इसमे बचपन की फजाए- गर्दो-पेश मे शेर का चर्चा, दोस्त-अहबाब की तरगीब आर दिल की लगी--सभी कुछ शामिल हे। ये *नक्शे फरियादी* के पहले हिस्से की बात है जिसमे 28-29 से 34-35 ई तक की तहरीरे शामिल है जो हमारी तालिब इल्मी के दिन थे, यू तो इन सब अशआर का करीब-करीब एक ही जहनी और जज्बाती वारदात से ताल्लुक़ हे।और इस वारदात का जाहरी मुहरिक तो वही एक हादसा है जो उस उम्र मे अक्सर नोजवान दिलो पर गुजर जाया करता हे, लेकिन अब जो देखता हू तो ये दोर भी एक दौर नहीं था बल्कि उसके भी दो अलग-अलग हिस्से थे जिनकी दाखिली और खारजी केफियत काफी मुख़्तलिफ़ थी। वो यू है कि 20 ई से 30 ई तक का जमाना हमारे यहा मआशी और समाजी तोर से कुछ अजीब तरह की बेफ़िक्री, आसूदगी का जमाना था जिसमे अहम कौमी ओर सियासी तहरीको के साथ साथ नस्रो-नज्म मे बेश्तर सजीदा फिक्रो-मुशाहिदा के बजाय कुछ रगरलिया मनाने का सा अदाज था। शेर म अव्वलन हसरत मोहानी ओर उनके बाद 'जोश', हफ़ीज जालधरी और अख़्तर शीरानी की रियासत क़ायम थी, अफ़सान म यलदरम और तनक़ीद में हुस्न बराए हुस्न ओर अदब बराए अदब का चचा था। *नक्शे-फ़रियादी* की इब्तदाई नज्में, 'ख़ुदा वो वक्त न लाये कि सोगवार हो तू', 'मेरी जा अब भी अपना हुस्न वापस फेर दे मुझको 'तहे नजूम कहीं चादनी के दामन मे' वगरा वगेरा, इसी माहौल क जेर असर मुरत्तब हुई आर इस फिजा मे इब्तदाए इश्क़ का तहय्युर भी शामिल था। लेकिन हम लोग इस दोर की एक झलक भी ठीक स न दख पाये थे कि सुहबते यार आख़िर शुद। फिर देस पर आलमी कसाद-बाजारी के साये ढलने शुरू हुए। कॉलेज के बडे-बडे बाके तीसमार ख़ा तलाशे मआश मे गलियो की खाक फाड़ने लगे। ये वा दिन थ जब यकायक बच्चों की हसी बुझ गयी। उजडे हुए किसान खेत खलिहान छाड कर शहरों म मजदूरी करन

लगे ओर अच्छी खासी शरीफ बहू बेटिया बाजार मे जा बैठीं। घर के बाहर ये हाल था और घर के अदर मर्गे सोजे मुहब्बत का कुहराम मचा था। यकायक यू महसूस होने लगा कि दिलोदिमाग पर सभी रास्ते बद हो गये है ओर अब यहा कोई नहीं आयगा। इस केफियत का इख्तमाम जो *नक्शे फरियादी* के पहले हिस्से की आखरी नज्मा की कफियत हे, एक निस्बतन गर मारूफ नज्म पर होता है, जिस मैंने 'यास' का नाम दिया था। वो यू है

यास[1]

बरबते दिल[2] के तार टूट गये
है जमी बोस[3] राहता के महल
मिट गये किस्स हा ए फिक्रो-अमल
बज्मे हस्ती के जाम फूट गये
छिन गया केफे-कोसरो-तस्नीम[4]

जहमते गिरिया -ओ बुका[5] बे सूद
शिकव ए बख्ते-नारसा[6] बे सूद
हो चुका खत्म रहमतों का नुजूल[7]
बद है मुद्दतों से बाबे-कबूल[8]
बे नियाजे दुआ हे रब्बे-करीम

बुझ गयी शम्ए-आरजू ए-जमील[9]
याद बाकी हे बेकसी की दलील
इतजारे फजूल रहने दे
राज-उल्फत निबाहने वाले
बारे गम से कराहने वाले
काविशे-बे हुसूल[10] रहने दे

34 ई मे हम लोग कॉलेज से फारिग हुए ओर 35 ई मे मैने एम ए ओ कॉलेज अमृतसर मे मुलाजमत कर ली। यहा से मेरी और मेरे बहुत से हमअस्र लिखने वालो की जहनी और जज्बाती जिदगी का नया दोर शुरू होता है। उस दोरान कॉलेज मे अपने रफका साहबजादा महमूदुज्जफर (मरहूम) ओर उनकी बेगम रशीद जहा से मुलाकात हुई। फिर तरक्कीपसद तहरीक की दाग बेल पडी, मजदूर तहरीको का सिलसिला शुरू हुआ और यू लगा कि जैसे गुलशन मे एक नहीं कई दबिस्तान खुल गये हे। उस दबिस्तान मे सबसे पहला सबक जो हमने सीखा था कि अपनी जात को बाकी दुनिया से अलग करके सोचना अव्वल तो मुमकिन ही नही, इसलिए कि इसम बहरहाल गर्दो-पेश के सभी तजुर्बात शामिल होते है और अगर ऐसा मुमकिन हो भी तो इतहाई गेर सूदमद फेल हे कि एक इनसानी फर्द की जात अपनी सब मुहब्बतों और कुदरता मुसर्रतो और रंजिशा के बावजूद, बोहत ही छोटी सी बोहत ही महदूद ओर हकीर शे हे। इसकी वुसअत ओर पहनाई का पेमाना तो बाकी आलमे मौजूदात से उसके जहनी और जज्बाती रिश्ते हे खास

1 निराश 2 हृदय-तत्री 3 धराशायी 4 जन्नत की नहरा का मजा 5 क्रदन ओर रुदन का कष्ट 6 अभागेपन का दुखड़ा 7 अवतरण 8 स्वीकृति का द्वार 9 सुदर कामना का दीपक 10 निष्फल खोज

तौर से इनसानी बिरादरी के मुश्तरका दुख दर्द के रिश्ते। चुनाचे गम जाना और गमे दौरा तो एक ही तजुर्बे के दो पहलू हैं। इस नये एहसास की इब्तदा *नक्शे फरियादी* के दूसरे हिस्से की पहली नज़्म से होती है। इस नज़्म का उन्वान है, 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग' और अगर आप ख़ातून है तो 'मेरे महबूब न माग'।

इसके बाद तेरह चौदह बरस 'क्यो न जहा का गम अपना ले' मे गुजरे और फिर फौज, सहाफत, ट्रेड यूनियन वगैरा मे गुजारने के बाद हम चार बरस के लिए जेलखाने चले गये। *नक्शे फरियादी* के बाद की दो किताबे *दस्ते सबा* ओर *जिदानामा* उसी जेलखाने की यादगार है। बुनियादी तौर से तो ये तहरीरे उन्हीं जहनी मेहसूसात और मामूलात से मुसलिक है जिनका सिलसिला 'मुझसे पहली सी मुहब्बत' से शुरू हुआ था लेकिन जेलख़ाना आशिकी की तरह खुद एक बुनियादी तर्जुबा है जिसमे फिक्रो-नजर का एक-आध नया दरीचा खुद-ब-खुद खुल जाता है। चुनाचे अव्वल तो ये है कि इब्तदाए-शबाब की तरह तमाम हय्यात यानी Sensations फिर तेज हो जाती है और सुबह की 'पौ' शाम के धुधलके, आसमान की नीलाहट, हवा के गुदाज, के बारे मे वही पहला सा तहय्युर लौट आता है। दूसरे यू होता है कि बाहर की दुनिया का वक्त और फासले दोनो बातिल हो जाते है। 'नजदीक की चीजे भी बोहत दूर हो जाती है और दूर की नजदीक और फरबादरी का तिफरका कुछ इस तौर से मिट जाता है कि कभी एक लम्हा कयामत मालूम होता है ओर कभी एक सदी कल की बात'। तीसरी बात यह है कि फरागते हिज्र मे फिक्रो मुतालआ के साथ उरूसे सुखन के जाहरी बनाव सिगार पर तवज्जो देने की ज्यादा मुहलत मिलती है। जेलख़ाने के भी दो दौर थे, एक हैदराबाद जेल का जो इस तर्जुबे के इनकशाफ के तहय्युर का जमाना था। एक मटगोमरी जेल का जो इस तजुर्बे से उक्ताहट और थकन का जमाना था। इन दो केफियतो की नुमाइदा ये दो नज़्मे है, 'पहली *दस्ते सबा* मे से दूसरी *जिदानामा* मे है।

जिदा की एक शाम

शाम के पेचो ख़म[1] सितारो से
जीना-जीना उतर रही है रात
यू सबा पास से गुजरती है
जैसे कह दी किसी ने प्यार की बात
सहन जिदा[2] के बे वतन अशजार[3]
सरनिगू[4] महव[5] है बनाने मे
दामने-आसमा पे नक्शो निगार

शानए बाम[6] पर दमकता है
मेहरबा चादनी का दस्ते-जमील[7]
ख़ाक मे घुल गयी है आबे नजूम
नूर मे घुल गया है अर्श[8] का नील

1 टेढ मेढ 2 जेल का आगन 3 पेड 4 नतमस्तक 5 व्यस्त 6 बारजे पर 7 सुन्दर हाथ 8 आसमान

सब्ज गोशों म नीलगू साये
लहलहाते है जिस तरह दिल में
मौजे दर्दे फिराक़े-यार[9] आये

दिल से पैहम ख़याल कहता है
इतनी शीरीं है जिदगी इस पल
जुल्म का जहर घोलने वाले
कामरा[10] हो सक़ेगे आज न कल
जल्वागाहे विसाल[11] की शम्ए
वो बुझा भी चुके अगर तो क्या
चाद को गुल करे, तो हम जान

ऐ रौशनियो के शहर

सब्जा सब्जा सूख रही है फीकी, जर्द दुपहर
दीवारो को चाट रहा है तनहाई का जहर
दूर उफ़क़ तक घटती, बढ़ती, उठती गिरती रहती है
कुहर की सूरत बे रोनक़ दर्दो की गदली लहर
बसता है उस कुहर के पीछे रौशनिया का शहर
ऐ रोशनियो के शहर

कौन कहे किस सिम्त है तेरी रोशनियो की राह
हर जानिब बे नूर खडी है हिज्र की शहरपनाह
थक कर हर सू बैठ रही है शौक़ की माद सिपाह
आज मेरा दिल फ़िक्र मे है
ऐ रोशनियो के शहर

शब ख़ू से मुह फेर न जाये अरमानो की रौ
ख़ैर हो तेरी लैलाओ की उन सबसे कह दो
आज की शब जब दिये जलाये, ऊची रक्खे लौ

जिदानामा के बाद का जमाना कुछ जेहनी अफरा-तफरी का जमाना है जिसम अपना अख़बारी पेशा छूटा, एक बार फिर जेलख़ाने गये। मार्शल लॉ का दौर आया, और जेहनी और गिर्दो-पेश की फजा मे फिर से कुछ इसदादे राह ओर कुछ नयी राहो की तलब का एहसास पैदा हुआ। इस सकूत ओर इतजार की आईनादार एक नज्म हे 'शाम' और एक ना मुकम्मल गजल के चद अश्आर 'कब ठहरेगा दर्द ऐ कब रात बसर होगी?'

लाहौर जेल/मटगोमरी जेल, 28 मार्च 15 अप्रैल, 1954

अनुवाद मोहम्मद अजुम

9 प्रमिका क विरह की पीड़ा की लहर 10 सफल 11 जहा प्रणय की लीला होती है

प्रगतिशील लेखको से कुछ बातें

फैज अहमद फैज

1963 म ताशकद मे एफ्रो एशियाई लेखक सघ की रजत जयती के मोके पर आयोजित सम्मेलन मे फैज ने यह ऐतिहासिक व्याख्यान दिया था। इस व्याख्यान को पढते हुए आप देख सकते है कि 28 साल पहले फैज ने जो मुद्दे उठाये थे वे आज भी प्रासंगिक है। –स

'हमारा इस बात मे दृढ विश्वास हे कि साहित्य वहुत गहराई से मानवीय नियति के साथ जुडा है, कि स्वतत्रता आर राष्ट्रीय सार्वभोमिकता के विना साहित्य का विकास सभव नही हे, कि उपनिवेशवाद ओर नस्लवाद का समूल नाश साहित्य की सृजनात्मकता के सपूर्ण विकास के लिए बेहद जरूरी हे।'

एफ्रो-एशियाई लेखको की पहली कान्फ्रेस के समापन पर जारी अतिम घोपणा पत्र के ये कुछ शुरुआती शब्द हे। यह 1958 का वर्प था और लगभग इन्ही दिनों हम अनेक भव्यताआ से घिरे इस शहर ताशकद म इकट्ठा हुए थे। धूप खुशगवार थी, फलो के पकने का मोसम था, फसले खलिहानो मे आ चुकी थी आर जाती हुई गर्मियो मे गुनगुनापन बाकी था।

घोपणापत्र तथा इससे जुडे प्रस्तावो को एक मत से स्वीकार करने के साथ ही एफ्रो-एशियाई लेखक सघ का जन्म हुआ। यह कुछ उत्साही साहित्यकारो के द्वारा किया गया कोई अप्रत्याशित कारनामा नही था। इसके उलट, यह उस विचार का फलना-फूलना था जो वर्पो से एशियाई ओर अफ्रीकी लेखको-बुद्धिजीवियों के दिमाग मे वीज की तरह अकुरा रहा था। चालीस देशा से हम दो सो लोग उस मोके पर यहा इकट्ठा हुए थे। यह हमारे उस सपने का पूरा होना था जिस हमने आपनिवेशिक गुलामी की लवी काली रात म देखा था। यह उन पुराने दोस्तो का, पुरातन प्रेमियो का मिलन महोत्सव था जो इसस पहले कभी नही मिले थे।

ओर इस सपने को पूरा करने के लिए, इस मुलाकात की अवर्णनीय खुशी क लिए हम इस ताशकद शहर, उज्वेक नागरिको ओर तुम्हारे--कामरेड शरफ रशीदोव तुम्हारे--ऋणी ह आर हार्दिक रूप से कृतज्ञता स भरे है। पाच वर्ष पहले भी हम अपने सगठन की बीसवी सालगिरह का उत्सव मनाने के लिए आपके ही इस खुशनुमा आकाश के तले मिले थे आर अव हमारी रजत जयती न हमे फिर इकट्ठा होन आर एक बार फिर प्यारे मेजवाना, आपके प्रति हमारे प्रम आर आभार को अभिव्यक्त करने का मोका दे दिया हे।

हममे स व जो पच्चीस वरस पहले भी सितारो से भरे इस जमावड म माजूद थ आर जो किसी तरह आज भी जीवित वचे हुए हे उनके लिए हमारे पुनर्मिलन की यह खुशी थोडी शाकग्रस्त भी ह। शोक

उन प्यार दोस्तो की स्मृतियो का जो अब हमारे बीच नही है—निकोलाई तिखोनोव, अलेक्सी सुर्कोव कान्स्टटाइन सिमानोव, मुख्तार अवेजेव, मूसा ऐवक, बर्डी केरबाबायेव, मिर्जो तरसुनजादे, नाजिम हिकमत सज्जाद जहीर, कृष्णचदर, माओतुन ये सभी उनमे से कुछ एक नाम है। आज के दिन हम उनकी स्मृतियों के लिए एक बार फिर अपनी श्रद्धा के फूल अर्पित करते है।

हम जब अपने अतीत की ओर देखते है तो ऐसा भी नही है कि 1958 मे पहली बार साहित्य और समाज के अतर्सबध, हमारे समय की बुराइयो से सघर्ष म अच्छाइयो और न्याय के पक्ष मे खडे होने और इस तरह दुनिया को बदलने मे सहायक होने की लेखकीय जिम्मेदारी, जैसी स्वयसिद्ध बात हमने खोज निकाली थी। लेकिन यह पहली बार हुआ था कि स्पष्ट रूप से परिभाषित इन लक्ष्यो के लिए अफ्रो-एशियाई लेखको का यह मच अस्तित्व म आया।

तमाम युद्धो के अत की तरह, लडे गये पहले महायुद्ध के बाद सामाजिक, नैतिक और साहित्यिक बूर्जुआ मान्यताओ और वर्जनाओ के टूटने और समृद्धि के एक सक्षिप्त दौर म विजेताओ के दिमाग म अह का उन्माद उफनने लगा था। खुदा आसमान पर था और धरती पर सब कुछ मजे म चल रहा था। नतीजतन ज्यादातर पश्चिमी और कुछ उपनिवेशो के साहित्य ने उसे आदर्श के रूप म अपना लिया। बडे पैमाने पर शुद्ध रूपवाद के आनद का सम्मोहन, अह केंद्रित चेतना की रहस्यात्मकता से लगाव रूमानी मिथको और कल्पित आख्यानो के बहकावो के साथ 'कला, कला के लिए' के उद्बोधक सौदर्यशास्त्रियो द्वारा अभिकल्पित गजदती मीनारो का निर्माण होने लगा।

लेकिन, बमुश्किल एक दशक ही बीता था कि पूजीवादी और औपनिवेशिक दुनिया को पहली बार, वैश्विक स्तर पर आर्थिक मदी ने घेर लिया और हर ओर पूरब से पश्चिम तक, गुएर्निका से मुकदेन तक फासीवाद का प्रेत, तबाही पर आमादा हो उठा। सिक्के के दूसरे पहलू पर, साथ ही साथ उकेरे जा रहे बोल्ड रिलीफ की तरह, दुनिया ने अक्तूबर की महान समाजवादी क्रांति को देखा। उसके साथ एक लगभग अकल्पनीय सामाजिक दिवास्वप्न जीवित सचाई म बदल चुका था। राजनीतिक रूप से दुनिया भर के साम्राज्यवादियो की सम्मिलित ताकतो पर क्रातिकारी ताकतो की विजय और सभी के लिए राष्ट्रो के आत्मनिर्णय के अधिकार की उद्घोषणा ने एशिया और अफ्रीका के अधिकाश देशो मे स्वतत्रता और सामाजिक मुक्ति के आदोलनो को एक प्रेरक उत्साह से भर दिया।

इसी समय फासीवाद के उदय ने दुनिया भर के बौद्धिको को इसके सभावित खतरो के विरुद्ध एक मच पर लाकर खडा कर दिया। इन सामाजिक-राजनीतिक सच्चाइयो और इनसे उभरती नयी वैचारिक सुर सगतियो से सृजनात्मक और मूल्याकनपरक साहित्य मे एक नयी गुणात्मक और मात्रात्मक अभिवृद्धि हुई। सृजनात्मक क्षेत्र म यथार्थवादी कथा साहित्य और सामाजिक टिप्पणियो से ओतप्रोत कविताए रची गयी। गद्य पद्य तथा नाट्य साहित्य म अनेक उल्लेखनीय नाम सोवियत सघ, यूरोप, अमेरिका तथा तीसरी दुनिया के कई साथर मुल्को से हमारे सामने आये। एक लबी और उत्तेजक बहस के बाद मूल्याकन के क्षेत्र म साहित्यिक आलोचना को राजनीति नीतिशास्त्र और साहित्य के गैरसाहित्यिक उपादानो के साथ एक अपरिवर्तनीय रिश्ते म पुन जोडा गया। इसने समकालीन साहित्यिक सृजनधर्मिता को अपने सामाजिक और ऐतिहासिक मूल स जोडा और चारण भाट, लोक गायक किस्सागो पुजारी जादूगर आदि जैसे तमाम लोगो का आदिम भूमिका की पडताल न सिर्फ शब्दो के कारीगर की तरह बल्कि जीवन और उसके शृगार की प्रक्रिया म सामाजिक हिस्सेदारो की तरह की। और फिर गजदती मीनारो का ध्वस प्रारभ

हुआ और भारतीय प्रगतिशील लेखकों के महान आंदोलन की तरह गंभीर राजनीतिक चेतना और प्रगतिशीलता की ओर उन्मुख अनेक साहित्यिक आंदोलन खड़े हुए। इन आंदोलनों ने अपनी मूल अंतर्वस्तु और रूपरेखा दो निर्णायक तत्वों से प्राप्त की। पहली तो वह राजनीतिक प्रेरणा है जो रूसी सोवियत समाजवादी क्रांति से मिली और दूसरे मार्क्सवादी विचारों से मिला विचारधारात्मक दिशा निर्देश।

यह दौर दूसरे महायुद्ध की भयावह छाया में पला-बढ़ा, इस पर बहुत जोर देने की जरूरत नहीं है। सिर्फ एक इशारा ही काफी होगा कि इसी भयानक समय में प्रतिरोध के साहित्य की मशाल उठायी गयी और प्रतिबद्ध साहित्य के स्पष्ट मानदंड भी निर्धारित होते चले गये। अब हम जरा अपने निकट अतीत को देखें। युद्ध के बाद का हमारा समय, विराट अंतर्विरोधों से ग्रस्त हमारा युग, विजयोल्लास और त्रासदियों से भरा युग, उम्मीदों से भरा और हृदयविदारक युग, बड़े सपनों और उनसे बड़ी कुंठाओं का जमाना। तीसरी दुनिया की जनता के लिए, एशियाई, अफ्रीकी और लातीनी अमरिकी लोगों के लिए, कम से कम इनकी एक बड़ी आबादी के लिए, किसी को तत्काल ही चार्ल्स डिकेंस के शब्द याद आ जायेंगे—'यह बेहतरीन वक्त था, यह बदतरीन वक्त था।' अपने दोनों विश्वयुद्धों से थके हुए साम्राज्यवाद का कमजोर पड़ते जाना, सोवियत सीमाओं के पार विस्तार लेता और एकजुट होता समाजवादी खेमा, संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म, राष्ट्रीय स्वतंत्रता और सामाजिक मुक्ति के आंदोलनों का उदय और उनकी सफलताएं, सभी कुछ एक ऐसी साहसी नयी दुनिया का वादा कर रहे थे जहां हमें स्वतंत्रता, शांति और न्याय उपलब्ध हो सकता था। पर हमारी बदकिस्मती से ऐसा नहीं था।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, युद्ध में बंदूकों के खामोश होने से पहले हिरोशिमा और नागासाकी को कत्लो गारत और विनाश के लिए मानवीय युद्धों के इतिहास में सर्वाधिक मारक युक्ति के विकराल प्रदर्शन के लिए चुन लिया गया। आणविक हथियारों के जिन्न को बंद बोतल से आजाद करते हुए अमरिका ने समाजवादी खेमे को भी ऐसा ही करने के लिए आमंत्रण दे दिया। उस दिन से आज तक हमारी दुनिया की समूची सतह पर विनाश के डरावने साये की एक भारी परत चढ़ी है और आज जितने खतरनाक तरीके से हमारे सामने यह झूल रही है, उतनी पहले कभी न थी। दूसरे इस घटना को अभी कुछ ही दिन बीते थे कि अमेरिका ने कोरियाई जन के खिलाफ हथियारबंद हमले की शुरुआत की। जैसा कि कुछ लोगों ने हिसाब लगाया है, युद्ध की समाप्ति के बाद से हर चौदह महीनों में एक बार अमेरिकन एजेंसियों ने एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमरिका में उन सरकारों को उखाड़ फेंकने, नष्ट करने या अस्थिर करने की कोशिशें की हैं जो साम्राज्यवाद के नवउपनिवेशवादी इरादों की कठपुतली बनने से इंकार करती हैं या अपने मुल्कों के भीतर अप्रासंगिक हो चुकी प्रतिक्रियावादी सामाजिक व्यवस्था को बदलना चाहती हैं। स्वतंत्र विश्व के नाम पर संभवतः हमारे इतिहास के घोर अयथार्थ ढोल नगाड़ों के शोर के साथ अमरिकन शासन तंत्र ने यहां वहां ढेर सारे निरंकुश राजाओं-सुल्तानों, खून के प्यासे अधिनायक-तानाशाहों, बेदिमाग दुस्साहसी सेनापतियों और हवा हवाई किस्म के राजनीतिज्ञों, जिस पर भी वे हाथ रख सकें, को सत्ता के सिंहासन पर बैठाने की कोशिशें की हैं और बैठाया भी है। यह कारवाई वियतनाम से बड़ी बदनामी के बाद हुई अमरिकन विदाई के साथ कुछ वक्त के लिए रुक सी गयी थी। फिर रोनाल्ड रीगन के जमाने से हम अमरिकनों और उनके नस्लवादी साथियों को यहां वहां भौंकते शिकारी कुत्तों की तरह इन तीन महाद्वीपों में जैसे बिखरे बारूद के ढेरों के आसपास देख रहे हैं। तीसरे, जहां पुराने साम्राज्यवादी मालिकों का गिरोह अपने कब्जे में रहे उपनिवेशों के संसाधनों का दोहन कर रहा था, वहां अब उनकी जगह

अतर्राष्ट्रीय एकाधिकार पूजी के वित्तीय माफिया और नव उपनिवेशवाद क सरक्षका ने ले ली है। अपने सामाज्यवादी पूर्वजा की तरह ही, तीसरी दुनिया क मुल्कों म उद्योग-व्यापार का उनके लिए एक ही मतलब होता है—अमीर का और अमीर होते चल जाना और गरीब का और गरीब होते होत मर जाना। पुराने जमाने के शाइलॉक की तरह वे तीसरी दुनिया की सरकारा के तमाम यथास्थितिवादी खर्चों क लिए अपने अनुदान आर ऋण के उदार प्रस्तावा के साथ हर वक्त तयार नजर आत है, बस उन्हें उनके हिस्से का गोश्त गिरवी रखना हे।

कोई पूछ सकता है, और उसे ठीक ही पूछना चाहिए कि इस सबका अफ्रो एशियाई लेखकों या साहित्य मात्र से आखिर क्या लेना-देना है? जवाब है—सब कुछ। सबसे पहले तो एक लेखक के तौर पर, एक नागरिक के तौर पर और मनुष्य होने के नाते वह सयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा मानवीय अस्तित्व के सामने आवाणिक हथियारा के जरिये लगातार खड़ी की जा रही भीषण चुनौती को न तो अनदेखा कर सकता है और न ही निष्क्रिय होकर बैठा रह सकता है।

दूसरे, तीसरी दुनिया के अनेक देशों मे एक लेखक, एक नागरिक के तौर पर उसने पाया है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलनो और राजनीतिक स्वतत्रता के इस दौर म उसकी और उसके लोगा की मुक्ति नहीं हुई है। विदेशी शोषका के आधिपत्य की समाप्ति के बाद दरअसल उसे और भी अधिक निर्दय निरकुश एक घरेलू निजाम मिला हे। बतार एक नागरिक उसकी ईमानदारी और बतौर एक लेखक उसकी निष्ठा, बार-बार अग्निपरीक्षा से गुजर कर चूर-चूर हुई जाती है। अब ओर ज्यादा क्या कहा जाये—दुनिया के कुछ हिस्सो मे नस्लवादी शासका के द्वारा राजनीतिक स्वतत्रता का मूलभूत अधिकार भी नहीं दिया जा रहा हे और अभी भी गाव-कस्बा के गली-मुहल्लों मे स्वाधीनता सेनानियों का खून बहे चला जा रहा है। फिलस्तीन मे, इजराइलिया के द्वारा हथियाये गये अरब इलाको पर, दक्षिण अफ्रीका ओर नामीबिया मे यही हालात हे। तीसरी बात हे कि तीसरी दुनिया में जारी राजनीतिक दुरभिसंधियो और आर्थिक ससाधनो की लूट के साथ ही एक ऐसा सोचा-समझा विनाशक सहार जारी है जो उसके सास्कृतिक मूल्यों को नष्ट करने के बाद उसकी पारपरिक पहचान को भी समाप्त कर देगा।

यह स्वाभाविक ही हे कि इन घृणित योजनाआ को चुनोती दी जाये। इसीलिए युद्धोत्तर काल में कई प्रगतिशील आदोलनो का जन्म हुआ। इनमे विश्वशांति और आपसी समझदारी को बढाने के लिए अतर्राष्ट्रीय एकता के लिए स्त्री के अधिकारो क लिए, मजदूर सगठना के लिए आदोलन चल रहे है। और अब यह अफ्रो-एशियाई लेखका का आदोलन है। ऊपर उठाये गये राजनीतिक मुद्दो की बात के अलावा लेखको से आवाहन किया गया था कि इनके साथ ही वे अपने व्यवसाय की जिम्मेदारियों और समस्याओ के बारे म भी अपने बीच सवाद कायम करे। हमारे समय के लेखको और कलाकारों स अपेक्षा ह कि वे ओपनिवेशिक काल के अवशेषो से विकृत ओर धूलधूसरित अपने अतीत के खडहरा से स्वय को मुक्त कर ओर अपनी पहचान के जीवित तत्वा की खोज करे। काल की निरतरता के बीच अपने अनुभव सत्य ओर समय की वास्तविकताओ की प्रस्थापना करे।

इस प्रक्रिया मे उन्होंने एक ओर साम्राज्यवादियों द्वारा मिटा दिये गये अपने एशियाई और अफ्रीकी पडोसियो के साथ अतीत के सास्कृतिक सबधो की फिर से खोज की। वही पीडा और अपमान येल रहे समाजा मे सघर्ष आर मुक्ति के रास्ते तलाशते दा महाद्वीपो की जनता के दिलोदिमाग को भी आपस म जोड दिया। ओर इस तरह युद्धोत्तर काल मे पहले एक मनोवेग आर फिर एक सपने ने जन्म लिया ओर

सोवियत लेखक सघ के आमत्रण ओर ताशकद की दिलनवाज मेहमाननवाजी को धन्यवाद, कि सपना सच हुआ और एफ्रो एशियाई लेखक सघ का जन्म हुआ। जन्म बिना किसी तकलीफ के हुआ ओर खुशी से भरा दिन था। लेकिन बच्चे का बडा होना? जेसा कि हम सब जानते है, उसकी अपनी मुसीबते ह। नतीजतन आज पच्चीस बरस बाद भी, जो कुछ किया जाना चाहिए था उसके बहुत बडे हिस्से पर कुछ भी नही हो सका हे। कई योजनाए परियोजनाए जिन्हे पहली ही काफ्रेस मे तय किया गया था ओर बाद मे भी जिन पर लगभग हर बार जो दिया जाता रहा, आज भी कागजो पर ही हे।

आज बहुत से अधूरे रहे आये कामो को कोई भी गिना सकता हे। मसलन, एफ्रो-एशियाई साहित्य के लिए एक प्रकाशन गृह की स्थापना, एफ्रो एशियाई लेखको की जीवनी सहित सपर्क सदर्भ-कोश, एफ्रो-एशियाई क्लासिक्स का बडी यूरोपियन भाषाओं म अनुवाद, राष्ट्रीय विश्वविद्यालयो मे एफ्रो एशियाई साहित्य विभागो की स्थापना, वगैरह-वगैरह। जाहिर हे कि इन महत्वाकाक्षी परियोजनाओ को तभी हाथ म लिया जा सकता था जब हमारे पास पर्याप्त कर्मचारी, सुसज्जित ससाधन, हर परियोजना के लिए एक वित्त पोषित सगठन, ओर राष्ट्रीय समितिया के साथ नजदीकी सपर्क के लिए एक केद्रीय मुख्यालय होता। लेकिन हम इनमे से कुछ भी नहीं जुटा पाये। वजह सभी को मालूम है। सगठन का पहला मुख्यालय पहले सम्मेलन के बाद कोलबो मे स्थापित किया गया और वह निराशाजनक ढग से असफल हो गया। इसके बाद एक सुव्यवस्थित और सक्रिय केंद्र की काहिरा मे स्थापना करने और वहा काम शुरू करने मे करीब आठ बरस लग गये। यह भी केप डेविड षड्यत्र का शिकार हुआ और तब से हमारा केप केंद्रीय मुख्यालय अपने महासचिव के साथ-साथ बेघर-बेपता और बेसरोसामान हे।

फिर भी एक महत्वपूर्ण परियोजना जिसे मूल रूप से पहले प्रस्तावित किया गया था और जिस पर बहुत बाद मे काम शुरू हुआ—द *लोटस* पत्रिका—आज भी हे, हालांकि अपनी अनियमितताओ के साथ। वह बची रही क्योकि उसे सोवियत लेखक सघ, जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक की एकता समिति और फिलस्तीनी मुक्ति सगठन की सहायता और सहयोग मिलता रहा। इनके साथ ही उसे कई देशो से मित्र और सहयोगी सदस्य भी मिलते रहे।

एक अन्य सकारात्मक पहलू सचिवालय अथवा राष्ट्रीय समितियो के द्वारा बडी सख्या मे सेमिनार, परिसवाद ओर साहित्यिक सम्मेलन आदि आयोजनो का हे। जिनमे अनुभवो और विचारों के आदान प्रदान से हमारे आपसी रिश्ते मजबूत हुए ओर अतर्राष्ट्रीय समुदाय की हमारी समझदारी बढी। इन सभी मामलो पर, इसम कोई शक नही कि हम महासचिव से विस्तार से सुनेगे। म यहा सिर्फ उन कुछ मुद्दो पर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हू जो इन्ही परिस्थितियो मे पिछले पच्चीस बरसो मे हमारे सामने आये है।

पहला भौतिक मामला तो बढती उम्र का हे। इस आदोलन की शुरुआत ओर सगठन की स्थापना के समय इसके सदस्य नेतागण और वैचारिक सहयोगी, ज्यादातर नोजवान थे और अपनी सृजनात्मकता के शिखर पर थे। बीते वक्त के साथ-साथ हम सामूहिक नेतृत्व मे पर्याप्त सख्या मे युवतर लेखको को शामिल करते चलने का कोई रास्ता नही खोज पाये। नतीजतन, कुछ एशियाई ओर अफ्रीकी देशो म कई प्रतिभावान लेखक, हमसे उद्देश्यो से सहमति रखते हुए भी हमारे सगठन की सीमाओ से बाहर रह कर ही विकसित हो रहे हे।

दूसरे राजनीतिक मुद्दो को प्रमुखता से उठाते रहने की वजह से प्रगतिशील लेखक आर उनके सगठन,

लेखकीय कौशल और सौंदर्यशास्त्र के मुद्दों को दरकिनार करने में कुशल होते गये हैं। ठीक वैसे ही जैसे रूपवादी और पलायनवादी लेखक अपने आस पास की दुनिया की तरफ से आंख मूंद लेते हैं। सिद्धांत-कथन के स्तर पर इन संगठनों की घोषणाएं, बयान और मुद्दों का प्रतिपादन, प्रकट रूप से साहित्य से निर्लिप्त राजनीतिक दलों से जरा भी भिन्न नहीं होता। सृजनात्मक रूप से, दूरदर्शी के बिना सृजन प्रक्रिया की जटिलताओं के प्रति एक काहिली भरा रवैया प्रगतिशील लेखन को एक नीरस और बस्तानी पिष्टपेषण में बदल देता है जो कभी भी न तो राजनीतिक और न ही कलात्मक रूप से मूल्यवान होता है। हमें स्वीकार करना चाहिए कि बहुत ही अच्छे इरादों से, बहुत सारे साहित्य के लिए हमने पहले तो जगह और फिर रास्ता बना दिया है। इसलिए यह जरूरी है कि सिद्धांत और कार्य व्यवहार में ठीक ठीक संतुलन किया जाय, जैसा कि हर क्षेत्र में किया जाता है। खास तौर से सृजनात्मक प्रतिभाओं को विचारधारात्मक बोध से संपन्न करने के मामले में इस बात पर ध्यान देना चाहिए।

तीसरी बात यह कि तीसरी दुनिया के कुछ देशों में जिस तरह सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियां विकसित हो रही हैं—जैसा कि पहले भी संक्षेप में कहा गया है—नये शोषक वर्ग और निरंकुश तानाशाहों के उदय और स्वतंत्रता मिलने के बाद वैयक्तिक और सामाजिक मुक्ति के सपनों के ढह जाने से युवा पीढ़ी मोहभंग, सनकीपन और अविश्वास की विषाक्त चपेट में आ गयी है। नतीजतन बहुत से युवा लेखक पश्चिमी विचारकों द्वारा प्रतिपादित किये जा रहे जीवित यथार्थ से साहित्य का रिश्ता तोड़ने, उसके मानवीयकरण और शैक्षणिक पक्ष को अस्वीकार करने और लेखक को तमाम सामाजिक जिम्मेदारियों से मुक्त होने जैसे प्रतिक्रियावादी विचारों और सिद्धांतों के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। इन वैचारिक मठों और गढ़ों से रूपवाद, संरचनावाद, अभिव्यक्तिवाद और अब 'लेखक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता' जैसे ऊपर से अत्यंत आकर्षक लगने वाले नारे की लगातार वकालत की जा रही है। इसका जाहिर उद्देश्य लेखक को अपनी सामाजिक, राजनीतिक, विचारधारात्मक प्रतिबद्धता से दूर करना है। इस सारे विभ्रम को इसीलिए विचारपूर्ण तरीकों से हटाने की जरूरत है।

और अंत में, एफ्रो एशियाई लेखकों के सामने अपने लोगों के बजाय पश्चिमी पाठकों के लिए लिखने पर ढेरों भौतिक लालच बांह फैलाकर स्वागत कर रहे हैं। जिस एफ्रो-एशियाई लेखक की रचनाएं किसी एक भी यूरोपियन भाषा में प्रकाशित हो जाती हैं वह रातोंरात विश्वख्याति का हकदार बन जाता है। दूसरी तरफ उसका वह साथी है जिसकी रचनाएं दस-दस एफ्रो-एशियाई भाषाओं में अनूदित हो रही हैं, और वह ऐसी किसी ख्याति का दावा भी नहीं कर सकता। इस विषम स्थिति का भी कोई न कोई हल हमें निकालना चाहिए।

अब अपने आंदोलन और अपने संगठन की ओर वापस लौटते हुए सभी कुछ कहे सुने जाने के बावजूद हमारी एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि से कोई इनकार नहीं कर सकता। वह उपलब्धि यह है कि एफ्रो एशियाई लेखक संगठन आज भी चल रहा है और न सिर्फ चल रहा है बल्कि इसने अपने जन्म से ही घोषित उद्देश्यों और इरादों को न तो छोड़ा है न मुंह मोड़ा है।

इसलिए मुझे अपनी ताशकंद की पहली कांफ्रेंस में जारी घोषणापत्र की अंतिम पंक्तियों से अपना वक्तव्य समाप्त करने की इजाजत दीजिए—'हम दुनिया भर के सभी लेखकों से आह्वान करते हैं कि आप तमाम मानवीय बुराइयों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करें। उन बुराइयों के खिलाफ जिनका शिकार हमारा समाज और हमारे लोग हैं। उपनिवेशवाद, नस्लवाद और शोषण की बुराइयों के खिलाफ।

हम आपसे आग्रह करते है कि इसके साथ ही साथ सत्य, सौंदर्य और स्वतंत्रता की अपनी खोज, जनजीवन से जुडे ऐसे साहित्य की रचना, जो न्याय और तर्क की सर्वोपरि स्थापना के उनके संघर्ष मे सहायक हो सके, जारी रखें।

मै दुनिया मे आज के हालात देखते हुए इस घोषणा पत्र को कुछ शब्दो के जरिए थोडा सा और बढाना चाहता हू—'मनुष्य जाति और मानवीय सभ्यता पर आणविक सर्वनाश का खतरा मडरा रहा है और मनुष्यता के सामने यह सबसे बडा ख़तरा है। दुनिया भर के तमाम लेखको, आप अपनी आवाज विश्व शांति और तनाव-शैथिल्य के पक्ष मे और हर किस्म के सैन्यवाद तथा युद्ध के खिलाफ बुलद करे।'

अनुवाद राजेंद्र शर्मा

अविकसित देशों की सांस्कृतिक समस्याएं

फ़ैज अहमद फ़ैज

शीमा माजिद द्वारा सपादित फ़ैज अहमद फ़ैज के चुनिदा अग्रेजी लेखो का सग्रह 'कल्चर एड आइडेंटिटी सिलेक्टेड इंग्लिश राइटिंग्स ऑफ़ फ़ैज (ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 2005) अपनी तरह का पहला सकलन है। इस सकलन म फ़ैज के सस्कृति, कला साहित्य सामाजिक ओर राजनीतिक विषयो पर लेख इसी शीर्षक स पाच खडों में विभाजित है। इनके अलावा एक और आत्म-कथ्यात्मक' खड है जिसमे प्रमुख है फ़ैज द्वारा 7 मार्च 1984 (अपने इतकाल से महज आठ महीने पहले) को इस्लामाबाद मे एशिया स्टडी ग्रुप के सामने कही गयी बातो को ट्रासक्रिप्ट करके सकलित किया गया है। इस महत्वपूर्ण पुस्तक की भूमिका पाकिस्तान मे उर्दू साहित्य के मशहूर आलोचक मुहम्मद रजा काजिमी ने लिखी है। शायरी के अलावा फ़ैज साहब ने उर्दू और अग्रेजी दोनों भाषाओ मे साहित्यिक आलोचना और सस्कृति के बारे मे विपुल लेखन किया हे। साहित्य की प्रगतिशील धारा के प्रति उनका जगजाहिर झुकाव इस सकलन के कई लेखो मे झलकता है। इस सकलन मे शामिल अमीर खुसरो गालिब तोल्स्तोय इकबाल और सादिकैन जैसी हस्तियो पर केंद्रित उनके लेख उनकी 'व्यावहारिक आलोचना (एप्लाइड क्रिटिसिज्म) की मिसाल हे। यह सकलन केवल फ़ैज के साहित्यिक रुझानो पर ही रौशनी नही डालता बल्कि यह पाकिस्तान और समूचे दक्षिण एशिया की सस्कृति आर विचार की बेहद साफ़दिल आर मोलिक व्याख्या के तौर पर भी महत्वपूर्ण है। इसी पुस्तक के एक लेख कल्चरल प्राब्लम्स इन इडरडिवेलप्ड कट्रीज का तर्जुमा हम पेश कर रहे हैं। —स

इनसानी समाजो म सस्कृति के दो मुख्य पहलू होते है, एक वाहरी, औपचारिक, और दूसरा आतरिक वैचारिक सस्कृति के वाह्य स्वरूप, जेसे सामाजिक ओर कला-सबधी, सस्कृति के आतरिक वैचारिक पहलू की सगठित अभिव्यक्ति मात्र होते हे और दोनो ही किसी भी सामाजिक सरचना के स्वाभाविक घटक होते हे। जब यह सरचना परिवर्तित होती है या बदलती है तब वे भी परिवर्तित होते ह या बदलते हैं और इस जैविक कडी के कारण वे अपने मूल जनक जीव म भी ऐसे वदलाव लाने म असर रखते हैं या उसमे सहायता कर सकते ह। इसलिए सास्कृतिक समस्याओ का अध्ययन या उन्हे समझना सामाजिक समस्याओ अर्थात राजनीतिक आर आर्थिक सवधो की समस्याओ से पृथक करके नही किया जा सकता। इसलिए अविकसित देशो की सास्कृतिक समस्याओ को व्यापक परिप्रेक्ष्य मे यानी सामाजिक समस्याओ के सदर्भ मे रखकर समझना आर सुलझाना होगा।

फिर अविकसित देशो की मूलभूत सास्कृतिक समस्याए क्या हे? उनके उद्‌गम क्या ह आर उनके समाधान के रास्ते मे कोन से अवरोध है?

मोटे तोर पर तो ये समस्याए मुख्यत कुंठित विकास की समस्याए हे, वे मुख्यत लवे समय के साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी शासन ओर पिछडी, कालवाह्य सामाजिक सरचना के अवशेषा से उपजी हुई हैं। इस वात का और अधिक विस्तार से वर्णन करना जरूरी नहीं। सोलहवीं ओर उन्नीसवी सदी के वीच एशिया,

अफ्रीका और लातिन अमरीका के देश यूरोपीय साम्राज्यवाद से ग्रस्त हुए। उनमे से कुछ अच्छे खास विकसित सामती समाज थे जिनमे विकसित सामती सस्कृति की पुरातन परपराए प्रचलित थीं। औरो को अभी प्रारभिक ग्रामीण कवीलाइवाद से परे जाकर विकास करना था। राजनीतिक पराधीनता के दौरान उन देशो का सामाजिक और सास्कृतिक विकास रुक सा गया और यह राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त होने तक रुका ही रहा। तकनीकी और वोद्धिक श्रेष्ठता के वावजूद इन प्राचीन सामतवादी समाजो की सस्कृति एक छोटे से सुविधासपन्न वर्ग तक ही सीमित थी और उसका अतमिश्रण जन साधारण की समानातर सीधी सहज लोक सस्कृति से कदाचित ही होता। अपनी वालसुलभ सुदरता के वावजूद आदिम कवीलाई सस्कृति मे वोद्धिक तत्व कम ही था। एक ही वतन मे पास पास रहने वाले कवीलाई और सामतवादी समाज दोनो ही अपने प्रतिद्वद्वियो के साथ लगातार कबीलाई, नस्ली और धार्मिक या दीगर झगडो मे लगे रहते। अलग-अलग कवीलाई या राष्ट्रीय समूहो के बीच का खडा विभाजन (vertical division)। और एक ही कवीलाई या राष्ट्रीय समूह के अतर्गत विविध वर्गो के बीच का क्षेतिज विभाजन (horizontal division) इस दोहरे विखडन को उपनिवेशवादी-साम्राज्यवादी प्रभुत्व से ओर बल मिला। यही वह सामाजिक ओर सास्कृतिक मूलभूत जमीनी सरचना है जो नवस्वाधीन देशो को अपने भूतपूर्व मालिको से विरासत में मिली है।

एक वुनियादी सास्कृतिक समस्या जो इनमे से वहुत से देशो के आगे मुह बाय खडी है, वह है सास्कृतिक एकीकरण की समस्या, नीचे से ऊपर तक एकीकरण जिसका अर्थ है विविध राष्ट्रीय सास्कृतिक प्रतिरूपो को साझा वैचारिक ओर राष्ट्रीय आधार प्रदान करना ओर क्षैतिज एकीकरण जिसका अर्थ है अपने समूचे जन समूह को एक से सास्कृतिक और वोद्धिक स्तर तक ऊपर उठाना ओर शिक्षित करना। इसका मतलव यह कि उपनिवेशवाद से आजादी तक के गुणात्मक राजनीतिक परिवर्तन के पीछे-पीछे वैसा ही गुणात्मक परिवर्तन उस सामाजिक सरचना मे होना चाहिए जिसे उपनिवेशवाद अपने पीछे छोड गया है।

एशियाई, अफ्रीकी ओर लातिन अमरीकी देशो पर जमाया गया साम्राज्यवादी प्रभुत्व विशुद्ध राजनीतिक आधिपत्य की निष्क्रिय प्रक्रिया मात्र नही था ओर वह ऐसा हो भी नहीं सकता था। इसे सामाजिक और सास्कृतिक वचना (deprivation) की क्रियाशील प्रक्रिया ही होना था और ऐसा था भी। पुराने सामती या प्राक् सामती समाजो मे कलाओ, कोशलो, प्रथाओ रीतियो प्रतिष्ठा, मानवीय मूल्यो ओर वोद्धिक प्रवोधन के माध्यम से जो कुछ भी अच्छा, प्रगतिशील और अग्रगामी था उसे साम्राज्यवादी प्रभुत्व ने कमजोर करने और नष्ट करने की कोशिश की। ओर अज्ञान, अधविश्वास, जीहुजूरी ओर वर्ग शोषण अर्थात जो कुछ भी उनमे वुरा, प्रतिक्रियावादी ओर प्रतिगामी था उसे वचाये और वनाये रखने की कोशिश की। इसलिए साम्राज्यवादी प्रभुत्व ने नवस्वाधीन देशो को वह सामाजिक सरचना नही लोटायी जो उसे शुरुआत मे मिली थी वल्कि उस सरचना के विकृत और वर्बाद कर दिये गये अवशेष उन्हे प्राप्त हुए। ओर साम्राज्यवादी प्रभुत्व ने भाषा, प्रथा, रीतियो, कला की विधाओ ओर वैचारिक मूल्यो के माध्यम से इन अवशेषो पर अपने पूजीवादी सास्कृतिक प्रतिरूपो की घटिया, वनावटी, सेकड-हेड नकले अध्यारोपित कीं।

अविकसित देशो के सामने इस वजह से वहुत सी सास्कृतिक समस्याए खडी हो जाती है। पहली समस्या है अपनी विध्वस्त राष्ट्रीय सस्कृतियो के मलवे से उन तत्वो को वचा कर निकालने की जो उनकी राष्ट्रीय पहचान का मूलाधार है, जिनका अधिक विकसित सामाजिक सरचनाओ की आवश्यकताओ के अनुसार समायोजन और अनुकूलन किया जा सके ओर जो प्रगतिशील सामाजिक मूल्यो और प्रवृत्तियो को मजवूत वनाने ओर उन्हें वढावा देने मे मदद करे। दूसरी समस्या है उन तत्वो को नकारने और तजने की

जो पिछडी आर पुरातन सामाजिक सरचना का मूलाधार है, जो या तो सामाजिक सरचना की आर विकासमान व्यवस्था से असगत ह या उसके विरुद्ध ह, आर जो अधिक विवेकवान, बुद्धिपूर्ण आर मानवीय मूल्यो आर प्रवृत्तियो की प्रगति म बाधा बनता है। तीसरी समस्या ह, आयातित विदेशी आर पश्चिमी सस्कृतियो से तत्वो का स्वीकार आर आत्मसात करने की जो राष्ट्रीय सस्कृति का उद्धार तकनीकी, सौन्दर्यशास्त्रीय आर वैज्ञानिक मानसिकता के निर्माण म सहायक हो, आर चौथी समस्या है उन तत्वो का परित्याग करने की जो अध पतन, अवनति आर सामाजिक प्रतिक्रिया को सादृश्य बढ़ावा देने का काम करते ह।

तो ये सभी समस्याए नवीन सास्कृतिक अनुकूलन, सम्मिलन आर मुक्ति की ह। आर इन समस्याओं का समाधान आमूल सामाजिक (अर्थात राजनीतिक, आर्थिक आर वैचारिक) पुनर्विन्यास के बिना केवल सास्कृतिक माध्यम से नही हो सकता। इन सभी बातो के अलावा, अविकसित देशो म राजनीतिक स्वतन्त्रता के आने से कुछ नयी समस्याए भी आयी ह। पहली समस्या हे उग्र राष्ट्रवादी पुनरुत्थानवाद आर दूसरी हे नव साम्राज्यवादी सास्कृतिक पैठ की।

इन देशो के प्रतिक्रियावादी सामाजिक हिस्से, पूजीवादी, सामती, प्राक-सामती आर उनके अभिन्न आर अनभिज्ञ मित्रगण जोर देते हे कि सामाजिक ओर सास्कृतिक परपरा के अच्छे ओर मूल्यवान तत्वो का ही पुन प्रवर्तन ओर पुनरुज्जीवन नही किया जाना चाहिए बल्कि बुरे ओर बेकार मूल्यो का भी पुन प्रवर्तन ओर स्थायीकरण किया जाना चाहिए। आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति के बुरे ओर बेकार तत्वो का ही नहीं बल्कि उपयोगी आर प्रगतिशील तत्वो का भी अस्वीकार आर परित्याग किया जाना चाहिए। इस प्रवृत्ति के कारण एशियाई आर अफ्रीकी देशो म कई आदोलन उभरे ह, इन सारे आदोलनो के उद्देश्य मुख्यत राजनीतिक ह, अर्थात बुद्धि सपन्न सामाजिक जागरूकता के उभार म बाधा डालना आर इस तरह शोषक वर्गो के हितो आर विशेषाधिकारो की पुष्टि करना।

उसी समय नव-उपनिवेशवादी शक्तियां, मुख्यत सयुक्त राज्य अमरीका, अपराध, हिंसा, सिनिसिज्म, विकार और लपटता का महिमामडन और गुणगान करने वाली दूषित फिल्मो, पुस्तको, पत्रिकाओ, सगीत, नृत्यो, फैशनो के रूप मे सास्कृतिक कचरे, या ठीक ठीक कहे तो असास्कृतिक कचरे के आप्लावन से प्रत्येक अविकसित देश के समक्ष खड़े सास्कृतिक शून्य को भरने की कोशिश कर रही हे। ये सभी निर्यात अनिवार्यत अमरीकी सहायता के माध्यम से होने वाले वित्तीय ओर माल के निर्यात के साथ साथ आते हे ओर उनका उद्देश्य भी मुख्यत राजनीतिक है अर्थात अविकसित देशो में राष्ट्रीय ओर सास्कृतिक जागरूकता को बढने से रोकना ओर इस तरह उनके राजनीतिक ओर बौद्धिक परावलबन का स्थायीकरण करना। इसलिए इन दोनो समस्याओ का समाधान भी मुख्यत राजनीतिक हे अर्थात् देशज और विदेशी प्रतिक्रियावादी प्रभावो की जगह प्रगतिशील प्रभावो को स्थानापन्न करना। ओर इस काम मे समाज के अधिक प्रबुद्ध ओर जागरूक हल्को जैसे लेखको, कलाकारो ओर बुद्धिजीवियो की प्रमुख भूमिका होगी। सक्षेप मे, कुठित विकास, आर्थिक विषमता, आतरिक विसगतिया, नकलचीपन आदि अविकसित देशो की प्रमुख सास्कृतिक समस्याए मुख्यत सामाजिक समस्याए ह। वे एक पिछडी हुई सामाजिक सरचना के सगठन, मूल्यो ओर प्रथाओ से जुडी हुई समस्याए ह। इन समस्याओ का कारगर समाधान तभी होगा जब राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सपन्न हो चुकी राजनीतिक क्रांति के पश्चात राष्ट्रीय स्वाधीनता को पूर्ण करने के लिए सामाजिक क्रांति भी होगी।

अग्रेजी से अनुवाद : भारत भूषण तिवारी

bharatbhooshan.tiwari@gmail.com

गज़ल की भावभूमि मे अन्विति

फैज अहमद फैज

पाकिस्तान नेशनल सेटर इस्लामाबाद ने इदारए यादगारे गालिब' के साथ मिलकर 20 जुलाई 1973 को इस्लामाबाद मे महफिले गालिब का आयोजन किया था। इस महफिल मे इदारे के जनरल सेक्रेटरी ने अपनी सस्था ओर गालिब लायब्रेरी की सरगर्मियो का हाल सुनाया। फैज अहमद फैज ने जो इदारे के सस्थापक और अध्यक्ष होने के अलावा उपर्युक्त महफिल के भी सभापति थे गालिब की मशहूर गजल मेहमा किय हुए बज्म चरागा किये हुए' पर भाषण दिया। उस भाषण का टेप गालिब लायब्रेरी के फैज कक्ष मे सुरक्षित कर लिया गया हे। फैज का यह लेक्चर गजल के रचना विन्यास की व्याख्या पस्तुत करता हे। इस टिप्पणी का केद्रीय सूत्र यह है कि गजल मे विषयवस्तु या भावनाओ की एकता नही होती बल्कि मूड की एकता या केफियत होती है।--स

अगर मुझे पहले से मालूम होता कि आज के इस आयोजन मे मरी ओर मिर्जा जफरुल हसन की शिरकत महज अपनी गरज आर मतलव के लिए हे तो म आयोजको से कहता कि वह कुछ प्रवध करे ताकि यह मालूम न हो कि हम दोनो सिर्फ गालिब लायब्रेरी के लिए आपसे किताबे मागने के लिए यहा आये ह।

गालिब के काव्य, व्यक्तित्व ओर चितन के बहुत से पहलुओ पर इस कदर तफ्सील से और इतना कुछ लिखा जा चुका है कि उस पर इजाफा शायद अब मुमकिन न हो।

गजल पर आम एतराज यह है कि इसमे भावभूमि की एकता यानी यूनिटी का कोई तत्व नही पाया जाता। बल्कि यह विभिन्न विचारो ओर भावनाआ को महज छद आर तुक (रदीफ काफिये) की रस्सी मे टाकने का नाम ह ओर उसमे किसी किस्म का सिलसिला या रब्त (सवध) नहीं होता। म समझता हू कि इस तरह इसको समझना ठीक नही हे। दूसरे या तीसरे दर्जे के गजलिया कलाम के बारे मे ता यह बात कही जा सकती ह, इसलिए कि उस तरह क शायर नो महज काफियावदी (तुकवदी) करत हे, लेकिन जो अच्छा ओर सजीदा (गभीर, मार्मिक) गजलिया कलाम हे उसके बारे म यह एतराज शायद सही न हो, ओर गालिब के बारे मे यकीनन सही नही है। गालिब तो काफियाबद नहीं थे। चुनाचे वह खुद कहते ह

गालिब न बूद शैवए-मन काफियाबदी
जुल्मीस्त कि बर किल्क्-ओ वरक् मी कुनम इमशब

वह तो किल्क-ओ वरक (कलम आर कागज) पर यह जुल्म करत थ। जाहिर हे कि महज विभिन्न विषयों को एक जगह पर ला रखना गालिब को अच्छा न लगा होगा। इतना जरूर ह कि गजल म जिस किस्म

की इकाई पायी जाती है, वह विषयवस्तु या भावनाओं की इकाई नहीं होती बल्कि उस चीज का इजहार होती है जिसको आप मूड कह लें या एक कैफियत (भावधारा) कह लें।

अगर आप गालिब के कलाम पर नजर डालें तो उनके पुख्ता जमाने के कलाम में देखेंगे कि हर गजल करीब-करीब एक ही मूड की है, या एक ही कैफियत लिए हुए है। न सिर्फ यह, बल्कि उस मूड की भी जो अलग-अलग कैफियतें हैं उनमें भी एक तरतीब पायी जाती है। और उसी की एक मिसाल मैं इस वक्त पेश करनेवाला हूं। लेकिन जाहिर है कि इकाई का यह तत्व साफ खुला और उभरा हुआ नहीं है। बल्कि गजल का यह सिलसिला आंतरिक होता है और जो महज महसूस किया जा सकता है। जाहिरी तौर से इसकी दो सूरतें हैं: एक तो छंद का चुनाव, दूसरे 'जमीन' यानी काफिया रदीफ (तुक योजना) का चुनाव। यह बिल्कुल सीधी और साफ बात है कि आप कोई बहुत उदास मजमून किसी चलती हुई धुन में नहीं गा सकते। उसमें वह आहंग (नाद) पैदा न होगा जो उद्दिष्ट है। छंद का चुनाव अपनी जगह पर यह तय कर देता है कि उस गजल का मूड क्या है। या गजल की कैफियत (भावधारा) इस चीज का फैसला करती है कि उसके लिए कौन सा छंद माजूं है। दूसरे यह कि जो 'जमीन' (या काफिया-रदीफ: तुक-योजना) और खास तौर से 'रदीफ' चुनी जाती है, उससे भी एक खास लगाव होता है उस भावना या कैफियत का, जिसका आधार पाकर वह गजल मन में गूंजी है और लिखी गयी है।

जिस गजल का मैं आपसे जिक्र करना चाहता हूं वह संभवतः गालिब की सबसे लंबी और उनकी कल्पनायोजना और तकनीक की सबसे नुमाइंदा (प्रतिनिधि) गजल है। सत्रह शेरों की यह मशहूर गजल आपको जरूर याद होगी:

मुद्दत हुई है यार को मेहमां किये हुए
जोशे-कदह से बज्म चरागां किये हुए

इस गजल में शुरू से आखिर तक एक बुनियादी मजमून और एक बुनियादी कैफियत है, बल्कि यह बिल्कुल एक राग या म्यूजिकल कॉम्पोजीशन या एक फिल्म की तरह है। इसके विभिन्न टुकड़े और सीक्वेंस (क्रम-योजना) हैं जिनकी अपनी जगह अलग-अलग एक तरतीब भी है और अपनी-अपनी जगह उनका एक अलग वैशिष्ट्य भी है।

मैंने इस पूरी गजल का इस तरह विभाजन किया है। पहले तो इसका मतला[1] है। इसे आप संगीत की परिभाषा में यों कह लें कि मतले से खरज का सुर कायम किया गया है, या इससे भूमिका बांधी गयी है उस सारी कैफियत की, जो कि बाद में हुई है। या इसको 'बुनियादी विषय' कह लीजिए:

मुद्दत हुई है यार को मेहमां किये हुए
जोशे-कदह से बज्म चरागां किये हुए

इस शेर में सोचने की बात यह है कि 'मुद्दत हुई है यार से मिले हुए' या यार से एकांत में मुलाकात किये हुए नहीं—बल्कि यार को मेहमान किये हुए मुद्दत गुजर चुकी है। 'मेहमान' का जो लफ्ज इस्तेमाल

तुकों के अन्त्यानुप्रास मसलन 'मेहमां किये हुए' 'चरागां किये हुए' वाली गजल में 'किये हुए' रदीफ और 'मेहमां' 'चरागां' आदि काफिये।

1 गजल का पहला शेर। मसलन जो अभी ऊपर दिया गया 'मुद्दत हुई...'

किया गया है, उसके दो पहलू गौर-तलब है। एक तो यह कि किसी अजनबी को या किसी ऐसे शख्स को मेहमान नहीं रखा जाता जिससे कभी-कभार मुलाकात हुई हो। मेहमान तो उसी को रखा जाता है जिससे काफ़ी मेल हो, जिससे एक पुराना राबिता हो, जिससे बेतकल्लुफी का एक रिश्ता हो। चुनाचे गालिब महबूब से एकात मिलन या प्रेममिलन के प्रसग (विसाल) का जिक्र नही कर रहे ह। बल्कि, एक तो वह एक शख्स का जिक्र कर रहे हे जिससे हृदय का पुराना लगाव हे, बेतकल्लुफी है, आना-जाना हे, आर जिससे महज मुलाकात नही बल्कि जिसकी मेहमानी उद्दिष्ट है। मेहमानदारी का अपना एक लुत्फ है जो कि मुलाकात के लुत्फ को दोबाला करता ह। दूसरा पहलू जिसकी तरफ मे आपका ध्यान खीचना चाहता हू, यह है कि यार या महबूब की यह मेहमानदारी एकात म नही हे, बल्कि 'जोशे-कदह' (पियाला की मादकता के जोश) स महफिल को 'चरागा' किये हुए ह (दिवाली की सी जगमग पेदा किये हुए हे)। बात यह नहीं हे कि कोई अकेला मिलने के लिए आया हुआ है, बल्कि, महफिल है, बज्म हे, ओर गालिब जिस चीज को याद कर रहे हे वह विसाले-यार नही बल्कि महफिले-यारा हे। उन्ह महबूब के बिछुडने का नही बल्कि महफिल के उजडने का दुख ह। जिस बात के लिए गालिब उदास ह ओर जिसे वह याद कर रहे हे वह एक जाती मुलाकात या किसी से उनके जाती तअल्लुक का जिक्र नही है, बल्कि वह तो एक पूरे जीवन जीने के ढग और उठने बेठने, मिलने-जुलने के अदाज ओर पूरी जीवन-व्यवस्था का रोना हे, जिसको वह इस गजल के बाद के शेरो म बयान करते ह। यह गालिब की जाती केफियत नही थी—यह उस युग के समाज की सामूहिक भावना थी।

गालिब एक ख़ास जीवन-व्यवस्था ओर जीने के तौर-तरीके से वाकिफ थे। अग्रेजो के आने और मुल्क के गुलामी में चले जाने की वजह से वह पुरानी व्यवस्था, वह पुराने तौर तरीके, वह पुराने आदाबे-महफिल रुख़सत हो चुके थे, आर उनकी जगह कोई नयी व्यवस्था या जीवन के नये आचार-व्यवहार समाज म नहीं आये थे। चुनाचे उन्नीसवी सदी मे सन् 1857 के हगामो से पहले और उन हगामो के बाद का जो जमाना है, और उस जमाने के लोगो की जो सामाजिक बौद्धिक और भावनात्मक कैफियत हे, उसे एक तरीके स गालिब ने शेर म बयान किया ह—कि, मुद्दत से न वो महफिले रही, न वो आदाब (शिष्टाचार) बाकी है ओर न वो यार-दोस्त बचे हे, जिनकी वजह से हमारी जिदगी मे हरियाली थी आर उमग और आनद के सामान।

'बज्म चरागा किये हुए वाली भूमिका के बाद 'करता हू जम्अ फिर जिगरे-लख्त लख्त को' से पहला सीक्वेस[2] शुरू होता हे। यानी 'मतले' के बाद के सात शेरो का एक सीक्वेस, उसके बाद दूसरा सीक्वस या टुकडा है छह शेरा का, जो 'फिर शोक कर रहा हे ख़रीदार की तलब से शुरू होकर 'इक नौबहारे-नाज वाले शेर तक गया हे। इसक बाद गजल के आखिरी तीन शेर ह जो गोया पूरी गजल का समापन प्रस्तुत करते ह।

अभी म अर्ज कर चुका हू कि महफिल के बरहम हो जाने (उखड जाने) की वजह से गालिब गमगीन हें उदास हे। क्योकि इन ही से गालिब की जिदगी म रोनक थी। पहला सीक्वेस करता हू जम्अ फिर जिगरे-लख़्त-लख़्त को वाले शेर से शुरू होकर 'पिदार का सनमकदा वीरा किये हुए वाले शेर पर खत्म होता हे।

2 एक क बाद एक परस्पर सबद्ध रूप से आने वाले पद समूह एक समूह एक क्रमखड।

करता हू जम्अ फिर जिगरे-लख्त लख्त को
अर्सा हुआ ह दावते मिजगा किये हुए

जव वह विखरी हुई महफिल गालिव का याद आती हे तो उनका जी चाहता हे कि वह कफियत जो कि महफिल के जमान म उनके दिलो दिमाग पर छायी हुई थी आर वह पुराना मूड आर भावना का समा फिर किसी तरीके से दुवारा जिदा किया जाये, ताकि उसके अपन-आप पर दुवारा छा जाने स शायद वह पुरानी महफिल किसी तरह वापस आ जाये।

इस सीक्वेस के वाकी शेर इसी मजमून पर हे कि वह शोक़, वह हसरत, वह तलव और वह हवस जो पुरानी महफिल के अग ओर अश थे उन्ह अपने-आप पर दुवारा एक फजा वनकर छान दिया जाये। चुनाच

करता हू जम्अ फिर जिगरे-लख्त लख्त को
अर्सा हुआ है दावते मिजगा किये हुए

अलग-अलग टुकडा तो कोई चीज महसूस नही करता, इसलिए पहले तो जिगर के उन अलग-अलग टुकडा का इकट्ठा करे, ताकि उसमे दर्द की कोई टीस उठे आर उसकी वजह से आखे नम हा आर जव आख नम हा तो फिर वह महफिल कम-अज कम याद ही म ताजा हो जाये। इसके वाद का शेर

फिर वजए एहतियात से रुकने लगा है दम
वरसा हुए हे चाक गिरेवा किये हुए

कहते ह एक जमाने से सव्र और एहतियात का दामन हमने पकड रखा है। अव यह दामन किसी तरीके से छोडे, ओर फिर अपना गिरेबा चाक करे, ताकि जुनून, विभोरता ओर तल्लीनता की जो केफियत उस महफिल म होती थी वह लोट आये। इस शेर पर गोर फरमाइये—

फिर गर्मे-नालाहा ए शररवार हे नफस
मुद्दत हुई हे सेरे चरागा किये हुए

यानी अपन अधरा से शब्दो के वजाय शाले वरसने लगे, ताकि उन शोलो से उस भावना ओर शौक की कफियत पेदा हो जो कि उस महफिल से जुडी हुई थी। यह शेर भी आपका ध्यान खीचना चाहेगा—

फिर पुरसिशे-जराहते दिल को चला हे इश्क
सामाने सदहजारे-नमकदा किये हुए।

यहा गालिव कहते ह फिर दिल के ज़ख़्मा पर नमक छिडके आर उससे इतना दर्द हो कि पुरानी कैफियत पैदा हा जा कि उस महफिल से जुडी हुई थी। इसी तरह के ये तीन शेर भी हे—

फिर भर रहा हू ख़ामए मिजगा व ख़ूने दिल
साजे चमनतराजिए दामा किये हुए
वाहमदिगर हुए ह दिलो दीदा फिर रकीव
नज्जारा-आ ख़याल का सामा किय हुए

दिल फिर तवाफे-कू-ए-मलामत को जाये है
पिदार का सनमकदा वीरा किये हुए

आखिरी शेर की शब्दावली पर जरा ध्यान द, जिसमे 'कू ए-मलामत' के 'तवाफ' (परिक्रमा) आर 'पिदार' (अहमन्यता, दभ) के 'सनमकदे' (मदिर, मूर्तिगृह) का जिक्र ह। 'कू-ए-मलामत' का सकेत है--कू-ए यार, यार की गली। और उस कू-ए-यार को तो का'बा ठहराया ह जिसकी परिक्रमा करने को जी चाहता है, आर अपने 'पिदार' (दभ ओर अह) को 'सनमकदा' (मूर्ति गृह, सनम का घर) मगना है। कू-ए यार, इश्क यार तो हकीकत (यथार्थ सत्ता) हे, और अपने-आप पर जो घमड हे आर अपना जो पिदार हे वह सनम (मूर्ति) की तरह मिथ्यालोक की वस्तु हे। आशिकी हकीकत हे--सत्यमूल यथार्थ है, आर खुदपसदी (आत्मप्रशसा) असत्य। एक कावा हे, दूसरा सनकमदा। शब्दा क प्रयोग म जो अलकार ओर व्यजना ह, वह देखने के काबिल हे। इस शेर पर पहला सीक्वेस खत्म होता है। इसके वाद 'सीक्वस इस शेर से शुरू हाता हे

फिर शोक कर रहा हे खरीदार की तलव
अर्जे-मता-ए अक्लो दिलो-जा किये हुए

अक्ल, दिल ओर जार को वार के शौक चाहता है कि अव कोई ऐसा खरीदार पदा हो जिस पर वो सव केफियते छा जाय जा पहले वयान की गयी ह। यानी, तलव इस बात की कि जिगर के टुकडे-टुकड एक जगह हो। तलव इस वात की, कि सब्र को छोडकर जुनून इख्तियार कर ले। इस वात की तलव कि शब्दा से शाल भडकन लग। इस वात की तलव कि जख्मे दिल पर नमक छिडका जाये। इस बात की तलब कि आखे खून स भर जाये। इस वात की तलव कि नज्जारा-ओ-खयाल म दिल ओर आख एक दूसरे का मुकाबिला करने लगे, और अपनी जात के सनमकदे को वीरान करके (मिथ्या अह की पूजा को त्यागकर) अपने महवूव के कूचे की परिक्रमा के लिए दुवारा जाय।

इस तलव का नतीजा क्या हे? दूसरा सीक्वेस इस सारे शोक आर तलव का नतीजा हे, इसलिए कि, वही दृश्य जिसको वह महफिले-यार का रूपक बनाते ह, उसी तलव क जवाव मे बयान करत ह। यह सीक्वस या मजरनामा (दृश्यावली का रूपक) इतना कसा हुआ अपने सिलसिल म वधा हुआ हे कि अगर आप किसी शेर की जगह बदल द, यानी ऊपर का नीचे या नीच का शर ऊपर कर दे तो क्रम टूट जायेगा, मजरनामा बिगड जायेगा ओर सीक्वस गलत हो जायेगा। न सिर्फ गालिव की इस गजल म, बल्कि हर सीक्वेस के शेरो म एक क्रम ओर सुसबद्धता है। चुनाचे

दौडे है फिर हरेक गुल-ओ-लाला पर खयाल
सद गुलसिता निगाह का सामा किय हुए

यह तो पृष्ठभूमि हे--बैकग्राउड। इसमे गालिव वताते ह दुनिया एक गुलिस्ता ह। हर तरफ फूल लिखे हुए ह और हर फूल निहायत हसीन ओर खूवसूरत हे। यह पृष्ठभूमि हे उस भावभूमि की घटना की, जिसका जिक्र वह वाद के शेरा मे करते हे। उस गुलिस्ता म क्या होता ह? कहत ह

फिर चाहता हू नामए दिलदार खोलना
जा नज्रे-दिलफरेविए-उनवा किये हुए

आगे जाती कैफियत शुरू होती है जो कि इस अर्थ म जाती नहीं ह कि यही कैफ़ियत बहुत पहले से और आज तक लोगा पर गुजरती आयी ह। इस कैफियत (भावस्थिति) की पहली मंजिल ता यह है कि महबूब न सामने ह आर न कही आसपास, बल्कि नजर से दूर और गायब है। इसलिए गालिब 'खत' का जिक्र करते है। 'नामए दिलदार' आता ह। चूंकि नाम ए दिलदार म 'उन्वान' (शीर्षक) महबूब के हाथ का लिखा हुआ है, इसलिए प्रेयसी के सौदर्य आर उसके परम आकर्षण की निशानी मात्र एक है, और वह 'नामए-दिलदार' का 'उन्वान' और सरनामा है। यह उन्वान अपनी जगह पर स्वय इतना मोहक है कि गालिब का इसी पर जान छिडकने का जी चाहता है। न महबूब का नैकट्य, न उसका दीदार और न उसका विसाल (मिलन) सिर्फ उसका ख़त आया ह। अब दूसरी मंजिल की तरफ चलिए

मागे है फिर किसी को लबे-बाम पर हवस
जुल्फ़ सियाह रुख़ पे परीशा किये हुए

महबूब है तो सही, मगर बाम पर है। आस पास नहीं, दूर बाम पर ह। और जब बाम पर है, तो वहा से सिर्फ उसकी जुल्फे सियाह ही नजर आ सकती है। बाकी नख शिख पर नजर नही पहुच सकती। जुल्फे-सियाह का सिर्फ एक साया-सा नजर आता है। महबूब के चेहरे की अन्य तफ़सीलें नजर से ओझल ह। पहली मंजिल म दिलदार के ख़त का जिक्र और दूसरी मंजिल मे दूर से दीदारे-यार का। अब तीसरी मंजिल या तीसरा मोड यो बयान होता है

चाहे है फिर किसी को मुकाबिल म आरजू
सुर्मे स तेज दश्नए मिजगा किये हुए

महबूब अब बाम से उतरकर सामने आ गया है। मुकाबिल मे है। अगर मुकाबिल मे है तो जिस तरह बाम पर सबसे नुमाया चीज जुल्फे-सियाह थी, उसी तरह अपने सामने होने पर सबसे नुमाया चीज, जाहिर है, कि 'दश्नए मिजगा (पलको की कटार) है। चेहरे के नक्शे मे सबसे आकर्षक और मोहक महबूब की आखे ही हो सकती है। इसके बाद मुलाकात का बयान है। यह चौथी मंजिल है

इक नौबहारे-नाज को ताके है फिर निगाह
चेहरा फरोगे-मय से गुलिस्ता किये हुए

ख़त के बाद दीदार। दीदार के बाद हमनशीनी (पास-पास बैठना)। हमनशीनी के बाद हमपियालगी (साथ साथ मधुपान)। यानी बेतकल्लुफी की यह सूरत है कि अब *चेहरा फरोगे-मय से गुलिस्ता किये हुए* है।

आमने सामने होने और मुलाकात के बाद महफिल का सजना और यारो के साथ हमनशीनी की तरफ इशारा है। इस गजल का मतला अगर आप फिर एक बार याद कर ल तो महसूस करेंगे कि *जोशे-कदह* के बाद अब किसी किस्म का संदेह या धुधलका बाकी नहीं रहता। अगर संगीत की परिभाषा का प्रयोग किया जाये तो कहेगे कि इस दूसरे सीक्वेंस के सारे शेर चढते हुए सुर हैं। 'सीक्वेंस' ऊपर की तरफ जा रहा है।

अब आखिरी 'सीक्वेंस शुरू होता है जिसके अशआर उतरते हुए सुर हे। यहा पहुचकर गालिब को यकायक खयाल आता है कि ये सब बेकार बातें है। क्योंकि न तो महबूब आयेगा, न गिरेबा चाक

करेगे और न शौक का वह आलम ही हम पर तारी होगा जिसके लिए हम भटकते फिरते ह। वल्कि गालिव अत मे हार ही क़ुबूल कर रहे है। इस सीक्सवेस मे तीन शेर ह

फिर जी मे हे कि दर पे किसी के पडे रहे
सर जेरे-वारे-मिन्नते दरवा किये हुए

न महवूब वाम पर आयेगा, न उसका खत आयेगा, न कुरवत (नेकट्य) प्राप्त होगी, न महफिल सजेगी, न यार-दास्त जमा होगे। इसलिए कम-से-कम इतना तो हो कि *सर जेरे-वारे-मिन्नते दरवा किये हुए* हम यार के दर पर पडे रहे। इस शेर मे कही कोई इशारा नही है कि दर के अदर जाने के लिए ख़्वाहिश है। शौक का वलवला, ओर सारी वेचैनी ओर वेकारी ख़त्म हो चुकी हे। इसलिए अब सिर्फ इतनी इजाजत मिल जाये कि हम उसके दर पर पडे रहे ताकि महवूब से कुछ-न-कुछ लगाव ओर तअल्लुक कायम रहे। अगर यह भी नहीं हो सकता तो

जी ढूडता हे फिर वही फुर्सत के रात दिन
बेठे रहे तसव्वुरे-जाना किये हुए

अगर दरे-जाना भी मुयस्सर नहीं हा ता फिर इतना हो ता आर इतनी फ़ुर्सत तो मिले कि हम तसव्वुरे-जाना ही किये वेठे रहे (महवूव के कल्पनासुख मे ही लीन रहें) उससे लो लगाये रखे। गोर फरमाये कि दर पर पडे रहनेवाला शेर वाद मे, ओर तसव्वुरे-जाना वाला शेर पहले लिख दिया जाय या वर्णन किया जाय तो न सिर्फ उसके सही सिलसिले मे वल्कि सारी केफियत (भावधारा) ओर भावभूमि पर घटनेवाली 'वारदात' (वास्तविक अनुभूति) मे फर्क आ जायेगा। ओर आखिर मे 'गालिब' नतीजा यह निकालते है

'गालिव' हमे न छेड कि फिर जोशे-अश्क से
बैठे हे हम तहेय्यए-तूफा किये हुए

गालिव, ये सब फ़ुजूल वाते हे। क्यो ये किस्से छेडते हो? क्यो महवूव की याद दिलाते हो? क्या महिफल का जिक्र करते हो? जाने दो इन तमाम वातो को। अव इसके सिवा कोई चारा नही कि हम तहैय्यए-तूफ़ा कर ले (एक तूफ़ान उठाने का सकल्प ही कर लें), रोना धोना कर ले, दिल का वुख़ार हल्का कर ले। अव कुछ होना-हुआना नहीं हे। इसलिए, गालिव, वेहतर यही हे कि इन सारी वाता के आलाप से वचो ताकि यह तूफान थम जाये, ख़त्म हो जाये।

मने वहुत-सी वात आर टीका-टिप्पणिया विस्तार के भय से नजर-अदाज करते हुए एक संक्षिप्त सा जायजा आपके विचारार्थ पेश किया है। मेरी वयान की हुई क्रमवद्धता के दृष्टिकोण से गालिव की किसी भी मशहूर गजल को पढिए, उसमे आपको इसी किस्म का कोई-न-काई सिलसिला मिलेगा और वह सिलसिला एक कैफियत (भावधारा) का, या एक केफियत के विभिन्न अगो या उसके विभिन्न पक्षो का मिलेगा ओर एक से अधिक रूपा मे मिलेगा। इस दृष्टिकोण से अगर आप कलाम-गालिव का दुवारा अध्ययन ओर मूल्याकन करे तो वहुत-से नुकते, जो पहले शायद आपके जेहन मे न आये हा, अध्ययन करने के वाद साफ़ और स्पप्ट रूप मे नजर आयेगे।

अनुवाद शमशेर वहादुर सिंह

इकबाल अपनी नज़र मे

फैज अहमद फैज

यह लेख फैज की पुस्तक मीजान से लिया गया है। उर्दू की काव्य परपरा और फारसी सादर्य दृष्टि–दोनों को ध्यान म रखकर इक़बाल की रचनाशीलता के मूल्याकन के सिलसिले मे यह आलेख बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। हिंदी के पाठक फैज के आलोचनात्मक लेखन से परिचित नही हे। इसीलिए उनके आलोचनात्मक लेखो के सग्रह 'मीजान' से इक़बाल पर लिखे गये उनके लेख का अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। –स

इकबाल की नजर से दुनिया को बहुत लोगो ने देखा ह। इकबाल की नजर स इकबाल का अध्ययन किसी ने नही किया। यह लेख इसी बहस का प्राक्कथन हे। यह बहस दो वजह से अहम ह। पहला वजह यह ह कि अह की स्थिरता, अक्लो-इश्क, ख़ुदा आर इनसान ओर ऐसे ही दूसरे दार्शनिक विषयों की तरह इकबाल का व्यक्तित्व भी एक मुश्किल विषय ह। आर उनके कलाम का कोई दोर ऐसा नहीं जो इस विषय से खाली हो। दूसरी वजह ये ह कि मेरी राय म इक़बाल की शायरी का सबसे खरा, सबसे मार्मिक, सबसे रसीला हिस्सा वही है जो उनके अपने व्यक्तित्व से सबधित है। यह हिस्सा फलसफे से ख़ाली लेकिन जज्बे से भरपूर हे। इसमे तकरीर का जोश नहीं लेकिन एहसास की शिद्दत बहुत ज्यादा हे। यह शायरी इकबाल की दार्शनिक श्रेष्ठता पर बहुत कम निर्भर है।

इकबाल के दार्शनिक दृष्टिकोण का क्रमिक विकास हुआ हे, इकलाबी ढग से छलाग लगाकर नहीं। उनके शुरुआती ओर आखिरी समय के विचारो मे एक आतरिक सबध ओर सिलसिला है जो टूटने नहीं पाता। विभिन्न अवसरो पर इकबाल ने जिन विचारो की टीका आर व्याख्या की है उनम आपस में विरोधाभास ता है, पर अतर्विरोध नही हे। इकबाल ने अपने व्यक्तित्व के बारे म जा कुछ लिखा है उसका आधार भी यही हे। शुरू के दोर की शायरी मे वे जिन-जिन मानसिक उलझनो ओर जज्बाती मसअलों का जिक्र करते है, जिन परशानियो ओर खुशिया, जिस दर्द या सुरूर का इज्हार करते है, बाद की शायरी मे उन्ही स्थितियो की गूज बार-बार सुनायी देती हे। अगर हम इकबाल की नजर से देख तो हम इस शख़्सियत के चद एक पहलू बहुत साफ़ नजर आयेगे।

पहली बात जिस पर ध्यान जाता हे वह यह हे कि इकबाल अपने व्यक्तित्व को दुनिया ओर जो कुछ इसम ह, उससे अलग-थलग एक कतई खुदमुख़्तार आर निरकुश हकीकत करार देकर अपने दिलो दिमाग का विश्लेपण नही करते थे। वो अपने व्यक्तित्व के सबध मे जो कुछ कहते ह, ज्यादातर किसी बाहरी यथार्थ के हवाले से कहते हे। यू कह लीजिए कि अपने व्यक्तित्व के तईं उनका बयान ज्यादातर इसके अतिरिक्त होता है। उसमें ज्यादातर उस सतोष या असतोष का जिक्र होता हे जो शायर

के व्यक्तित्व या किसी रिश्ते के आपसी तअल्लुक से पैदा होता है। ये अन्य चीजं कभी प्राकृतिक दृश्य है तो कभी मानव जाति, कभी वतन की मिट्टी है तो कभी जिंदगी का रेगिस्तान, कभी कोई कलात्मक या जज्बाती या नैतिक आदर्श है तो कभी खुदी (अहं) का बुलंदतर मुकाम। इकबाल को अपने व्यक्तित्व मे अगर दिलचस्पी है तो वो अंतर्मुखी भावप्रवण शायरो की तरह महज अपने व्यक्तित्व की वजह से नही बल्कि उस नफ्अ नुकसान की वजह से है जो इस व्यक्तित्व से दुनिया और दुनिया से परे इस व्यक्तित्व से संबद्ध होते है।

अब ये देखिये कि इकबाल ने अलग-अलग समय मे अपने बारे मे क्या कुछ महसूस किया है, 'बाग-दरा' की दूसरी नज्म मे इकबाल 'गुल-रंगी' से मुखातिब होकर फरमाते हैं

इस चमन में मैं सरापा सोजो साजे-आरजू
और मेरी जिंदगानी बेगुदाजे आरजू
मुतमइन है तू, परेशा मिस्ले बू रहता हू मै
जख्मिए शमशीरे-जोके-जुस्तजू रहता हू मै

ये परेशानी और बेचैनी, ये लगातार तलाश और आरजूमंदी इकबाल की शायराना शख्सियत का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस बेचैनी के कारण और इस तलाश के उद्देश्य बदलते रहे। लेकिन इन स्थितियो का एहसास इकबाल की तमाम शायरी पर हावी है और वो इसकी अभिव्यक्ति तरह-तरह के अंदाज मे करते है। इक़बाल जब भी प्राकृतिक दृश्यो के चैन-आराम और सुकून का अवलोकन करते है तो उन्हें हमेशा अपने दिल की तडप और जज्बात की बेचैनी का शिद्दत से एहसास होता है

तारो का खमोश कारवा है ये काफिला बेदरा रवा है
खामोश है कोहो दस्तो दरिया कुदरत है मुराक़बे मे गोया
ऐ दिल तू भी खमोश हो जा
आगोश मे ले के गम को सो जा

सूरज बुनता है तारे-जर से दुनिया के लिए रिदाए-नूरी
आलम है खमोशो मस्त गोया हर शै को नसीब है हुजूरी
दरिया, कुहसार, चाद-तारे क्या जाने फिराको-नासुबूरी

शाया है मुझे गमे-जुदाई
ये खाक है महरमे-जुदाई

बहरो दश्तो कोह कि खामोश व कर आसमानो मेहरो यह खामोश व कर
हर यके मानिंद बेचारा ईस्त दर फ़जाये नीलगू आवारा ईस्त
ई जहा सेद अस्त व सैयादेम मा या असीरे रफ्ता अज यादेम मा
जार नालीदम सदाए बर नख्वास्त हमनफस फर्जंदे-आदम ए कुजास्त

ये बेचैन और पीडामय शख्सियत जो अपनी बेचैनी और पीडा की वजह से चाद सूरज की दुनिया मे अपने को अजनबी और तनहा महसूस करती है, इनसानो की दुनिया मे भी उसी तरह अजनबी और तनहा है। इक़बाल की नजर में उनका हमअस्र (समकालीन) इनसान भी सजीव और निर्जीव की तरह मुर्दादिल और बेसोज है। इसलिए वो इनसान से भी अपने को उतना ही दूर पाते है जितना चाद सितारो से

इक़बाल अपनी नज़र मे

फेज अहमद फेज

यह लेख फेज की पुस्तक मीजान से लिया गया है। उर्दू की काव्य परपरा और फ़ारसी सादर्य-दृष्टि—दोनों को ध्यान म रखकर इक़बाल की रचनाशीलता के मूल्याकन के सिलसिले म यह आलेख बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। हिन्दी के पाठक फेज के आलोचनात्मक लेखन स परिचित नहीं ह। इसीलिए उनके आलोचनात्मक लेखों क सग्रह 'मीजान' से इकबाल पर लिखे गय उनके लेख का अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। —स

इकबाल की नजर से दुनिया को बहुत लोगा ने देखा ह। इकबाल की नजर से इकबाल का अध्ययन किसी ने नही किया। यह लेख इसी बहस का प्राक्कथन ह। यह बहस दो वजह से अहम है। पहला वजह यह है कि अह की स्थिरता, अक्लो-इश्क, खुदा ओर इनसान ओर ऐसे ही दूसरे दार्शनिक विषयों की तरह इकबाल का व्यक्तित्व भी एक मुश्किल विषय ह। आर उनके कलाम का कोई दार ऐसा नहीं जो इस विषय से खाली हो। दूसरी वजह ये है कि मेरी राय म इकबाल की शायरी का सबसे खरा, सबसे मार्मिक सबस रसीला हिस्सा वही हे जो उनके अपन व्यक्तित्व स सबंधित हे। यह हिस्सा फलसफे से ख़ाली लेकिन जज्बे से भरपूर हे। इसमे तकरीर का जोश नहीं लेकिन एहसास की शिद्दत बहुत ज्यादा है। यह शायरी इकबाल की दार्शनिक श्रेष्ठता पर बहुत कम निर्भर है।

इकबाल के दार्शनिक दृष्टिकोण का क्रमिक विकास हुआ है, इकलाबी ढग से छलाग लगाकर नहीं। उनके शुरुआती ओर आख़िरी समय के विचारो मे एक आतरिक सबध ओर सिलसिला है जो टूटने नहीं पाता। विभिन्न अवसरो पर इकबाल ने जिन विचारो की टीका ओर व्याख्या की हे उनमें आपस में विरोधाभास तो है, पर अतर्विरोध नहीं हे। इक़बाल ने अपने व्यक्तित्व के बारे मे जो कुछ लिखा हे उसका आधार भी यही हे। शुरू के दार की शायरी मे वे जिन-जिन मानसिक उलझनों ओर जज्बाती मसअलों का जिक्र करते हे, जिन परेशानियों ओर खुशियो, जिस दर्द या सुरूर का इज्हार करते हे, बाद की शायरी मे उन्ही स्थितियो की गूज बार-बार सुनायी देती है। अगर हम इकबाल की नजर से देख तो हम इस शख़्सियत के चद एक पहलू बहुत साफ नजर आयेग।

पहली बात जिस पर ध्यान जाता है, वह यह हे कि इक़बाल अपने व्यक्तित्व का दुनिया ओर जो कुछ इसमे हे, उससे अलग-थलग एक कतई खुदमुख्तार और निरकुश हकीकत करार देकर अपने दिलो दिमाग का विश्लेषण नही करते थे। वो अपने व्यक्तित्व के सबध मे जो कुछ कहते ह, ज्यादातर किसी बाहरी यथार्थ के हवाले से कहते ह। यू कह लीजिए कि अपने व्यक्तित्व के तई उनका बयान ज्यादातर इसक अतिरिक्त होता है। उसमे ज्यादातर उस सतोष या असतोष का जिक्र होता हे जो शायर

के व्यक्तित्व या किसी रिश्ते के आपसी तअल्लुक से पैदा होता है। ये अन्य चीज कभी प्राकृतिक दृश्य है तो कभी मानव जाति, कभी वतन की मिट्टी ह तो कभी जिदगी का रेगिस्तान कभी कोई कलात्मक या जज्बाती या नैतिक आदर्श हे तो कभी खुदी (अह) का बुलदतर मुकाम। इकबाल को अपने व्यक्तित्व म अगर दिलचस्पी ह तो वो अतमुखी भावप्रवण शायरों की तरह महज अपने व्यक्तित्व की वजह से नहीं बल्कि उस नफअ-नुकसान की वजह से हे जो इस व्यक्तित्व से दुनिया और दुनिया से परे इस व्यक्तित्व से सबद्ध होते हे।

अब ये देखिये कि इकबाल ने अलग-अलग समय मे अपने बारे मे क्या कुछ महसूस किया है, 'बाग दरा' की दूसरी नज्म मे इकबाल 'गुल-रगी' स मुखातिब होकर फरमाते ह

इस चमन मे म सरापा सोजो साज-आरजू
आर मेरी जिदगानी बेगुदाजे-आरजू
मुतमइन है तू, परेशा मिस्ल बू रहता हू मे
जख्मिए शमशीरे-जौके-जुस्तजू रहता हू में

ये परेशानी ओर बेचेनी, ये लगातार तलाश ओर आरजूमदी इकबाल की शायराना शख्सियत का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस बेचेनी के कारण ओर इस तलाश के उद्देश्य बदलते रहे। लेकिन इन स्थितियो का एहसास इकबाल की तमाम शायरी पर हावी हे आर वो इसकी अभिव्यक्ति तरह-तरह के अदाज मे करते ह। इकबाल जब भी प्राकृतिक दृश्यो के चेन-आराम ओर सुकून का अवलोकन करत हे तो उन्हे हमेशा अपने दिल की तडप आर जज्बात की बेचेनी का शिद्दत से एहसास होता ह

तारो का खमाश कारवा है ये काफिला बेदरा रवा है
खामोश हे कोहो-दस्तो दरिया कुदरत हे मुराकबे मे गोया
ऐ दिल तू भी खमोश हा जा
आगोश म ले के गम को सो जा

सूरज बुनता है तारे-जर से दुनिया के लिए रिदाए नूरी
आलम है खमोशो मस्त गोया हर शै को नसीब है हुजूरी
दरिया, कुहसार चाद-तारे क्या जाने फिराको-नासुबूरी

शाया है मुझे गमे-जुदाई
ये खाक हे महरमे-जुदाई

बहरी दश्तो-कोह कि खामोश व कर आसमानो मेहरो बह खामोश व कर
हर यके मानिद बेचारा ईस्त दर फजाये नीलगू आवारा ईस्त
ई जहा सेद अस्त व सैयादेम मा या असीरे रफ्ता अज यादेम मा
जार नालीदम सदाए वर नख्वास्त हमनफस फर्जेद-आदम ए कुजास्त

ये बेचैन ओर पीडामय शख्सियत जो अपनी बेचेनी ओर पीडा की वजह से चाद सूरज की दुनिया मे अपने को अजनबी ओर तनहा महसूस करती है, इनसानो की दुनिया मे भी उसी तरह अजनबी आर तनहा हे। इकबाल की नजर मे उनका हमअस्र (समकालीन) इनसान भी सजीव आर निर्जीव की तरह मुर्दादिल ओर बेसोज हे। इसलिए वो इनसान से भी अपने को उतना ही दूर पाते हे जितना चाद सितारा से

ये कैफियत है मेरी जाने नाशकेबारी
मेरी मिसाल है तिफ़्ले सगीर त हा की
अधेरी रात मे करता है वो सरोद आगाज
सदा को अपनी समझता है गैर की आवाज
हुनूज हमनफसे-दर चमन नमी बीनम
बहार मी रसदो मन गुल तशीतीनम
जहा जबलो मुश्ते खाक मा हमा दिल
चमन खुश अस्त वने दरखुरे नवायम नीस्त

जलन ओर तनहाइ का ये एहसास सीने मे दबाये शायर सुकून और दोस्ती की तलाश म जगह-जगह और गली-गली भटकता फिरता ह। लेकिन ये दोलत न हरमो देर (मंदिर-मस्जिद) म मयस्सर है न मद्रसा-ओ खानकाह मे, मस्जिद भी इससे खाली ह मैकदे भी

न ई जा चश्मके साकी न आ जा हर्फे मुश्ताकी
ज बज्म सूफी-ओ मुल्ला बसे गमनाक भी आयम
सिवाय खाना-ओ मंजिल न दारम
सरेराहम गरीबे हर दयारम
उठाये मद्रसा-ओ खानकाह स गमनाक
न जिदगी, न मुहब्बत, मारिफत न निगाह

इस लगातार ओर अथाह अकेलेपन की वजह से आशावाद और आत्मविश्वास की सबसे बडी अभिव्यक्ति को आहिस्ता-आहिस्ता वैयक्तिक पराजय या नाकामी का गहरा ओर पुरदर्द एहसास होने लगता है और वक्त गुजरने के साथ-साथ उस एहसास की शिद्दत कम होने के बजाय धीरे धीरे बढती जाती है। इस शिकस्त को इकबाल कभी नासाजिए-जमाना (युग की प्रतिकूलता) पर मढते ह

बखाके हिद नवाय हयात बेअसर अस्त
कि मुर्दा जिदा न गर्दद ज नगमए दाऊद
कस न दानिस्त कि मन नीज बहाय दारम
आ मताअम कि शवद दस्त जदे बे अजरा

लेकिन ज्यादातर इस शिकस्त का एहसास इस वजह से होता है कि वो लक्ष्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो सके। न वो अक्ल की गुत्थिया सुलझा सके, न इश्क की आखिरी मंजिल उन्ह हाथ आयी। उनकी बेकरारी का उस हकीकत से मिलन नहीं हो सका जिसका मिलन अह की पूर्णता और सतोष का प्रमाण है। कला की इंतिहा भी खुदी की इस तृष्णा को नहीं मिटा सकी और इसी प्यास के कारण अभिव्यक्ति मे कामयाबी सपूर्ण सफलता का दर्जा हासिल नहीं कर सकी

वही मेरी कमनसीबी वही तेरी बेनियाजी
मेरे काम कुछ न आया ये कमाले ने नवाजी
इसी कशमकश म गुजरी मेरी जिदगी की राते
कभी सोजो साजे रूमी, कभी पेचो-ताबे राजी
थी वो इक दरमादा रहरौ की सदाए दर्दनाक

जिसको आवाजे रहीले-कारवा समझा था मै
परेशा हो के मेरी ख़ाक आख़िर दिल न बन जाये
जो मुश्किल अब है यारब फिर वही मुश्किल न बन जाये

इससे ये न समझना चाहिए कि इस सवेदनात्मक तीव्रता की वजह से इकबाल अपनी जद्दोजहद को उपलब्धि से परे समझते हे या अपने माहौल से मायूस और बेजार हो जाते है। उनके कलाम मे कही कही दु ख ओर उदासी तो हे, मायूसी और निराशा कहीं नहीं है

नही हे नाउम्मीद इक़बाल अपनी किश्ते वीरा से
जरा नम हो तो ये मिट्टी बहुत जरखेज हे साकी

इसलिए इक़बाल को अगर कमनसीबी का गिला हे तो बासुरीवादक होने का गर्व भी हे। उनकी तबीयत मे विनम्रता भी है गर्व और शालीनता भी। इस गर्व आर शालीनता की दो सूरते है। अव्वल उनकी फ़कीरी मे सतुष्टि और सासारिक विरक्ति है। ऐसा गर्व जो अपनी बेसामानी पर नाज करता हो और कम मेलजोल पर ख़ुश है। यह निस्पृहता भी इक़बाल के अतिप्रिय विषयो मे से है

करम ऐ शहे-अरबो-अजम कि खडे हे मुतजिरे-करम
वो गदा कि तूने अता किया है जिन्हे दमागे सिकदरी
फ़कीरे शहर न शायर न ख़र्कापोश इकबाल
गदाए राहनशीनस्तो दिल गनी दारद
ख़्वाएज-मन निगाह दार आबरूए गदाए ख़्वेश
आकि ज जूए-दीगरा पूर न कुनद पियाला रा

उसको दूसरी सूरत मे इस चमत्कार का एहसास है जो शायर की वाक्शक्ति को बख़्शा गया है। ऐसा चमत्कार जिसके सामने बादशाहो की दौलत भी कुछ नही है और बादशाही दबदबा भी सर झुकाये है

दमे मुरा सिफ़ते बादे फ़र्दे-दी करदद
गियारह रासे सिरशकम जू यासमीं करदद
बुलद बाल चुनाएम कि बर सिपहरे वरीं
हजार बार मुरा नूर या कमीं करदद
मेरे गुलू मे है इक नगमए जिब्रील आशोब
सभाल कर जिसे रक्खा हे लामका के लिए
फ़कीरे राह को बख़्शे गये असारे सुल्तानी
बहा मेरी नवा की दोलते परवेज है साकी

जिस तरह इक़बाल की विनम्रता निराशाजनक नहीं उसी तरह उनके गरूर मे भी उद्दडता ओर कठोरता नहीं है। अपनी गरीब क़ौम की आम जनता और ख़ास तोर से नोजवानों को इक़बाल जब भी सबोधित करते हैं तो उनके व्यक्तित्व का एक आर जज्बाती पहलू स्पष्ट होता है। ये जज्बा एक बहुत ही पुरख़ुलूस और स्नेहपूर्ण प्यार का जज्बा है, जो हमारे घमडी शायरों म ज्यादातर नही मिलता है

मेरे नालए नीमशर का नियाज
मेरी खल्वत-अजुमन का गुदाज
उमग मेरी आरजूए मेरी
उमीद मेरी जुस्तजूए मेरी
मेरी फितरत आईनए रोजगार
गजालान-अफकार का मर्गजार
यही कुछ है साकी मताए फकीर
इसी से फकीरी म हू म अमीर
मेरे काफिले म लुटा दे इसे
लुटा दे ठिकाने लगा द इसे

गरज कि इकबाल के कलाम से शायर की जा तस्वीर उभरती है, उसम विरही आशिक की पीडा और हसरत है। बादशाह का सा गरूर, फकीर जैसी विनम्रता, सूफी जैसी निस्पृहता, भाई की सी मुहब्बत और दोस्त की सी घनिष्ठता हे।

उर्दू से अनुवाद गोबिंद प्रसाद
मो 09999428919

फैज अजमद फैज   कुछ तस्वीरे, छविया











भूल के लिए खेद

फैज जन्मशती विशेषाक में चित्रों आर छवियों में भूलवश दो तस्वीरें अहमद फराज की छप गयीं, इसका हमें बेहद अफसोस है।   सपादक



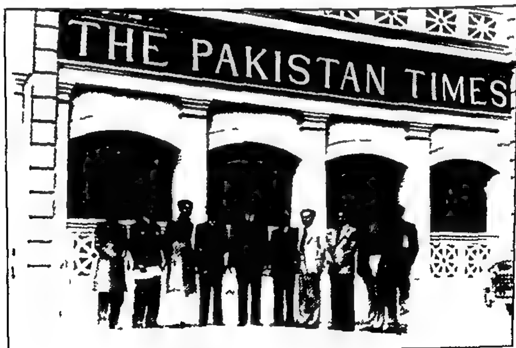







कामकाज के बीच फ़ैज



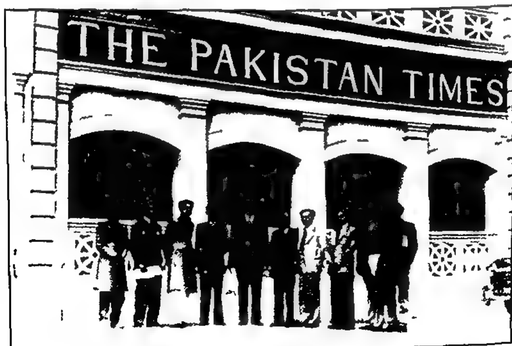






कामकाज के बीच फ़ैज










Faiz Ahmad Faiz with the unit of film *Jago hua savera*
(Picture from *Afkar's Faiz No* - by Aqeel Abbas Jafri)





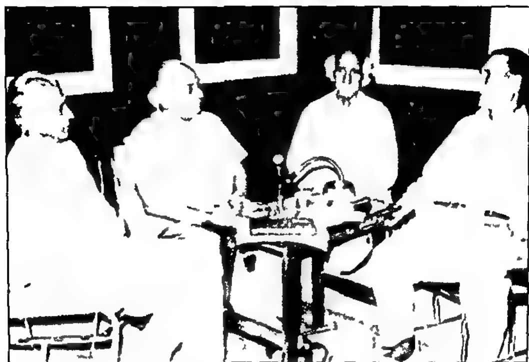
















Dr Sarwar
Syed Sibte Hasan
Faiz Ahmed Faizd

पत्नी एलिस, बेटियो, मित्रो और नाती-नतनियो के साथ



















इब्तिदाइया*

फ़ैज अहमद फैज

यह छोटी सी टिप्पणी फ़ैज की किताब 'दस्ते सबा' (1952) के प्राक्कथन या आमुख के रूप मे प्रकाशित हुई थी। कविता की सृजनात्मक रचना प्रक्रिया के कुछ बुनियादी पहलुओ पर यह सार्थक ढग से रोशनी डालती है। फ़ैज की राय मे जिदगी के फ़न ओर शायरी के फ़न एक साथ एक बिंदु पर अपने-अपने ढग से मिल जाते है चूंकि जिदगी का तक़ाजा ही शायरी का भी तक़ाजा बन जाता है। —स

एक जमाना हुआ जब गालिब ने लिखा था कि जो आख कतरे मे दजला[1] नही देख सकती, वह दीदए-बीना[2] नहीं बच्चो का खेल है। अगर गालिब हमारे समकालीन होते तो गालिबन कोई न कोई आलोचक जरूर पुकार उठता कि गालिब ने बच्चा के खेल की तोहीन की है। या ये कि गालिब अदब म प्रोपगेंडा के हामी मालूम होते हैं। शायर की आख को कतरे म दजला देखने की नसीहत करना सरासर प्रोपगेंडा है। उसकी आख को तो महज हुस्न से गरज है ओर हुस्न अगर कतरे मे दिखायी दे जाये तो वो कतरा दजला का हो या गली की नाली का, शायर को इससे क्या सरोकार। ये दजला देखना दिखाना फिलासफर या सियासतदान का काम होगा, शायर का काम नहीं है।

अगर इन हजरात का कहना सही होता तो ज्ञानी पंडिता का हुनर रहता या जाता, हुनरमदो का काम यकीनन बहुत आसान हो जाता। लेकिन खुशकिस्मती या बदकिस्मती से शायरी का फ़न (या कोई और कला) बच्चा का खेल नही है। इसके लिए तो गालिब का दीदए-बीना भी काफ़ी नहीं, इसलिए काफ़ी नहीं कि शायर या अदीब को कतरे मे दजला देखना ही नहीं दिखाना भी होता है। इसके अलावा अगर गालिब के दजला से जिदगी ओर दुनिया की तमाम चीजा से मतलब लिया जाये तो अदीब खुद भी इसी दजले का एक कतरा है। इसके मानी ये है कि दूसरे अनगिनत कतरो से मिलकर इस दरिया के रुख, इसके बहाव, इसकी शक्लो-सूरत आर इसकी मजिल तय करने की जिम्मेदारी अदीब के सर आन पडती है।

यू कहिए कि शायर का काम महज अपनी आख से देखना ही नहीं बल्कि देखे हुए की साधना अथवा तपस्या करना भी उसका कर्तव्य है। आस-पास के बेचैन कतरो मे जिदगी के दजले का अनुभव उसकी

---

* भूमिका या प्राक्कथन

1 बगदाद म बहने वाली एक नदी।

2 दृश्य शक्ति।

दृष्टि पर है, उसे दूसरो को दिखाना उसकी कलात्मक पेठ पर, उसके बहाव मे दख़लअदाज होना उसके शोक की पुख़्तगी और लहू की गर्मी पर।

और ये तीनो काम लगातार खोज ओर जद्दोजहद चाहते हे।

जिदगी का सिलसिला किसी होज का ठहरा हुआ बद पानी नहीं है, जिसे तमाशाई की एक गलत अदाज निगाह घेर सके। दूर-दराज, ओझल दुश्वारगुजार पहाडियो मे बर्फ पिघलती हे, चश्मे उवलते हे, नदी-नाले पत्थरो को चीरकर, चट्टानो को काटकर आपस मे बगलगीर होते है, और फिर ये पानी कटता-बढता वादियो, जगलो और मेदानो में सिमटता ओर फेलता जाता है। जिस दीदए-बीना ने इनसानी तारीख मे जिदगी के दुखो के ये पडाव नहीं देखे, उसने दजला का क्या देखा है?

फिर शायर की निगाह उन गुजरे हुए ओर हालिया मुकाम तक पहुच भी गयी लेकिन उनकी मजरकशी मे वाणी आर होठो ने मदद न की या अगली मंजिल तक पहुचने के लिए जिस्मो-जा कोशिश पर राजी न हुए तो भी शायर अपने फन मे पूरी तरह कामयाव नहीं है।

गालिवन इतने बडे रूपक को रोजमर्रा, अल्फ़ाज मे बयान करना गैरजरूरी है। मुझे कहना सिर्फ यह था कि इनसानी जिदगी की सामूहिक जद्दोजहद का एहसास, और उस जद्दोजहद मे सामर्थ्य के अनुसार शिरकत, जिदगी का तकाजा ही नही फन का भी तकाजा है।

फन इसी जिदगी का एक हिस्सा और इसी कोशिश का एक पहलू है।

यह तकाजा हमेशा कायम रहता है। इसलिए फ़न के इच्छुक लोगो के लिए इस तपस्या से मुक्ति नही। उसका फन एक स्थायी कोशिश है ओर लगातार तलाश।

इस कोशिश मे कामयाबी या नाकामी तो अपनी-अपनी क़ाबलियत पर है। लेकिन लगातार कोशिश करते रहना किसी तरह मुमकिन भी है ओर जरूरी भी है। ये कुछ पन्ने भी इसी तरह की एक कोशिश है। मुमकिन है कि फन की अहम जिम्मेदारियो को निभाने की कोशिश के दिखावे मे भी नुमाइश या अपनी शेखी बघारने ओर खुदपसदी का एक पहलू निकलता हो। लेकिन कोशिश कैसी भी मामूली क्यो न हो, जिदगी या फन से फरार या शर्मसारी से बढकर है।

सेट्रल जेल, हैदराबाद
16 सितबर 1952 ई

उर्दू से अनुवाद गोबिद प्रसाद
मो 09999428212

खड चार

अदीबों की नज़र में

फेज को अतीत की साहित्यिक परपराओ पर बहुत अधिकार प्राप्त है। वे तलमीहे ओर रम्फ्रे और केफियते जिनसे हमारी क्लासिकी शायरी भरी पडी हे, फैज के यहा जरा ज्यादा भरपूर मानीखेज ढग से अर्थात अर्थपूर्णता के साथ इसलिए नजर आती हे कि वह मीर ओर सोदा, गालिव ओर मोमिन, हाली ओर इकवाल की कायम की हुइ परपराओ का आदर करता है, ओर उसे मालूम हे कि तरकीबो ओर लफ्जो की भी एक तारीख और एक रवायत होती हे ओर हर लफ्ज कितने ही युगो के नाजुक अशो को समेटे हुए हम तक पहुचता है। फेज को लफ्जो की तारीख की चेतना क साथ ही मुस्कुराहटो, आसुओ ओर उमगो की तारीख की भी चेतना हे और यही वजह हे कि फेज की शायरी मे हुस्न ओर मानी का बडा ही हसीन तालमेल है।

—अहमद 'नदीम' कासमी

सच्चाई का नूर—एक

सज्जाद जहीर

1956 म लिखा गया सज्जाद जहीर का यह लेख फ़ैज की शायरी की यथार्थवादी अतर्वस्तु की विवेचना के लिहाज से आज भी सार्थक है उल्लेखनीय है और फ़ैज के सृजनात्मक विकास का सटीक मूल्याकन प्रस्तुत करता है।—स

रावलपिडी साजिश के मुकदमे के दिनो म फैज के साथ म भी सेट्रल जेल (हैदारावाद, सिध) म था। दिसबर 1952 तक हमारे मुकदमे की सुनवाई खत्म हो चुकी थी। हमे रोज रोज स्पेशल डिविजनल ट्रिब्यूनल के इजलास म जाकर मुलजिमा के कठघरे म घटा बैठे रहने आर उस दौरान गवाहो की शहादत, वकीला की जिरह और उनकी बेमतलब कानूनी छानबीन से मुक्ति मिल गयी थी। अभी फैसला नहीं सुनाया गया था और हम उम्मीदो के आलम मे थे। उन्हीं दिनो एक दिन यह सूचना मिली कि *दस्ते सबा* प्रकाशित हो गयी। वैसे हम इसकी तमाम चीज फ़ैज के मुह से सुन चुके थे और उन्हे बार-बार पढ चुके थे। लेकिन इस खबर से हमम से तमाम कैदिया को, जो साहित्य मे रुचि रखते थे, एक गैर मामूली खुशी हुई। जेल के हाकिमो से अनुमति ले कर हमने एक दावत भी कर डाली, जिसमे हम तमाम कैदियो ने मिल कर फैज को *दस्ते सबा* के प्रकाशन पर मुबारकबाद दी। उस मौके पर अन्य बातो के अलावा मैने यह भी कहा था कि बहुत अर्सा गुजर जाने के बाद जब लोग रावलपिडी साजिश के मुकदमे को भूल जायेगे और पाकिस्तान की सन् 1952 की अहम घटनाआ पर नजर डालेगे तो यकीनन इस साल की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना इस छोटी सी किताब का प्रकाशन ही होगा।

बहुत दिनों से कुछ नेकनीयत और बदनीयत लोग उर्दू साहित्य और विशेष रूप से प्रगतिशील परिवेश के पतन की बाते करते है। मै इस नजरिये को सही नहीं समझता। बल्कि मेरा खयाल है कि उर्दू साहित्य का आधुनिक काल प्रगतिशील आदोलन से ही रोशन है। यह दौर तकरीबन 1930 से शुरू होकर अभी तक जारी है। और अगर हम पिछले चार पाच साल को ही ले तो मेरे खयाल मे फ़ैज की *दस्ते सबा*, *जिदानामा*, नदीम काजमी की *शोला-ए-गुल*, सरदार जाफ़री की *पत्थरो की दीवार*, एहतेशाम हुसन की *तनकीद और अमली तनकीद* और मजनू गोरखपुरी की *नकुश वाफकार* आदि किताबे इस दौर म काफ़ी लोकप्रिय हुई। रचनात्मकता का सुर्ख शोला, 'जिसमे गर्मी भी है, हरकत भी , तवानाई (ताकत, शक्ति) भी, विपरीत हालात मे न धीमा होता है और न बुझता है बल्कि जहालत की काली आंधिया इसे और भी भडकाती है और इस तरह सघर्ष और टकराहटो से गुजर कर रचनात्मकता का यह सुर्ख शोला ऐसी ताकत हासिल करता है कि सच्चाई का नूर पहले से भी ज्यादा निखरकर झिलमिलाने लगता है।

जिदानामा की ज्यादातर नज्मे फेज ने मटगोमरी सेट्रल जेल ओर लाहोर सेट्रल जेल मे लिखीं। यानी जुलाई 1952 से मार्च 1955 तक की लिखी हुई चीज इसमे शामिल हे। इसी दोरान हम एक दूसरे से विछड गये। क्योकि हम दोनो को चार-पाच साल की केद बामशक्कत देने के वाद हुक्मरान ने फेसला किया कि हम एक साथ जेल मे न रखे जाये। फेज को पजाव मे मटगोमरी जेल भेजा गया ओर मुझे हैदराबाद सिध से वलूचिस्तान सट्रल जेल। हम एक दूसरे से चिठ्ठी-पत्री भी नहीं कर सकते थे। दूसरे दोस्ता के खतो ओर कुछ उर्दू पत्रिकाओ के जरिये मुझे फैज की पद्रह गजले ओर नज्मे, जो *जमाना* मे लिखी गयी थी, पढने का मोका मिला।

अब जिदगी के हालात मेरे लिए काफ़ी खुशगवार हे ओर म आजाद फ़िजा म सास ले सकता हू। इसके वावजूद जव म उन जहनी, जज्वाती ओर रूहानी हालात का खयाल करता हू जो मुझ पर उस वक्त छायी थीं, जब अपने इस प्यारे दोस्त और हमदम का कलाम पढता था, तो इसका इजहार अव मुश्किल मालूम होता है। शायद वेलाग आलोचना क लिए यह अच्छा भी नही है। यह भी सही हे कि चूंकि हमारे बहुत से अनुभव, जिदगी और अपने वतन को बनाने से जुडे हमारे ख्वाव, हमारा दर्द, हमारी नफरते और हमारी आपबीती एक जैसी थी, इसलिए फेज के उन अशआर का मुझ पर गेरमामूली असर होता था। मेरा दिल कभी खून के आसू रोता कि जो अपनी हुस्नकारी से सवकी जिदगी को इतनी करुणा से सपन्न कर देता ओर अपने नगमो से हम सबकी रगो मे सुरूर की लहरे वहा देता हे, कैद की मुश्किले उसकी जिदगी का हिस्सा क्यो है। तो कभी मेरा जहन उस शायरी म मोजूद ख़यालात की खुशनुमा गुलकारियों (कलात्मकता) से कसबे-शऊर करता (प्रबोधन पाता) जिनम आधुनिक सघर्ष ओर इल्म की रोशनी इसानियत के शरीफ तरीन जज्वात से इस तरह मिल गयी हे जेसे सूरज की किरणो मे गर्मी ओर रोशनी मिली होती है।

फैज की इन नज्मो को मुकम्मल तोर पर देखने से हमे मालूम होता है कि जहा तक उनके सरोकारो, जिनको शायर ने इनमे पेश किया है, का ताल्लुक है, वे तो वही है जो इस जमाने मे तमाम प्रगतिशील इसानियत के सरोकार हे। लेकिन फैज ने इनको इतनी खूबी से अपनाया है कि वे न तो हमारी सभ्यता ओर सस्कृति की बेहतरीन परपराओ से अलग नजर आते है और न शायर की विशिष्ट मधुर गीतात्मक शेली से अलग।

उनमे मोजूद और प्रवहमान प्रगतिशीलता के अदर हमारे वतन के फूलो की खूशबू है। उनके ख़यालात मे उन सचाइया और मकसदो की चमक है जिनसे हमारी कोम के ज्यादातर दिल रोशन हे। अगर सभ्यता के विकास का अर्थ यह हे कि इनसान अपनी मूल प्रकृति और रूहानी पतन से मुक्ति हासिल कर के अपने दिलो मे कोमलता, अपनी दृष्टि म न्यायशीलता, और अपने किरदार में ठहराव ओर बुलदी पैदा कर सके और हमारी जिदगी अपनी पूर्ण ओर विशिष्ट हैसियत से बाहरी ओर अदरूनी तोर पर साफ भी हो, तो फेज की शायरी उन तमाम तहजीबी मकसदो को छू लेने की कोशिश करती है। मेरा ख़याल है कि पाकिस्तान ओर हिदुस्तान मे इसकी लोकप्रियता का सवव यही हे। लिहाजा फैज के तमाम चाहने वाले *नक्शे-फरियादी दस्ते-सबा* ओर *जिदानामा* के दीवाने होने के बाद भी उनसे यह उम्मीद रखते है कि उनकी अव तक की गयी रचनाओ के मुकावले मात्रा और गुणवत्ता दोनो लिहाज से जो रचनाए अभी नहीं हुई है, वे ज्यादा मूल्यवान होगी।

(13 जनवरी 1956)

अनुवाद बलवत कौर
मो 09868892723

सच्चाई का नूर–दो

सज्जाद जहीर

सज्जाद जहीर की यह दूसरी विवेचनात्मक टिप्पणी 1970 में प्रकाशित हुई थी। तब तक फ़ैज के चार कविता सग्रह प्रकाशित हो चुके थे। उनकी सृजनशीलता के भिन्न भिन्न पहलुओं को इसमें उद्घाटित किया गया है। सज्जाद जहीर इस नतीजे पर पहुचते है कि फ़ैज की शायरी मे जो चीज निरतर मिलती है वह है उनकी रूह उनका विशिष्ट व्यक्तित्व, चितन और कल्पना नियोजन का आश्चर्यजनक अछूतापन।—स

फ़ज का लगभग सारा कलाम उनके चार सग्रहो मे है यानी सन् 1970 तक *नक्शे फरियादी, दस्ते सबा, जिदानामा* और *दस्ते-तहे सग*। यही उनके सृजनात्मक जीवन की मुकम्मल दास्तान है। खुशकिस्मती से हममे से बहुतो ने उन्हे बार-बार पढा है। यह उनके अपने शब्दो मे बयान की हुई दास्तान है अस्ल, सच्ची, अदरूनी, दिलचस्प, और बडी खूबसूरत दास्तान। इसके अलावा और इससे बेहतर में या कोई दूसरा शख़्स क्या कह सकता है। म कभी-कभी सोचता हू कि आखिर लोग किसी कलाकार की बाहरी रोजमर्रा की जिदगी, उसकी आदतें और स्वभाव, उसकी समाजी हैसियत, उसकी चाल-ढाल, उसके बात करने या शेर पढने के अदाज, वह कहा पैदा हुआ, उसने कितनी और कहा शिक्षा पायी, घोषित रूप से और खुफ़िया तोर पर कितनी औरतो से उसने मुहब्बत की, उसका राजनीतिक ओर सामाजिक दृष्टिकोण क्या है और इसी क़िस्म की बहुत-सी बाते मालूम करने की कोशिश क्यों करते है? विश्वास किया जाता है कि हम इन बातो के मालूम हो जाने के बाद उस कलाकार के व्यक्तित्व को समझ लेगे और यह भी जान लेगे कि वह कैसा आदमी है। लेकिन दाने और मिट्टी और हवा और पानी ओर सूरज की रौशनी के बारे म सब कुछ मालूम करने के बाद भी हम फूल, उसके रग की मोहकता, उसकी पखडियो की नमी और कोमलता, उसकी उडती हुई महक यानी उसकी सारी लताफत और उसकी सुदरता का अदाजा केसे लगा सकते हे? वह बना तो उन्हीं चीजो के मेल से है जिनका ऊपर जिक्र किया गया हे लेकिन उनसे किसी कदर भिन्न है।

लोग नैतिकता के क्षेत्र मे आम तौर पर एक बात को सख्त नापसद करते है, और वह है कथनी और करनी का परस्पर विरोध, यानी, हम कहें कुछ ओर, दावा करें कुछ ओर, अमल करें कुछ ओर। हमारा देश ऋषियों-मुनियो, औलियाओ-फ़कीरो, भक्तो और महात्माओ का देश हे। लेकिन हमारे ही देश मे 'बगुला भगत' का मुहावरा भी आम है, और हममे से अक्सर ने खुद पिछले तीस-चालीस बरस मे यह माजरा देखा है कि हमारे मुल्क मे एक खास किस्म की टोपी ओर लिबास, जो कभी देशभक्ति और निष्ठावान जीवन और विनम्रता की अलामत समझे जाते थे अब आम हिंदुस्तानियों की नजर से बिल्कुल

उनसे उलट बातो के निशान समझ जाने लगे ह। म समझता हू कि हिंदुस्तान आर पाकिस्तान, बल्कि इन मुल्को के बाहर भी जहा फैज क बारे म लोगा को जानकारी है, फैज की असाधारण लोकप्रियता आर लोगो को उनसे गहरी दिली मुहब्बत का एक कारण उनके काव्य की खूबियो के अलावा यह भी हे कि लोग फेज की जिदगी ओर उनके अमल, उनके दावो ओर उनकी कथनी मे टकराव नही देखते। गो कि, मेरी राय मे, अगर यह टकराव होता भी, तब भी इस वजह से कि कला की दुनिया के विधि विधान प्रचलित नेतिक विधि विधाना से अगर भिन्न नहीं तो दूसरे ही स्तर के होते ह, उनकी काव्यात्मक हसियत मे कोई फर्क न आता।

म मिसाल के तोर पर चद वाकिआत आपको बताना चाहता हू। फेज 9 मार्च 1951 को लाहोर म अपने मकान से अचानक गिरफ्तार कर लिये गये। उस वक्त वे पाकिस्तान के दो सबसे महत्वपूर्ण अखबारो—*पाकिस्तान टाइम्स* ओर *इमरोज*—के सपादक थे। उनके साथ पाकिस्तानी फाज के चीफ आफ द जनरल स्टाफ, जनरल अकबर ख़ान, और कई दूसरे फोजी अफसरान भी बडे ड्रामाई अदाज मे गिरफ्तार कर लिये गये। सारा पाकिस्तान हिल गया। अख़बारो मे रोज ये अफवाहे छपने लगी कि इन सब लोगो को फोजी बगावत की साजिश के जुर्म मे फ़ौरन गोली मार दी जायेगी। म उस वक्त लाहार म था ओर मुदे लोगो ने आकर बताया कि किसी को इसका पता नही हे कि फ़ैज किस जेल मे है। कई हफ्ते उनकी बीवी और बच्चो को भी इसका पता न था। न किसी को फैज से मिलने की इजाजत थी। यह भी सुना गया कि फेज को शारीरिक यातना पहुचायी जा रही है (बाद मे मालूम हुआ कि यह बात गलत थी)। अलबत्ता दूसरी बाते सही थी, यानी वे बिल्कुल अकेले ओर तकलीफदेह हालात मे रख गये थे। कोई किताब (सिवाय *कुरान मजीद* के), अखबार, पत्रिकाए, या कागज, कलम दवात तक, उनको नही दिया गया था। न खुद कुछ लिख सकते थे, न किसी का कोई खत वगैरा पा सकते थे। साराश यह कि परिस्थिति भयावह थी। इन्ही हालात म फेज ने वह अपना मशहूर कित'आ[1] कहा

मता ए-लौह-ओ-कलम छिन गयी तो क्या गम है
कि ख़ूने दिल मे डुबो ली है उगलिया मेने
जबा पे मुहर लगी हे तो क्या कि रख दी है
हरेक हलकए-जजीर म जबा मने

और इस मजमून की गजल भी कही

हम परवरिशे लोह-ओ-कलम करते रहेगे
जो दिल पे गुजरती है रकम करते रहेगे
हा, तल्ख़िए ऐय्याम अभी और बढेगी
हा, अहले सितम मश्के सितम करते रहेगे
मेख़ाना सलामत हे तो हम सुर्खिए मय से
तजईने-दरो बाते हरम करते रहेगे

1 किसी भी एक विषय पर उस सुसबद्ध पदयोजना वाली कविता को कित्आ कहते है जिसम प्रथम शेर के दोना पद गजल की तरह सम-तुकान्त नहीं होते। मगर बाकी शेरा में तुकान्त योजना गजल की ही तरह होनी है।

मेने फेज का यह कलाम खुद उनकी जबानी हैदराबाद-सिध जेल मे सुना, इसलिए कि उनकी गिरफ्तारी क तक़रीबन तीन महीने के बाद म भी गिरफ्तार कर लिया गया था ओर रावलपिडी साजिश केस के कुल केदी एक स्पेशल ट्रेन मे लाहौर से हैदराबाद-सिध पहुचाये गये। यह स्पेशल ट्रेन ओर उसका सफर भी अजीबोगरीब, ओर दरअसल स्पेशल था। हम तेरह केदी एक ही ट्रेन के अलग-अलग डिब्बो मे थे। हरेक केदी दो स्टेनगन से लैस सिपाहियो आर एक इस्पेक्टर पुलिस के साथ फर्स्ट क्लास के एक डिब्बे मे हिरासत मे था। हम एक-दूसरे से मिल नही सकते थे, और न हमको यह पता था कि दूसरे डिब्बे म कोन है। लेकिन यह मोका इन बातो के बयान करने का नही, और न अब इसका कोई खास महत्व ह। जेल के अदर हमारी मुलाकात हुई, ओर हमने अपनी आपबीतिया सुनाने के वाद फैज से पूछा कि शायरी का क्या हाल है, तब उन्होने हमको अपनी ताजा चीजे सुनायी। कागज-क़लम न होने की वजह से उस वक्त तक, तीन महीने मे, क्या हुआ, कलाम दर-अस्ल लौहे-दिल[2] पर ही लिखा हुआ था। हैदराबाद म जब हमे क़लम आर कागज रखन की इजाजत मिली, तब यह कलाम वयाज[3] मे कलमबद किया गया।

हेदरावाद सिध के जेलख़ाने मे हम तक़रीवन दो साल रहे। एक स्पेशल ट्रिब्यूनल[4] जो जेल के अदर ही वेठता था, उसके सामने हमको रोजाना पेश होना पडता था ओर हम सरकारी वकील की बहस और जिरह और सफ़ाई के वकीलो का जवाब, सैकडो गवाहो की गवाहिया—यह सब सुनते रहते थे। आम तार पर ये चद घटे निहायत बोरिंग होते थे। दूसरी या आखिरी पक्ति के बाये सिरे पर मे और फेज पास पास बेठे कानाफूसी करते रहते ओर सामने पडी हुई कापी पर कभी कार्टून बनाते, कभी गवाहियो पर अपने नोट लेते। हम 'दडसहिता पाकिस्तान' की अनगिनत धाराओ के तहत मुलजिम करार दिये गये थे, जिनमे सबसे सगीन, फौजी बगावत फैलाने का अभियोग था, जिसकी सजा मौत थी। हमे उस वक्त हसी आती थी जब हमारे खिलाफ झूठी गवाहिया पेश होती थी। इन मौक़ा पर कभी-कभी हम या हमारे साथी वेसाख़्ता हस देते थे जो अदालत की ताहीन का पर्याय समझा जाता था। इस पर स्पेशल ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष जस्टिस अब्दुर्रहमान, जिनको हाई ब्लड प्रेशर की शिकायत थी, गुस्से से बिल्कुल लाल-पीले हो जाते (वे बहुत गोरे चिट्टे थे) ओर जोर-जोर से चिल्लाकर हमको खामोश रहने का आदेश देते, और अगर इस पर भी किसी को और ज्यादा हसी आती, तो वे धमकी देते।

अपनी किस्मत का फ़ैसला करने वाले जज को नाराज कर लेना और भडकाना कोई दूरदर्शिता नहीं थी, लेकिन आख़िर हम भी मजबूर थे।

उन दिनो हम लोग हर पद्रह दिन पर छुट्टी के दिन एक 'तरही-मुशायरा'[5] करते थे, जिसके लिए शेर कहना हर केदी के लिए लाजिमी था। दरअसल यह फेज के खिलाफ एक षड्यन्त्र था, ताकि उनको शेर लिखने पर मजबूर किया जाये। इन्हीं हालात म फेज ने यह गजल लिखी

तुम आये हो न शबे इतिजार गुजरी है
तलाश मे है सहर बार बार गुजरी है

---

2 हृदय की पाटी।

3 शेरो के लिखने की कापी नोटबुक।

4 अदालत

5 किसी नियत छद और तुक योजना ('तरह) के अनुसार कही गयी गजलों का मुशायरा 'तरही मुशायरा' कहलाता है।

आर आप सब भी समझ सकते हैं कि इस मशहूर शेर को प्रेरित करनेवाले कौन से हालात थे

वो बात सारे फसाने में जिसका जिक्र न था
वो बात उनको बहुत नागवार गुजरी है।

उन्ही दिनो एक दिन हमने अखबारो म यह खबर पढ़ी कि अनारकली म एक ख़ूबसूरत लड़की, जिसके कधो पर बालो की घटा छायी थी, हसती बोलती गुजर रही थी। एक मोलाना किसी दुकान पर बेठे थे। उनको यह मजर देखकर खुश होने के बजाय सख़्त गुस्सा आया, और इस बेपर्दगी म उन्हे इस्लाम की ताहीन नजर आयी। चुनाचे वे एक कैची लिये हुए अपनी जगह स कूदे ओर लपककर उस बेचारी लडकी की जुल्फे काट दी। खेर, इस अनधिकार हस्तक्षेप पर मोलाना पकडे गये और उनको सजा हुई। मालूम होता है, फेज इस घटना से बहुत प्रभावित हुए आर उन्होने अपनी गजल मे यह शेर लिखा

दिलबरी ठहरी जबान खल्क खुलवाने [6] का नाम
अब नहीं लेते परीरू जुल्फ़ लहराने का नाम

जाहिर है, इन हालात म सबसे ज्यादा रूहानी तकलीफ हम उस वक्त होती थी जब हम पर गद्दारी का, स्वदेश विरोध का इल्जाम लगाया जाता था। इसकी सफ़ाई हम उस अदालत म क्या पेश करते जो बनायी ही इसलिए गयी थी कि विशेष कानून का सहारा लेकर (रावलपिडी साजिश के मुकदमे के लिए एक ख़ास कानून बनाया गया था, जिसकी एक धारा यह भी थी कि यह मुकदमा गुप्त रूप से चलाया जायेगा, ओर इसकी कार्रवाई के किसी हिस्से को भी प्रकाश म लाना स्वय जुर्म होगा) तमाम अभियुक्तो को किसी-न किसी प्रकार दडित किया जाये। लेकिन फेज चुप नहीं बेठे ओर अपनी अनेक कविताओ, गजलो, स्फुट रचनाओ (कित्'ओं) आर छिट पुट अश्'आर म उन्होने अपनी ऐसी बेमिसाल सफाई पेश की कि उन पर अभियोग लगानेवाले खुद ही मुजरिम नजर आने लगे। इस किस्म की नज़्मो म 'दो इश्क' ओर 'निसार मे तेरी गलियो पे' ख़ास तोर पर इन भावनाओ को व्यक्त करती हे। 'दो इश्क' मे फेज न नये ओर अछूते रूपको का प्रयोग किया है

तनहाई मे क्या-क्या न तुझे याद किया हे
क्या क्या न दिले जार ने ढूढ़ी ह पनाहे
आखो से लगाया है कभी दस्ते सबा[7] को
डाली हे कभी गर्दने महताब म[8] बाहे

तनहाई की भावनाओ का वर्णन करना हर कवि अपना पदाइशी हक समझता हे ओर आजकल कतिपय कवियो और चितको ने तो इसको बाकायदा दर्शन का रूप दे दिया है, ओर वे अपने तथाकथित एकाकीपन को इतनी अहमियत देते ह जितना जोर एक ईश्वर को माननेवाले मुसलमान अल्लाहत्'आला के एकाकी ओर अद्वितीय होने को देते हे। लेकिन आप जरा फ़ेज की इस दर्दनाक लेकिन हसीन तनहाई की कल्पना कीजिए जिसमे दस्ते *सबा* की नर्मी और ठडक प्रेयसी के हाथो की याद दिलाती है,

---

6 दुनिया का मुह खुलवाने
7 ठडी हवाओ के हाथ (को)
8 चद्रमा की गर्दन म

और चाद की वक्रता को देखकर प्रिया की अनुपस्थिति मे, उसके गले मे बाहे डाल देने को जी चाहता है।

मानव स्वतन्त्रता, मानवीय मूल्यो की गरिमा, प्रेमपूर्ण सहज मानवीय सबध भद्र और पवित्र आचरण, मानवो पर होनेवाले हर प्रकार के जुल्म, शोषण, जोर-जबरदस्ती ओर तानाशाही की समाप्ति का लक्ष्य ओर इस लक्ष्य और उच्चादर्श की प्राप्ति के लिए ऐसी साधना ओर सघर्ष—कोई कायिक, मानसिक, आत्मिक रूप से एकाग्र समर्पित प्रेमी ही करता है। फैज के श्रेष्ठ काव्य की विषयवस्तु यही हे। उनका लहजा कभी नर्म, मुलायम ओर धीमा, कभी कठोर, तेज और द्रुत प्रवाहमय। उनके प्रतीक ओर व्यजनाए कभी सादा, कभी पेचीदा, बात मे कभी सीधा स्पष्ट ओर ओजस्वी सबोधन, कभी तह-ब-तह हजारो पर्दो आर नकाबो म ढका छुपा। मसलन देखिए इस 'कित'ए' का आहग (स्वरनाद) कितना ओजस्वी आर गूजता हुआ है

हमार दम स ह कू ए-जुनू म अब भी खजिल
अबा ए शेख-ओ कबा ए अमीर-ओ ताजे-शही
हमी से सुन्नते मन्सूर-ओ-कैस जिदा है
हमी से बाकी है गुलदामनी-ओ कजकुलही[9]

और कभी इस बात को आहिस्ता से मुस्कराकर यो कह देते ह

इज्जे-अहले सितम की बात करो
इश्क के दम-कदम की बात करो[10]
बामे-सर्वत के ख़ुशनशीनो से
अजमते चश्मे नम की बात करो[11]
जान जायग जाननेवाले[12]
फ़ैज फ़रहाद्-ओ-जम की बात करो।

फ़ैज की सहल ओर सादा शायरी की बात आयी तो एक दिलचस्प वाकिआ आर सुन लीजिए। हैदराबाद-सिध के जेल मे हम पर पहरा देने के लिए जो वार्ड मुकर्रर थे उनम एक साहब थे जिनको सब लोग नवाब साहब कहकर पुकारते थे। ये हजरत गोरे चिट्टे ओर काफ़ी मोटे-ताजे थे। हर वक्त पान

9 भावार्थ अपना लबा धार्मिक चुगा पहने हुए शैख़ शानदार लिबासा में शासकगण और मुकुट छत्रधारी सम्राट हमारी जुनून की गलियो म हतप्रभ होकर लज्जा से भर जाते है। आत्मबलिदानी सत मसूर आर महान प्रमी मजनू (कैस) के आत्मोत्सर्ग का धर्म हमीं से जीवित है। इसी प्रकार अपने दामन को फूलदार (यानी बलिदानी रक्त से रंजित) करने और कुलाह टेढी रखने (यानी विद्रोह की आन लेकर जीने) की परपरा भी हमी से कायम है।

10 चर्चा करो अत्याचरियो की विनम्रता ओर दीनता की। प्रेम के साहसिक चरण की चर्चा करो।

11 ऐश्वर्य की उत्तुग अट्टालिकाओ मे प्रसन्न आवास करनेवाले के आगे अश्रुपूर्ण आखा की गौरव-गरिमा का प्रसग उठाओ।

12 समझने वाले समझ ही जायेगे फैज जरा फ़रहाद जसे मजदूर ओर जमशेद जैसे बादशाह की चचा ना करो। (फ़रहाद का प्रेम आज भी अमर है और जमशेद की बादशाहत का नामोनिशान तक नहा।)

खाये रहते थे, और सिधी आर पजावी पहरेदारा के दरमियान वैसी ही वर्दी मे होने के यावजूद अपनी साफ़-शुस्ता (प्राजल) उर्दू आर उसके लहजे की वजह से फ़ौरन पहचाने जा सकते थे। दर्याफ़्त करने पर उन्हाने वताया कि वह लखनऊ के ह, और शीशमहल क नवावा के ख़ानदान के। वैसे, पाकिस्तान पहुचकर, यू पी ओर हेदरावाद-दकन से आये हुए शरणार्थिया म स वहुत-से लोग नवाव वन गये है। वहरहाल इन साहव को जव मालूम हुआ कि 'फ़ैज' शायर है और मै लखनऊ के एक जाने-वूझ शीआ ख़ानदान का हू, तो हम दोनो मे ख़ास दिलचस्पी लेने लग। हम भी वार्डो की तलाश म रहते थे, जिनकी हमदर्दी की भावना से लाभ उठाकर हम उनसे छोटे-मोट गैर-कानूनी काम ले सक (जिसे जल की परिभाषा मे 'तिगडम' कहते हे)। जाहिर हे नवाव साहव शायर भी थे। अपनी हलकी-फुलकी गजल फ़ेज को सुनाते, ओर फैज से कलाम सुनाने की फरमाइश करते। लेकिन फ़ैज का कलाम सुनकर थोडी-सी रस्मी तारीफ़ करके चुप साध लेते। एक दिन उन्होने चुपके से मुझसे कहा 'हैदरावाद मे एक मुशायरा होने वाला है। फ़ैज साहव जरा अच्छी सी गजल लिख द (यानी वैसी नहीं जेसी फ़ेज आम तौर से कहते हे जो नवाव साहव को ज्यादा पसद नहीं आती थी) तो वडा अच्छा हो, और नवाव साहव उसे मुशायरे म पढ देंगे।' मैने फ़ेज को नवाव साहव का पेगाम पहुचा दिया, और यह भी कह दिया कि इस लखनऊ वाले पर तुम्हारे कलाम का कोई रोव नहीं पडा है। अगर उसे खुश रखना है तो उसके मतलव की कोई चीज कहो। फ़ेज बोले—'भाई, तुम लखनऊवालो को खुश करना मेरे लिए मुश्किल ह। आख़िर म सियालकोट का पजावी हू, लेकिन चलो, कोशिश करते ह। अलवत्ता नवाव साहव से कह दो कि इसके एवज म हमारे लिए एक शराव की वोतल का इतजाम करेगे।'[13]

न गुल खिले है, न उनसे मिले, न मय पी है
अजीव रग मे अवके वहार गुजरी है

एक दिन मे फ़ैज ने नवाव साहव की फरमाइश पूरी कर दी और यह गजल लिखी

तेरी सूरत जो दिलनशीं की है[14]
आशना[15] शक्ल हर हसीं की है

इस गजल मे नवाव साहव की पसद के ये दो शेर थे

शैख से बेहिरास[16] मिलते है
हमने तौबा अभी नहीं की है
जिक्रे-जन्नत वयाने हूर-ओ-कुसूर[17]
वात गोया यही कहीं की है

13 वोतल के दाम फ़ैज ने अदा किये थे।
14 दिल मे वसायी है।
15 परिचत
16 वेझिझक
17 कुसूर—कस्र का वहुवचन अर्थात् महलात।

नवाब साहब भी वादे के पक्के निकले। एक दिन शाम को चुपके से 'जिन' की एक बोतल जेब मे रख लाये, और मेरे हवाले कर दी। गर्मियो के दिन थे। हमने बडे तकल्लुफ से उसे शाम के वक्त शरबत मे मिलाकर पिया। लेकिन उस दिन के बाद फिर जेल मे पीने से तोबा कर ली। शराब दरअस्ल आजादी और खुशदिली के माहोल मे पीने की चीज है। दिल कही भटके ओर जेलखाना, और अनगिनत अभावा के आलम में इसके असर से दिल की ख़राबी ओर बढ जाती हे।

इन हिकायतो और लतीफो की तो पूरी किताब लिखी जा सकती है, और आप शायद उन्हे सुनकर बोर भी न हो। लेकिन मेरी राय मे फैज की शायरी से लुत्फ़ उठाने के लिए उसको इन वाकिआत और परिस्थितियो ओर प्रेरणास्रोतो से जोडने की कोई ख़ास जरूरत नहीं है—हालांकि इन्होने रचनाप्रक्रिया मे सहायता दी है, और यह कि उसका सृजन एक ख़ास सरजमीन मे पैवस्त होने के बावजूद, उससे अलग, भिन्न, और विशिष्ट हे (भले ही इस शेरो-शायरी के प्रेरक तत्वो के रूप मे वे उसका आवश्यक अश हों)। लेकिन फेज की सृजनात्मक प्रतिभा से गुजरने के बाद उनका महत्व आंशिक मात्र और दूसरे दर्जे का होकर रह जाता है, और जो चीज हमको मिलती है वह फैज की रूह, उनका विशिष्ट व्यक्तित्व, ओर चितन और कल्पना-नियोजन का आश्चर्यजनक अछूतापन, और कला का अद्वितीय कौशल, हुस्न और लताफ़त ओर पाकीजगी ओर पावन मूल्यो की एक अनत खोज जैसे बहार के मोसम मे तरह-तरह के फूलों से रौशन किसी बाग मे मिलीजुली अनजानी महक से भरी मादक हवाओं क हलके झाको मे हाती है। आप उसे महसूस कर सकते है, उनको पकडना आर पहचानना मुश्किल हे, इसलिए कि उनकी जैसी ओर कोई दूसरी चीज नहीं, और न ही कला के उत्कृष्ट रूप-जैसी है।

असलियत का राज़ खोलने वाली शायरी

शमशेरबहादुर सिह
मुगीसुद्दीन फरीदी

1979 मे फैज नामक एक गद्य पद्य सग्रह का सपादन शमशेर जी ओर फरीदी साहब ने किया था। यह सग्रह राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ था। उस सग्रह की जो भूमिका दोना सपादका ने लिखी थी उसे हम यहा पुन प्रकाशित कर रहे है। इस भूमिका मे अनेक प्रश्नो पर महत्वपूण टिप्पणिया ह अत फेज जन्मशती पर तैयार किये गये नया पथ के इस विशेपाक म इसका होना बहुत ही अनिवार्य प्रतीत होता है।—स

सन् 1978 म फेज का स्वागत हिदुस्तान के हर बडे शहर म कुछ ऐसे हुआ जैसे बरातिया के दिला म बसे हुए किसी हसीन दूल्हे का होता है।

यह हुस्न फेज की शायरी के अदर हमारे उपमहाद्वीप के उस इनसान का है जिसके जिस्म पर हजारा जख़्म ह, जो सितारो की तरह चमक रहे ह। उन्ही जख्मो का सेहरा पहने हुए इस 'दूल्हे' की बारात मे हिद-ओ पाक का हर वह नागरिक शामिल ह जो आज इनसान बनने को तरस गया हे। क्योकि आज सच पूछिए तो ऐसे इनसान के सिर्फ दूर दराज सपने ही उसके पास रह गये ह ओर कुछ नही।

फेज उस हिदुस्तान की यादगार भी ह जिसने अग्रेजा की सियासत आर सगीनो के आगे अपना सीना खोला था। उसी साम्राज्यवादी सियासत ने हमार विशाल सीने क दो टुकडे कर दिये थे आर आज वो दोनो चुपचाप अलग-अलग तडप रहे ह। क्या वो सचमुच कभी मिल भी सकते ह, एक भी हो सकते ह भूगोल के मिलन मे नही, दिला के एक होकर मिलने मे?

अकेले फेज के यहा ये दोना एक होकर, मिले हुए, हमारे सामने आते है। फेज की शायरी से दोना को गहरा सुकून मिलता है।

फज वहा ह जहा असलियत बोलती हे, भाषा की हदो से ऊपर उठकर बोलती हे, आर अपने लहजा के नर्म ओर गर्म तेवर से हमारे आज की जिदगी के बहुत से राज खोलती चलती हे वो राज जिनसे रूह तो वाकिफ हे मगर जिन पर बूर्जुआ आर सामती सियासत ओर तानाशाही ने शोषण ओर अत्याचार के धुआधार पर्दे डाल रखे ह, अगर्चे वह बहुत-कुछ ढक नही भी पा रहे ह। हा इसी मच पर फेज की शायरी अपनी आवाज बुलद करती ह।

फेज की शायरी ऐसे जिदा इशारा का पर्याय हे जो दद की चीख आर कराह को कसकर अदर ही-अदर दबाय आर छुपाय हुए है मगर जो दरअसल दबाय दबते ह न छुपाये छुपते।

फज की शायरी एक ऐसा सगीत हे जा मालूम तो होता है रूमानी मगर अस्लन् इज्तिहादी हे—अपन

रूमानी तेवर मे भी खालिसन् इन्किलावी, यानी सघर्षो म उसका जन्म हुआ है। रूमान के सही माने आर मफहूम—उनके सही सार्थक सदर्भ—शायद पहली वार फैज के यहा ही इतने आधुनिक रूप म, इतने साफ-साफ समझ म आने लगते हे जितने कि पहले कम ही समझ म आये हागे। जोश ओर मजाज का कलाम इनके साथ रखकर देख सकते है। (*'मखदूम' का मामला कुछ दूसरा है)*

फ़ेज ने इक़वाल की गर्म ओजस्वी कल्पना को अपने खून की आच नर्मा कर व्यापक अवाम के दिलो मे रोशन किया हे, ओर इस रग आर लय मे किया हे कि अपने सुख-दुख के इतिहास के फलसफे को वह व्यापक अवाम पहले से कुछ जियादा खुले अदाज मे समझन लगा।

इस समझ मे अगर किसी सियासत को दख़्ल था तो वह गहरी इनसानी सच्चाइयो मे, ओर पावन कुर्बानियो की सच्चाइ थी। फ़ेज के यहा व्यक्तिगत प्रेम के महत् मूल्य का अर्थ भी इसी सच्चाई मे झलकता ह। फैज का पूरा कलाम इसका प्रमाण हे।

नववर 1979

यह चयन

फ़ेज की सन् '71-72 की ख़ासी-कुछ कविताआ से हिदी कविता प्रेमी जगत् परिचित हे। कोई छह सात साल पहले 'शीशो का मसीहा' नाम से एक सकलन राजकमल ने ही प्रकाशित किया था जिसम उस समय तक की प्राय सभी कविताए सगृहीत थी। तव से इस बीच फैज के दो ओर सग्रह प्रकाशित हो चुके हे, जो नागरी लिपि मे अभी तक नही आये थे यानी *सरे-वादिए-सीना* ओर *शामे शहरे-यारा*। पिछले साल जब फेज भारत आये ओर जगह-जगह उनका हार्दिक स्वागत हुआ तो यह जरूरत महसूस हुई कि नागरी लिपि म उनकी कविताओ का एक अप-टु-डेट सकलन तेयार किया जाये। यही नही, बल्कि फेज के दूसरे रचनात्मक पहलू यानी उनके गद्य को भी हिदी मे प्रस्तुत किया जाये। फेज एक महान कवि ही नहीं, विचारोत्तेजक निवधकार भी हैं। सस्कृति, साहित्य ओर राजनीति के अतर्सवधो का उन्होंने मार्मिक विश्लेपण किया है। युद्ध ओर शाति की समस्याओ पर गभीरता से विचार किया हे। थोडे शब्दो मे वह वहुत-कुछ कह सकने की क्षमता रखते ह जेसा कि प्रस्तुत सकलन मे किये गये चयन से अनेक स्थलो पर प्रकट होगा। उन्हाने जेल से जो पत्र अपनी पत्नी के नाम लिखे, वे भी एक यादगार चीज ह। अपने मित्रा को लिखे उनके पत्र भी दिलचस्पी से खाली नही। गभीर पत्रकारिता ओर स्तरीय सपादन (जेसे *पाकिस्तान टाइम्स* ओर *इमरोज* का) उन्हे पहले ही व्यापक प्रसिद्धि प्रदान कर चुका था, (हाल ही मे बगदाद [ईराक], मे उन्ह अफ्रो एशियाई लेखक सघ के अतर्राष्ट्रीय मुखपत्र 'लोटस' के सपादन का भार सौंपा गया हे।) उन्होने अपनी प्रतिभा का योगदान रेडियो, टेलीविजन, आर फिल्म को भी दिया, चार सफल मचीय नाटक भी लिख। राष्ट्रीय कला परिषद की स्थापना की, इदारए यादगारे-गालिव क़ायम किया। अनेकानेक दशा की यात्रा की आर जहा गये विश्ववधुत्व की भावना मजवूत की, आर युद्ध के विरोध ओर शाति क समर्थन क पक्ष म अपनी प्रत्यक गतिविधि से वल दिया।

ऐसी वहुमुखी प्रतिभा का आंशिक प्रतिनिधित्व ही इस सकलन म सभव हो सका है।

पद्य भाग म अधिक से अधिक कविताए हमने फ़ेज के नये सकलनो से देनी चाही ह। तथापि 'शीशो का मसीहा की प्राय सभी विशिष्ट और प्रसिद्ध कविताए आर गजले हमने प्रस्तुत प्रतिनिधि सकलन मे शामिल की है। अस्तु, हम इसके योग्य चयनकर्ता ओर सपादक, प्रसिद्ध साहित्यकार जनाव अली

सरदार जाफरी और डा मुल्कराज आनद के ऋणी ह, इसलिए और भी कि उनकी दी हुई पाद टिप्पणिया से हमने पूरा-पूरा लाभ उठाया है। जहा-जहा उन्होने मेरे और तेरे को मिरे और तिरे किया है–'म ' और 'ते ' मे पयुक्त ह्रस्व 'ए' को स्पष्ट करने के लिए (ताकि पद को सही उर्दू छद मे पढा जा सके) –वहा हमने उनका अनुसरण किया है, यद्यपि कुछ हिंदी पाठको को आरभ मे यह कुछ अटपटा-सा लगता है। हा, फारसी शब्दो के अन्त्य 'ह' को हमने विसर्ग ( ) से व्यक्त करने के बजाय 'आ' की मात्रा (ा) से व्यक्त किया है जो हमे सामान्य हिंदुस्तानी उच्चारण के अधिक निकट लगा। जैसे 'पियाल ' के बजाय 'पियाला', 'नाम ' के बजाय 'नामा'।

गद्य भाग के अनुवादो मे पूरी-पूरी सतर्कता बरती गयी है कि मूल की शैली ज्यो-की-त्यो रहे और हिंदी के अपने स्वाभाविक प्रवाह के अतर्गत ऐसे मूल उर्दू शब्द भी बरकरार रहे जो बहुत अपरिचित स न हा, ताकि पाठक मूल के निकट से निकट अपने को महसूस करता चले। हा, गभीर सैद्धांतिक साहित्यिक निबधो के अनुवाद से हिंदी सुष्ठ सस्कृतनिष्ठ रूप को अपनाना अनिवार्य-सा जान पडा।

परंपरागत ज़बान मे एक जुदा अंदाज का जादू

मुहम्मद अली सिद्दीकी

उर्दू अदब मे एक तेजस्वी समालोचक की हैसियत से इस आलेख के लेखक का विशेष रूप से आदर प्राप्त है। फ़ैज की शायरी की जबान, बिंब, प्रतीक रूपक आदि पर अक्सर विवादपूर्ण दृष्टिकोण की चर्चा की जाती है। उर्दू काव्यभाषा की परपरा में फ़ैज की नयी उद्भावनाओ और समकालीन यथार्थ को व्यंजित करने वाली कथन शैली पर मुहम्मद अली सिद्दीकी का एक खास नजरिया है। इस समय पाकिस्तान की उर्दू साहित्य समीक्षा मे प्रगतिशील मानदंडों के ये प्रामाणिक व्याख्याता माने जाते है। यह लेख उनके एक निबध सग्रह 'मजामीन' से साभार लिया गया है।—स

फ़ैज निर्विवाद रूप से फ़ैज हे— उन्हाने परपरागत काव्य भाषा से अपने धीमे स्वभाव, सुदर सास्कृतिक रचाव और तार्किक खोज पर आधारित वैज्ञानिक विश्वास के लिए जिस ढग से बिल्कुल जुदा अदाज से काम लिया है वह न केवल उनकी कलात्मक श्रेष्ठता का प्रमाण ह बल्कि उस सत्य की घोषणा भी है कि उन्होंने परपरागत भाषा पर उठायी जाने वाली सामूहिक आपत्तिया को निराधार और अनावश्यक घोषित कर दिया है। फ़ैज परपरागत काव्य भाषा से सबध विच्छेद किये बिना एक बड़े रचनाकार के रूप में उभरे। जबकि आधुनिक युग के कई बडे रचनाकार चली आ रही काव्य शैली को निरस्त किये बिना या उस में दरार डाले बिना अपनी विशेष काव्य शैली आविष्कृत न कर सके। ये फ़ैज [illegible] अपने [illegible] को हाफिज ओर उर्फ़ी के चिरागो स जलाते ओर मसहफ़ी की हसीं फजा में [illegible] हुए सौदा और गालिब की ओर बढते है।

मसहफ़ी फ़ैज के सर्वप्रिय कवियो में स है। व मसहफ़ी और [illegible] तक डूबे हुए है कि गालिब स सभी प्रकार के लगाव के बावजूद फ़ैज [illegible] से बचकर निकल जाते है। फ़ैज ने प्रियतम को सच्चा और अच्छा [illegible] अपने [illegible] पर अडिग रहते हुए मसहफ़ी ओर सौदा के रगो से एक तीसरा [illegible] है। उन्होने अपने जाम में मुहब्बत की पवित्र शराब के साथ [illegible] प्रस्तुत किया है कि वे परपरागत काव्य भाषा की [illegible] विशेष जादू से चमत्कृत करते हुए दिखायी देते है। [illegible] अतर्राष्ट्रीय पटल पर सक्रिय समान विचार [illegible] उर्दू कविता के इतिहास का एक उज्ज्वल [illegible] है तो एसी स्थिति मे व बडी हद तक [illegible] है।

[illegible]

फेज ने सूफियाना और सामाजिक ज्ञान को प्राय विस्मृत नही किया हे लेकिन शायद ही उर्दू के किसी ओर शायर ने स्पष्ट रूप से धार्मिक उपक्रमो से इस हद तक क्रातिकारी काम लिया हो जिस हद तक फेज ने। उनके जीवन काल मे पारपरिक काव्य पद्धति के विरुद्ध कई बडे और महत्वपूर्ण विद्रोह हुए लेकिन वे बहुत हद तक केवल इस कारण निष्प्रभावी हो गये कि फ़ेज जैसे महान रचनाकार ने परपरागत भाषा की कमियो के खिलाफ सभी तर्क निरस्त कर दिये। ऐसा नही था कि ये आपत्तिया पूरी तरह से गलत या अनावयक थी। लेकिन फेज ने उन आपत्तिया को जिस ढग से प्रभावहीन बना दिया इसके कारण फ़ेज के समानधर्मा और उनके अनुयायियो के लिए रास्ते अपने आप आसान हो गये। वर्तमान परिस्थिति फैज अहमद फेज के लिए बहुत अनुकूल रही लेकिन फेज अहमद फेज की अप्रत्याशित लोकप्रियता ने फेज के अध्ययन के रास्ते मे कई रुकावटे खडी कर दी है। चूकि कई साहित्यिक पडित इस भ्रम म है कि आने वाले कुछ वर्षो मे साहित्यिक भाषा बदल जायेगी या इस हद तक बदल जायेगी कि शायद आन वाली पीढी ही फैज की गिनती क्लासिक कवि के रूप मे करने लगे। फेज की काव्य पद्धति पर आज भी वे सभी आरोप लगा रहे हे जिन्हे फेज जेसे शायर के खिलाफ़ प्रतिक्रिया ही माना जा सकता है। यहा यह प्रश्न उठता हे कि क्या फैज कोई वर्चस्व की लडाई लड रहे ह? क्या उनकी कविता की भाषा के विरुद्ध आज से बीस साल पहले भी नयी कविता के दावेदारो ने आसमान सिर पर नही उठा लिया था, और क्या आज भी गद्यमय कविता के कई समर्थक फैज की काव्य भाषा को पारपरिक घोषित कर उसे आधुनिक विचारो की अभिव्यक्ति के लिए अपयाप्त घोषित नहीं कर रहे है?

फेज की शेली निश्चित रूप से दो प्रकार के दृष्टिकोण को जन्म देती हे। उसे स्वीकार किया जाये या फिर उसे अस्वीकार किया जाये। लेकिन यह सभव नही हे कि फेज की काव्य शैली को पसद करके उससे दूर रहा जाय। आज हमारे बीच ऐसे बहुत से कवि हे जिन्होंने इस असफल पयास मे अपना भविष्य गवा दिया और ऐसे महानुभाव भी हमारे बीच उपस्थित है जिन्होने फ़ेज की दार्शनिक भाषा को भी अनसुना कर दिया और विरोधी राय की आतिशवाजी की सहायता से थोडी सी रौशनी पेदा करके अपने उद्देश्य की पूर्ति कर गये।

फैज की काव्य भाषा के विषय मे पहली बात तो यह हे कि यह हमारी काव्य परपरा की निरतरता मे है। स्पष्ट है कि विद्रोह परपरा ही के किसी न किसी मिलन बिदु से फूटता है। फेज अपने विरोधियो के हर वार से इस आधार पर बचते रहे और सुरक्षित होते चले गये कि वह अजनबी भाषाओ के अनमोल रूपकों और कुछ अनोखे काव्यानुभव को उर्दू के भडार म कुछ इस ढग से रचनात्मक ईमानदारी के साथ शामिल करते हे कि ये गढे हुए शब्द फेज की रचना मे शामिल होते ही फैज की अपनी खोज नजर आने लगते है। जबकि फेज से कमतर रचनाकारो के यहा इस ढग का अधिग्रहण चोरी मालूम पडता है और उनकी पंक्तिया चीख-चीख कर जताती हे कि यही कही हमारे बीच 'बाहरी तत्व' छिपा बेठा है। फ़ैज की काव्य शैली न केवल परपरा के सुदरतम दौर से सबद्ध होती हे बल्कि वह उसे अपने विशेष परिवेश, सस्कृति पीढियो के सस्कार और अच्छे-बुरे के बारे मे परपरागत अनुभवो से गुजारते हुए नय युग की आवश्यकताओ से सबद्ध कर देते है। ओर इस तरह फ़ेज की परपरा की अवधारणा में वह सब कुछ आ जाता है जो उनके लिए राजनीतिक रूप से ठीक भी होता हे। फेज के यहा राजनीतिक रूप से ठीक और सौंदर्यशास्त्रीय ढग से सुदर होने मे किसी प्रकार का कोई द्वद्व नहीं है। फ़ज की रचनाओ का अध्ययन अगर केवल इस पहलू से किया जाये तो उनकी शायरी म राजनीति ओर सौंदर्यशास्त्र दोना एक दूसरे

क सबध को स्पष्ट करते ह। एक ख़ास ढग का राजनीतिक उद्देश्य ख़ास ढग का सौदर्यशास्त्रीय नियम उत्पन्न करता हे और विशेष सबधो को चिह्नित भी। इस ढग से प्रतीको को नये सिर से अपनाने की इच्छा उत्पन्न होनी है ओर यह काम उस समय और भी महत्वपूर्ण हो जाता हे जब उपमानो को अनायास ही व्यवहृत करने से अर्थ स्पष्ट हो सकता है। फ़ैज इस मंजिल से इस तरह गुजरते हैं कि उनकी शायरी की पंक्तियो के बीच का अथ छिपा नहीं रहता बल्कि हमसे बातचीत करता रहता है। कई बार उनकी शायरी चोका देने वाला जादुई दायरा बन जाता हे जिसका अर्थ उसी समय स्पष्ट हो पाता ह जब पाठक फ़ैज की Wave length पर आ जाये।

फ़ैज की काव्य शैली के विरोध का एक कारण तो केवल यह जान पडता है कि फ़ज ने अपन चिनन के साथ श्रेष्ठ रचनात्मक तकनीक को मिला दिया है जो हर किसी क बस की बात नही ह। फज क चितन पर आक्रमण किया जा मकता हे। फ़ेज की तकनीक पर नाक भा चढ़ायी जा सकती हे। ओर फज की काव्य भापा की कइ नयी शेलिया पर उगली भी उठायी जा सकती है। लेकिन जब यही सब अलग-अलग अग प्रत्यग आपस म मिलकर अपने Mosaic का निर्माण कर देते हे तो फिर सारे हमले बेकार हा जाते ह। क्योंकि अब युद्ध कवल काव्य प्रभाव ही से हो सकता है आर काव्य प्रभाव क विरुद्ध युद्ध परपरागत काव्य शेली की सभावना से युद्ध किय बिना सभव नहीं हो पाता और यह काम फैशनप्रिय विद्रोह के बस की बात नही हे।

फ़ेज ने पहला युद्ध तो परपरावादियो के विरुद्ध लडा। वह उस समय जब उन्होने अपनी नज्म मे जो गजल ही की परपरा का एक अग थी, प्रगतिशील अथ को इस तरह ग्रहण किया कि वह काव्य परपरा म बोझ सा न लग। उन्होंने अपनी नज्मो म गजल के सभी प्रकार के माधुर्य को मिलाते हुए उनके अर्थ के लिए रास्त निकाले जो कई कवियो के विचार मे छद मुक्त *कविता मे ही सभव* थे। फ़ेज न यह मोर्चा अपन पहले सग्रह *नक्शे फ़रियादी* मे लिया था।

फ़ज ने दूसरा मोर्चा उस समय जीता जब *दस्ते-सबा* आर *ज़िदांनामा* क प्रकाशन ने कुछ ओर बाधाए पार की और परपरावादियों को एक भ्रम म डालकर बहुत सकट म फसा दिया। जर्जर व्यवस्था का तहस-नहस करने के लिए जिस काव्य भापा का प्रयोग किया गया वह मानो जर्जर व्यवस्था को बचाने के लिए प्रस्तुत की जा रही है। यहा फ़ैज ने भापा के विपय मे अपनी राजनीतिक समझ से काम लिया जिसके अनुसार भापाए सामाजिक, आर्थिक ओर राजनीतिक व्यवस्था से सबद्ध नही होती बल्कि उनकी एक अलग व्यवस्था होती है ओर व समाज की प्रगति क साथ विकसित होती है। फेज भापा क व्यावहारिक महत्व के समर्थक थे। सामतवादी युग और पूजीवादी युग की भापा का अतर शब्दकोश म सतत वृद्धि क अतर से सबद्ध किया जाता हे। भापा का व्याकरण ओर व्यवहार जैसे का तैसा रहता हे। अगर फेज की काव्य शेली के विरोधी इस बुनियादी वेज्ञानिक वास्तविकता को दृष्टि में रखते ता उन्हे इस अपमान का सामना न करना पडता जो उन्हे तर्कसगत प्रत्यक्षवाद (logical positivism) के पश्चिमी विद्वानो क उस दावे के कारण उठाना पडा कि भापा चाहे वह कोई हो, मानवीय स्वभाव को अभिव्यक्त करने म अक्षम है। फ़ैज उन काव्य विमर्शो से बख़ूबी वाक़िफ़ थे। वे अपनी काव्य भापा पर मजबूती से डटे रहे। वे जानते थे कि उर्दू काव्य परपरा के भीतर रहते हुए दार्शनिक विपय आर हास्य-व्यग्य के भावो को भी व्यक्त किया जा सकता है। फ़ैज ने यह मोर्चा अभिव्यक्ति ओर संप्रेपण की आवश्यकता पर विश्वास रखते हुए जीता। जबकि फैज की काव्य शैली को खतरनाक हद तक मधुर घोपित करने

वालो ने फेज के मुकाबले म समसामयिकता से प्रयोगवादी उद्भावनाए प्रस्तुत की थीं, जो स्वीकृत नहीं हा सकी। सभव हे कि भविष्य मे यही खोज फेज के रग का असर कम कर सके। किंतु इस समय फेज के आसपास होने वाले समस्त विद्रोहा की अपील वहुत सीमित हे। यह विशेष रूप से कुछ लोगा के उस दावे के ख़ारिज होने के बाद कि परपरागत भाषा को निरस्त कर दिया जाये ओर एक नयी गणितीय भाषा गढ ली जाये।

फैज ने उर्दू की काव्य परपरा के विरुद्ध जो मोर्चा जीता है वह उन लोगा का भी ध्यान खींचता है और दाद चाहता है जो उनके राजनीतिक चितन से असहमति रखते ह। केवल इसी ढग से फैज की वैज्ञानिक चितन पद्धति का समर्थन किया जा सकेगा जिसका उद्देश्य उर्दू भाषा की काव्य परपरा का बचाव था। फैज की काव्य भाषा का अध्ययन किया जाये तो ऐसा लगता हे कि हम विशुद्ध सामतवादी युग मे सास ले रहे हे। जब वैभवशाली शब्दावली और जडावदार भाषा के भीतर कठोर वास्तविकता को छिपाना उद्देश्य होता था, तो कवि इस ढग की भाषा का प्रयोग केवल इसलिए किया करते थे कि शासक वर्ग की आवभगत रूपवादिता ओर कलावादी पच्चीकारी द्वारा की जा सके। फेज ने इस मेकेनिज्म से रक्षात्मक के वजाय आक्रामक दृष्टि से काम लिया ओर वे सफल रहे। यह सब कुछ इसलिए सभव हुआ कि फेज ने क्लासिकी शब्दकोश से लाभ उठाते हुए उस वास्तविकता को अपने सामने रखा जो उनकी नौजवानी ओर जवानी के दौर के उपमहाद्वीप के समाज मे Base यानी Content के रूप मे थी। उस जमाने मे परिवर्तन और क्राति के सभी प्रयास कौमपरस्त राजनीति, मजदूर आदोलन ओर अतर्राष्ट्रीयतावाद के अनुभव, एक विशेष ढग की अतर्वस्तु (Content) को उपयुक्त रूप (Form) मे व्यक्त कर रहे थ। हम देखते है कि फैज की शायरी मे क्रांतिकारी विचार के लिए भी कई वार धार्मिक अभिधान (Connotation) के शब्द इस्तेमाल होते हुए नजर आते हे, शायद यह सजग चयन के कारण हो। यह सब कुछ इसलिए है कि फैज अपनी शायरी का जाल दूर तक ओर स्पष्ट रूप से फेकना चाहते थे।

कुछ उदाहरण प्रस्तुत है

खुदा वह वक्त न लाये कि सोगवार हो तू

गुरूरे हुस्न सरापा नियाज हो तेरा

तवील रातो मे तू भी करार को तरसे
तेरी निगाह किसी गमगुसार को तरसे
खिज़ा रसीदा तमन्ना बहार को तरसे
कोई जबीं न तेरे सगे आस्ता पे झुमके

(नक्शे फरियादी)

इस वद मे 'खुदा , 'जवी और 'सगे आस्ता पर गौर कीजिए—फैज प्रसिद्ध धार्मिक उपादानो से विशुद्ध रूमानी वातावरण उत्पन्न कर रहे है। कुछ और उदाहरण देखे

हर हकीकत मजाज हो जाये
काफिरो की नमाज हो जाये
...

इश्क़ दिल मे रहे तो रुस्वा हो
लब पे आये तो राज हो जाये

किनारे रहमत हक मे उस सुलाती है
सुकूते-शब मे फ़रिश्तो की मर्सिया ख्वानी
तवाफ़ करने को सुबहे बहार आती है
सबा चढ़ाने को जन्नत के फूल लाती है।

(नक्शे फ़रियादी)

मुतलकुल हुक्म है शाराजए-असबाब अभी
सागर नाब मे आसू भी ढलक जाते है
लगजिशे पा मे भी है पाबदी आदाब अभी

..

खुशा नजाराये रुख्सारे यार की साअत
खुशा-करारे दिले बेकरार का मोसम
हदीसे बादा-ओ साकी नहीं तो किस मसरफ
खिराम-अब्र सर-कोहसार का मौसम

हमारे दम से है कूए-जुनू मे अब भी खजल
उबाए शेखो-कबाए-अमीरो-ताजेशही
हमी से सुन्नत मसूरो-कैस जिदा है
हमीं से बाकी है गुल दामनी-ओ-कज कुलही

बोलो कि शोरे हश्र की बुनियाद कुछ तो है
बोला कि रोजे-अदल की बुनियाद कुछ तो है

(दस्ते सबा)

उपर्युक्त पंक्तियो मे आये ठेठ पारपरिक शब्द व्यापक अर्थो म क्रातिकारी अर्थो के वाहक है, और यही फैज की विशेष पहचान है 'पेकिग की तामीर' शीर्षक कविता देखे

यू गुमा होता है बाजू है मेरे साथ करोडो
और आफ़ाक की हद तक मेरे तन की हद है
दिल मेरा कोहो दमन, दश्ते चमन की हद है
मेरे केसे म है राता का सियहफ़ाम जलाल
मेरे हाथों मे है सुबह की अनामन कलकू
मेरे आगोश में पलती है खुदाई सारी
मरे मक्दूर म है मोजजए-कुन फयकू

फैज अतिम पंक्ति तक इस तरह आते है कि 'माजजए कुन फयकू की तरकीब तक पहुचत है। फज ने एक विशुद्ध धामिक उपादान को कुछ से कुछ बना दिया ह।

फ़ेज की कविता शारिशे-जजीर विस्मिल्ला ह' देख या 'फिर आज वाजार म 'पावजाला चलो'—दानों नज्मो मे इस्लामी सस्कृति म सास लेत हुए उपादाना का कुछ इस तरह प्रस्तुत किया गया ह कि परपरागत काव्यशेली की सभाव्य शक्ति फेज की कलम म सिमट आयी है

नागहा आज मेरे तार नजर से कटकर
टुकड़े टुकडे हुए *आफ़ाक़* पर ख़ुर्शीदो-कमर

फिर 'जिदा जिदा शोर अनलहक महफ़िल महफिल कुल-कुल है' जैसी पक्ति पर रुकिये, ओर फज के यहा पारपरिक रस की चाश्नी महसूस कीजिए। ये उद्धरण केवल वानगी भर ह। जाहिर हे कि फ़ेज की कविता की मधुरता को कमजोरी मान लिया गया। फ़ज पर पारपरिक भापा के प्रयोग का आरोप अधिक तूल न पकडता अगर उनके एक समकालीन कवि नून मीम राशिद ने फैज की परपरा के साथ 'मिरजा मिरजी' (न किसी को दुखी करना न स्वय दुखी होना) को आलोचना का लक्ष्य न बनाया होता। फेज 'हलकाए अरवावे-जोक' (नये ढग के रचनाकरो का मडल हिंदी के प्रयोगवाद जसा) के काव्यशास्त्र (सनकी) से नही भिडते तो *शायद यह समस्या इतनी गभीर नहीं होती*। लेकिन जा कुछ भी हुआ वह बहुत आवश्यक था। ब्रेख्त और लुकाच के वीच भापा को लेकर गतिरोध राशिद ओर फेज के वीच क विवाद से मिलता-जुलता हे। केवल एक वात अलग है कि लुकाच आर राशिद अपने समकालीन प्रतिद्वद्वियो के बारे म कुछ अधिक सनकी हे। लेकिन दोनो का महत्व अपनी जगह स्थायी हे।

फ़ैज की मूल विशेषता यह हे कि उन्होने इकहरे अर्थो वाले उपादाना को नये सदर्भो म प्रस्तुत किया। परपरागत अन्योक्ति और उपमान केवल उसी रचनाकार के यहा आत्मसात हो सकते ह जो प्राचीन ओर नवीन के खाचो मे विभाजित न हो। वह अपनी आधुनिकता मे प्राचीनता के सार्थक तत्वो को स्वीकार और अपनी प्राचीनता मे सभी प्रकार की आधुनिकता का समर्थन करे। फेज ने अर्नेस्ट फिशर की तरह अपनी काव्य भापा को अपने समय की चिता तक सीमित कर लिया है। फ़ेज की शायरी अपने समय के एक ताकतवर चितन को प्रदर्शित करती हे ओर यह अजीव वात है कि आजादी के वाद वे क्रमश अधिक राजनीतिक भगिमा स्वीकार करते हुए दिखते हे, जिसकी एक वजह तो यही हे कि आजादी उनके लिए भ्रम निकली

यह दाग दाग उजाला यह शवगजीदा सहर

आर फिर लगातार जेल के कष्ट झेले। जिन्होने आजादी ओर उसकी राह म रुकावटो को कुछ इस तरह चित्रित किया कि उनके यहा वतन और महवूब के बीच का अतर समाप्त हो गया और हम देखते ह कि जैसे फैज ने यह तारीफ अपनी काव्य भापा के बयान मे की है।

खुद फज की काव्य भाषा के तेवर मे *शामे-शह्रे-यारा* के साथ-साथ परिवर्तन स्पष्ट नजर आता है और जैसे-जेसे हम आगे बढते हे फैज के यहा सुदरता के वजाय तेज ओर ओज का रग दिखता हे। भापा कम क्लासिक होती चली जाती हे। अपितु कइ जगह कथात्मकता का रग अलग से दिखता हे, फिलिस्तीन ओर लेवनान की घटना हृदय विदारक होने के कारण ओज गुण उत्पन्न कर देती हे। इस चमत्कार का आरभ इकवाल के इस निम्नलिखित शेर से होता है

गुमा मुर्वरिका बियावा रसीदकार मुगा
हजार वादए-नाखुर्दा दर रग ताक अस्त

इस सग्रह म शामिल नज्म 'मेरे दर्द को जो जवा मिले' इस तरह शुरू होती है

मेरा दर्द नगमए बेसदा
मेरी जात जर्रा बेनिशा
मेरे दर्द को जो जवा मिले
मुझे अपना नामो निशा मिले
मुझे राज नज्मे-जहा मिले
मेरी खामुशी को बया मिले
मुये कायनात की सरवरी
मुझे दोलते दो जहा मिले।

यह नज्म फेज की मृत्यु से ग्यारह साल पहले की है ओर सन् 1973 ई से 1984 ई तक फेज सजग रूप से जिस शैली की ओर वढते हुए दिखते है वह 'तुम अपनी करनी करे गुजरा का दौर हे। अव फज धीरे-धीरे सरल-सीधी शायरी की तरफ आ रहे ह। इस नज्म का आखिरी वद देखिए

अव क्यो दिन की फ़िक्र करा
जव दिल टुकडे हो जायेगा
ओर सारे गम मिट जायेग
तुम खोफो खतर से दर गुजरो
जो होना हे सो होना हे
गर हसना हे तो हसना है
गर रोना हे तो रोना हे
तुम अपनी करनी कर गुजरो
जो होगा देखा जायगा

इस सग्रह (*शामे शहरे यारा*) की गजल का एक शेर हे

वा बुतो ने डाले हे वसवसे कि दिलो से खोफे खुदा गया
यो पडी ह रोज कयामतें कि ख्याल रोजे-जजा गया

इस शेर मे 'खोफे-खुदा' आर 'रोजे-जजा के स्पष्टत सरल ओर इकहरे अर्थ की तरकीब से किस प्रकार अलग काम लिया गया हे।

'मरसिया इमाम' मे फज अपनी सोच की छाप की घापणा कुछ इस तरह करते ह

तालिब हें अगर हम तो फकत हक के तलबगार
बातिल के मुकाबिल म सदाकत के परस्तार
इसाफ के नेकी के मुरव्वत के तरफदार
जालिम के मुख़ालिफ़ है तो बेकस के मददगार
जो जुल्म पर लानत न करे आप लईन हे
जो जवर का मुन्किर नही मुन्किरे दीं है

'उम्मीदे सहर की वात सुनो' भी अधिक जटिल सरचना की तरह वढ़ती है—

अव इल्तिफ़ात निगार सहर की वात सुना
सहर की वात उम्मीदे सहर की वात सुनो

और *मेरे दिल मेरे मुसाफिर* जा यासिर अरफ़ात को समर्पित ह, निर्वासन के जमाने की वतनी शायरी से भरी हुई हे। यह सग्रह सन् 1978 की पहली नज्म 'मेरे दिल मेरे मुसाफिर' से शुरू हाता हे। इसम जुदाई के मनोभाव हे ओर मिलन की आखिरी सरमस्तिया पडाव पर ह, स्मृतिया की वोछार हे। मख़दूम की आखिरी याद हो या फुफकाज के शायर क़ासिन कुली की कविताआ के अनुवाद इसी विचार की आर इशारा करते ह कि

हर इक दोर म हम हर जमान मे हम
जहर पीते रहे गीत गाते रहे

स्पष्ट रूप से यह पीछे की ओर देखन का प्रयास हे किंतु इस दौर की शायरी मे ओज गुण स्पष्ट रूप से दिखता हे। वैरूत प्रवास इस दिशा मे अपने आप म प्रेरणा की एक वहुत वडी भूमिका निभाता है। 'लाओ तो कत्लनामा मेरा' ओर 'तीन आवाज स्पष्ट रूप से सरल काव्यशेली की ओर कदम हे लेकिन उन नज्मो म भी और खास तोर पर 'तीन आवाज' का आखिरी हिस्सा 'निदाए गैव' की निम्नलिखित पक्तिया गवाह ह कि फेज विशुद्ध राजनीतिक प्रयास या उद्देश्य के लिए धार्मिक अभिधान के शब्द वहुत चपलता ओर सुदरता से प्रयुक्त करते है और इस तरह वे अपनी रचनाओ को वहुआयामी वनान मे सफल हो जाते हे

हर एक ऊलुल-अम्र को सदा दो
कि अपनी फर्दे-अम्ल सभाले
उठेगा जव मजमा सरफरोशा
पडेगे दारो-रसन के लाले
कोई न होगा कि जो वचा ले
जजा सजा सव यही पर हागी
यहा अजावो सवाव होगा
यही से उठेगा रोजे महशर
यही पे रोजे हिसाव होगा

फ़ैज के ओज और अली सदार जाफरी के ओज की अवधारणा म समानता ढूढने का चलन नजर आने लगा है। उन दोना समकालीन कवियो की ओज की अवधारणा म काफी अतर हे। फ़ेज की भगिमा विशुद्ध राजनीतिक नही है। 'दो नज्मे फिलिस्तीन के लिए म फेज की ओज की अवधारणा स्पष्ट हो जाती हे।

'गुवारे अय्याम फ़ेज के अंतिम दिनो की रचना ह जो सन् 1983 ई मे इस शेर पर ख़त्म हाता है

या ख़ोफ़ से दर गुजरे या जा से गुजर जाय
मरना ह या जीना हे इक वार ठहर जायें

विश्वकाव्य की अमूल्य धरोहर

मुहम्मद हसन

हरियाणा उर्दू अकादमी ने फैज अहमद फैज की प्रतिनिधि कविताओं का एक चयन प्रकाशित किया था। मुहम्मद हसन ने उस किताब की एक छोटी सी भूमिका लिखी थी। यह आलेख उसी भूमिका को यथावत प्रस्तुत करता है। –स

फेज अहमद फैज (1911-1986) सियालकोट म पैदा हुए। उनके पिता ने काफी समय तक अफगानिस्तान म राजकीय सलाहकार क रूप म कार्य किया था। फैज की शिक्षा लाहौर म हुई। उन्होंने अरबी ओर अंग्रेजी की परीक्षाए पास की और बाद म अमृतसर क एक कॉलेज म प्रवक्ता नियुक्त हुए। उसी जमाने म वह एक भावनात्मक संबद्धता की बिना पर छायावादी कविता की ओर बढे। जब व अमृतसर म थे तो डॉ रशीद जहा और उनके पति साहबजादा महमूदुज्जफर के जरिये सज्जाद जहीर स मिले, जो उन दिनो हिदुस्तान के विभिन्न नगरो का दौरा करके साहित्यकारो को प्रगतिवादी विचारों की ओर आकर्षित कर रहे थे। 1936 म लखनऊ म अजुमन तरक्कीपसद मुसन्नेफीन (प्रगतिशील लेखक सघ) का पहला सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता प्रेम चद ने की। प्रगतिशील और मार्क्सवादी विचारो के प्रभाव से फेज की कविता मे एक नया मोड आया ओर उन्होंने रूमानी दु ख दर्द को व्यापक दिशा प्रदान की। 'मुझ से पहली सी मुहब्बत मेर महबूब न माग', 'रकीब से' और 'चद रोज और मेरी जान फकत चद ही रोज' जेसी कविताए उसी समय की यादगार ह।

कुछ समय बाद द्वितीय विश्व युद्ध आरभ हो गया और 1941 मे जब हिटलर की फोजो ने सोवियत रूस पर आक्रमण कर दिया तो हिदुस्तान मे प्रगतिशील विचारधारा के लोगो ने हिटलर के विरुद्ध युद्ध मे मित्र देशो की सहायता करने का निर्णय लिया। इसी निर्णय से प्रभावित फेज अग्रेजो की सेना म भर्ती हो गये और मेजर के पद तक पहुचे। उस जमाने म प्रसारण और प्रकाशन के काम में भी बराबर भाग लेते रहे।

युद्ध समाप्त होने के पश्चात् हिदुस्तान की स्वतत्रता की समस्या सामने आयी। इस मार्ग मे सबसे बडी कठिनाई हिंदू-मुस्लिम मतभेद से पैदा हो रही थी। मुस्लिम लीग मुस्लिम बहुसख्यक राज्यो को मिलाकर पाकिस्तान बनाना चाहता था ओर प्रगतिशील धारा से सबधित लोग इस पक्ष मे थे कि हिदुस्तानी मुसलमानो को मुस्लिम लीग के उग्रवादियो के प्रभाव से बचाने के लिए प्रगतिशील विचारधारा के मुसलमानो को मुस्लिम लीग म सम्मिलित होकर कार्य करना चाहिए। इसी विचार से प्रभावित होकर

सामाजिक दु ख दर्द को, इस तरह अपना कर अपने काव्यात्मक स्वाव म जगह द कि उन पर व्यक्तिगत अनुभवो का रग छाया रह। इस कोशिश म उन्होन एक तरफ पूर्वी विशेषत फारसी और उर्दू का काव्य परपरा से काम लिया है और दूसरी तरफ पाश्चात्य रूमानी कवियो की कल्पना, लक्षणा और रूपक शैली को अपनी शली म इस तरह समा लिया कि उनका काव्य आधुनिक शैली की विशेषताओ स सुसज्जित हो गया है।

इसके अलावा उनके जीवन के सदभ म उनके काव्य की यथार्थपरकता आर विशेषता और बढ़ गयी है। कठोर से कठोर कष्ट झेलन के बावजूद आर अन्याचार, हिंसा बल्कि मौत की आखों म आख डालकर भी वे आशा आर साहस का परित्याग नहीं करत। आशा आर साहस की यह प्रबलता उनके काव्य में एक व्यक्तिगत आर निजी अनुभव के रूप म उभरती है आर करोडो लोगो के दर्द म शामिल ही नहीं होती बल्कि उस दद के माध्यम स अत्याचार स ऊपर उठन का निमत्रण और उस न्यायिक समाज पर विजय पाने की भविष्यवाणी भी करती ह।

फेज का सबसे बडा कारनामा यह है कि उन्होन व्यक्तिगत अनुभवो को इस प्रकार व्यापक बनाया है कि उनके साथ की सासारिक समस्याए भी उनके व्यक्तिगत अनुभव का एक हिस्सा मालूम होती है। इनमे अपने ही दिल पर घटित होने वाली घटनाओ ही की सी गहराई, आवेश और सहानुभूति पायी जाती है। वे गहरे से गहरे यथार्थ को भी प्रवचन की तरह नहीं कहते बल्कि उस अपन दिल पर गुजरी हुई परिस्थितियो का रूप द दत ह। इसी कारण उनकी कविताओ मे प्रचार या प्रापगडा की लहर तेज नहीं होने पाती और उनकी कविता मद्धिम गति ओर नर्मी स दिलो को छूती ह और छा जाती है। जिस अन्याय के विरुद्ध उनका पाठक श्रोता लडना चाहता है ओर स्वय को असहाय पाता है, उस फेज के काव्य में देखता आर पहचानता है आर फेज को उनके विरुद्ध सघर्ष करता हुआ देखता है। यही प्रत्यक्ष सबद्धता उनकी कविताओ की लोकप्रियता आर सम्मोहकता का एक महत्वपूर्ण कारण है।

शैली की दृष्टि से फेज की कविता ने छायावादिता ओर यथार्थवादिता का एक आकर्षक विभेद पैदा किया। उसमे दुख दर्द अपने चारो तरफ बिखरे हुए समाज का ही है जिसका कवि भी स्वय एक अभिन्न अग है लेकिन उनकी दृष्टि आने वाले समय की उन शुभ घडियो पर टिकी हुइ है जिनका मार्ग कोई रोक नही सकता। फेज का काव्य यथार्थ पर रगीन पर्दा डालने वाला काव्य नहीं हे। उसकी सबसे बडी शक्ति यही हे कि वह दुख को अपना कर ओर अपना ही नही। सपूर्ण विश्व का दुख अपना कर उसे दूर करने का निदान सोचने ओर दुख से प्राप्त हुई शक्ति और साहस आर आशा को जगाती है ओर एक उज्जवल भविष्य पर विश्वास पेदा करती है। यही सच्चाई, यही ताजगी, यही उन्मुक्तता ओर यही दुख व पीडा से प्राप्त हुआ जीवनदान और निवारण-शक्ति फैज की पहचान है।

और इसी शक्ति ओर प्रबलता को प्रकट करने के लिए उन्होने ऐसी शेली का आविष्कार किया जिसमे अपनी धरती की सुगध भी हे ओर पाश्चात्य काव्य की लक्षण और रूपक विधा भी। यह सब कारीगरी या शेली के स्थान पर अनिवार्य रूप से प्रकट होने वाली उनकी व्यक्तिगत भावनाओ का ही प्रतिफल है। ओर इसीलिए उनकी सवेदना प्रत्यक्ष रूप स काव्य के रूप मे ढल जाती हे और दिल को प्रभावित करती हे।

इस दृष्टिकोण से फैज की कविता उर्दू की ही नहीं हमारी राष्ट्रीय बल्कि विश्व काव्य की अमूल्य धरोहर ह आर इसक अध्ययन से दिशा और ज्ञान क नय मार्ग प्रशस्त होते ह।

अभिप्राय और व्यंजना की निरंतरता

वजीर आगा

वजीर आगा (जन्म 18 मई 1922 सरगोधा निधन 7 सितंबर 2010 लाहौर) उर्दू कविता मे आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रवर्तको मे माने जाते ह। शायर होने के साथ साथ उनकी पहचान आलोचक और ललित निबंधकार के रूप में भी है। अदबी दुनिया (लाहोर) तथा ओराक (लाहोर) के संपादक रहे। यह आलेख वजीर आगा की पुस्तक 'नज्मे जदीद की करवट' पुस्तक से साभार संकलित किया गया है।—स

नक्शे फरियादी की भूमिका मे फेज अहमद फैज की शायरी पर टिप्पणी करते हुए नून मीम राशिद ने लिखा था 'फेज किसी मर्कज़ी नजरिये (केंद्रीय विचारधारा) का शायर नहीं, सिर्फ एहसासात (संवदनाओं) का शायर हे।'

यह बात 1941 की है। मुझे विश्वास हे कि *नक्शे फ़रियादी* के बाद *दस्ते सबा* आर *जिंदानामा* के पकाशन के वाद राशिद साहब अपने इस वक्तव्य पर पुनर्दृष्टि की आवश्यकता महसूस करेंगे। यह इसलिए कि इन चद साला मे फेज की कविता मे एक मोलिक दृष्टिकोण प्रकट हो गया हे। फेज की कविता इस दृष्टिकोण के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित दिखायी देती हे जो *नक्शे फरियादी* म उद्भूत हुआ था। लेकिन राशिद साहव ने उसे उस समय महत्वपूण नही समझा था। शायरी म किसी दृष्टिकोण का प्रगट होना कोई बुराई नही है। अधिकतर बडे शायरो के यहा एक विशिष्ट दृष्टिकोण मिलता हे जो जीवन ओर विश्व का एक विशिष्ट कोण से देखन म सहायक सिद्ध होता हे। उनकी निरतर सक्रिय रचनात्मक प्रक्रिया के कारण इस दृष्टिकोण म लचक, फैलाव, विस्तार या दूसरे शब्दा मे एक क्रमिक विकास भी मिलता है जो उनके दृष्टिकोण को क्लिष्टता और जडता दृष्टिकोण से बचाये रखता है। फेज की कविता मे यह वात नही हे। उनक दृष्टिकोण मे एक ठहराव या स्थिरता का एहसास होता है। मानो शायर अवबोध के एक विशेष विंदु पर पहुचने के बाद रुक गया हे। इससे फैज की काव्य रचना को सदमा भी पहुचा हे। मगर इसी वात की तो व्याख्या अपेक्षित हे।

नज्म मे फेज के स्थान को समझने ओर उसके विशिष्ट दृष्टिकोण का जायजा लेने के लिए उस परिदृश्य का अध्ययन अत्यावश्यक हे जिस पर फेज की शायरी के चिह्न स्पष्ट रूप से उभरे हुए दिखायी देते ह।

परिदृश्य की यह दास्तान 1857 से शुरू होती हे। 1857 दा युगो का सगम है। यह एक ऐसे दार की आख़िरी हिचकी हे जिसम व्यक्ति समाज का कंद्र था ओर जिसम सामूहिक आदोलना म शामिल हो जान का रुझान व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की भावना की अपक्षा वेहद कमजोर था। यह समय सास्कृतिक

अभिप्राय और व्यंजना की

वजीर आगा

वजीर आगा (जन्म 18 मई 1922 सरगोधा निधन 7 सितबर 2010 के प्रवर्तकों मे माने जाते ह। शायर होने के साथ साथ उनकी पहचान भी है। अदबी दुनिया (लाहौर) तथा औराक (लाहोर) के सपादक रहे। जदीद की करवटे पुस्तक से साभार सकलित किया गया है।—स

नक्शे-फरियादी की भूमिका मे फेज अहमद फज की शायरी प लिखा था 'फज किसी मर्क़जी नजरिये (केंद्रीय विचारधारा) का का शायर है।'

यह बात 1941 की है। मुझे विश्वास है कि *नक्शे फरिया* प्रकाशन के बाद राशिद साहब अपने इस वक्तव्य पर पुनर्दृ इसलिए कि इन चद सालो म फेज की कविता मे एक मालि कविता इस दृष्टिकोण के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित दिखा हुआ था। लेकिन राशिद साहब ने उसे उस समय महत्वपूण न का प्रगट होना कोई बुराई नही है। अधिकतर बडे शायरो के जीवन ओर विश्व को एक विशिष्ट कोण से देखने मे सहा रचनात्मक प्रक्रिया के कारण इस दृष्टिकोण मे लचक, फेला विकास भी मिलता हे जो उनके दृष्टिकोण को क्लिष्टता और की कविता म यह बात नही है। उनके दृष्टिकोण मे एक ठह शायर अवबोध के एक विशेष विदु पर पहुचने के बाद रु सदमा भी पहुचा हे। मगर इसी बात की तो व्याख्या अपे

नज्म म फज के स्थान को समझने और उसके विशि परिदृश्य का अध्ययन अत्यावश्यक हे जिस पर फेज की शा देते ह।

परिदृश्य की यह दास्तान 1857 से शुरू होती है। 1 की आखिरी हिचकी ह जिसम व्यक्ति समाज का कद्र ध रा जान का रुझान व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की भावना की

फ़ज की काव्य रचना का यह दार शायर की आगामी विजया क लिए एक आधार की हसियत रखता हे और इस आधार की जड सवेदना आर भावा की गहराइया तक उतरती चली गयी ह। कुछ दूसर शायरा की तरह फ़ेज ने बुद्धि के चूने गारे से शेर की आधारशिला नही रखी। इसी म फेज की जीत ह आर इसी से *नक्शे फरियादी* के दूसरे हिस्से मे धुरी बदलने के बावजूद सवेदना की तीव्रता आर अपनत्व वेसे ही दृष्टिगोचर होता हे।

प्रेम की पीडा ओर सादर्य के चमत्कारा के इस युग के बाद फेज बकोल खुद अपन आप को ब्रह्माड समझना छोड कर परिवेश पर एक दृष्टि डालते ह ओर उनकी सवेदना म एक त्वरित परिवतन उद्भूत हा जाता हे। वेसे भी यह सारी प्रक्रिया सभवत एक क्रमिक विकास ही के अधीन ह क्योंकि सूफ़ीमत म भी इश्के मजाजी के बाद ही इश्के हकीकी का दजा आता है। फज की मुहब्बत भी ऊचाई पाकर वेश्विक रूप धारण करती हे आर उनका गमे-जाना उत्तरोत्तर गमे-दारा म परिवर्तित हाता चला जाता हे। अब फैज जिदगी की ठास सच्चाइयो को देखते ह तथा विषमता, जुल्म, बाजारवाद, सामूहिक सरकार आर व्यक्ति के लालच का जायजा लेने ह। वे प्रेक्षक को एक नय सामाजिक बाध स परिचित करान क लिए उन्हे आदोलित करन, पुरातन विचार रूपी मूर्तिया का तोडने आर जिदगी की घृणास्पद असमानता का समाप्त करने की शिक्षा देन लगने ह। इस प्रक्रिया के दारान उनकी निगाहें उस लक्ष्य पर केंद्रित रहती ह जहा पहुच कर सार दुख खत्म हा जायेगे ओर जनता की सारी मुसीबत मिट जायगी। जहा रात की सियाही पर उषाकाल का उजाला हागा आर नया इनसान एक नय सकल्प क साथ जिदगी क राजमार्ग पर यात्रा आरभ कर सकेगा।

कुछ लागों का विचार हे कि अवाम को अपमान की गुफा से बाहर निकालने, उनकी रगा क जमे हुए खून मे आवेग पदा करन ओर उनक सामाजिक बाध का जाग्रत करन की कोशिश मे फेज की महानता छिपी हे यह बात सही नहीं ह। यह काम फज से पहल उदू क दूसर शायर भी कर चुके ह। हाली का सबोधन सीधे सीधे जन सामान्य से था। जोश भी राष्ट्रीय भावना के तहत काम का इकलाब ओर क्राति के लिए उकसाते रहे ह। इकबाल इन दोनो से आगे है कि वे केवल शारीरिक रूप स लागा का आगे बढने की शिक्षा नहीं देते ओर न उन्हे केवल सामाजिक, राजनीतिक बाध जाग्रत कर लेने पर आमादा करते ह बल्कि उन्ह मानसिक रूप से एक कदम आग बढन की प्रेरणा भी देते ह। निस्सदेह फैज का दृष्टिकोण उन सब शायरो स भिन्न ह। आर वास्तविकता यह ह कि हर शायर का दृष्टिकोण दूसरे से भिन्न हाता ह। जनता की भलाई ओर तरक्की का जो भाव फज के यहा दृष्टिगाचर होता हे कमोबेश वही भाव हाली, जोश आर इकबाल के यहा भी माजूद हे। फ़ज की विशिष्टिता उसकी प्रतिक्रिया के ढग में हे। वह इस तरह कि फेज ने दिल पर घाव खाने के बाद वेश्विक प्रेम का अपनाया ह। उनका दर्द व्यक्तिगत हानि क एहसास मे परिपूर्ण हे। उन्होने अपनी व्यक्तिगत सकीर्णता स गुजर कर जीवन की विस्तृत चादर पर फेलन की कोशिश की हे। इसीलिए उनकी प्रतिक्रिया म अपनत्व और तीव्रता तथा उनकी कार्यशेली म आधुनिकता और नवीनता हे। इस दूसरे दौर मे फेज की नज्मा का वेशिष्ट्य यह हे कि इनम रूमान ओर यथाथ का पारस्परिक सबध प्रकट हुआ ह ओर इनम व्यष्टि ओर समष्टि की सीमाए मिलती हुइ आर एक दूसरे मे विलीन होती दिखायी देती ह। यही फेज की सबस बडी देन हे। इसी मे फ़ज की विशिष्टता हे। यह अनोखी प्रतिक्रिया 'मुझ से पहली सी मोहब्बत मेरे महबूब न माग' स शुरू होती ह आर इसका प्रतिबिब उनकी दूसरी नज्मो विशेषत 'रकीब', 'चद रोज आर मेरी जान,

स होता है। फैज के जीवन के उस भावनात्मक आवेग के विवरण से हम सरोकार नहीं। लेकिन *नक्शे फरियादी* का पहला हिस्सा इस जज्बे की गहराई, कामनता और शिद्दत का बड़ी हद तक प्रमाण है। यह वह युग है जिसमें शायर बाहरी जीवन के ठोस सत्यों और घटनाओं की सतही संवेदना से हटकर दिल के समंदर में उतर आया है। फैज के जीवन के इस मोड़ का कारण प्रेम का हादसा है। प्रेम तन्मयता और तल्लीनता का सर्वाधिक मुखर उदाहरण है। जब तक इसकी पकड़ मजबूत रहती है, व्यक्ति अपने परिवेश से असंपृक्त होकर अपनी 'स्व' की परिक्रमा करने पर मजबूर दिखायी देता है। यही प्रेम फैज की शायरी का पहला मील का पत्थर है और यह वह तीव्र भावनात्मक आवेग है जिसने फैज को शेर कहने पर उकसाया है। इस दौर में फैज ने कुछ अत्यंत खूबसूरत नज्में लिखी हैं जो उनके 'स्व' के अंदर उठने वाले तूफान की तीव्रता और वहशत की एक झलक प्रस्तुत करती हैं और शायर के प्रेम की पीड़ादायक स्थिति को बड़ी कलात्मक शैली में प्रस्तुत करती हैं। शायद उर्दू नज्म के किसी शायर ने प्रेम के भाव को इतनी तीव्रता और अपनत्व के साथ प्रस्तुत नहीं किया जितनी तीव्रता और अपनत्व के साथ फैज ने प्रस्तुत किया है। उसका प्रेम केवल परंपरागत इश्क की दास्तान नहीं है। इसमें शारीरिक सामीप्य और इसके फलस्वरूप भावनात्मक तूफान के प्रमाण भी मिलते हैं। उससे फैज की शायरी के नेपथ्य में शेर कहने की असाधारण तीव्रता और ऊष्मा का भी कुछ अनुमान होता है। उदाहरणार्थ, ये कुछ टुकड़े देखिये

खुदा वो वक्त न लाये कि सोगवार हो तो
सुकूं की नींद तुझे भी हराम हो जाये
तेरी मसर्रते पेहम तमाम हो जाये
तेरी हयात तुझे तलख़ जाम हो जाये
गमों से आईन ए दिल गुदाज हो तेरा

— खुदा वो वक्त न लाये

सो रही है घने दरख्तों पर
चांदनी की थकी हुई आवाज
कहकशां नीमवा निगाहों से
कह रही है हदीसे शौके नियाज
साजे दिल के खमोश तारों से
छन रहा है खुमार कैफ आगीं
आरजू, ख़्वाब, तेरा रूए हसीं।

— सुरूदे शबाना

बहारे हुस्न ये पाबंदि ए-जफा कब तक?
ये आजमाइशे सब्रे गुरेजपा कब तक?
कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हूं मैं
गलत था दावए सब्रे शकेब आ जाओ
करारे ख़ातिरे-बेताब थक गया हूं मैं

—'इंतजार

फ़ज की काव्य रचना का यह दार शायर की आगामी विजया क लिए एक आधार की हसियत रखता है ओर इस आधार की जड सवदना ओर भावों की गहराइया तक उतरती चली गयी ह। कुछ दूसरे शायरा की तरह फज ने वुद्धि के चूने गार स शेर की आधारशिला नहीं रखी। इसी म फज की जीत ह आर इसी से *नक्शे फरियादी* के दूसरे हिस्से म धुरी वदलने के वावजूद सवेदना की तीव्रता ओर अपनत्व जैसे ही दृष्टिगोचर होता हे।

प्रम की पीडा आर सादय क चमत्कारा के इस युग क वाद फज वकाल खुद अपन आप का ब्रह्माड समझना छोड कर परिवेश पर एक दृष्टि डालते ह आर उनकी सवदना म एक त्वरित परिवर्तन उद्भूत हो जाता ह। वस भी यह सारी प्रक्रिया सभवत एक क्रमिक विकास ही क अधीन ह क्यांकि सूफीमत म भी इश्के मजाजी के वाद ही इश्क-हकीकी का दर्जा आता ह। फज का मुहव्वत भी ऊचाई पाकर वश्विक रूप धारण करती है ओर उनका गमे-जाना उत्तरोत्तर गमे-दारा म परिवर्तित हाता चला जाता है। अव फज जिदगी की ठोस सच्चाइयो का देखते ह तथा विषमता, जुल्म, वाजारवाद, सामूहिक सराकार आर व्यक्ति के लालच का जायजा लेते ह। वे प्रेमक का एक नये सामाजिक वाध स परिचित कराने के लिए उन्ह आदोलित करने, पुरातन विचार रूपी मूर्तिया का ताडन ओर जिदगी की घृणास्पद असमानता को समाप्त करने की शिक्षा दन लगत हे। इस प्रक्रिया के दोरान उनकी निगाह उस लक्ष्य पर केद्रित रहती ह जहा पहुच कर सारे दुख खत्म हो जायगे ओर जनता की सारी मुसीवत मिट जायगी। जहा रात की सियाही पर उषाकाल का उजाला हागा और नया इनसान एक नये सकल्प के साथ जिदगी क राजमार्ग पर यात्रा आरभ कर सकेगा।

कुछ लोगो का विचार हे कि अवाम को अपमान की गुफा से वाहर निकालन उनकी रगो के जमे हुए खून मे आवेग पदा करन और उनके सामाजिक वाध को जाग्रत करन की कोशिशा म फैज की महानता छिपी ह, यह वात सही नही ह। यह काम फज से पहल उर्दू के दूसरे शायर भी कर चुक ह। हाली का सवोधन सीधे सीधे जन सामान्य स था। जोश भी राष्ट्रीय भावना के तहत कोम को इकलाव और क्राति क लिए उकसाते रहे ह। इकवाल इन दाना से आग ह कि वे केवल शारीरिक रूप स लोगा का आगे वढने की शिक्षा नहीं देते ओर न उन्हें केवल सामाजिक, राजनीतिक वोध जाग्रत कर लेने पर आमादा करते ह वल्कि उन्ह मानसिक रूप मे एक कदम आग वढने की प्रेरणा भी देते ह। निस्सदह फेज का दृष्टिकोण उन सव शायरो से भिन्न है। ओर वास्तविकता यह है कि हर शायर का दृष्टिकोण दूसरे मे भिन्न होता हे। जनता की भलाई ओर तरक्की का जो भाव फेज क यहा दृष्टिगोचर होता ह, कमावेश वही भाव हाली, जोश आर इकवाल क यहा भी माजूद ह। फेज की विशिष्टता उसकी प्रतिक्रिया के ढग म ह। वह इस तरह कि फेज ने दिल पर घाव खाने के वाद वेश्विक प्रम को अपनाया ह। उनका दद व्यक्तिगत हानि क एहसास स परिपूर्ण ह। उन्हाने अपनी व्यक्तिगत सकीणता से गुजर कर जीवन की विस्तृत चादर पर फेलने की कोशिश की हे। इसीलिए उनकी प्रतिक्रिया म अपनत्व ओर तीव्रता तथा उनकी कार्यशेली मे आधुनिकता ओर नवीनता हे। इस दूसरे दोर म फेज की नज्मो का वशिष्ट्य यह हे कि इनम रूमान और यथार्थ का पारस्परिक सवध प्रकट हुआ है ओर इनमे व्यष्टि आर समष्टि की सीमाए मिलती हुई ओर एक दूसरे मे विलीन होती दिखायी दती ह। यही फेज की सवस वडी देन हे। इसी म फज की विशिष्टता हे। यह अनोखी प्रतिक्रिया 'मुझ से पहली सी मोहव्वत मेरे महवूव न माग' स शुरू होती है आर इसका प्रतिविव उनकी दूसरी नज्मा विशेषत रकीव, 'चद रोज आर मेरी जान

'माजूए-सुखन , 'शाहराह' ओर 'मेरे हमदम मेरे दोस्त' म इस प्रकार होती हे कि शायर की भावनात्मक ओर मानसिक कशमकश ओर इन स्थितिया को एक दूसरी मे विलीन कर देने क प्रयास स्पष्ट दिखायी देने लगते ह। आरभ म फेज अपनी इस कोशिश म सफल नहीं हो सके। उनकी बहुत सी नज्मा म इन दोनो स्थितिया का मिलान विदु एक रूप होकर सामने आया हे। ऐसा महसूस होता ह जसे शायर जान वूझ कर एक विशेष प्रकार की भावनात्मक प्रतिक्रिया से नितात दूसरी भावनात्मक प्रतिक्रिया की आर वढन का प्रयास कर रहा हो या जेसे वह रूमान की भावनात्मक स्थिति का मात्र सामाजिक वाध की परिपक्वता के लिए प्रयोग करने का इच्छुक हो। इसीलिए इन नज्मा म एक 'झोल' हे जिसका पाठक को फारन एहसास हो जाता हे। लेकिन अत की कुछ नज्मा विशेपत 'मेरे हमदम दोस्त' मे फेज ने अपन इस प्रयास मे पूरी सफलता पायी है। उनकी ये नज्मे उर्दू शायरी म एक विल्कुल नयी आवाज हे। इनम शायर ने पहली वार रूमान ओर यथार्थ को न सिर्फ एक दूसरे के समीप किया हे वल्कि उनको वहुत कलात्मक शेली स एक दूसरे मे विलीन भी कर दिया हे। रोचक यह हे कि इन सारे प्रयासा का मूल वुद्धि ओर अववोध या सकल्प पर अवस्थित नही। इसमे वह स्वयभू रवानी हे जो अपनत्व के भाव से उत्पन्न होती हे आर जिसका प्रभाव सदेव रहता है।

उर्दू नज्म मे फेज का यह तरीका कि सामाजिक या आर्थिक यथार्थ स पाठक को परिचित कराने ओर उसे बेहतर भोतिक जीवन की झलक दिखाने के लिए न्यूनतम समानता का ढग स्वीकार किया जाये, उर्दू साहित्य के लिए विल्कुल नया था। आर्थिक ओर राजनीतिक जागरुकता के युग म उसकी भावनात्मक अपील इतनी अधिक थी कि उसे देखते-दखते न सिर्फ उन्ह जनता म बेहद लोकप्रियता हासिल हुई बल्कि शायरो के एक पूरे समूह ने भी इस खास मेदान मे फैज का अनुसरण शुरू कर दिया। फेज स पहले रूमान ओर यथार्थ के अलग-अलग ख़ाने थे। एक दिल की आवाज थी ओर उसम नाजुक भावनाओ और सवेदनाआ की छविया थीं। दूसरी बुद्धि की आवाज थी ओर उसके सामने उन्नति सुधार और जनता को जागरूक करने का सकल्प निहित था। पहली स्थिति ने शायर को जीवन के यथार्थ से हटा कर रूमान आर प्रेम के दुर्ग म सीमित कर दिया था ओर दूसरी स्थिति ने शायर को भाव ओर सवेदना से विमुख करके ऐसी शायरी की ओर उन्मुख कर ल्यिा था कि जिसमे बाहरी आदोलन का प्रतिविब ही सब कुछ था ओर जिसकी नीव उस लालित्यपूर्ण प्रतिक्रिया पर अवस्थित नही थी जो शेर के लिए नितात आवश्यक ह। फज ने इन दानो स्थितियो को सम्मिश्रित किया और पाठक को रूमान के सुगधित वातावरण से गुजार कर यथाथ की चट्टाना तक पहुचाया। जब पाठक का जीवन के आरोह अवरोह से परिचय हा गया ओर वह वर्तमान को एक विल्कुल नयी रोशनी म देखने की क्षमता से परिचित हो गया तो उसन पाठक का ध्यान सधि युग की एक ऐसी मजिल की ओर आकर्षित किया जहा पहुच कर वकोल शायर गम आर खिन्नता के धुधलके छट जायगे आर मनुष्य को एक नयी जिदगी हासिल हो जायेगी।

जसा कि पहले भी जिक्र हुआ कि फेज की यह आवाज उर्दू नज्म के लिए विल्कुल नयी थी आर वहुत स शायरा ने उसका खुलकर अनुसरण भी किया। साहिर के यहा विशेपत फेज ही की प्रतिध्वनि सुनायी देती हे। *तल्ख़िया* का शायर भी रूमान से अपनी यात्रा का आरम्भ करता है आर रूमान तथा यथार्थ क परस्पर सवधा पर उसका समापन होता हे। साहिर के अलावा मजाज जा निसार अख़्तर ओर अन्य शायरा के यहा भी लगभग यही ढग अपनाया गया ह। असख्य उर्दू शायर ह जो *नक्शे फरियादी* के प्रकाशन स लेकर आज तक इस विशिष कायशेली ओर वुद्धि एव अववाध की इस विशेष शेली का अधाधुध

अनुसरण करते आये है। लेकिन अफसोसनाक बात यह हे कि खुद फैज भी अब रुक से गये ह और उन्होंने सोचने के इस खास अदाज ओर दृष्टिकोण की इस खास प्रवृत्ति से आगे कदम नहीं बढाया। *नक्शे फ़रियादी* की इस प्रवृत्ति की प्रतिध्वनि *दस्ते-सबा* और *जिंदानामा* मे भी सुनायी देती ह। यही चीज है जिसने फैज के काव्यात्मक विकास को हानि पहुचायी है।

सक्षेप मे कह सकते है कि *नक्शे फ़रियादी* म फैज ने एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया ह जो तीन मुखर तत्वो से मिलकर बना हे। इस दृष्टिकोण का पहला तत्व हे रूमान मे यथार्थ की ओर विचलन। इस विचलन म फैज ने जिस कलात्मक अतर्दृष्टि का प्रमाण दिया है, ऊपर उसका उल्लेख हुआ हे। लेकिन ये विचलन *नक्शे-फ़रियादी* की नज्मो तक सीमित नहीं। *दस्ते-सबा* आर *जिंदानामा* की बहुत सी नज्मा म भी शायर ने उसी 'विचलन' को बार बार प्रस्तुत किया है। 'दो इश्क', 'तुम्हारे हुस्न के नाम', *ए हबीब अबर दोस्त*, 'मुलाकात' आर 'हम जो तारीक राहो मे मारे गये' म प्रेम ओर सौंदर्य का आलबन लेकर यथार्थ के प्रकटीकरण की यही प्रवृत्ति मिलती है जिसका आरभ *नक्शे फ़रियादी* मे किया गया था। फैज के दृष्टिकोण का दूसरा तत्व है वर्तमान का अवबोध। यहा फैज ने समाज के आरोह-अवरोह अथात विशेष रूप से भौतिक आर आर्थिक असमानता का पर्दाफाश किया है। इस तत्व का आरभ भी *नक्शे-फ़रियादी* से होता है आर *दस्ते-सबा* आर *जिंदानामा* म उसकी प्रतिध्वनिया निरतर सुनायी देती ह। ये चद टुकडे देखिये

इन दमकते हुए शहरो की फरावा मख़लूक
क्यो फकत मरने की हसरत मे जिया करती है?
ये हसी खेत फटा पडता है जोबन जिनका
किस लिए इनमे फकत भूक उगा करती ह?

—'मौज़ूए सुख़न' (*नक्शे फरियादी*)

ये गलियों के आवारा बेकार कुत्ते
कि बख़्शा गया जिनको जौके-गदाइ
जमाने की फटकार सरमाया उनका
जहा भर की धुतकार उनकी कमाइ

—'कुत्ते' (*नक्शे फ़रियादी*)

जिस्म पर कैद ह जज्बात पे जजीर है
फ़िक्र महबूस है गुफ्तार पे ताजीर ह
अपनी हिम्मत ह कि हम फिर भी जिये जाते ह
जिदगी क्या किसी मुफ्लिस की कबा है जिसमे
हर घडी दर्द के पैबद लगे जाते हैं

—'चद रोज आर मेरी जा'

नादारी, दफ्तर, भूक आर गम
इन सपनों से टकराते रहे
बेरहम था चौमुख पथराओ
ये काच के ढाचे क्या करते

—'शीशों का मसीहा कोई नहीं' (*दस्ते सबा*)

दूर जाती हुई फिरी ताने वजार कृग्म
जर्द फाका क सताय हुए पहर वाले
अहले जिदा क गजवनाक खरोशा नाले
जिनकी वाहा में फिरा करत ह वाहे डाल

— जिदा की एक सुव्ह' (दस्ते सवा)

सब्जा सब्जा सूख रही है फीकी जर्द दुपहर
दीवारो को चाट रहा है तन्हाई का जहर
दोरे-उफक तक घटती वढ़ती उठती गिरती रहती है
कुहर की सूरत वे रौनक दर्दों की गदली लहर

—'ऐ रौशनिया के शहर' (जिदानामा)

फेज के दृष्टिकोण का अंतिम तत्व हे जागरूकता। उज्जवल भविष्य का आशावादी तत्व भी *नक्शे-फरियादी* मे पहले-पहल उभरा था ओर इसकी प्रतिध्वनि भी *दस्ते-सवा* और *जिदानामा* म साफ-साफ सुनायी देती हे। सामान्य सा अतर यह हे कि *नक्शे-फरियादी* म फ़ेज ने वर्तमान के यथार्थ को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया। इस स्थिति के कारण पराजय ओर निराशा की भावना अपेक्षाकृत अधिक हावी हो गयी थी। लेकिन *दस्ते-सवा* ओर *जिदानामा* मे फेज न खुल्लम खुल्ला वगावत को हवा दी हे ओर इन सकलना मे पराजित सवेदनाए आशा की लो से दमकती हुई दिखायी देती हे। अतत वगावत की रा आर भविष्य की ओर आख उठाने की यह प्रवृत्ति किसी क्रमिक विकास का परिणाम नहीं वल्कि *नक्शे फरियादी* में उभरने वाले दृष्टिकोण ही का प्रतिविव है। ये कुछ पंक्तिया इसका प्रमाण हे

वेफिक्र धन दौलत वाले
ये आखिर क्यों खुश रहते हे
उनका सुख आपस मे वाटें
ये भी आखिर हम जेसे हे
हमने माना जग कडी है
सर फूटेगे खून वहेगा
खून म गम भी बह जायेगे
हम न रहे गम भी न रहेगा

— सोच (*नक्शे फरियादी*)

लेकिन अब जुल्म के मीआद के दिन थोडे है
इक जरा सब्र कि फरियाद के दिन थोडे है

—'चद रोज ओर मेरी जान' (*नक्शे फरियादी*)

रात का गर्म लहू और भी बह जाने दो
यही तारीकी तो है गाजाए रुख्सारे सहर
सुव्ह होने को है अब ऐ दिल वेताब ठहर

— ये दिले बेताब ठहर

नक्शे फ़रियादी की इन नज्मो मे सोये हुए इनसान को जगाने, उसे अत्याचार का एहसास दिलाने की कोशिश भी है और भविष्य की ओर शायर का रुझान भी स्पष्ट है। यह चिंतन दूसरे संकलनो में भी इसी तरह कायम रहता है

अभी गीराई ए शब मे कमी नही आयी
नजात-दीदा-ओ दिल की घडी नही आयी
चले चलो कि वो मंजिल अभी नही आयी

—'सुब्हे-आजादी' (दस्त-सबा)

ये हाथ सलामत है जब तक, इस खू मे हरारत है जब तक
इस दिल मे सदाकत है जब तक इस नुत्क मे ताकत है जब तक
इन तौको-सलासिल को हम तुम सिखलायेगे शोरिश बरबता ने
वो शोरिश जिसके आगे जबू हगामए-तबले-कैसरू के

—'दो आवाजें' (दस्त सबा)

गर आज तुझ से जुदा हैं तो कल बहम होंगे
ये रात भर की जुदाई तो कोई बात नही
गर आज औज पे है तालए रकीब तो क्या
ये चार दिन की खुदाई तो कोई बात नही

— निसार मै तेरी गलियो पे' (दस्ते सबा)

ये गम जो इस रात ने दिया है
ये गम सहर का यकीं बना है
यकीं जो गम से करीब तर है
सहर जो शब से अजीम तर है

—'मुलाकात' (जिदानामा)

जो न हो अपने कबीले का भी कोई लश्कर
मुतजिर होगा अधेरे की फसीलो के उधर
इनको शोलों के रजज अपना पता तो देगे
खैर हम तक वो न पहुचे भी मदा तो देगे
दूर कितनी है अभी सुब्ह बता तो देगे

— दर्द आयेगा दबे पाव' (जिदानामा)

आशा की यह लौ जो *दस्त-सबा* और *जिदानामा* मे उभरी है, जो केवल इन संकलनो तक ही सीमित नहीं। वास्तव मे फ़ैज का सारा कलाम एक 'इतजार' की व्याख्या है। मानसिक विश्लेषणकर्ताओ के लिए यह एक विचार करने का क्षण है कि वे *नक्शे फ़रियादी* की शुद्ध रूमानी नज्मो की उस प्रतिष्ठित स्थिति का अवलोकन करें जो 'इतजार इतजार' और मुसलसल इतजार' पर आधारित है और फिर उसके इस रूप का अध्ययन करें जब यह श्रेष्ठता प्राप्त कर प्रेयसी के लिए निरतर प्रतीक्षा के बजाय एक चमकती हुई उषा की प्रतीक्षा मे बदल जाती है। यह परिवर्तन पहले पहल *नक्शे फरियादी* ही मे उद्भूत होता है। 'हम लोग', 'तन्हाई', 'ए दिले बेताब ठहर' और अन्य नज्म इसका प्रमाण है। *दस्ते सबा* और *जिदानामा* मे

भी यह स्थिति बराबर कायम रहती हे। इस विशेष सदर्भ मे भी फ़ेज की प्रयत्नशील प्रवृत्ति *नक्शे फ़रियादी* तक ही सीमित है।

उपर्युक्त विश्लेषणात्मक अध्ययन इस बात का पमाण हे कि फ़ज ने *नक्शे फ़रियादी* म जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था, *दस्ते-सबा* और *जिदानामा* मे भी वह उसी की अभिव्यक्ति और प्रसार म लगे रहे हे। ऐसा नही है कि फ़ेज का यह दृष्टिकोण अनुचित हे। सपूर्ण विश्व इस विचारधारा की उपादेयता का स्वीकार करता हे। कोन हे जो अत्याचार, गुलामी ओर शोषण की हिमायत करेगा। लेकिन फ़ज का उत्तरदायित्व शायर का हे, समाज सुधारक या राजनेता का नही। नेता या सुधारक के लिए एक विशेष दृष्टिकोण की लकीर पर जमे रहना अत्यावश्यक हे जबकि शायर परिपक्वता, निरतर रचनात्मक क्रियाशीलता ओर क्रमिक विकास की ओर उन्मुख रहता हे। उसके लिए किसी स्थान विशेष पर हमेशा हमेशा के लिए रुक जाना उसकी शायरी के लिए लाभप्रद नही होता। *नक्शे-फरियादी* के बाद फ़ज के यहा जो ठहराव, एक रुकी-रुकी सी मन स्थिति मिलती है, दृष्टिकोण क ठहराव ही का परिणाम है और इससे (कम से कम अस्थाई रूप से) फ़ेज के रास्ते मे दीवारे खडी हो गयी ह।

ओर अब उन आपत्तियो के तौर पर कुछ ऐसी बाता की चर्चा होनी चाहिए जो प्रत्यक्षत आलाच्य विषय स सबधित नही लेकिन जिनके प्रकाश मे विषय की बेहतर परख सभव ह।

अनुभव सिद्ध है कि सास्कृतिक उन्नति, सामाजिक सगठन और सामूहिकता के आदोलन के एक काल विशेष के बाद एक ऐसी स्वाभाविक प्रतिक्रिया सामने आती है जिससे व्यक्ति की वेयक्तिकता स्पष्ट होती हे और वह समूह की यात्रिक प्रक्रिया से विचलित होकर नवीन कार्यशेली का प्रमाण देता ह। यही सस्कृति का आरभ हे। सस्कृति का हर दौर गोताखोरी का दार होता हे। मुनष्य आत्माभिव्यक्ति की प्रक्रिया से अपनी थमी हुई मानसिक क्षमताओ ओर सवेदनात्मक दक्षता का नवीनीकरण करता हे ताकि सामाजिक विकास की दौड म अगला महत्वपूर्ण कदम उठा सके। अत सस्कृति भी सामाजिक सगठन ही की एक प्रक्रिया है। सस्कृति का बहाव हर बार एक उच्चतर धरातल तक पहुच जाता ह और इसके बाद जो सामाजिक और सास्कृतिक सगठन अस्तित्व मे आता हे, निसंदेह उसकी सतह भी पहले से उच्चतर होती है।

सभ्यता ओर सस्कृति की यह कशमकश और सश्लेषण ऐतिहासिक महत्व रखता हे। हर सभ्यता और सस्कृति की उन्नति एक स्थान विशेष पर पहुचने के बाद अवनति की ओर अग्रसर हो जाती है ओर क्रमश अपन प्रतिष्ठित बिदु से हटती चली जाती है और सस्कृति की एक नयी उमग बढकर उसे सहारा देती हे। सस्कृति स्वय व्यक्ति के प्रयासो ओर उसकी गुप्त क्षमताआ की पेदावार है। वह सदेव अपने भीतर से एक बेहतर ओर उच्चतर सस्कृति को जन्म देती है।

सस्कृति और सभ्यता का यही सश्लेषण एक बडे अजीब अदाज से शायरी मे भी दृष्टिगोचर होता हे। जब शायर की जिदगी मे कोई ऐसी रोचक घटना घटती है कि वह सभा समारोह से विलग और विरक्त होकर अपने 'स्व' के समुद्र म उतर जाता है तो उसकी रचना मे भी एक अद्भुत आकर्षण ओर क्षमता उत्पन्न हो जाती हे। उसकी रचना प्रक्रिया म एक स्वनिर्मित शेली झलकने लगती हे। यह कार्यशेली सस्कृति के विकास से साम्य रखती ह। जब कुछ समय के बाद शायर की यह नवीन भावनात्मक ओर मानसिक सोच की सतह जनसामान्य तक पहुचती ह (अर्थात जब अधानुकरण से इस नयी आवाज के बहुत स नाज़ीले किनारे भोथरे हो जाते ह) ता यह अपना आकर्षण और क्षमता तेजी से खाने लगती है।

मानो सभ्यता ओर समाज की परिसीमाआ मे आकर यह आवाज स्थिर होन लगती ह। एक महान शायर एस समय म एक नयी रचनात्मक प्रक्रिया द्वारा किसी नयी अभिव्यक्ति से शेर को एक नया भावनात्मक आर मानसिक आधार प्रदान करता हे। अपनी इस प्रक्रिया क फलस्वरूप शायर समाज को भी एक उच्च मानसिक धरातल पर ले आता हे। एक अच्छे शायर की जिदगी म थोडे-थाडे विराम के वाद यह रचनात्मक प्रक्रिया वरावर चलती रहती ह। विल्कुल वस ही जसे जीवन की विस्तृत व्यवस्था म सस्कृति की नित नयी लहरें उद्भूत होती रहती हे।

उपर्युक्त आपत्तियो के प्रकाश में फ्ज की नज्मनिगारी का जायजा इस गुत्थी का खोलता ह कि आरभ म फ्ज की जिदगी म रोचक घटना घटित हुई थी आर शायर को जिस भावनात्मक आवग स दा चार होना पडा था उसके नतीज म फ्ेज क यहा एक ऐसा मानसिक धरातल उत्पन्न हुआ जो इसस पहले मोजूद नहीं था। फेज का सवसे वडा कारनामा यह हे कि उन्होंने न सिर्फ यह नया धरातल पेदा किया वल्कि एक क्षण म अपने समाज को भी एक अधोगामी मानसिक धरातल से ऊपर उठा कर एक नये धरातल पर वे ले आये। *नक्शे फ़रियादी* *फेज के इस कारनामे का सवूत ह लेकिन उसके वाद एक लवे* समय के लिए खामोशी छा जाती हे। खुद फज को इन दिना मे अपनी रचनात्मक क्षमताओ पर ठहराव का एहसास होने लगा था। अत उन्हाने *नक्शे फरियादी* की भूमिका मे साफ-साफ लिख दिया, 'शेर लिखना जुर्म न सही लेकिन विना वजह शेर लिखते रहना ऐसी वुद्धिमानी भी नहीं। आज से कुछ वरस पहले एक निश्चित भाव से प्रभावित शेर स्वय होते थे लेकिन अव लिखने के लिए सोचना पडता हे।' यह अस्थायी ठहराव हर शायर की जिदगी म कई वार आता हे। लेकिन हर वार उसे जव एक नयी रचनात्मकता का पडाव मिलता है तो वह अस्थायी ठहराव के धरातल से ऊपर उठ आता हे। लेकिन फैज के कलाम को यह नया रचनात्मक आवेग न मिल सका। अत *नक्शे फरियादी* ओर *दस्ते-सवा* के मध्यकाल म उन्होने समवत केवल दा नज्म लिखीं। इनम से एक नज्म 1947 के हादसे से सवधित हे। चूँकि शेर म क्षमता ओर प्राण हे इसलिए नज्म भी उच्च कोटि की हे। दूसरी नज्म 'दूसरी आवाजे' एक विवेकशील प्रयास है आर इसमें अपनत्व की कमी ह। फ्ेज की शायरी म इस लवे ठहराव की समाप्ति शायर की जिदगी के दूसरे वडे हादसे पर होती हे। गिरफ्तारी और जेल के इस हादसे का अव एक ऐतिहासिक महत्व ह। लेकिन ऐसा महसूस होता हे कि सवेदनात्मक और भावनात्मक तोर पर यह हादसा शायर के जीवन के पहले हादसे से कही कम महत्वपूर्ण था। शायद इसीलिए यह हादसा शायर की रचनात्मक क्षमताआ को पूरी तरह न उकसा सका। केद होन के वाद फ्ेज के लिखने की रफ्तार तेज हो जाती है। उसका एक कारण तो तहरीके-शेर है जो अगर पूरी तीव्रता की पक्षधर नही, तव भी एक तहरीक तो हे। दूसरा कारण सभवत यह ह कि जेल के लवे अकेलेपन ओर खाली समय को 'कुछ न कुछ करने की भावना का साथ देना पडा ह ओर फ्ेज लिखते चले गये ह। लेकिन *दस्ते-सवा* और *जिदानामा* मे किसी नये धरातल का अस्तित्व मे न आना इस वात की दलील हे कि जेल यात्रा मे वह भावनात्मक तीव्रता नही थी जो *नक्शे फरियादी* मे थी। इसलिए समग्रता से इन दोनो सकलनो मे *नक्शे फरियादी* म उभरने वाले दृष्टिकोण ही का प्रतिवव दिखायी देता हे। यह ठीक ह कि इस दृष्टिकोण के कुछ ऐसे पक्ष जो *नक्शे फरियादी* मे पूरी तरह नहीं उभरे थे, *दस्ते सवा* और *जिदानामा* मे पूरी तरह उभर आये ह। यह भी ठीक है कि कुछ पक्ष जो *नक्शे फ़रियादी* मे स्पष्ट थे, वाद के सकलना मे अपभ्राकृत छुपे हुए मिलते ह। लेकिन समग्र रूप से दृष्टिकोण की सीमा मे कोई परिवर्तन दिखायी नही पडता।

नवक्लासिकीयत और तरक्क़ीपसंदी मे मिलाप बिंदु की तलाश

शमीम हनफ़ी

फ़ेज की शायरी के बारे मे जब भी कुछ सोचना चाहा, एक सवाल खामोशी से सामने आ खडा होता ह। यह कि क्या सिर्फ जज्बे और एहसास की मदद से, लबी उम्र पाने वाली किसी शायराना अनुभूति की खोज हो सकती हे? यह एक परेशान करने वाला सवाल हे क्योकि वह शायरी, जिसे हम बडी शायरी कहते है, आमतोर पर केवल सवेदनाओ और भावनात्मक घटनाओ के बयान तक सीमित नही रहती। इकबाल के सदर्भ मे इस मसले का जायजा लेते हुए, सलीम अहमद ने लिखा था कि खरी भावना ओर खरा ज्ञान रचनात्मक अनुभूति मे किसी न किसी सतह पर एक हो जाते हे, उनम फर्क बाकी नही रह जाता। इसीलिए इकबाल की शायरी मे अनुभूतिविचारात्मक आधार और इससे जुडी सवेदनात्मक कैफ़ियता की नीव एक दूसरे को सहारा देती है। उनकी शायरी को हम न तो सिर्फ विचारा के एक सग्रह के रूप मे देखते है, न ही ये शायरी सिर्फ एहसास के दायरे मे गर्दिश करती है। फेज खुद भी इकबाल के बहुत कायल थे, ओर एक ऐसे दोर मे उन्होने इकबाल के प्रति अपनी आस्था का इजहार किया जो प्रगतिशील लेखको के जज्बाती उबाल ओर विचारात्मक अतिवाद का दोर कहा जा सकता ह। इसलिए क्या अख्तर हुसेन रायपुरी ओर मजनू गोरखपुरी और क्या सरदारी जाफरी, क्लासिकी शायरी पसद करने के बावजूद उनम से किसी भी आलोचक ने इकबाल की शायरी का हक अदा नही किया। जबकि इकबाल की मोत पर फेज ने जो व्यक्तित्व आधारित 'मसिया कहा हे, उन पक्तियो मे इकबाल के समग्र रचनात्मक व्यवहार, उनकी शायराना अलग पहचान की सच्ची तारीफ आर व्याख्या के बहुत से बिदु भी छिपे हुए है। इस नज्म के कुछ मिसरो को गोर से पढने की जरूरत हे। मिसाल के तौर पर पहले बद के ये चार मिसरे

आया हमारे देस मे इक खुशनवा[1] फकीर
आया और अपनी धुन म गजलख्वा गुजर गया
थी चद ही निगाह जो उस तक पहुच सकी
पर उसका गीत सबके दिला में उतर गया

---

1 अच्छी आवाज

ओर उसके याद नज्म का तीसरा यद

> उस गीत क तमाम मोहासिन[2] है लाजवाल[3]
> उसका वफूर[4], उसका खरोश[5], उसका साज-ओ साज[6]
> यह गीत मिस्ले शाल ए-ज्वाला[7] तुद-आ-तेज[8]
> उसकी लपक से वादे फना[9] का जिगर गुदाज[10]
> जैसे चराग वहशते सर सर[11] से वेखतर
> या शम्म ए वज्मे सुव्ह[12] की आमद[13] से वेख़बर

इस नज्म मे शायरी, ख़ास कर इक़वाल की शायरी के जिन तत्वा की अहमियत पर जोर दिया गया है, उन्हे मुख़्तसर यू वयान किया जा सकता ह

1 इक़वाल की शायरी की पहली ख़ूबी उनकी ख़ुशनवाई है यानी वह गाने लायक़ आवाज जिसने वयानिया शायरी को कलात्मक ऊचाई तक पहुचाया।
2 इकवाल की शायरी म सूफियाना और कलदरी का एक माहोल भी समाया हुआ है, उनकी शायरी सिर्फ हमारे दिमाग से ही रिश्ता कायम नहीं करती, वल्कि हमारी संवेदनाआ पर भी असर डालता ह।
3 इकवाल की शायरी की विशेपताओं तक पहुच पाना हर एक के बस की बात नहीं है। लेकिन उनका जादू सब पर चलता हे।
4 इकवाल की शायरी की खूवियो मे सव से नुमाया हैसियत उसके जज्वाती वफूर, उसके ख़रोश ओर उस की शो'ला सामानी की हे।
5 यह शायरी अपने अदर कभी न मिटने वाली ओर हमेशा ही जिदा रहने के पहलू भी रखती है।
6 यह शायरी अपनी रक्षा आप करती हे। इस पर वक्त के किसी खास सदर्भ की केद नहीं है। शायरी की प्राथमिकताए या रुझान की तब्दीली इस शायरी का कुछ नहीं विगाड सकती।

विचारो के शोर के दौर म उर्दू की क्लासिकी शायरी, ओर ख़ास तोर पर इकबाल की शायरी के सिलसिले म जो आक्रामक रवेये सामने आये (अख़्तर हुसेन रायपुरी, अली सरदार जाफ़री) उन्हे देखते हुए फ़ेज के

---

2 ख़ूबिया
3 न मिटने वाला
4 जोर
5 शोर
6 दुख और सगीत
7 आग की लपटो की तरह
8 सख़्त और तेज
9 खत्म कर देने वाली हवा
10 दिल पिघला देने वाला
11 हवा का पागलपन
12 सुवह की महफिल का चिराग यानी सूरज
13 आना

रचनात्मक विवेक के साथ-साथ, उनके आलोचनात्मक विवेक का भी एक बहुत बेहतर और तरक्कीयाफ्ता नक्शा बनता है। अपने एक लेख ('इकबाल अपनी नजर मे') म इकवाल की शायरी की रोशनी मे फैज ने उनकी जो छवि तलाश की है, उसम एक विरह मे डूबे हुए प्रेमी के दु ख-दर्द और उसकी ख़्वाहिशे है। बादशाह जैसी शान आ शौकत, फकीरो जैसी नर्मदिली, सूफियो जैसी बेनियाजी, भाई जैसी मुहब्बत और दोस्तो जैसी मुरव्वत हे। जैसे फेज शेरो की मदद से शायरी की जो तस्वीर पेश करते है, उसकी वे खूबिया नही हे जिन पर उनके प्रगतिशील समकालीन जोर देते थे। *मीजान* मे फैज के गद्य लेखा को सकलित किया गया है। उनमे जगह जगह ऐसे इशारे विखरे हुए है जिनसे फेज की प्राथमिकताए ओर शायरी या शायर की शख़्सियत की तरफ फैज के रवये का अदाजा लगाया जा सकता है। व्याख्या के लिए कुछ मिसाले देखिए

> हर वह चीज जिससे हमारी जिदगी मे लुत्फ या लताफत या रगीनी पेदा हो, जिसका हुस्न हमारी इसानियत मे इजाफा करे, जिससे कथार्सिस हो, जो हमारी रूह को गीता से भर दे जिसकी आवाज से हमारे दिमाग को रोशनी ओर चमक हासिल हो, सिर्फ हसीन ही नहीं मुफीद भी है। इसी वजह से तमाम गाने लायक साहित्य (वल्कि तमाम अच्छी कलाए) हमारे लिए इज्जत के काबिल है। यह फायदामदी सिर्फ एसी रचनाओ का एकाधिकार नही है जिनमे किसी दोर क खास राजनीतिक या आर्थिक मामला की सीधी विवेचना की गयी हो।
>
> (मजमून 'शायर की कद्रे *मीजान* पेज न 32)

> उपमा या रूपक मजिल नही, रास्ते है और रास्ते की अहमियत महज मजिल की वजह से होती ह ओर अगर एक मजिल ही अहम नही है तो उसका रास्ता भी यकीन के लायक नही होगा। शायर या लिखने वाले की मंजिल तो उसका विषय या खयाल है ओर अगर यह मंजिल बिलकुल वजर है तो रास्ते की रगीनी उसे दिलफरेब नही बना सकती।
>
> (मजमून 'हमारी तनक़ीदी इसतलाहात *मीजान* पेज न 42)

> किसी तहरीर की रवानी का अल्फाज के प्रकार से बहुत कम सबध है। अगर खयाल लिखन वाले के जेहन में साफ है और उसने उसे आराम से आप तक पहुचा दिया हे तो उसकी तहरीर मे फारसी के बजाय लातीनी सरचनाए हो तो भी हम उसे आसान ही कहेगे।
>
> (सदर्भ उपर्युक्त, *मीजान* पेज न 43)

> कलात्मक रचना के सभी तत्व अहम हे। परीक्षण भी अनुभूति भी जज्बा भी कल्पना भी आर विचार भी। शिल्प ओर अभिव्यक्ति की क्षमता भी, लेकिन इनमे प्राथमिकता यकीनन कल्पनाशीलता ही को हासिल है।
>
> (मजमून फन्नी तख़लीक़ ओर तख़य्युल, *मीजान* पेज न 54)

> तख़य्युल वह रहस्यमय चीज है, जिससे (कलात्मक रचना के) मुर्दा तन में जान पडती है। इसे आप दमे ईसा (ईसा मसीह की मुर्दे म जान डालने की सलाहियत) तसव्वुर कीजिए या कुन फेकुन (खुदा ने दुनिया बनाने के लिए यह शब्द कहे थे और दुनिया बन गयी थी)।
>
> (सदर्भ उपर्युक्त *मीजान* पज न 55)

> अच्छे साहित्य मे विषय और कहने की शैली एक ही शय के दो पहलू होते हे और उनम दुई का तसव्वुर गलत है। अल्फ़ाज ओर उनके मा नी अलग-अलग या एक के बाद दूसरा नही आते एक साथ ओर एक वक्त मे हम तक पहुचते हे।
>
> (मजमून 'माजू ओर तर्ज ए-अदा, *मीजान* पज न 69)

हमार जाती और आम अनुभवा क बहुत से पहलू ऐस है जिनक इजहार क लिए अब भी गजल ही सबस असरदार और सबस पसदीदा सिन्फ ए सुख़न है।

(मजमून 'जदीद फ़िक्र ओ ख़याल के तक़ाजे और गजल', *मीजान* पज न 113)

तमाम कलाकारा ओर हुनरमदा की पंक्ति म साहित्यकार की हैसियत सबसे ज्यादा भरासमद ही नहीं सबसे ज्यादा जिम्मेदार भी है। वह एक ही समय म अपनी कल्चर की रचना भी होता ह और रचनाकार भी, उसकी आयत भी ओर उसकी व्याख्या करने वाला भी, अपनी ही जात म अपने जमाने की तस्वीर भी ओर तस्वीर बनाने वाला भी।

(मजमून 'अदब आर सक़ाफ़त, मीजान, पेज न 127)

इक़लाबी शायर पर हुस्न-ओ इश्क़ या मय आर जाम हराम नहीं ओर उस पर ये हुक्म नहीं लगाया जा सकता कि वो इकलाबी विषया क अलावा अपने दूसरे अनुभवा आर दूसरी वारदाता का जिक्र ही न कर।

(मजमून जाश शायर इकलाब की हैसियत से, मीजान पेज न 210)

चूकि जाश ने अपने वर्गगत विचारा का व्यवस्थित नहीं किया इसलिए उनका नजरिया ए-इन्क्लाब भी एक हद तक सही नही ह। वो इन्क्लाब की कल्पना हमेशा किसान या मजदूर की नजर से नहीं बल्कि एक खुशहाल शहरी की नजर से करत ह जिसका नतीजा ये ह कि उनक शेर म इन्क्लाब एक हालनाक, डरावना ओर दहशतनाक घटना की सूरत इख्तियार कर लेता है।

(सदर्भ उपर्युक्त, *मीजान* पेज न 217)

आम इकलाबी शायर इन्क्लाब के बारे म गरजते हे, ललकारते ह, सीना कूटते है इन्क्लाब के बारे म गा नही सकते। उनके जहन मे इकलाब का तसव्वुर बिजली की तूफ़ानी कडक से बनता ह। हजार गीता और बहार की रगीनी की शक्ल नहीं। वो सिर्फ इकलाब की होलनाकी को देखते ह उसके हुस्न को नहीं पहचानते।

(मजमून 'आहग, मजाज के सग्रह का ताआरुफ़ *मीजान* पेज न 236)

इन लेखा (मशरिक़ व मगरिब के नगमे मीराजी) की निखरी हुइ पारदर्शी सतह पर उन अस्पष्ट परछाइयों आर निर्गुण परछाइया का कोई निशान नही मिलता जो उनके शेर की ख़ास केफियात ह। उनकी रचना का ये हिस्सा पूरी तरह से उसी अक्ल की सुरक्षा ओर रहनुमाई म लिखा गया है जिसे वे बजाहिर शायरी की प्रक्रिया के करीब नही फटकने दते। इन मजामीन का ठहराव बयान की रवानी और ख़याल की रवानी म उनका (मीराजी की साहित्यक जिन्दगी के शायद सबसे ज्यादा ओर शायद सबसे सुकून भरे दौर का) सुराग भी मिलता हे। ये दुख भरा एहसास भी होता ह कि अगर हमारे अहले फन की उजाड जिदगिया मे अदरूनी दर्द ओर दुख के अलावा जिस्म ओ-जा के तकाजे पर गली गली खाक छानना दर दर आवाज देना न होता तो शायद आधुनिक साहित्य की तारीख़ काफी अलग हाती ओर उसके कई दिलकश अध्याय इतने अधूरे आर सक्षिप्त न रह जाते।

(लेख 'मीराजी का फ़न (*मशरिक ओ मगरिब के नगमे* की प्रस्तावना) *मीजान* पेज न 253 54)

फज के आलाचनात्मक लेखा से लिये गये हर उद्धरण म कोई न कोई ऐसी बात जरूर कही गयी ह जिससे फेज के व्यक्तिगत विचारा का इजहार होता हे आर साफ पता चलता हे कि फेज आम प्रगतिशील लेखकों के विपरीत शर-ओ-अदब के मामलात म एक खास ढग की विद्वत्ता पर ज्यादा भरोसा करते थे। अदब म फायदमदी का तसव्वुर उनक नजदीक सियासी आर आथिक मसाइल क बयान का पाबद नहा था।

इसी तरह फज शायरी मे विषय वस्तु ओर सरचना की दूइ के कायल नही थे। व प्रगतिशील आदोलन से जुड रहने क बावजूद गजल की विधा को बीते हुए रक्त की बात नही समझत थे। इकलाबी शायरी का उनका तसव्वुर भी अपने हमखयाल शायरा स अलग न था। सब से खास बात यह हे कि फज पर प्रगतिशील नजरिया ए-अदब से मतभेद रखने वाले आर खुद प्रगतिशील समूह से भी बाकायदा तार पर हमले हुए। फेज, राशिद आर मीराजी जसे शायरो की अहमियत क भी मुन्किर नही थे। फेज क विचारो म लचक आर बहुत विस्तार था। साहित्य के प्रति उनका रवेया एकधुवीय नहीं था। अपने पहले की परपरा क सिलसिल म उनका अदाज ए नजर दुश्मनी वाला नही था ओर जेसा कि जोश मलीहाबादी, मजाज, मीराजी, राशिद क बारे म उनके विचारो से जाहिर होता ह, फेज उनमे इनिफाक करते हा या इख्तेलाफ किसी भी मामले म व अतिवादी नहीं थे। एक सोचा समझा धीमापन उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का हिस्सा बन गया था।

जाहिर हे कि फेज की सुलहपसदी न आर उसके साथ साथ गिरोही प्राथमिकताआ की सतह म ऊपर उठ कर विरोधी विचार के लागा का भी कुबूल करने की वजह से फज खुद अपने सहयागिया म भी थाडा बहुत शक की नजर देखे जाने लगे थे, ओर उन पर एतबार भी कम हो गया था। फेज के शायराना रवेया म जसा कि पिछले पृष्ठो पर उनके गद्य लेखा के सदर्भो से अच्छी तरह से स्पष्ट हे, उनम कोई बडी पेचीदगी नहीं है। फज की आम छवि की तरह उनके कलात्मक विचार भी एक सीधी सादी तार्किकता रखन ह। किसी हद तक सुलहपसदी भी। न म राशिद ने अपने एक इटरव्यू मे कहा था कि फज की शायरी *और जेहन मे एक किस्म क विचारात्मक आलसीपन न एक आवश्यक तत्व की शक्ल अख्तियार कर* ली थी। वह किसी भी समस्या के बारे मे गहराई से नही सोच सकते। उनकी तबीयत मे विश्लेषण की शक्ति लगभग नहीं के बराबर ह। हो सकता है सच्चाई यही हो, मगर इस 'खोज' पर खुश हाने स पहल यह समझ लेना चाहिए कि सच्चाई की व्याख्या का एक रास्ता एहसास से भी होकर गुजरता हे। बुद्धिमत्ता का स्तर प्रतिक्रिया की शक्ल म भी सामन आता ह। फज के मिजाज म बेशक गहराइ और दूरदर्शिता की तलाश की कमी थी। इसलिए अपने गद्य ओर पद्य मे भी फेज किसी गर मामूली बिंदु की तलाश मे फिरते नजर नहीं आते। व चीजों को दखने ह। उनसे एक अनुभूति कुबूल करते हं, उस अनुभूति को अपनी शायराना दृष्टि म समा लेते ह, ओर बगर किसी दावपेंच की शेली ओर सुबह क उजाले की तरह धीरे धीरे फेलती हुई सुथरी, सुलझी, सोहनी भाषा म उस अनुभूति का बयान कर देत हैं। क्लासिकी शायर सादी की तार्किक शेली की फेज ने खूब तारीफ की हे। ख्वाजा हाफिज शीराजी की हेसियत भी फैज के लिए अपनी व्यक्तिगत शायराना दृष्टि के एक स्रोत के रूप मे थी। आर उनकी चेतना पर उर्दू की पुरानी क्लासिकी परपरा ओर फारसी परपरा का प्रभाव पूरी उम्र कायम रहा। उन्होने अपनी सामूहिक याददाश्त आर सास्कृतिक धरोहर से अलग होने का दावा कभी नही किया। जीलानी कामरान का ख्याल है *(उस्तान्जे की प्रस्तावना में) कि शायरो की 1940 के आसपास आखे खोलने वाली नस्ल का असल* मरहला अपन आपका 'शेरुल-अजम' के प्रभाव से महफूज रहने का था। उनका ख्याल यह भी हे कि फ़ैज और राशिद दोनो न अपनी तारीख क उस भूत स मुकाबिला नहीं किया, बल्कि उसके सामन आत्मसमर्पण कर दिया। दूसरी तरफ फेज राशिद को तो इस मामले म खतावार समझत ह और खुद को साफ बचा ले जाते ह। एक इटरव्यू (ताहिर मसूद य सूरतगर कुछ ख्वाबो के) के दोरान उन्होन कहा था

राशिद साहब की तो जबान फारसी है और निहायत मुश्किल फारसी। जिन लोगों को दोनों (अंग्रेजी और फारसी) जबान नहीं आती वे तो उन्हें समझ भी नहीं सकते। इसकी बड़ी वजह यह है कि राशिद साहब इस मुल्क (पाकिस्तान) में रहे ही नहीं। यहां के लोगों से उनका संपर्क कट गया। उनको यह मालूम करने का मौका ही नहीं मिला कि उनकी बात लोगों तक पहुंची या नहीं?

(ये सूरतगर कुछ ख़्वाबों के, पेज 30)

प्रगतिशील दौर और आधुनिक दौर की शायरी के आम पढ़ने वाले की मुश्किल यह है कि फैज को इनमें से किस मंजरनामे में स्थापित करें। किसी भी एक दौर के शायर के तौर पर उन्हें स्थापित करना आसान नहीं है। दरअसल फैज की शायरी से एक साथ तीन चेहरे झांकते हैं। एक तो नवक्लासिकीयत शायर का चेहरा है जो ख़याल और तजुर्बे की नयी आबो हवा में सांस लेता है मगर गुजरे हुए जमाना से अपना तआल्लुक नहीं तोड़ता। दूसरा समाजी जिम्मेदारी और कमिटमेन्ट का एहसास रखने वाले एक ख़ामोश इन्क्लाबी शायर का है जो वक्त की धुरी की तब्दीली के साथ सांस्कृतिक चेतना की तब्दीली के अमल को समझता तो है लेकिन अपने आप को बेक़ाबू नहीं होने देता और अपने हमख़याल शायरों ने भी उन पर इल्जाम लगाये। (कभी कभी ये इल्जाम गाली की हद तक पहुंच गये) और तीसरा चेहरा अपनी सीमित वफादारियों की कैद को तोड़ते हुए अपनी विचारात्मक प्राथमिकताओं और पूर्वाग्रहों को पार करते हुए एक समझौता जो शायर का है, जो बदलते हुए हालात की तह से निकलने वाली संवेदनाओं का प्रवक्ता बनने से नहीं डरता। फैज की मृत्यु पर अपनी नज्म (*और नज्मा* में शामिल, पेज 81 82) में जीलानी कामरान ने फैज को अपने एहसासात में शामिल खुशबू की एक लहर के तौर पर याद किया है

जा बसी अर्श[14] के कुरिये[15] में कहानी उसकी
एक महक दिल में है अब याद सुहानी उसकी

और इफ्तेख़ार जालिब जैसे आवारागर्द शायर और आलोचक ने *नयी भाषाई संरचना* की प्रस्तावना पेश करते हुए, शब्द के सामानपन (Thingness) के नमूने गद्य में मंटो की कहानियों से और शायरी में फैज के कलाम से बरामद किये थे। (याद कीजिए, फैज की नज्म, मंजर की विवेचना रहगुजर सायए शजर मंजिले-दौर, हलक़ए बाम)

बाम[16] पर सीनए महताब[17] खुला आहिस्ता
जिस तरह खोले कोई बंदे-कबा[18] आहिस्ता
एक पल तेरा चला फूट गया आहिस्ता
बहुत आहिस्ता बहुत हल्का ख़ुनक रंगे शराब
मेरे शीशे में ढला आहिस्ता
शीशओ-जाम सुराही तेरे हाथों के गुलाब

---

14 आसमान
15 गांव
16 कोठा
17 चांद
18 अंगरखा के बटन

जिस तरह दूर किसी ख़्वाब का नक्श[19]
आप ही आप बना आर मिटा आहिस्ता
वगैरह वगैरह।
(लेख नयी शायरी' मे शामिल, सपादन इफ्तेख़ार जालिब)

एक दूसरे से अलग ओर कभी कभी तो विरोधी ओर आपस म लडने वाले समूहो मे एक दूसरे से विरोधी ध्रुवा सी दूरी रखने वाले साहित्यकारो, अलग अलग जमाने के, जगहो के, विचारा के, सास्कृतिक पृष्ठभूमि रखने वाली पार्टियो के लोगो का, एक सा इरादे के साथ फेज को कुबूल करना अजीब बात है। तो क्या इससे यह समझा जाये कि फेज की शायरी अपना कोई तयशुदा मिजाज नही रखती या यह कि उनका अपना अलग रग नहीं है। ये कैसा लिबास है जो हर जिस्म पर ठीक बैठ जाता हे और फेज कही अजनबी और बेगाने नही दिखायी देते। फैज के शायराना मिजाज को सबसे पहले, उनके अपने करीबी समूह से बाहर फिराक़ ने पहचाना था और *उर्दू की इश्क़िया शायरी* (पहला सस्करण जनवरी 1945) म फेज की दो नज्मे 'रकीब से' ओर 'तनहाई' का जिक्र अतिशयोक्ति के साथ किया था। फिराक ने लिखा था

> प्रोफेसर फ़ैज अहमद फेज की नज्म जिसका शीर्षक 'रकीब से' ओर जो हुमायू के फरवरी 1938 के नबर मे निकल चुकी है उसका जिक्र जरूर करूगा मे बहुत कम अशआर गजलो या नज्मो के सबध म यह एहसास करता हू कि मेरे दिल ओ दिमाग का चूर निकला। लेकिन ये नज्म ऐसी ही नज्म थी। उर्दू की इश्क़िया शायरी मे अब तक इतनी पवित्र इतनी चुटीली आर इतनी दूरदर्शी और विचारात्मक नज्म वजूद मे नही आयी। नज्म नही है बल्कि जन्नत आर दोजख़ के एकत्व का राग है। शेक्सपियर गाएट कालिदास आर सादी भी इससे ज्यादा रकीब से क्या कहते, इश्क ओर इसानियत के ख़ूबसूरत सबध को समझना हो तो यह नज्म देखिए।
>
> (*उर्दू की इश्क़िया शायरी*, पेज 64 65)

ओर अब यह दूसरा कथन भी देखिए

> प्रोफेसर फेज का सग्रह *नक्शे फरियादी* के नाम से निकला ओर हालाकि बहुत सक्षिप्त था लेकिन इसका बहुत जबरदस्त असर हमारी शायरी पर पडा। फ़ेज ने चितन ओर एहसास की एक नयी तकनीक इसम दी जो इस दोर के प्रतिनिधित्व के लिए निहायत मुनासिब है। इसके मिसरा की लय म जो खटक या जमजमा है और उनकी सूक्तिया मे जो ताजगी और रवानी हे वह उनकी शेली मे एक रचनात्मक व्यक्तिगत विशेषता पैदा कर देती हे। फेज ने शायरी का एक नया स्कूल बनाया है। उन्होन जिस बुद्धिमत्ता बढाने वाली आर सवेदनशील ख़ुलूस ओर फनकाराना चाबुकदस्ती से इश्क़िया शायरी आर वारदात को दूसरे अहम समाजी मसाइल से सबधित करके पेश किया वह उर्दू की इश्क़िया शायरी म न भूल सकने वाला कारनामा हे और ये नज्म एक जिदा अमर क्लासिक है।
>
> (*उर्दू की इश्क़िया शायरी* पज 64 65)

इस तरह फेज साहित्य के आसमान पर एक शर्मीले कम बोलने वाले ओर बहुत सुघड किस्म के नोजवान प्रगतिशील शायर की हैसियत से उभरे थ। लेकिन उनकी पहचान एक रूमानी शायर की हेसियत से हुई। फेज क बारे म जो बजाहिर तारीफी लेकिन असल मे किसी हद तक एतराज करने वाले अदाज

19 नक्शा

की राय सामने आयी हे, मिसाल के तोर पर यह कि (अजीज अहमद के मुताविक) 'आशिका आर इन्क्लाव की सीमा रेखा जिसको वे पार करना चाहते हे, किसी तरह पार नही होती , ओर या यह कि 'उनकी शायरी इश्क और इन्क्लाव के वीच में लगातार भागते रहने की प्रवृत्ति वन गयी हे', या फिर राशिद की यह राय कि '*नक्शे-फ़रियादी* एक ऐसे शायर की गजलो ओर नज्मो का सग्रह हे जो रूमान आर हकीकत के सगम पर खडा हे' (प्रस्तावना *नक्शे-फ़रियादी*), तो इन राया म फेज की शायराना शख्सियत पर एक छुपे हुए व्यग के साथ साथ सच्चाई का एक तत्व भी शामिल हे। प्रोफेसर मुज्तवा हुसेन अपना प्रगतिशीलता के दभ मे यह फेसला सुना वेठे थे कि 'फेज की शायरी जहा ख़त्म होती हे, वहा स सरदार जाफरी की शायरी का आगाज होता है।' ओर खुद सरदार जाफरी भी कम से कम प्रगतिशीलता के सामने मे फ़ेज को अपने तो क्या, साम्यवादी यथार्थवाद के वहुत कमजोर आंर निचले दर्जे के प्रवक्ताआ (मिसाल के तोर पर केफी आजमी, मजर शाहजहापुरी) तक के वरावर का स्थान देने को भी तयार न थे (*तरक्कीपसद अदब*, प्रकाशन 1952)। वेशक फेज की शायरी मे दार्शनिक गहराई की कमी महसूस होती हे। मगर इस कमी को वे वडी हद तक अपने शायराना एहसास, पकड मे आने वाले अनुभव, गहरे जज्वाती सरोकार, अपनी मध्यम, मुलायम, मीठे लहजे और नगमगी की छलकती हुई शैली और अभिव्यक्ति की मदद से अपने ऊपर हावी नही होने देते। ये अनुभूतिया जिन्हे हम फेज के रचनात्मक व्यक्तित्व की वुनियादे कह सकते हे, उनके अक्सर समकालीन की नजर मे नापसदीदा ओर ऐव समझा जाती थीं और इस मामले मे म और तू का फर्क नही था। फेज के समकालीनो मे राशिद ने फेज का शायरी मे सजावटी तत्वा पर जितने वार किये हं उससे कम वार सरदार जाफरी ने नही किये ओर वाद के लिखने वाला म एक मशहूर आलोचक (डा वजीर आगा *नज्मे-जदीद की करवट*) ने फैज की शायरी को 'ठहराव की मिसाल करार दे कर हमेशा के लिए उस पर वुढापे ओर मिटने की तरफ़ वढ रही शायरी की मुहर लगा दी थी। राशिद का खयाल था कि फेज की सबसे वडी कमजोरी उनकी चितन की सुस्ती और मेहनत की कमी है। वे वडे दिमाग की ताकत से या तो महरूम है या उसे अच्छी तरह काम म नही लाते। इसीलिए राशिद ने ये भविष्यवाणी भी की थी कि वक्त गुजरने के साथ साथ फ़ेज की शायरी मे अनुभव की वाहरी चमक दमक कमजोर पडती जायेगी और ये शायरी आख़िरकार अपना आकर्पण खो वेठेगी। मे राशिद के शेरी समझ के फेलाव ओर उनकी विजली गिराने वाली कल्पनाओ की क्षमताआ का वहुत कायल हू ओर अपनी गिनती राशिद की शायरी के अकादमिक पाठको मे नही करता जो राशिद की फ़ारसी भरी जवान ओर उनके रचनात्मक अनुभवा के अस्पष्ट अर्थो पर इतना जोर देते हे कि राशिद की शायरी उनके हाथ से निकल जाती हे। खुद फैज भी राशिद की जवान पर फारसी के असतुलित प्रभाव को अच्छी नजर से नही देखते थे ओर अख्तरुल ईमान ने भी राशिद की आवाज मे वुलदी ओर जलाल के पहलू को उनका वडवोलापन समझा था। लेकिन फज की रचनात्मकता या चिनन के जो एतराज प्रगतिशील और गैर प्रगतिशीला न लगभग एक साथ किये उसे फेज की प्रतिदिन वढती लाकप्रियता की प्रतिक्रिया आर समकालीन प्रतिद्वंदिता के तोर पर भी देखना चाहिए। फेज की लाकप्रियता न उनके जमाने के वहुत से शायरा का परेशान आर खाफजदा भी किया। प्रगतिशील शायर, हलक़ए-अरवावे जौक़ (कलावादिया का समूह) के शायर क्लासिकी मिजाज व पसद के शायर और आलोचक (मिसाल के तार पर असर लखनवी आर रशीद हसन खा) यहा तक कि कुछ एस शायर आर आलोचक भी जा मजहवी रुझान रखत थे प्रगतिशील लखका स जिनकी विलकुल साफ दुशमनी थी, प्रगतिशील गद्य और पद्य म

जिन्हे कोइ खूबी नजर ही नही आती थी ओर फेज से जिनका वजाहिर विचारात्मक विरोध था। (मिसाल क तार पर सलीम अहमद) उन सबने फेज की विचारात्मक और भाषाई कोताहिया ओर कमजोरियो, सीमाआ की चेतना का प्रचार करने की जी तोड कर कोशिशे की। प्रगतिशीलता के परपरागत चितन के लिए हमदर्दी तो याकर मेहदी भी नहीं रखते थे, मगर फेज पर अपने लेख ('फेज एक नयी विवचना' सदर्भ शे'री आगही 2000) म उन्हाने एक महत्वपूर्ण बात कही हे कि 'फेज ने (अपनी नज्म) माजू ए सुखन म अपना जो कद्र तलाश किया था, उससे बहुत आगे कभी न गय आर इस तरह फेज ने अपन शायराना व्यक्तित्व को टुकडे टुकडे होने से बचाये रखा। दूसरे लफ्जा म यह कहा जा सकता हे फज क लिए इश्क क दोना कंद्र जरूरी थ, दोना स उन्हे एक सा जहनी आर जज्बाती लगाव था। गमे इश्क ओर गम राजगार, दोना उनके व्यक्तित्व की रचनात्मक सरचना के भाग थे। फज उनमे स एक को भी छाडने क लिए तैयार न थे। इसलिए वे अपने इस मिजाज से कभी अलग न हुए कि शायर को अनुभवा क चुनने म अपने आप पर ऊपर से कोई शर्त नही लगानी चाहिए। हर अनुभव चाहे वह इश्क का हा या सियासत का, ध्यान की किसी रूमानी लहर का हा या समाजी इसाफ से सबधित मसअला का, शायर का अनुभव ह। सज्जाद जहीर के नाम अपनी कैद के दोरान उन्होने लिखा था कि 'हमारा जी चाहेगा तो इश्किया शेर जरूर कहेगे। फेज ने बाहरी हुक्म के मुताबिक शेर कहने से हमेशा परहेज किया। इसलिए इब्तिदाई दौर की नज्म 'तनहाई' को लेकर डा तासीर की हास्यप्रद प्रतिक्रिया या 'सुबहे-आजादी' पर सरदार जाफरी के निहायत सजीदा एतराज, हास्य ओर तगनजरी के जो हालात बन गये ह उसकी असल वजह यही हे कि दोनो, फेज की शायराना समझ की खुद मुखतारी का एहतेराम करने के बजाय अपनी प्राथमिकताआ को उन पर लादना चाहते थे। दूसरी तरफ फेज के रचनात्मक आत्मविश्वास का यह हाल था कि न तो वे किसी एतराज का जवाब देते थे, न एतराज करने वालो के बारे मे बात करते थे, न ही शायरी के प्रति अपने विचारा की व्याख्या करते थे। फेज ने जवाब मे अगर कुछ किया तो बस यह कि बहुत सादगी के साथ एतराज करने वाले की बात मान ली लेकिन अपने रास्ते से जरा भी न डिगे। *नक्शे फरियादी* की नज्मे सग्रह के प्रकाशन (1941) से पहले चर्चा का विषय बन चुकी थीं। मगर सग्रह की प्रस्तावना मे अपने शायराना मिजाज ओर अपन रवैये के बारे म फैज ने कुछ कहा तो सिर्फ इतना कि 'इस सग्रह का प्रकाशन एक तरह से अपनी हार को कुबूल करना ह, इसमे दो चार नज्मे काबिल बर्दाश्त ह।' इन काबिल बर्दाश्त नज्मा म व दो नज्म 'तनहाइ' आर 'रकीब से' भी शामिल हे जिन्हे फिराक साहब विश्व-साहित्य की महान रचनाआ म शामिल करने को तैयार थे। इस सग्रह की दूसरी कई नज्मे (मिसाल के तार पर 'माजू-ए सुखन', 'हमलोग') नयी नज्म के विकास मे आज भी एक नाकाबिले फरामोश प्रयोग के तौर पर पर याद की जाती हे। 'तनहाई अपनी सरचना के लिहाज से नज्म के नये काव्यशास्त्र का नमूना कही जा सकती है। ओर जहा तक इस नज्म के काबू म आने वाले अनुभव, ओर इस नज्म की विचारात्मक गठन की बात ह तो बकोल रशिद 'मुर्जरिद तासीर' (अमूर्तन प्रभाव) की वजह से ओर डाक्टर तासीर के शब्दो म अपने साकेतिक माहोल की वजह से इसे हमेशा नयी नज्म मे सगे मील की हैसियत हासिल रहेगी। फेज न तो उन अर्थो मे बडे शायर कहे जा सकते ह जिन अर्थो मे हमारी सवेदनाए इकबाल से सबध स्थापित करती हे। न ही फेज बडी शान ओ शौकत वाले, महान ओर ख़ोफनाक अनुभवो वाले शायर हे। वे न तो बडे केनवस पर ब्रुश चलाते हे, न बेधडक स्ट्राक्स आर अभिव्यक्ति स काम लत है।

की राये सामने आयी ह
इन्क्लाब की सीमा रेखा
'उनकी शायरी इश्क और
की यह राय कि 'नक्शे-प
हकीकत के सगम पर खडा
पर एक छुपे हुए व्यग के स
प्रगतिशीलता के दभ मे यह
जाफरी की शायरी का आगा
मे फेज को अपने तो क्या, सा
के तोर पर कैफी आजमी,
(*तरक्कीपसद अदब*, प्रकाशन
है। मगर इस कमी को वे य
जज्बाती सरोकार, अपनी मध
अभिव्यक्ति की मदद से अपन
व्यक्तित्व की बुनियादे कह सक
जाती थीं ओर इस मामले मे म
शायरी मे सजावटी तत्वो पर जित
के लिखने वालो मे एक मशहूर अ
को 'ठहराव की मिसाल करार दे र
की मुहर लगा दी थी। राशिद का
ओर मेहनत की कमी हे। वे वडे ।
नहीं लाते। इसीलिए राशिद ने ये भ
मे अनुभव की वाहरी चमक दमक व
बैठेगी। मे राशिद के शेरी समझ क
वहुत कायल हू ओर अपनी गिनती
की फ़ारसी भरी जवान ओर उनके र
की शायरी उनके हाथ से निकल जा।
को अच्छी नजर से नहीं देखते थे अ
के पहलू को उनका 'वडवोलापन र
प्रगतिशील आर गर प्रगतिशीला ने
की प्रतिक्रिया आर समकालीन प्रतिद
जमाने के यहुत स शायरा को परेशान
(कलावादिया का समूह) के शायर, व
पर असर लखनवी और रशीद हसन
रुझान रखत थे प्रगतिशील लखक र

जा वजा विकते हुए कूचा-ओ बाजार मे जिस
ख़ाक मे लिथडे हुए ख़ून मे नहलाये हुए

ओर सलीम अहमद की परेशानी का सवव यह है कि 'अब भी दिलकश हे तेरा हुस्न मगर क्या कीजे' मे एक मोहताजे तफ़सील आर नुकसान न पहुचाने वाला लफ्ज 'मगर' शे'री अनुभूति की वेरहमी ओर सगीनी का सकेत है। यानी यह कि फेज के लिए 'जाने के लिए कोई जगह नही ओर पेर थक चुके ह,' दोना कोई न कोई मुश्किल खडी कर देते है। असल मे शायरी का अध्ययन करने वाला अपनी शर्तो, आदतो, जरूरतो ओर फायदे के हिसाव से करेगा तो इसी तरह के मसअले पेदा होते रहेगे। अनुभव की गतिशीलता फेज को अगर अपने केंद्र से आगे ले जाये तो गलत ओर अगर वह एक जगह पर ठहर जाये तो अनुभूतियो मे ठहराव का इल्जाम सामने हे, सच्चाई यह ह कि फेज की शायरी के साथ 'किसी जगह पर ठहरने की कोई जगह नही हे' वाला मामला है। उनका वेसव्र दिल एक केंद्र पर उन्हे ठहरने नहीं देता। फैज एहसासात की आती जाती लहरो के शायर ह एक अदरूनी वेचेनी की मारी हुई भटकती हुई आत्मा, जिसकी सुरक्षा का केंद्र कभी अपनी मोहब्वत बनती है तो कभी आसपास की दुनिया मे वसे हुए जानदारो की मोहव्वत। हालात या रुझान के इस दोरुखेपन से फैज को तो कोई परेशानी नही थी लेकिन एक केंद्रीयता पसद एतराज करने वालो के लिए डाइलेमा वन गयी। विचारात्मक आलोचना के उसूलों या अपनी व्यक्तिगत पसद और नापसद के मुताविक शे'र ओर साहित्य के अध्ययन म पढने वाले को असली दिलचस्पी रचनात्मक अनुभूति से नही बल्कि अपने आप से होती है आर वह सिर्फ अपनी हिमायत या अपने विव की तलाश की तमन्ना रखते है।

प्रगतिशील शायरी की परपरा का जायजा लेते हुए जीलानी कामरान ने (उस्तान्जे की प्रस्तावना 1957) मे लिखा था कि साम्यवादी समाज मे दिल की वीरानी का जिक्र मुमकिन नही और सिर्फ जमीनी दुख की कहानी एक अधूरी कहानी है। फेज की शायरी मे गम ओर अफसोस के तत्व तसल्ली ओर खुशी पर भारी पड़ते हे। ऐसा शायद इसीलिए है कि फेज सामूहिक दुख दर्द का वर्णन करने के वावजूद मूल रूप से रचनात्मक तन्हाई की अनुभूतिया से आम तोर पर अलग नही होते। उनका प्रतिरोध जिसके लिए वह इनसानो के एक समूह का प्रतिनिधित्व करते हे ओर सिर्फ अपनी जिदगी के पावद नहीं रह जाते, वडी हद तक एक दवे हुए वल्कि ख़ामोश प्रतिरोध की हैसियत रखता हे। वह ऊची ओर खुली आवाज मे वहुत कम वात करते है। जिन नज्मो मे उनकी आवाज काफी ऊची महसूस होती हे मिसाल के तार पर 'आ जाओ अफ़रीका' या जिदगी के आख़िरी दोर की नज्म 'हम देखेगे' लाजिम हे कि हम भी देखगे तो इस तरह की नज्मो म भी उदासी की एक लहर जोशीले जज्वात के साथ चलती हुई महसूस होती है

आ जाओ मेने धूल से माथा उठा लिया
आ जाओ, मैने छील दी आखा से गम की छाल
आ जाओ मैने दर्द से वाजू छुड़ा लिया
आ जाओ मैने नोच दिया वेकसी का जाल
आ जाओ अफ़रीका'
पजे में हथकड़ी की कड़ी वन गयी है गुर्ज
गरदन का ताक़ तोड़ के ढाली है मने ढाल

उनकी नाज़ुक तबीयत मीनाकारी वाला या पेंटिंग जैसी है जो संवेदनशील नुक्ता, रंग और रेखाचित्र की मदद से अपनी अद्भुत दृश्यों की रचना करती है और ठहर ठहर कर धीमे स्वर विचार के अंदाज़ में अपने समय और जीवन की ताज़गी कहती है। एक इंटरव्यू के दौरान फैज़ ने यह व्यक्तिगत बयान दिया था कि उनकी नज़र में अपनी सबसे पसंदीदा नज़्म 'हम जो तारीक राहों में मारे गये' है। निगनामा (1956) की लोगों की ज़बानों पर चढ़ी इस नज़्म के ये मिसरे देखिए

जब घुली तेरी राहों में शामे सितम
हम चले आये लाये जहाँ तक कदम
लब पे हर्फ़े गज़ल दिल में कंदीले गम[20]
अपना गम था गवाही तेरे हुस्न की
देख कायम रहे इस गवाही पे हम
हम जो तारीक[21] राहों में मारे गये

यह नज़्म चिंतन के स्तर पर फैज़ के उन शायराना रवैयों का विस्तार कही जा सकती है जिनकी पहचान फैज़ ने 'मौज़ूए-सुख़न' नाम की नज़्म के आख़िरी बंद में इस तरह की थी

ये भी हैं ऐसे कई और भी मज़मूँ[22] होंगे
लेकिन उस शोख़ के आहिस्ता से खुलते हुए होंठ
हाय उस जिस्म के कमबख़्त दिल-आवेज़[23] ख़ुतूत[24]
आप ही कहिए कहीं ऐसे भी अफ़्सूँ[25] होंगे

अपना मौज़ू-ए-सुख़न[26] इनके सिवा और नहीं
तबए[27] शायर का वतन इनके सिवा और नहीं

'नयी नज़्म और पूरा आदमी' में सलीम अहमद ने 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग' के इन दो मिसरों, 'लौट जाती है उधर को भी नज़र क्या कीजे / अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे' का बहुत मज़ाक उड़ाया है जो इस बंद के बाद आते हैं कि

अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना[28] तिलिस्म
रेशम-ओ-अतलस व कमख़्वाब[29] में बुनवाये हुए

20 गम की मोमबत्ती
21 अंधेरी
22 विषय
23 दिल लुभाने वाला
24 लकीर
25 जादू
26 शायरी का विषय
27 तबीयत
28 जंगली
29 महंगे कपड़ों के नाम

जो बना बिकते हुए कूचा-ओ-बाजार मे जिस्म
ख़ाक में लिथड़े हुए ख़ून म नहलाय हुए

और सलीम अहमद की परेशानी का सबब यह ह कि 'अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे' म एक मोहताजे-तफ्सील और नुकसान न पहुचाने वाला लफ्ज 'मगर' शे'री अनुभूति की बेरहमी और सगीनी का सकेत है। यानी यह कि फैज के लिए 'जाने के लिए कोई जगह नही और पैर थक चुके ह,' दोनो कोइ न कोई मुश्किल खडी कर देते हैं। असल म शायरी का अध्ययन करने वाला अपनी शर्तो, आदतो, जरूरतो और फायदे के हिसाब से करेगा तो इसी तरह के मसअले पैदा होते रहेंगे। अनुभव की गतिशीलता फैज को अगर अपने केंद्र स आगे ले जाये तो गलत और अगर वह एक जगह पर ठहर जाये तो अनुभूतियो म ठहराव का इल्जाम सामने है, सच्चाई यह है कि फैज की शायरी के साथ 'किसी जगह पर ठहरने की कोई जगह नही है' वाला मामला है। उनका बेसब्र दिल एक कद्र पर उन्हे ठहरने नही देता। फैज एहसासात की आती जाती लहरो के शायर ह, एक अदरूनी बेचैनी की मारी हुई भटकती हुई आत्मा, जिसकी सुरक्षा का केंद्र कभी अपनी मोहब्बत बनती है, तो कभी आसपास की दुनिया मे बसे हुए जानदारो की मोहब्बत। हालात या रुझान के इस दोरुखेपन से फैज को तो कोई परेशानी नही थी लेकिन एक केंद्रीयता पसद एतराज करने वालो के लिए डाइलेमा बन गयी। विचारात्मक आलोचना के उसूलों या अपनी व्यक्तिगत पसद और नापसद के मुताबिक शे'र और साहित्य के अध्ययन मे पढने वाले को असली दिलचस्पी रचनात्मक अनुभूति से नही बल्कि अपने आप से होती है और वह सिर्फ अपनी हिमायत या अपने बिंब की तलाश की तमन्ना रखते ह।

प्रगतिशील शायरी की परपरा का जायजा लेते हुए जीलानी कामरान ने (*उस्तान्ज की प्रस्तावना* 1957) मे लिखा था कि साम्यवादी समाज मे दिल की वीरानी का जिक्र मुमकिन नही और सिर्फ जमीनी दुख की कहानी एक अधूरी कहानी है। फैज की शायरी म गम और अफसोस के तत्व तसल्ली और खुशी पर भारी पडते ह। ऐसा शायद इसीलिए है कि फैज सामूहिक दुख दर्द का वर्णन करने के बावजूद मूल रूप से रचनात्मक तन्हाई की अनुभूतियो स आम तौर पर अलग नही होते। उनका प्रतिगाय जिसके लिए वह इनसानो के एक समूह का प्रतिनिधित्व करते ह और सिर्फ अपनी जिदगी के पाबद नही रह जाते, बडी हद तक एक दबे हुए बल्कि ख़ामोश प्रतिरोध की हैसियत रखता है। वह ऊची और खुली आवाज में बहुत कम बात करते है। जिन नज्मों मे उनकी आवाज काफी ऊची महसूस होती है, मिसाल के तौर पर 'आ जाओ अफरीका' या जिदगी के आखिरी दौर की नज्म 'हम देखेगे, लाजिम है कि हम भी देखेंगे' तो इस तरह की नज्मो म भी उदासी की एक लहर जोशीले जज्बात के साथ चलती हुई महसूस होती है

आ जाओ, मैने धूल से माथा उठा लिया
आ जाओ, मैंने छील दी आखो स गम की छाल
आ जाओ, मने दर्द से बाजू छुड़ा लिया
आ जाओ, मैने नोच दिया बेकसी का जाल
'आ जाओ अफरीका
पजे मे हथकडी की कडी बन गयी है गुज
गरदन का तोक तोड के ढाली है मने ढाल

आ जाआ अफ्रीक़ा'
जलते ह हर कछार में भालू के मृग नैन
दुश्मन लहू स रात की कालिख़ हुई है लाल
आ जाओ अफ्रीका'

फज के यहा नज्म चाहे जितनी वुलद आवाज म हा ओर इकलावी हो, आहिस्तापन ओर नरमी का अतर वरकरार रहता हे। नारा नगमे म ढल जाता हे ओर नाराजगी सरगोशी वन जाती है। यह दरअसल फज की अपनी तवीयत का जब्र हे, उनका एक मिसरा हे 'इक कडा दर्द कि जो गीत म ढलता हा नहीं' मगर फेज की शायरी मे नगमगी के तत्व सख़्त ओर तल्ख़ अनुभवो ओर ज्वालामुखी से एहसासात में भी नरमी ओर धीमापन पेदा कर देते हे। फ़ेज हगामा वरपा करने वाले मानसिक अनुभवा को भी अक्सर चित्रा म वदल देते हे। ओर ये चित्र, जेसा कि हम पहले कह चुके ह, मध्यम आर हलके रगो से वनते ह। उनम तेजी, नुकीलापन वेपर्दगी की केफ़ियत नही मिलती है। 'एक मजर', 'यहा से शहर को देखो', 'जिदा की एक सुवह', 'ईरानी तुल्बा के नाम', 'सरे-वादिए सीना' और 'ख़्वाव वसेरा' लफ्जों ओर आवाजों म ढली हुई तस्वीर हे जिनका वहता फेलता हुआ रग आखा के रास्ते दिल मे उतरने के वाद हमारी चेतना का हिस्सा वनता हे। इसीलिए फैज की शायरी मे लवी नज्मा के सिर्फ़ इक्का दुक्का नमूने मिलने है। मिसाल के तोर पर 'शीशो का मसीहा कोई नही।' मगर इस तरह की नज्मों मे फैज रचनात्मक थकान से पेदाशुदा गद्यात्मकता के शिकार नजर आते है। उनका हुनर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, छोटे पैमाना मे आर छोटे केनवस पर अपनी वहार दिखाता है, फ़ैज की शायरी अपने पाठकों से जो रिश्ता कायम करती ह, उसका सवध चितन से ज्यादा एहसास से हे। इसीलिए विचारात्मक सतह पर राशिद फ़ैज से आगे ह ओर राशिद के यहा वहुत स्पष्ट रूप से अपनी विचारो का साया गहरा दिखायी देता है। सरोकारों की यह शर्मीली ओर सुसस्कृत हालत जो फैज की नर्म मिजाजी पर निर्भर है, उनके किसी भी दूसरे समकालीन के यहा इस हद तक नहीं उभर सकी है। इसलिए फेज के समकालीन शायरी की पृष्ठभूमि पर नजर डालते समय, मै, अपने, आपको जैसी प्रतिक्रिया से अलग नहीं कर सकता। इस दौर के वाकमाल शायरो मे मीरा जी, राशिद, अख़्तरुल ईमान, सरदार जाफ़री मे तकरीवन हर एक का रग मुख़्तलिफ है ओर उनकी आपस मे तुलना करना ओर एक दूसरे के हिसाव से उनके दर्जे तय करना अच्छी वात नही हे। एक ही समय के परिदृश्य मे सास लेने वाले शायर मुक़ावले की दोड मे शामिल खिलाडी नही होते, ख़ास तौर से उस वक्त जवकि उनका रचनात्मक व्यवहार अलग अलग हो और उनकी समझ ओर अभिव्यक्ति की हुनरमदी एक दूसरे से मिलती-जुलती न हो। फिर अगर फेज की शायरी के परिदृश्य का समग्र रेखाचित्र तैयार किया जाये तो उसके दायरे मे कई हिदुस्तानी (पाकिस्तानी?) जवानों का साहित्य ओर दुनिया का वह साहित्य भी आ जायेगा जो विचार के स्तर पर समाजी सराकारों का एहसास रखने वाले तमाम साहित्यकारो की सामूहिक विरासत हे। लोर्का लुई आरागा, मायकोव्स्की, पाब्लो नेरुदा, नाजिम हिकमत युव्तेशेको, मुक्तिवोध किसी न किसी लिहाज से एक ही मंजिल की तलाश में सरगर्म है, आर एक दूसरे के हमसफ़र भी कहे जा सकते है। फ़ेज के जमाने के उर्दू शायरों में एक विशेषता यह भी है कि नेरुदा की तरह उनकी शायरी मे भी जादुई स्पर्श मात्र से ही जैसे कोई मायावी ताकत सी पैदा हो जाती हे। वह ठहरी हुई ओर वेजान सी महसूस होने वाली वस्तु या दृश्य या प्रदर्शन और कैफ़ियत को हाथ लगाते हे तो उसमे जान सी पड जाती हे।

शख़्सियत का परिदृश्य चाहे वहुत छोटा हो, लेकिन अगर उसमे सच्चाई है तो अपना असर कायम करने के लिए वह वाहरी सहारो की मोहताज नही होगी। सच्ची शख़्सियत की तरह सच्ची शायरी का भी अपना एक जादू होता है। फ़ैज वडे शायर उन अर्थो मे नही कहे जा सकते जिस तरह हम कालिदास, फ़िरदौसी, रूमी, गालिव ओर इक़वाल का जायजा लेते ह, लेकिन उस सतह तक तो हमारे जमाने का कोई दूसरा शायर भी नही पहुचता। हा यह जरूर कहा जा सकता है कि फ़ैज की शायरी सच्ची शायरी की एक नुमाइदा मिसाल है ओर उसका यह कारनामा क्या कम अहम है कि उसने प्रगतिशील शायरी को नाक़ाविले एतवार नही होने दिया, ओर उसे वहुत सी ख़रावियां से वचा लिया। इस तरह फ़ेज की शायरी ने एक अहम ऐतिहासिक कारनामा भी अजाम दिया जिसकी अहमियत हर जमाने म क़ुवूल की जायेगी।

शमीम हनफ़ी
मो 09818524803

उर्दू से अनुवाद रिजवानुल हक
09977006995

फ़ैज की काव्य शैली

ज़ुबैर रजवी

यह वात दिलचस्प ओर जानने योग्य है कि फैज ने अपने शेरा के पहले काव्य सग्रह की शुरुआत अपनी किसी मजबूत नज्म या गजल से नही की। *नक्शे-फ़रियादी* मे सव से पहले दो दो शेर 'अशआर'[1] शीर्षक से पढने को मिलते ह। इनमे ये दो शेर तो फैज के मुरीदो पर छा गये है

रात यू दिल मे तेरी खोई हुई याद आयी
जैसे वीराने मे चुपके से वहार आ जाये।
जैसे सहराओ[2] मे होले से चले वाद ए नसीम[3]
जैसे बीमार को वेवजह करार आ जाये

इसके वाद के ये दो शेर प्रसिद्ध नही हो सके

दिल रहीने गमे-जहा[4] है आज
हर नफस[5] तश्न ए फ़ुगा[6] हे आज
सख़्त वीरा है महफ़िल ए हस्ती
ऐ गमे दोस्त तू कहा हे आज

इन शेरो के वाद सग्रह की पहली नज्म 'खुदा वो वक्त न लाये' हे। इसके वाद गालिव के असर वाली गजल है

हुस्न मरहून-जोशे-वादा ए नाज[7]
इश्क़ मिन्नते कशे-जुनूने नियाज[8]

सवाल पेदा हा सकता हे कि क्या *नक्शे फरियादी* की यह तरतीव गेर-इरादतन थी? क्या उपर्युक्त शेर को जानयूझ कर पहले पृष्ठ पर जगह दी गयी हे? यह सवाल इसलिए पूछा जा रहा हे कि ज्यादातर ऐसे शेर किसी भी सग्रह के आखिरी पृष्ठो पर जगह पाते रहे ह। मेरा विचार हे कि फेज ने एसा जानवूझ कर किया है। याद रहे कि जव *नक्शे-फरियादी* का दूसरा एडिशन प्रकाशित हुआ आर फैज ने इसकी एक मुख़्तसर सी भूमिका लिखी ता यह सकत भी किया था कि

---

1 …ार का बहुवचन 2 रेगिस्ताना 3 ठंडी हवा 4 गिरवी 5 सास 6 रोना स्न्न 7 शराव और सौदर्य के उमग म डूबा हुआ [illegible] दर्शन क जादू का अभिलाषी

मै चाहता हू कि दूसरा एडिशन उस समय तक रोके रखू जब तक पहले एडिशन मे काफी काट छाट की गुजाइश न निकल सके।

फ़ैज *नक्शे-फ़रियादी* के दूसरे एडिशन मे बस इतनी ही काट छाट कर सके थ कि, उन्ही क शब्दा म, वो चार पाच नज्मे जिन पर ज्यादा एतराज था, निकालनी पडीं। आर इतनी ही नयी नज्मा का इजाफा भी कर सके। लेकिन *नक्शे फ़रियादी* के शुरुआती पृष्ठा मे उन्हाने कोई बदलाव नही किया। सग्रह के बिल्कुल शुरू म भिन्न भिन्न स्वर वाले दो-दो शेर देने का कारण मेरी नजर म यह हे कि फेज शुरुआती कलाम म ही अपनी शायरी के विषय– निजी व दुनियावी दुख' ओर अपने पेराय बयान (काव्य शली) की कुजी पढन वाले का साप देना चाहत थ ताकि *नक्शे फ़रियादी* के भूमिका लेखक, नून मीम राशिद का पहला वाक्य ही पाठक के जेहन मे उनकी काव्य शेली की एक छवि बना ले। राशिद ने लिखा था '*नक्शे फ़रियादी* एक ऐस शायर की गजला आर नज्मा का पहला सग्रह ह जो रूमान ओर हकीकत के सगम पर खडा हे।'

अगले पृष्ठा पर *नक्शे फ़रियादी* की नज्म, गजल इन्हीं शुरुआती चार शेरा की बडी खूबसूरत व्याख्या बन जाती हैं। जब दुनिया के जुल्मो सितम में सब कुछ नष्ट हा जाता ह तो फिर गमे दास्त की याद आती है। ऊर्फी के शब्दा मे जब प्रेमी के गम म जिस्म-ओ-जान पिघलने लगते ह तो अपने अदर का चदन महकने लगाता है

जैसे सहराओ म होले से चले बाद ए नसीम

फेज की शायरी का स्ट्रक्चर देख तो पता चलता हे कि वह जवानी के जज्बा पर कद्रित थी। जवानी के ये ख़ास जज्बे कभी दिल मे यादो के अलाव जलाते हे, ता कभी किसी के कदमा की ख्वाबनाक आहटे सुनन के लिए जागते रहते है। फेज की इन शुरुआती नज्मा मे इश्क बेहिसाब भी हे ओर बेशुमार भी। महबूब की जो काल्पनिक तस्वीर उनकी नज्मा म उभर कर आती है वह इस से पहले की इश्किया शायरी के लिए अनजानी ह। फेज उन दोना तरह क लागा के कायल ह जो इश्क को दुनिया से छुपाते है ओर वो जो दुनिया के सामने अपने इश्क का इजहार करते हे। पर खुद फ़ैज अपने महबूब से मिलने के बजाय ज्यादा उसक दीदार की चाहत रखते हे। अपने समकालीन आशिक शायरो के बरअक्स फेज इश्क क बयान के परपरागत तरीका को अपनाते ही नही बल्कि उसे व्यर्थ भी मानते है। उनके लिए महबूब उनकी जिदगी म खुशी का एक स्रोत है। इश्क एक धुन, लय, तरन्नुम और तबस्सुम बन कर फेज की शायरी म समाया हुआ हे। वे अपने इश्क के बेशुमार रगा मे हुस्न की आकर्षक तस्वीरे बनाते नही थकते

खुमारे ख़्वाब स लबरज अहमरी[9] आख
सफ़ेद रुख़ पे परेशान अबरी[10] आखें
छलक रही है जवानी हर इक बुने मू[11] से
रवा हो बर्गे[12] गुले-तर से जैसे सेल[13] शमीम[14]
जिया ए मह[15] मे दमकता ह रगे पैराहन
अदा ए इज्ज[16] से आचल उडा रही है नसीम

9 लाल 10 रसीली 11 रोम रोम 12 पत्ता 13 बहाव 14 ठडी हवा का झोका 15 चाद की रोशनी 16 कोमलता

फैज के शायरी केनवस पर रगो के हलके पड जाने का कोई कमजोर रचनात्मक लम्हा नही आता। फैज शब्द और अर्थ को उनके परपरागत रूपो मे इस्तेमाल नहीं करते। उनकी शायरी विषय प्रतिपादन से कहीं ज्यादा फिजासाजी (वर्णन, चित्रण) की कायल है और यह फिजासाजी जिदगी से ऐसी जुडी हुइ है कि पाठक खुद को भी इस पूरी फ़िजा से घुला-मिला महसूस करता है।

फ़ैज की शुरुआती इश्किया शायरी मे अनुभवो की विविधता की कमी है, लेकिन उनके वाद के सग्रहों म उनका यह इश्किया अनुभव कई अनुभवो की छाया मे मिल जाता है।

फैज *नक्शे-फ़रियादी* के शुरुआती शेरा म अपनी काव्य शैली की पहचान कराते है और पूरे सग्रह मे उन्ही शेरो की रोशनी मे सफर करते हुए अपनी आवाज व लहजे की ख़ास पहचान बनाने की कोशिश म मसरूफ नजर आते है। इस विशिष्ट लहजे की पहली झलक 'सरोदे-शवाना' नज्म के इन मिसरों में मिलती है

सो रही है घने दरख़्तो पर
चादनी की थकी हुई आवाज

फ़ैज अपनी इस अनोखी काव्य शैली को अपनी बाद की नज्मो मे खूब चमकाते ह जो अतत उनके डिक्शन की दिलकशी की बुनियाद बन जाती है। जाने पहचाने इश्किया अनुभव से गुरेज और नून मीम राशिद की कही हुई बात की पहली गवाही *नक्शे-फरियादी* की नज्म 'मुझ से पहले सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग' से मिलती है। फ़ैज की यह पहली नज्म विषय के नयेपन और उसके काव्यात्मक रचाव की बिना पर प्रगतिशील नज्मो की सिरमौर बन जाती है। महबूब के गम मे ऐसा 'मुहब्बत-आमेज गुरेज,' उर्दू नज्म के लिए अनजाना था। यह पहला मौका था जब शायर अपनी निगाह का केद्र बदलने की कोशिश करता है और एक नये केद्र की पहचान करते हुए यह कह कर महबूब को हैरत मे डाल देता है

ओर भी दुख है जमाने म मुहब्बत के सिवा
राहते ओर भी हे वस्ल[18] की राहत के सिवा
मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग

यह नज्म गम-ए-यार और गम-ए रोजगार दोनो की तकलीफो से जुडी होने कारण पूरी प्रगतिशील नज्म के लिए एक मिसाल बन जाती है। अजीज अहमद के शब्दो मे इस नज्म को इश्क और इकलाब के दरम्यान एक सिलसिलेवार भूमिका भी कहा जा सकता है। *नक्शे-फरियादी* मे फेज की शायरी इसी जुडाव के बिदु के आस पास पडाव डाले रहती है और बडी हद तक फेज की काव्य शैली की पहचान बन जाती है। रकीब से', 'सोच', 'चद रोज और मेरी जान वाली नज्मो मे फेज अपने जाने पहचाने इश्किया दुख दर्द की तरफ़ वापिस लोट आते हे। फ़ैज के आलोचको ने इसे प्रगतिशील नज्म के लिए पूर्व रचित काव्य शैली का ही अनुसरण करार दिया है। ओर वजीर आगा ने फेज के इस शेरी रवेये को अवरोध बतलाया इस तरह की क्यास आराई की कल्पना दूसरे तरक्की पसद शायरो के लिए तो दुरुस्त हो सकती है लेकिन

---

17 गुरेज उर्दू नज्म म कसीद का एक प्रकार है। पहले इश्किया शायरी म गुरेज की तक्नीक का इस्तेमाल नही होता था ■ मिलन

जहा तक फैज की वात हे, विषय की यह कोशिश एक वास्तविकता हे। इसका एक सबूत आजादी के सिलसिले मे फैज की नज्म से मिलता है

यह दाग-दाग उजाला, यह शवगजीदा[19] सहर
वो इतजार था जिसका, यह वो सहर तो नहीं

विषय के साथ परपरागत प्रगतिशील वर्ताव करने के वावजूद यह उर्दू की एक वडी राजनीतिक नज्म वन गयी है। विल्कुल उसी तरह जिस तरह समसामयिक विषय पर लिखा हुआ मटो का अफसाना 'नया कानून'। आजादी के विषय पर सरदार जाफरी ने अपनी पहली नज्म मे आजादी के जश्न का स्वागत किया लेकिन जव नये राजनीतिक हालात आये तो फिर उन्होने दूसरी नज्म 'फरेव' लिखी और साहिर ने 'मफाहमत । इसका असर किसी हद तक अख़्तर-उल ईमान ने भी कवूल किया हे

मुझे ऐसा महसूस होता है यह मेरी मेहनत का हासिल नही है
अभी तो वही रग ए महफिल वही जव्र[20] है हर तरफ जख़्म ख़ुर्दा[21] सा इनसान
जहा तुम मुझे ले के आये हो यह वादिए रग भी मरी मंजिल नहीं है।

लेकिन अख़्तर-उल-ईमान यह कह कर चुप नहीं हो जाते, वे अपनी नज्म 'पद्रह अगस्त' को आगे वढाते हे और दो नज्मे ओर लिखते ह 'आजादी के वाद' ओर 'गुलाम रूहो का कारवा'।

वाकी प्रगतिशील शायरो के मुकावले मे फैज परपरागत नजरियो पर विचार करने से इकार करते हे। वे यकीनी तोर से इनसानी दुख दर्द पर सजीदा होते है और चाहते हे कि इसका इलाज जल्दी हो। वे इस इनसानी दुख दर्द को अपनी ही आख से देखते है और इसके चारासाज (वेद्य) वन कर अपने हाथ से वनाये हुए फाहे इस पर रखते है

जव कभी विकता है वाजार मे मजदूर का गोश्त
शाहराहों[22] पे गरीवो का लहू वहता है।
आग सी सीने में रह-रह के उवलती है न पूछ
अपने दिल पर मुझे काबू ही नहीं रहता है। ('रकीब से')

फैज के ज्यादातर आलोचको ने फैज को रूमान ओर हकीकत के मेल से शायरी करने वाला शायर कहा है। दरअसल यह फैज के शायरी के डिक्शन को सरसरी तोर पर पढने का नतीजा है। इसमे शक नही कि इश्क से इकलाव की तरफ, रूमान से हकीकत की तरफ, और गमे एे-यार से गम-ए रोजगार की तरफ फैज की शायरी का गुरेज[23] ओर वापसी उनकी शायरी के अध्ययन को दिलचस्प बनाता है। वे नज्म 'रकीब से' और 'चद रोज ओर मेरी जान' म गुरेज की तकनीक[24] अपनाते हुए जव अपना विषय वदलते है तो इसम एक ऐसी पेवदकारी का एहसास होता है जो भद्दा ओर बेमेल लगने लगता है। इसी पैवदकारी के प्रति आलोचनात्मक होते हुए साकी फारूकी 'रकीब से' नज्म सुनते वक्त फैज को इस बद पर रोक देते हैं और इसरार करते है कि नज्म इस बद पर खत्म हो गयी।

19 रात की डसी हुई 20 बलशाली ताकतवर 21 घायल 22 राजपथ 23 गुरेज की तकनीक 24 कसीदे का एक प्रकार

फैज के शायरी कैनवस पर रगो के हलके पड जाने का कोई कमजोर रचनात्मक लम्हा नही आता। फेज शब्द और अर्थ को उनके परपरागत रूपो मे इस्तेमाल नहीं करते। उनकी शायरी विषय प्रतिपादन से कहीं ज्यादा फ़िजासाजी (वर्णन, चित्रण) की कायल है ओर यह फ़िजासाजी जिदगी से ऐसी जुडी हुई हे कि पाठक खुद को भी इस पूरी फ़िजा से घुला मिला महसूस करता हे।

फेज की शुरुआती इश्किया शायरी म अनुभवा की विविधता की कमी हे, लेकिन उनके वाद के सग्रहा मे उनका यह इश्किया अनुभव कई अनुभवो की छाया मे मिल जाता हे।

फैज *नक्शे-फरियादी* के शुरुआती शेरा मे अपनी काव्य शेली की पहचान कराते हे ओर पूरे सग्रह म उन्ही शेरो की रोशनी मे सफर करते हुए अपनी आवाज व लहजे की ख़ास पहचान बनाने की कोशिश मे मसरूफ नजर आते हे। इस विशिष्ट लहजे की पहली झलक 'सरोदे शवाना' नज्म के इन मिसरा म मिलती ह

सो रही है घने दरख़्तो पर
चादनी की थकी हुई आवाज

फेज अपनी इस अनोखी काव्य शेली को अपनी बाद की नज्मा मे ख़ूब चमकाते हे जो अतत उनके डिक्शन की दिलकशी की बुनियाद बन जाती है। जाने-पहचाने इश्किया अनुभव से गुरेज ओर नून मीम राशिद की कही हुई बात की पहली गवाही *नक्शे-फ़रियादी* की नज्म 'मुझ से पहले सी मुहब्बत मेरी महबूव न माग' से मिलती हे। फेज की यह पहली नज्म विषय के नयेपन ओर उसके काव्यात्मक रचाव की बिना पर प्रगतिशील नज्मो की सिरमोर बन जाती हे। महवूब के गम मे ऐसा 'मुहब्बत-आमेज गुरेज,'[17] उर्दू नज्म के लिए अनजाना था। यह पहला मोका था जब शायर अपनी निगाह का केद्र बदलने की कोशिश करता है ओर एक नये केद्र की पहचान करते हुए यह कह कर महबूब को हेरत मे डाल देता है

ओर भी दुख है जमाने मे मुहब्वत के सिवा
राहते ओर भी है वस्ल[18] की राहत के सिवा
मुझसे पहली-सी मुहब्वत मेरी महबूब न माग

यह नज्म गम ए-यार ओर गम-ए-रोजगार दोनो की तकलीफो से जुडी होने कारण पूरी प्रगतिशील नज्म के लिए एक मिसाल वन जाती है। अजीज अहमद के शव्दो मे इस नज्म को इश्क ओर इकलाब के दरम्यान एक सिलसिलेवार भूमिका भी कहा जा सकता है। *नक्शे-फरियादी* मे फेज की शायरी इसी जुडाव के बिदु के आस पास पडाव डाले रहती है ओर वडी हद तक फेज की काव्य शेली की पहचान बन जाती है। 'रकीब से , 'सोच , 'चद रोज ओर मेरी जान' वाली नज्मो मे फेज अपने जाने पहचाने इश्किया दुख दर्द की तरफ़ वापिस लोट आते हे। फ़ेज के आलोचको ने इसे प्रगतिशील नज्म के लिए पूर्व रचित काव्य शैली का ही अनुसरण करार दिया हे। ओर वजीर आगा ने फेज के इस शेरी रवेये को अवरोध वतलाया, इस तरह की कयास आराई की कल्पना दूसरे तरक्की पसद शायरो के लिए तो दुरुस्त हो सकती है लेकिन

17 गुरेज उर्दू नज्म म कसीदे का एक प्रकार हे। पहले इश्किया शायरी म गुरेज की तक्नीक का इस्तेमाल नही होता था 18 मिलन

जहा तक फेज की बात है, विषय की यह कोशिश एक वास्तविकता है। इसका एक सबूत आजादी के सिलसिले मे फेज की नज्म से मिलता है

यह दाग दाग उजाला, यह शबगजीदा[19] सहर
वो इतजार था जिसका, यह वो सहर तो नही

विषय के साथ परपरागत प्रगतिशील बर्ताव करने के बावजूद यह उर्दू की एक बडी राजनीतिक नज्म बन गयी है। बिल्कुल उसी तरह जिस तरह समसामयिक विषय पर लिखा हुआ मटो का अफसाना 'नया कानून'। आजादी के विषय पर सरदार जाफरी ने अपनी पहली नज्म मे आजादी के जश्न का स्वागत किया लेकिन जब नय राजनीतिक हालात आये तो फिर उन्होने दूसरी नज्म 'फरेब' लिखी और साहिर ने 'मफाहमत'। इसका असर किसी हद तक अख्तर-उल ईमान ने भी कबूल किया है

मुझे ऐसा महसूस होता है यह मेरी मेहनत का हासिल नही हे
अभी तो वही रग ए महफिल वही जब्र[20] है हर तरफ जख्म खुर्दा[21] सा इनसान
जहा तुम मुझे ले के आये हो यह वादिए रग भी मेरी मंजिल नहीं है।

लेकिन अख्तर-उल-ईमान यह कह कर चुप नहीं हो जाते, वे अपनी नज्म 'पद्रह अगस्त' को आगे बढाते है ओर दो नज्मे और लिखते है 'आजादी के बाद' ओर 'गुलाम रूहो का कारवा ।

बाकी प्रगतिशील शायरो के मुकाबले मे फैज परपरागत नजरिया पर विचार करने से इकार करते है। वे यकीनी तोर से इनसानी दुख दर्द पर सजीदा होते है ओर चाहते हे कि इसका इलाज जल्दी हो। वे इस इनसानी दुख दर्द को अपनी ही आख से देखते हे ओर इसके चारासाज (वैद्य) बन कर अपने हाथ से बनाये हुए फाहे इस पर रखते है

जब कभी बिकता है बाजार मे मजदूर का गोश्त
शाहराहों[22] पे गरीबों का लहू बहता हे।
आग सी सीने मे रह रह के उबलती है न पूछ
अपने दिल पर मुझे काबू ही नही रहता है। ('रकीब से)

फेज के ज्यादातर आलोचको ने फेज को रूमान और हकीकत के मेल से शायरी करने वाला शायर कहा है। दरअसल यह फेज के शायरी के डिक्शन को सरसरी तोर पर पढने का नतीजा हे। इसमे शक नहीं कि इश्क से इकलाब की तरफ, रूमान से हकीकत की तरफ, और गमे ए-यार से गम ए-रोजगार की तरफ फेज की शायरी का गुरेज[23] ओर वापसी उनकी शायरी के अध्ययन को दिलचस्प बनाता हे। वे नज्म 'रकीब से' ओर 'चद रोज ओर मेरी जान' म गुरेज की तकनीक[24] अपनाते हुए जब अपना विषय बदलते हैं तो इसमें एक ऐसी पैवदकारी का एहसास होता है जो भद्दा और बेमेल लगने लगता है। इसी पैवदकारी के प्रति आलोचनात्मक होते हुए साकी फारूकी 'रकीब से' नज्म सुनते वक्त फेज को इस बद पर रोक देते हे और इसरार करते है कि नज्म इस बद पर खत्म हो गयी।

---

19 रात की डसी हुई 20 बलशाली ताकतवर 21 घायल 22 राजपथ 23 गुरेज की तकनीक 24 क्सीदे का एक प्रकार

हम पे मुश्तरिका[25] है एहसान गमे उल्फत के
इतने एहसान कि गिनवाऊ तो गिनवा न सकू
हमने इस इश्क मे क्या खोया है क्या सीखा है
जुज[26] तेरे और को समझाऊ तो समझा न सकू

साकी फेज की नज्मा मे जिस पेवदकारी की आलोचना करते ह, उसका एहसास फेज को भी था कि उनकी नज्मो म गुरज की तकनीक का कच्चापन रह जाता था। इन सगमनुमा नज्मो म दो कोशिशा का एहसास वडा स्पष्ट है। यानी नज्म इश्किया रूप से शुरू होकर इनसान के दुनियावी सराकारा से जा मिलती है। पर इस नज्म मे तीसरे स्तर पर मेहनत का एहसास वाकी रह जाता ह तो वाद मे 'मोजूए-सुख़न' जेसी नज्म म पहली वार उभर कर सामने आता ह। महवूव आर जमाने दोना के गम से जुडाव की ओर एक मिसाली सूरत इस नज्म मे पहली वार फेज ने इस्तेमाल की है और इसमे वे वेहद कामयाव हे। इस लिए फैज की सगमनुमा 'नज्मो' मे 'मोजूए सुख़न' सव से अनोखी ओर भरपूर नज्म है। इस नज्म का आगाज ही वडी मद्धम लय से होता है

गुल हुई जाती है अफसुर्द[27] सुलगती हुई शाम
धुल के निकलेगी अभी चश्म ए महताव[28] से रात
और मुश्ताक[29] निगाहों की सुनी जायेगी
आर उन हाथा से मस[30] होगे ये तरसे हुए हाथ

नज्म धीरे धीरे फिजासाजी (चित्रण) करती हुई अनायास ही गुरेज की तकनीक को अपनी ऊचाइया पर ले जाती है

आज तक सुर्खो सियह सदिया के साये के तले
आदम-ओ हव्वा की ओलाद पे क्या गुजरी है
मौत ओर जीस्त की रोजान सफआराई[31] मे
हम पे क्या गुजरेगी, अजदाद[32] पे क्या गुजरी है।

'मुझ से पहली सी मुहव्वत मेरी महवूव न माग, 'रकीव से , 'चद रोज आर मेरी जान', जैसी नज्मो के वर-अक्स फेज पहली वार अपनी इस नज्म को एक दूसरे ही गुरेज के साथ लेते हे और वापस अपन महवूव के जिक्र की तरफ लौट आते है

ये भी है ऐस कई ओर भी मजमू होगे
लेकिन उस शाख़ के आहिस्त से खुलते हुए होठ
हाय उस जिस्म के कमबख़्त दिल आवेज[33] ख़ुतूत
आप ही कहिए कही ऐसे भी अफ्सू[34] हागे
अपना मौजूए सुख़न इनके सिवा ओर नही
तवए शायर[35] का वतन इनके सिवा ओर नही

---

25 सम्मिलित या साझा का 26 सिवाय 27 ठिठुरती हुई 28 चाद की आख 29 उत्सुक 30 स्पर्श 31 मार्चाबन्दी 32 पूवज 33 मोहक 34 जादू 35 कवि स्वभाव

नज्म में गुरेज की यह दूसरी दिशा फ़ैज के दूसरे सग्रह *दस्ते-सवा, जिदानामा* *दस्ते-तहे-सग* म नही मिलती है। 'मोजूए सुखन' फ़ैज के जाने पहचाने काव्य कोशल का आखिरी उदाहरण हे। इसके वाद एसी सगमनुमा नज्मे फ़ेज के सग्रहा मे नहीं मिलती। जो शायर *नक्शे फ़रियादी* म रूमान आर हकीकत के सगम पर खडा था, वह *दस्ते सवा* से *मेरे दिल, मर मुसाफ़िर* जैसे काव्यसग्रहा म अपने पराय वयान को नहीं दोहराता। *दस्ते-सवा* की भूमिका मे फैज ने अपनी शायरी मे जिदगी से जुडे विपयो का इस्तेमाल करने का कारण देते हुए कहा था

> इनसानी जिदगी के सगठित सघर्ष म हौसल का हाना जिदगी की ही माग नही कला की भी माग है। कला इस मानवीय जिदगी का एक आकर्पण ह आर कलात्मकता की जरूरत इस इनसानी जिदगी क सघप का एक पहलू है।

फ़ेज ने *दस्ते-सवा* म अपने इस शेरी पक्ष का एक ओर नज्म दो इश्क मे वडी खूवसूरती से जाहिर किया ह। 'दो इश्क' एक तरह से 'मोजूए सुख़न' ही का विस्तार है पर 'मोजूए सुख़न से कही ज्यादा अच्छी और वडी नज्म हे। वाकर मेहदी के शब्दो मे, अव निजी और दुनियावी दुख के वीच की खाई वहुत कम हो गयी ह आर नज्म 'दो इश्क' की शुरुआत भी 'माजूए सुखन की तरह वडे स्वप्नदर्शी लहजे म होती हे। एक मायने म उसका यहा मिलन हा गया ह

> ताजा ह अभी याद म ऐ साकी ए गुलफ़ाम[36]
> वो अक्से रुख़-यार से महके हुए अय्याम[37]
> वो फूल सी खिलती हुई दीदार की साअत[38]
> वो दिल सा धडकता हुआ उम्मीद का हगाम

इस नज्म म फ़िजासाजी भी मोजूए सुख़न' जेसी हे। 'माजूए सुखन का यह वद देखिए

> आज फिर हुस्ने दिलआरा[39] की वही धज[40] होगी
> वही ख़्वावीद सी आख वही काजल की लकीर
> रगे रुख़सार[41] पे हल्का सा वो गाजे[42] का गुवार[43]
> सदली हाथ पे धुधली सी हिना की तहरीर[44]

आर यह वद है 'दो इश्क' का

> इस वाम स निकलेगा मेरे हुस्न का खुर्शीद
> उस कुज से फूटेगी किरन रगे हिना की
> इस दर से वहेगा तेरी रफ़्तार का सीमाव[45]
> उस राह पे फूलेगी शफ़क[46] तेरी कवा की

नज्म 'दो इश्क' मे लेला-ए वतन के जिक्र की तरफ गुरेज की तकनीक का इस्तेमाल 'मोजूए सुखन से कहीं ज्यादा गुथा हुआ और असरदार हे

---

36 फूल जैसा साकी 37 दिन 38 लम्हा 39 मनमोहक रूप 40 रीत ढग 41 गाल 42 उवटन 43 रग 44 मेंहदी के वेलवूटे 45 पारा 46 लालिमा सूर्यास्त की

चाहा है इसी रग मे लैला ए वतन को
तडपा है इसी तौर से दिल उसकी लगन म
ढूढ़ी है यू ही शोक़ ने आसाइशे मजिल
रुख़सार के ख़म[47] में कभी काकुल[48] की शिकन म

'मौजूए-सुख़न' मे फैज ने इस दुनिया मे मरने की चाह मे जीनेवाले ज्यादातर प्राणियो के साथ अपने जज्बात के साथ एकमेव होने का ऐलान किया था। गरीबी ओर पिछडेपन की शिकार आदम और हव्वा की औलाद पर जो कुछ गुजरती रही है, फ़ेज ने उसे अपनी शेरो शायरी का सरमाया करार दिया है। 'दो इश्क़' मे निजी ओर दुनियावी इश्क के साथ अब तीसरा इश्क भी बयान मे शामिल हो जाता है। यह तीसरा इश्क़ है--लैला-ए-वतन का।' *नक्शे फ़रियादी* के बाद की शायरी अब दो के बजाय तीन इश्क़ या तीन आवाजे बन कर उभरती है। लेकिन कुछ इस तरह कि उनके धागों को अलग-अलग करके उनकी ढेरिया बनाना मुमकिन नहीं। अब शायर को मानवता के इस सगठित सघर्ष म अपनी कला की समझ को शामिल करने की सफ़ाई देने की जरूरत महसूस नहीं होती। 1940 के बरसो के साहित्यिक मजरनामे पर प्रगतिशील शायरी की माग का जो दबाव था उस से फेज भी प्रभावित थे। लेकिन फेज चूंकि किसी भी नक्शे कदम पर चलने वाला शायरी मिजाज रखते ही नहीं थे इसलिए उन्हाने अपनी रचनात्मक समघ के आधार पर *नक्शे-फ़रियादी* वाली शायरी के आख़िरी दोर मे निजी और दुनियावी गमो को तो ख़ूब निभाया, मगर बाद के अपने सग्रहो मे अपने विषय की विविधता से नया रचना ससार निर्मित किया और इस तरह अपनी शायरी के मूल ढाचे को लगातार सींचते हुए *मेरे दिल मेरे मुसाफ़िर* तक आते आते पाठको के आगे खासे सुर्खरू हो गये।

ज़ुबैर रजवी
फो 011-26983804

उर्दू से अनुवाद बलवत कौर
मो 09968281417

47 गाल पर पड़नेवाला गढा 48 बाल

जिस धज से कोई मक़तल मे गया*

कातिमोहन

फ़ैज अहमद फ़ैज चल बसे। लाहौर मे 20 नवबर 1984 को दिल का दौरा पडा और तत्काल ही उनकी मृत्यु हो गयी। इस मौत के सदमे से उबरने में काफ़ी वक्त लगेगा, फिर भी यह सोचकर हैरानी होती है कि हर तरह के शोषण से मानव मुक्ति के लिए जिदगी भर सघर्ष करने वाला यह दुर्द्धर्ष योद्धा लोकतत्र को फौजी बूटो से लगातार कुचले जा रहे उस घुटन भरे माहौल मे दो साल जिदा कैसे रह लिया। कोई दो साल पहले जब वह भारत आये थे तो उनके मित्रो और शुभचितकों की इच्छा थी कि वह पाकिस्तान न लौट, भारत मे ही रहे। प बगाल की वाम मोर्चा सरकार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे इक़बाल चेयर की स्थापना प्रस्तावित की थी और उनकी ख़्वाहिश थी कि फैज इकबाल प्रोफेसर के रूप मे यहीं बने रहें। लेकिन, उनकी पारिवारिक विवशताए थीं जो उन्हें लेबनान से पाकिस्तान खींच लायी थीं। इन परिस्थितियो ने उन्हे भारत रहने की इजाजत नहीं दी और वो 'कूए-यार' से निकलर सीधे 'सूए-दार' चले गये।

फैज पिछले पचास बरस से लिख रहे थे। अपने घटना प्रधान और कर्मसकुल जीवन मे उन्होने लिखना कभी नहीं छोडा। फिर भी, इस प्रदीर्घ रचना-काल मे उन्हाने अपनी कविताओ की केवल सात नन्हीं पुस्तिकाए प्रकाशित करायीं। तुलनात्मक दृष्टि से देखे तो रचनाओ का यह परिमाण बहुत कम है, लेकिन उनकी कविता की गुणवत्ता ऐसी थी कि अपने काव्य-शैशव मे ही फैज जनता के विभिन्न तबक़ो के बीच बेहद लोकप्रिय हो गये और पिछले चालीस वर्षो के दौरान एक कवि के रूप मे वह जिस तरह इस उपमहाद्वीप की काव्य रसिक जनता के मानसिक क्षितिज पर छाये रहे है, उसे देखते हुए इस काव्य युग को अगर फेज युग कहा जाय तो बहुत कम लोगो को इस पर आपत्ति होगी। उनकी मृत्यु से इस युग का अत हो गया।

फैज की असाधारणता ओर अद्वितीयता को समझने के लिए हमे इस युग की उन परिस्थितियों को समझना होगा जिन्होने फ़ेज को सजाया-सवारा, उनकी शायरी को परवान चढाया, उन्हे फ़ैज बनाया। चार दशकों के इस युग म चार महती और शक्तिमती धाराए विलोडित हो रही थीं ओर फ़ैज के सवेदनशील मन को मथ-मथकर उसे सस्कारित ओर अनुप्राणित कर रही थीं।

उन्होंने एक ऐसे दौर मे होश सभाला और कलम उठायी जबकि इस देश में साम्राज्यविरोधी राष्ट्रीय

* 'फ़ैज और हम' शीर्षक से यह लेख 1984 में दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी-उर्दू विभागों की एक सयुक्त गोष्ठी में पढा गया था।

मुक्ति सग्राम तरगायित हो रहा था। यह सग्राम जाति, क्षेत्रीयता, भाषा, धर्म और सस्स की सकरी दीवाग को तोडकर इस उपमहाद्वीप की विराट भौगोलिक इकाई को एक जीवत आर स्पंदित राष्ट्र का रूप प्रदान कर रहा था। 1930 के वाद मजदूर वर्ग एक स्वतत्र वर्ग के रूप म सक्रिय हो चुका था आर जनता क विभिन्न तवको के वीच व्यापक ओर टिकाऊ एकता कायम करन वाली शक्ति क रूप म काम कर रहा था। यह एक ऐसा दोर था जिसम कला और सस्कृति के क्षेत्र म हर तरह की सकीर्णताओ, सामाजिक रुढियो ओर प्रगति की राह म वाधा वने हुए अकुशो पर प्रहार किया जा रहा था तथा साहित्य को जनता के व्यापक सघर्ष ओर प्रतिरोध की शक्तियो से जोडा जा रहा था। फ़ज आर उनके कई सहकर्मी इन दिना इश्क ओर रूमान की कविताए लिख रहे थे। इन रूमानी कविताओ का लेकर रूपवादी आलोचक जव फेज को इश्को-मोहब्बत का शायर सावित करने की कोशिश करते है तो हमार कुछ प्रगतिशील साथी पैसोपेश मे पड जाते ह। कई वार हम यह भूल जाते हैं कि उस दोर म प्रम की अभिव्यक्ति एक सकारात्मक ओर प्रगतिशील अभिव्यक्ति थी ओर एसी कविताओ को लेकर हम क्षमायाचना करन का कतई जरूरत नही है। फेज जैसे कवियो ने प्रेम क इस सकारात्मक रूप को ही आग चलकर दश प्रम ओर मानव प्रेम का रूप प्रदान किया। उनके इस विकास को रेखांकित करना हमारी जिम्मेदारी है।

फेज के बचपन मे ही रूस मे महान अक्टूवर क्रांति सपन्न हो चुकी थी। लेनिन के नतृत्व म समाजवादी सोवियत सघ ने सर्वहारा अतर्राष्ट्रीयतावाद की अपनी जिम्मेदारिया निभानी शुरू की तो उपनिवशो मे चल रहे राष्ट्रीय मुक्ति आदालना की साम्राज्यविरोधी अतर्वस्तु दृढ हुइ आर इनम स कुछ देशो के अपने-अपने मजदूर आदोलनो ने उसे दृढतर वनाया। रूस म समाजवाद की स्थापना के वाद उपनिवेशा की गुलाम जनता सिर्फ राजनीतिक आजादी से सतुष्ट हा जाने के लिए तेयार नहीं रह गयी थी। वह हर तरह की दासता, शोषण ओर उत्पीडन से मुक्ति पाने के सपने दखने लगी थी। इस दार मे, सोवियत सघ न केवल सर्वहारा अतर्राष्ट्रीयतावाद का कद्र था वल्कि हर प्रकार के आर्थिक शोषण आर सामाजिक उत्पीडन के विरुद्ध मानवमुक्ति का एक जीवत प्रतीक वन गया था। समाजवादी आदोलन की इस प्रचड धारा ने देखते-देखते अगर प्रेमचद से लेकर फेज तक कई पीढिया के प्रवुद्ध साहित्यकारो को अपनी ओर खींच लिया तो इसम हेरानी की कोई वात नहीं थी। समाजवाद आर राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन की दो सशक्त धाराए मिलकर एक हो गयी थी आर एशियाई-अफ्रीकी देशो के असख्य देशभक्त साहित्यकार ओर वुद्धिजीवी इनसे प्रेरणा ले रहे थे। कुछ आलोचक इस दार की परिस्थितिया को नजर अदाज करते हुए प्रगतिशीलता का विदेशी ओर अभारतीय सिद्ध करने की कोशिश करते रहते ह। वे भूल जाते ह कि भारत का राष्ट्रीय आदोलन एक ऐसे दोर म विकसित हुआ है जिसम एक ओर साम्राज्यवाद ओर वाकी तमाम दुनिया के वीच अन्तर्विरोध पनप रहा था तथा दूसरी ओर समाजवाद सपूर्ण विश्व के मुक्ति आदोलन का खुला ओर निर्भीक समर्थन कर रहा था। ऐसे म समाजवादी विचारधारा के प्रति गुलाम देशो के स्वतत्र वुद्धिजीवियो की आसक्ति न केवल स्वाभाविक ओर पूरी तरह देशभक्तिपूर्ण थी, वल्कि अनिवार्य और अपरिहाय थी। हेरानी की वात नही कि 1935 तक आते-आते हम देखत है कि फेज ने न सिर्फ समाजवादी विचारधारा ही अपना ली वल्कि अमृतसर के एक प्रतिष्ठित कॉलेज म पढाने वाला यह सफेदपोश वुद्धिजीवी मजदूरा के सुख दु ख का भागीदार वन गया उनकी ट्रेड यूनियनो म काम करने लगा उसकी शायरी मे 'गमे यारा गमे दोरा की शक्ल म ढलने लगा।

1936 मे प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना हुई। शुरू मे ऐसा लगा था कि यह कोई स्वतत्र धारा

नहीं है बल्कि राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन और समाजवादी आदोलन का सगम मात्र है, लकिन बाद की घटनाओ ने शीघ्र ही प्रगतिवादी साहित्यादोलन को एक स्वतत्र धारा का रूप दे दिया और इसने बहुत बडे पैमाने पर साहित्यकर्मियो और कलाकारा को अपनी ओर आकृष्ट किया। यूरोप में पतनशील पूजीवाद अपने सबसे घिनौने, मानवघाती और प्रतिक्रियावादी रूप--नाजीवाद और फासीवाद--में सर उठा रहा था, बाकी तमाम दुनिया से साम्राज्यवाद का अलगाव लगभग सपूर्ण हो चला था और दुनिया भर की शांतिप्रिय और मुक्तिकामी जनता इस उभरते हुए खतरे का मुकाबिला करने के लिए तैयार हो रही थी। सोवियत सघ इसका नेतृत्व कर रहा था। इन परिस्थितियो ने प्रगतिशील साहित्यादोलन को बहुत जल्द ही एक शक्तिशाली आदोलन बना दिया और देश की लगभग तमाम भाषाओ के समर्थ रचनाकार इसकी ओर आकृष्ट हुए। प्रगतिवादी आदोलन इसलिए इतनी जल्दी और इतना ज्यादा लोकप्रिय नहीं हो गया कि देश मे पहली बार एक राजनीतिक पार्टी ने उसे प्रवर्तित किया था--जैसा कि कुछ आलोचक सोचते है--बल्कि उसके लोकप्रिय और सर्वग्राह्य होने की वजह यह थी कि वह एक साथ साम्राज्यविरोध, युद्ध विरोध और शाति-मुक्ति-प्रगति की पक्षधरता का प्रतीक था। फेज और उनकी सी मानसिकता वाले असख्य साहित्यकारो और बुद्धिजीवियो का इस धारा म आ मिलना ऐसा ही स्वाभाविक था जैसे नदी मे मछलियों का आ जाना। इसे 'प्रेम की डगर छोडकर क्राति का झडा उठा लेने' जैसी उलटबासियों से नहीं समझा जा सकता।

बहरहाल, दूसरा विश्वयुद्ध होकर रहा। लाल सेना ने दुदात दस्यु फासीवाद को धूल चटायी। पहले विश्वयुद्ध के कराल गर्भ से समाजवाद की एक कोपल फूटी थी जो दूसरे विश्वयुद्ध तक एक अभयदाता अक्षयवट की शक्ल ले चुकी थी। दूसरे विश्वयुद्ध की विकराल कोख से एक सशक्त वल्लरी निकली जो लगातार मढे चढती जा रही थी और अपना विस्तार कर रही थी। दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति पर समाजवादी शिविर अस्तित्व मे आया। गुलामी की कडिया तोडकर पहले उत्तरी कोरिया तथा वियतनाम, बाद म भारत और चीन आजाद हुए। 1945 से जिस नये युग का सूत्रपात हुआ वह साम्राज्यवाद की लगातार पराजयो, समाजवाद की सतत सफलताओ और दुनिया के पैमाने पर राष्ट्रीय मुक्ति आदोलना की निरतर प्रगति का युग है। आज भी कुल मिलाकर घटना-विकास इसी दिशा में हो रहा है।

तो भी, दूसरे विश्वयुद्ध मे साम्राज्यवाद मर नहीं गया। अमरीकी साम्राज्यवाद के नेतृत्व में उसने नयी रणनीति और नये पैतरे विकसित किये और उन्ह आजमाना शुरू कर दिया। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद उपनिवेशो को प्राप्त स्वतत्रता मे एक ओर औपनिवेशिक जनता के साम्राज्यविरोधी राष्ट्रीय मुक्ति आदोलनों की शक्ति मूर्तिमत है तो दूसरी ओर साम्राज्यवाद की बदली हुई रणनीति--जिसे आम तौर पर नव-उपनिवेशवाद के नाम से पुकारा जाता है--भी परिलक्षित होती है। इन देशो म सत्ता का हस्तातरण उन शक्तियो को करना जो स्वाभाविक रूप से साम्राज्यवाद की शत्रु नहीं ह, इन देशों के आर्थिक विकास के लिए 'सहायता' के नाम पर उनकी सरकारो को तरह-तरह के बधनों मे बाधना और उन्ह अपने ऊपर निर्भर बनाना, बहुराष्ट्रीय निगमों और कपनियों की पूजी वहा लगाकर उनकी अर्थव्यवस्था म साम्राज्यवादी हितो का विस्तार करना, विचारधारात्मक प्रचार के जरिये इन देशो के प्रजातत्र को प्रभावित करना पतनशील साम्राज्यवादी सस्कृति का निर्यात, प्रलोभन, दबाव और धमकी द्वारा गुटनिरपेक्षता की नीति से उन्हें विचलित करना, फौजी और जनविरोधी निजामों को पनाह देना और इन निरकुश शासको से रणनीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान अपने सैनिक अड्डो के लिए झटक लेना, अविकसित देशों में फूटपरस्त

आर अलहदगीपरस्त ताकतो की सरपरस्ती ओर सी आई ए जैसी खुफिया एजेंसियो की उनमे घुसपेठ की मदद से वहा अस्थिरता पदा कर देना, धार्मिक सकीर्णता, तत्ववाद तथा हर के प्रतिक्रियावाद की ताकतो को शह देना—नवउपनिवेशवाद की रणनीति के प्रमुख घटक हे। जाहिर है कि इस रणनीति के विरोध मे भी एक रणनीति विकसित की गयी जिसमे साम्राज्यविरोध, गुटनिरपेक्षता का समर्थन, आर्थिक स्वतत्रता ओर आत्मनिर्भरता, समाजवादी देशो से सहयोग और विघटनकारी पृथकतावादी तथा धार्मिक तत्ववाद के विरोध पर विशिष्ट बल दिया गया। यही वह चोथी धारा थी जिसने फेज के कवि मानस को प्रभावित किया और उनकी रचनाओ से बल प्राप्त किया। यह, उपनिवेशवाद ओर उसके विरुद्ध लगातार व्यापक होता हुआ जनादोलन भारतीय कवियो की तुलना म फेज के बारे मे कहीं ज्यादा प्रासंगिक है।

भारत की तरह ही पाकिस्तान म भी सत्ता का हस्तातरण वहा के पूजीपति-भूस्वामी शासक वर्गो को किया गया। फेज ने पाक आजादी के चरित्र को समझने मे भूल नहीं की। 1947 पर उनकी कविता इसका प्रमाण है। कविता की अतिम पक्तिया उनकी समझ को स्पष्ट कर देती है

अभी गिरानि ए शब मे कमी नही आयी
नजाते दीदा-ओ दिल की घडी नही आयी
चले चलो कि मो मंजिल अभी नहीं आयी।

गोरतलब हे कि फैज, हमारे उपमहाद्वीप के अनेक कविया की तरह, राजनीतिक आजादी को अतिम लक्ष्य मानने की भूल नही करते। वह समझते हे कि अनगिनत कुर्बानिया देने के बाद इस उपमहाद्वीप की जनता ने जो आजादी हासिल की है वह आखो ओर दिल पर लगी हुई तमाम पाबंदियो से, मानव को हर कोण से कसे हुए तमाम बधनो और चुभने वाले अकुशों से, हर तरह के शोषण ओर सामाजिक उत्पीडन से, मुक्ति कराने वाली शक्ति नहीं है। यह मात्र एक पडाव है जहा दम लेकर देश की जनता को वास्तविक मुक्ति के सघर्ष की राह पर आगे वढ जाना हे। उस युग के अधिकाश नही तो अनेक साहित्यकारो की समझ यह नही थी। वे इस आजादी को ही मुक्ति मान बैठे थे और सघर्ष की नयी मजिल की ओर रवाना होने से इकार कर रहे थे। ऐसे ही लोगा की पस्तहिम्मती आर अवसरवादिता के चलते प्रगतिशील लेखक सघ का विघटन हुआ। इस विघटन में बहुत से ऐसे प्रगतिशील लेखको की समझ ने भी योग दिया जो राजनीतिक आजादी को अतर्वस्तु को, ओर उसके द्वारा प्रदत्त सघर्ष के नये सुअवसरो की सभावना को पहचानने से पूरी तरह इनकार कर रहे थे। उनसे हटकर फेज इस आजादी को 'नजाते दीदा-ओ दिल की घडी म तब्दील करने म जी-जान से जुटे रहे ओर उन्हे इसकी कीमत चुकानी पडी।

1951 मे उन्हे रावलपिडी षड्यत्र केस मे गिरफ्तार करके जेल मे ठूस दिया गया। चार वर्षो तक वह सीखचा म केद रहे ओर फासी का फदा लगातार उनके सर पर झूलता रहा। इतिहास की विडबना देखिये कि नवउपनिवेशवादी ताकतो की शह पर जिस सरकार ने फेज पर सितम ढाये, उसी के प्रमुख लियाकत अली खा को नवउपनिवेशवाद की सुनियोजित हिसा का, इस उपमहाद्वीप मे पहला शिकार बनना पडा। इसके बाद स पाकिस्तान पर नवउपनिवेशवाद का शिकजा लगातार कसता ही गया। आज यह उस पर बुरी तरह हावी है। फेज ने पाकिस्तान मे अपनी आखो से उन मूल्या ओर आदर्शो को मासूम बच्चा की तरह कत्ल होते हुए देखा जिन्ह इस उपमहाद्वीप के अवाम ने बेशुमार कुर्बानिया देकर हासिल किया था—एकता, स्वतत्रता, समानता, प्रेम, शांति, जनवाद ओर धर्मनिरपेक्षता। ये मूल्य और आदर्श उन्ह

जान से प्यारे थे। यह सोचकर तकलीफ होती है कि जो कवि मानव मात्र की अखडता और मुक्ति का सपना अपनी आखों मे सजोये रहा उसे दो-दो बार अपनी मातृभूमि के टुकडे होते हुए देखना पडा और एक बार नहीं बल्कि बार-बार उस जम्हूरियत को कटते-पिटते और लहू-लुहान होते दखने की पीडा भोगनी पडी जिस पर वह सो जान निछावर करता था। धर्म के विधि-निषेध का जिदगी भर मजाक उडाने वाले फैज को खुद अपने ही मुल्क मे जमाते-इस्लामी की दरिंदगी झेलनी पडी और जिस जनवादी आदालन को मजबूत बनाने मे वह तमाम जिदगी लगा रहा वह इतना आतकित हो उठा कि उसकी रक्षा करने के लिए आगे नहीं आ सका। फैज को बार-बार पाकिस्तान--जिसम उनकी रूह बसती थी--छोडने पर मजबूर होना पडा।

इन चार-चार शक्तिशाली धाराओं के आलोडन और घात-प्रतिघात न फैज को एक असाधारण कवि बनाया। इन शक्तिमती धाराओ से प्रेरणा लेकर, इनकी शक्ति को अपने कवि व्यक्ति मे समो लेना फैज की एक ऐसी विशेषता है जो उनके समकालीन अन्य कवियो मे इतनी प्रचुरता से नहीं पायी जाती। हम देखते हैं कि फैज की कविता अपनी समग्रता म एक ओर पाकिस्तान का 37 साला इतिहास प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर वह मानव मुक्ति की कविता है जो दुनिया भर के उन तमाम लोगो से मुखातिब होती है जो जुल्म के खिलाफ लड रहे है। दूसरे शब्दो, फैज की कविता एक साथ राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय दोना है। फैज विश्व राजनीति से बहुत गहरे जुडे हुए थे। उनकी कई कविताए सीधे-सीधे अतर्राष्ट्रीय घटनाओ पर, एशियाई-अफ्रीकी देशा में चल रहे मुक्ति आदोलनों पर लिखी गयी है। लेकिन, फैज की असाधारणता इस बात मे नहीं है। फैज की असाधारणता इस बात मे है कि उन्हाने जो कविताए पाकिस्तान की ठोस परिस्थितियों पर लिखी हे, आर जो पहली नजर मे उनकी नितात आत्मगत अभिव्यक्तिया लगती है, दरअसल इतना व्यापक प्रभाव रखती है कि दुनिया के किसी भी कोने मे पढी, समझी ओर सराही जा सकती हे। फैज का यही जादू उन्हें हिंदी-उर्दू के उन कवियो से अलग करता हे जो फेज के युग में पेदा हुए और फैज की ही तरह चार-चार शक्तिशाली धाराओ में सस्कारित होने के बाद भी असाधारण कवि नहीं बन पाये। फैज की कविता को समझना उनके इसी जादू को समझना है।

फैज ने उर्दू साहित्य की परपरा को उसकी सपूर्णता में आत्मसात किया था। इस उपमहाद्वीप की सास्कृतिक परपरा को भी उन्होंने बहुत ध्यान से देखा और परखा था। जब जनरल अय्यूब ने पाक सस्कृति पर रिपोर्ट लिखने का काम फैज को सौंपा था तब कुछ तरक्कीपसदा को बहुत बुरा लगा था। लेकिन, जब फैज़ ने रिपोर्ट पेश की तो अय्यूब ने उसे छापन से इनकार कर दिया। फेज की मान्यता थी कि पाक सस्कृति की जडे भारतीय उपमहाद्वीप मे हे। इसका मतलब इस तथ्य को रेखांकित करना था कि भारतीय उपमहाद्वीप में हजारों साल से विभिन्न और परस्पर विरोधी धर्मो और नस्लो के लोग साथ साथ रहते आये है। उनके खान-पान, रहन-सहन ओर पूजा-पाठ के तोर-तरीके अलग रहे है। लेकिन इसके बावजूद, भारत उन सबका देश है। इस उपमहाद्वीप की यही सास्कृतिक परपरा हे जो पाकिस्तान को भी विरासत में मिली है। अगर पाकिस्तान को एक रखना है तो स्थायी एकता मजहब की बुनियाद पर नहीं बल्कि उस देश मे रहने वाली तमाम कौमियतो की निजी पहचान को समयकर, अल्पसख्यकों के हितो को सुरक्षित रखते हुए, उनकी भाषाओं और बोलियों को विकास के समान अवसर प्रदान करते हुए और आर्थिक प्रगति के लाभों का जनता के बीच न्यायसगत वितरण करने की नीति पर चलकर ही कायम की जा सकती है। जाहिर है कि फैज की यह मान्यता न तो जनरल अय्यूब को रास आ सकती थी और

न जमात इस्लामी को, जो धर्मोन्माद की राह पर चलते हुए उस दश के आर ज्यादा टुकडे करने के सामराजी मनोरथ सफल करने पर आमादा थी। लिहाजा, फेज को अपनी रिपोर्ट खुद प्रकाशित करानी पडी। भुट्टो क जमान म वयान की आजादी का इस्तेमाल करते हुए जव फज ने अपनी सास्कृतिक अवधारणा का खुलासा करना शुरू किया तो उन्हे जमाते इस्लामी क धर्मोन्मत्त आक्रमण का सामना करना पडा।

फज उदू साहित्य के गभीर अध्येता थे। उन्हान अपन साहित्य की परपरा का भी अध्ययन आर विश्लेपण किया आर अपनी रचनाओ स उसे आगे वढाया। हम उनकी शायरी इसीलिए इतनी अपनी ओर अजीज लगती ह क्याकि वह उदू साहित्य की परपरा से उच्छिन्न नही ह, उसके विरोध मे नहीं खडी ह वल्कि उसकी धारा का अभिन्न अग हे, उसे आगे वढाती ह। उर्दू के अधिकाश आधुनिकतावादी, यहा तक कि कुछ प्रगतिशील, कविया की कविता के वारे म यह वात इतने यकीन से नहीं कही जा सकती। इसका मतलव यह नही कि उन्होने नये प्रयोग नही किये, कविता म नये ओर सामयिक विपया का समावेश नही किया या उनका अपना अलग रग नही ह। फज क ज्यादातर शेरा पर उनकी अपनी माहर लगी हुई है। उर्दू की साहित्यिक परपरा का अग हाते हुए भी हम यह तय करने म ज्यादा वक्त नहीं लगता कि यह शेर फज का हे। हुआ यह है कि उर्दू साहित्य की परपरा का अध्ययन करते हुए फज ने पाया कि इस सशक्त परपरा मे आज के जमाने का चित्रण करने की पूरी पूरी गुजाइश हे और उन्हाने इसका भरपूर फायदा उठाया।

फेज की शायरी के ज्यादातर प्रतीक पारपरिक ह। उनके यहा जाहिद आर रिंद ह, सागरो मीना ह गुलो-वुलवुल ह, शमा ओर परवाना ह, आशिया ओर कफस ह, मस्जिद और वुतखाना हे, जुल्फो रुखसार हे दोरा रसन ओर मकतल ह, कातिल आर विस्मिल ह खिज़ा ओर वहार ह, धूप ओर शवनम हे, चाद ओर खुर्शीद हे—गोया उर्दू परपरा की सारी महफिल अपने पूरे ठाट वाट आर रख रखाव के साथ उनके यहा मोजूद हे आर इसके वावजूद उनकी शायरी खास उनकी अपनी, आरो से अलग ओर आधुनिक है। इसकी वजह यह है कि फेज का सोच उनके अपने जमाने का सोच है अपने से पहले कवियो के मुकाबल शायरी का उनका मकसद जुदा हे, फेज के दिल ओर दिमाग पर पडने वाले असरात जुदा ह, उनकी समस्याए अलग किस्म की ह और उनका समाधान भी अलग है। फैज जानते थे कि परपरा से चले आय प्रतीका मे नये अर्थ भरना, उन्ह नये भावा ओर विचारो का सवाहक वनाना कोई खेल नहीं वल्कि एक जोखिम भरी चुनोती ह। तो भी, उन्हाने आगे वढकर यह चुनौती कवूल की। वजह यह है कि अगर आप अपनी परपरा को सिर्फ पहचान लेते ह, उसे अपने दोर से जोडकर नहीं देख पाते, अपने युग की अपेक्षाओ के अनुसार उसका विकास नही कर पाते तो परपरा को लेकर इतनी सरन्मगजी करना वेकार हे। फेज ने न सिर्फ यह मोर्चा दिलेरी से सभाला वल्कि उसे फतेह करके दिखाया।

मन मे फेज की प्रतीक योजना पर विस्तार से लिखने की वडी इच्छा थी, लेकिन यह लेख पहले ही इतना लवा हो गया ह कि इसकी गुजाइश नही रह गयी है। तो भी, इतना तो कहना ही होगा कि उनके प्रतीको को सिर्फ पारपरिक अर्थो मे लेने से फेज की शायरी को समझना नामुमकिन है। उनका यार या महवूव क्रांति भी हे रहगुजर या सफर क्रांति का पथ भी ह दारो रसन फासी के अलावा अत्याचार का भी प्रतीक हे, जुनू, इश्क आर शराव क्राति या उसका उन्माद है चिराग उत्सर्ग का प्रतीक हे, रिंद रहरो, सोदाई विस्मिल आदि प्रतीका का इस्तेमाल क्राति के पथिक के लिए हुआ हे, नासेह या जाहिद अपने

उन पारपरिक अर्थो अलावा प्रतिक्रियावादी या शकालु लोगा के भी प्रतीक हे जा क्रातिकारियो को क्राति पथ पर चलने से रोकने की कोशिश करते ह, वज्म या महफिल वम्तुगत परिस्थितियो का प्रतीक हे। फ़ज की प्रतीक-योजना की यह समझ हासिल किये विना उनकी शायरी की क्रातिकारी अतर्वस्तु हमारी नजरो से ओझल हो जायेगी। फ़ेज क कुछ आलोचको के साथ यह हादसा हो भी चुका हे। दरअसल इस समझ के विना पारपरिक शायरों के कलाम से फेज की शायरी को जुदा करना कठिन हे। मिसाल के तार पर हम जिगर ओर फ़ेज के ये दो शेर ले सकते ह जो लगभग एक ही मन स्थिति को व्यक्त करते हुए लगते ह, हालांकि वास्तव म दोनो मे वहुत वडा फर्क हे

यू तडपकर दिल ने तड़पाया सरे महफिल मुझे
उसको कातिल कहने वाले कह उठे कातिल मुझे

- जिगर

जिस धज से कोई मक्तल म गया वा शान सलामत रहती हे
ये जान तो आनी-जानी है, इस जा की तो कोई वात नही

फ़ेज

मक़तल, कातिल ओर मक़तूल का वजूद दोनो ही शेरो म मोजूद हे। जिगर की महफिल कातिल की महफिल है जहा आशिक कत्ल होने के लिए जमा हुए हे लेकिन, कत्ल के वाद आशिक का दिल इस तरह तडपता हे और उसे भी तडपाता है कि न सिर्फ माशूक पर वल्कि महफिल म वठे रकीवा पर भी आशिक की सच्ची मोहव्वत का राज अया हो जाता हे। इश्क की इस सदाकत ओर कुर्वानी को देखकर कातिल के लिए नादिम और शर्मसार होने के अलावा चारा ही क्या रह जाता है? कातिल की इस नदामत और इकरारेजुर्म को देखकर रकीवा पर यह असर होता हे गोया कातिल मकतूल हे ओर मकतूल ही अस्ल कातिल है। इस तरह, जिगर इस शेर म जज्व ए इश्क की सदाकत आर उसकी शिद्दत के असर को नुमाया करते ह। जिगर के जमाने मे गाधीजी का हृदय परिवर्तन का सिद्धात सिर्फ एक फलसफा नही रह गया था वल्कि उनकी आवाज पर हजारा लोग अत्याचारी ब्रिटिश हुकूमत क सामने सीना खोलकर खडे हो जाते थे ओर इन शातिप्रिय लोगा की कुरवानियो का असर सिफ भारतीय जनता पर नहीं वल्कि दीगर मुल्कों के अवाम पर भी पड रहा था। मुमकिन है कि जिगर के इस शेर मे उस दोर का यह सामाजिक यथार्थ किसी न-किसी हद तक झलक रहा हो, लेकिन शेर की मोजूदा वुनावट म इसकी गुजाइश कम ही दिखायी देती हे। कुल मिलाकर यह शेर तडपने-तडपाने ओर कातिल कान हे इसकी पहचान म ही उलझकर रह जाता हे। दोना मिसरा के अत म 'मुझे' होने के कारण पाठक का ध्यान कवि की वेयक्तिक मनोदशा पर ही केद्रित हो जाता हे ओर शेर कोई व्यापक अर्थ व्यक्त करने मे कामयाव नही हो पाता।

इसके विपरीत, फ़ेज के शेर मे व्यक्तिगत भावना का सामान्यीकरण कर दिया गया ह। मकतल मे जाने से ज्यादा महत्व इस वात का हे कि जानेवाला किस धज से जाता ह। जान तो 'आनी-जानी हे, वह तो किसी की भी सलामत नहीं रहेगी। सलामत रहने वाली चीज तो वह अदा या धज ही हे जिमसे मकतूल मकतल मे जाता है। यह धज ही वह चीज हे जो आशिक को दीगर मकतूला स अलग करती है और लोगों का हमेशा याद भी रहती हे। वेयक्तिकता का अभाव धीरे-धीरे हमे शेर के सामान्यीकृत, व्यापक ओर उदात्त अर्थ की दुनिया मे ले जाता है। पाठक का मन 'मकतल' ओर 'धज के प्रतीका क पारपरिक अर्थ से हटकर दूसरे अर्थ तलाश करने लगता हे। आहिस्ता-आहिस्ता उस पर यह राज खुलता

है कि यह मरता लिए हुए, गजल का वह पारंपरिक मरता नहीं जो बाद म सफर किए तक का ग्याभा म मातृ है बल्कि यह ता श्रम और विद्रुत तानजाल का प्रतीक है जिसके साथ न जाने कितने जन्र्गियापसद और तरक्कीपसन्द गीतकार बन्द हो गए हैं। इन तन्त गानगाता की धार अलग-अलग है। यादें प्रम मता र दमा का दमकर जिर उठा है यादें हैं। हुए और अपने अर्थ का नार की शम्न दता हुए प्रगतिशीलगी उमा व साथ पागा र पाँच पा पूम लता है। एम म जो यो तो कोई बात हा ही नहा सकती क्योंकि यह ता 'आती-जाती' है क्योंकि ममता सा उन भी हागा जा इस मड़ाई में शामिल नहीं है। लाग-हर तरह व लाग-मर जायग यार रह जायगी उनकी यह 'धज' जिस सज के मकान म गय। इस धन की 'शान' सलामत रहगी क्योंकि जुम का पता इस मिटा नहीं सकता। यह शान सलामत रहगी क्योंकि इसस प्रेरणा लेकर आशिकों वाली यादाओं व वारिस बढ़ जाएग कुर्बानी दत रहग आर दस्त-ओ-बाज़ को पशमान और पखरात करत रहग 'और निरन्तर उजसार क वारिस'।

गौर करने की बात है अपने जमाने र सामाजिक यथार्थ व एक बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू को जिगर न आत्मसात करक उसे जिस तरह गजल व पारंपरिक शेर व चौखट में मजबूत कर लिया है जबकि फज न यथार्थ के उसी पहलू से वास्ता अपना जोड़ा तात्पुरा को सामान्यीकृत करके प्रतीक बना लिया है, और इस कोशिश म वह अपने शेर म न सिर्फ अपने दौर की एक आम सच्चाई की तस्वीर उतारने म कामयाब हुए हैं बल्कि गजल की पारंपरिक धारणा को एक नवीन और विशेष आयाम देने म भी सफल रहे हैं।

असल बात यह है कि मीर से उर्दू शायरी की जो नयी परपरा शुरू हुई, गालिब ने उसे उत्कर्ष पर पहुंचाया और उनके बाद पहले इकबाल ने और आगे चलकर जोश, फिराक और फैज ने उसे अपने दौर की जरूरतो के हिसाब से विकसित किया। गालिब के पचासो ऐसे अशआर है जो फैज की शायरी पढ़ते हुए बेसाख्ता याद आ जाते है और फिर भी फैज के अशआर की अपनी खास और आजाद हैसियत है। इस बारे मे विस्तार से लिखकर इस लेख को लबा बनाना ठीक नहीं, इसलिए मै सिर्फ दो मिसालें लेकर अपनी बात स्पष्ट करूगा।

गालिब और फैज के इन दो शेरो पर गौर कीजिए

> कफस मे मुझसे रूदादे चमन कहते न डर हमदम
> गिरी है जिसपे कल बिजली वो मेरा आशिया क्यों हो।
>
> \- गालिब
>
> चमन पे गारते गुलचीं से जाने क्या गुजरी
> कफस से आज सबा बेकरार गुजरी है।
>
> फैज

दोनो शेर मिलते-जुलते नजर आते है। दोनो शायर कफस मे है। दोनो को अपने आशियाना की चिंता है जो मुसीबत की जद मे है। गालिब का 'हमदम' शायर को 'चमन की रूदाद' सुनाते हुए डर रहा है, फैज को सबा की बेकरारी से चमन की चिंता हो उठती है, एक चमन पर बिजली गिरी है तो दूसरे को उसके माली ने ही गारत कर दिया है। लेकिन, गालिब और फैज के जमाने का जो फर्क है वह इन दो शेरो मे साफ झलक रहा है। एक विराट महल की तरह भरभराकर गिरते हुए सामती युग में सास लेते हुए गालिब अपने दिल को यह झूठी तसल्ली दे लेते है कि चमन में हजारो आशियाने है, कोई जरूरी

ता नही कि जिस पर विजली गिरी हे वह मेरा ही आशियाना हो, या जव विजली गिर ही गयी तो वह 'मेरा आशिया कहा रह गया, उसे तो अव नये सिरे से वनाना पडेगा और यह 'हमदम' भी कैसा हे जो 'रूदादे चमन' सुनाते हुए डरता हे—कहीं यह हजरत ही तो 'मेरा आशिया' नही फूक आये और अव सारा कुसूर विजली का यता रहे हो। लेकिन, फैज की चिता 'मेरे आशिया' तक महदूद नही, उन्ह सारे चमन की फिक्र हे जिसे खुद उसका ही गुलची गारत करने पर आमादा है। 'आशिया' की जगह 'चमन' ओर 'विजली' की जगह 'गुलची' कर देने और 'मेरे' को गायव कर देने से न सिर्फ फैज के शेर पर उनकी निज विशिष्टता की मुहर लग जाती हे, वल्कि दोनो के दोर का फर्क भी नुमाया हो जाता है। फेज का 'चमन फोजी तानाशाही के शिकजे मे तडफडाता पाकिस्तान हो जाता है, उनकी चिता देशभक्त की चिता हो जाती है, 'गुलची पाकिस्तान की फोजी हुकूमत हो जाती हे जो उस देश म लाकतत्र, स्वतत्रता ओर प्रगति की ताकतो को नेस्त-नावूद करने पर उतारू थी, जिसने फेज जेसे न जाने कितने वतनपरस्तो ओर जम्हूरियत पसदो को जेल की आहनी दीवारो म केद कर दिया था।

गालिव का एक ओर बहुत मशहूर शेर है

काविकावे सख्तजानीहाए-तनहाई न पूछ
सुवह करना शाम को लाना हे जूए शीर का

वियोग की शाम को दिन मे वदलने के लिए शायर अकेला जूझ रहा है। फरहाद भी शीरी को हासिल करने की शर्त के तोर पर अपने पेशे से पहाड को काटकर दूध की नहर निकालने के लिए इसी तरह अकेला जूझा था। लेकिन फ़रहाद ने वह नहर एक वार निकाली थी, यहा शायर को हर रोज रात को सुवह करना होता है, फ़रहाद की यातना झेलनी होती हे। गोया, फरहाद के जुनून से गालिव की यातना यडी हे।

अव इस शेर की तुलना फैज के इतने ही मशहूर शेर से कीजिए

दिल नाउम्मीद तो नहीं नाकाम ही तो हे
लवी है गम की शाम मगर शाम ही तो है।

समस्या यहा भी वही हे—गम की शाम को मसर्रत की सुवह मे तवदील करने की। लेकिन, यहा नाकामी नाउम्मीदी नहीं वनने दी जाती ओर इसके नतीजे मे मिलता हे यह अदम्य विश्वास कि शाम कितनी ही लवी क्यो न हो, अतत सुवह म वदलकर रहेगी। यह विश्वास ही वह डोर है जिसे पकडकर हम इस सचाई तक पहुच सकते ह कि यह लवी शाम जुदाई की नही वल्कि इस सडे-गले और मानव द्वारा मानव के शोपण पर आधारित निजाम की शाम हे जिसका अत क्रांति की सुनहरी भोर मे होना एक ऐतिहासिक सच्चाई है ओर जो व्यक्ति इस सच्चाई को जानता है, उसका दिल कभी-कभी नाकामी के एहसास से भर तो सकता है लेकिन नाउम्मीद नहीं हो सकता। इस शेर मे तनहाई का जिक्र नहीं हे क्योंकि तनहाई नाकामी को नाउम्मीदी मे तब्दीली कर देती है ओर शाम को सुवह करना जू-ए शीर को लाने जैसा मुश्किल हो जाता है। 'तनहाई' के गायव हो जाने से फेज का यह शेर एक क्रांतिकारी अवधारणा को काव्यात्मक ढग से व्यक्त करने मे समर्थ हो सका हे और फैज के जमाने के सामाजिक यथार्थ का कलात्मक चित्र प्रस्तुत करने मे सक्षम भी।

फेज को अपने विचारो के कारण जमाते-इस्लामी के हमले झेलने पडे तो अपने कथ्य की क्रांतिकारी

अतर्वस्तु को प्रस्तुत करन क लिए उन्हाने रूप या फार्म म जा परिवर्तन किये उन्ह लकर उर्दू क उन कठमुल्ला आलाचका का काप भाजन भी वनना पडा जो भाषा, कथ्य और शिल्प के अत सवधा को नही समझ पाते आर शिल्प या रूप को एक स्वतत्र ओर निरपक्ष इकाई मानकर चलते ह। फेज ने अपनी नज्मा म गजल के आर गजला म नज्म के गुण पैदा किये। उनकी ज्यादातर नज्मे समकालीन इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाआ से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं, लेकिन उनकी शली ऐसी हे, गाया उन नज्मा का ताल्लुक उनकी अपनी जिदगी के हादसा से हो। जहा फेज इन घटनाओ पर खुली टिप्पणी करना चाहते थे वहा उन्होने नज्म के वजाय नग्मो, तरानो ओर कव्वालिया का फार्म अपनाया ओर कला मूल्या की अपना चिता पर इस वात को प्राथमिकता दी कि जिनके लिए ये चीज लिखी जा रही हे वे इन्ह आसानी से समझ सक आर अपने सघर्षो मे इन्ह हथियार की तरह इस्तेमाल कर सक। फेज ने गजल की रूमानियत वनाये रखी लेकिन उसे अपने जाती दुख-दर्द का नही वल्कि समकालीन यथार्थ का वाहक वनाया। उन्हान गजल के अशआर को कवि की भिन्न-भिन्न मनोदशाआ ओर व्यक्तिगत सदर्भो को व्यक्त करने वाले स्वतत्र और विशृखल पद मानने की परिपाटी त्याग दी। उनकी ज्यादातर गजल ऐसी हे जिनम एक गजल म शायर का एक ही मूड है ओर वह मूड समकालीन यथार्थ के किसी एक पहलू से जुडा हुआ हे। इस मामले मे गालिब से उन्ह जरूर मदद मिली होगी जिनकी अनेक गजलो मे शायर पर एक ही मूड तारी रहता हे। गालिव की एकाध गजल की विस्तृत व्याख्या द्वारा फैज ने गजल मे मूड की निरतरता सावित भी की। आज भी उदू आर हिदी की गजल कुल मिलाकर गालिब ओर खासकर फेज के ही नक्शे-कदम पर चल रही है ओर फैज ने अपने सात कविता सग्रहो म उर्दू के शायरो की परपरा पर चलते हुए अपने वारे मे जो एकाध दर्पोक्तिया शामिल की ह उनम से इस दर्पोक्ति को सिद्ध कर रही हे

हमने जा तर्जे फुगा की थी कफस मे इजाद
फेज गुलशन म वही तर्जेवया ठहरी हे।

फज 1936 के जमाने से ही प्रगतिशील साहित्यादालन आर प्रगतिशील लेखक सघ की गतिविधिया से अभिन्न रूप से जुडे रहे। इस आदोलन से जुडे हुए अनेक चोटी के साहित्यकारो की तुलना मे उनकी विशिष्टता यह हे कि सर्वहारा की विचारधारा के घोपित पक्षधर होते हुए भी उन्हान साहित्य के मोर्चे पर कभी सकीर्णतावादी रुख अख्तियार नही किया। उन्हाने विचारधारा और साहित्य के अत सवधो को सही ढग से समझा ओर एगेल्स की यह सलाह लगातार अपने मन म रखी कि वग समाज म साहित्य किसी-न किसी वग की विचारधारा का प्रतिपादन ता अवश्य करेगा लेकिन साहित्य मे विचारधारा जितनी प्रछन्न होगी, कलाकृति के रूप म वह रचना उतनी ही अधिक प्रभावशाली ओर सार्थक होगी। यही कारण हे कि फज की शायरी शुरू से आखिर तक विचारधारा से आतप्रोत हे लेकिन उनका वडे से वडा विराधी भी उनकी रचनाओ को यह कहकर खारिज नही कर सका ह कि उनकी रचनाए कलात्मक नही हैं, प्रचारात्मक ह। उनकी रचनाआ म जोश, साहिर अली सरदार जाफरी जेस तरक्कीपसद शायरा की घनगरज नहीं हे, वडवोलापन नहीं हे मसीहाई अदाज नही हे, पाठका का पिछडा हुआ समझकर उन्ह एतिहासिक भातिकवाद या सर्वहारा की भूमिका के वार म शिक्षित करने का दभ नही ह, वल्कि अपनी कविता आर अपन पाठका की समझ के प्रति एक अदम्य आर अखड विश्वास हे

जान जायेंगे जाननेवाले
फ़ेज फ़रहादो-जम की बात करो।

आज क दौर मे अगर हमारे तरक्कीपसद शायर फ़ेज से पाठको के फ्रेंड-फिलासफर-गाइड बनन की यह कला सीखने की कोशिश नही करते तो फेज का नाम लेना, एक रस्म-अदाई बनकर ही रह जायेगा।

फ़ेज ने सिद्धातो के सवाल पर कभी समझौता नहीं किया। जनवाद क उस मकतल म उनका सर हमशा तना रहा। अपनी पूरी जिंदगी मे उन्होने अपनी यह कठिन प्रतिज्ञा सफलतापूर्वक निभायी जो उन्हाने अपने कवि-कर्म के प्रस्थान बिंदु पर की थी

हम परवरिशे-लौहो-कलम करते रहेंगे
जो दिल प गुजरती है रकम करत रहगे।

उन्होने जिंदगी भर मजदूरो-किसानो आर अन्य मेहनतकश तबको के लिए एक व्यक्ति आर एक कवि के रूप मे काम किया, उनके सघर्षो मे भाग लिया, उन्हे आगे बढाने मे अपनी भूमिका निभायी। जब 1942 म साम्राज्यवादी युद्ध ने लोकतत्र के लिए युद्ध का रूप लिया ता फ़ेज, अपने फ़ासीविरोधी विश्वास को मूर्त रूप देने के लिए, फौज मे भरती हो गये। उन्होने आजाद पाकिस्तान मे हर तरह के जुल्म सहे लेकिन अपने सिद्धात नही त्यागे। वह सर्वहारा क्रांति के प्रति पूरी नरह समर्पित क्रातिकारी कवि थे ओर सर्वहारा की विचारधारा के मूर्तिमत प्रतीक थे, और फिर भी विनय, मैत्री और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति दभातीत और सहज मानव प्रेम से आतप्रोत। अगरचे 'फेज-अज फेज' शीर्षक वार्ता मे कवि ने इस बारे मे खुद पाठकों का ध्यान इस बाबत खीचा ह, तो भी इस सचाई की आर बहुत कम आलोचको का ध्यान गया है कि फेज की पूरी शायरी मे मै का प्रयोग शायद ही कहीं हुआ हो, हर जगह हम हे। मेरा, मुझे, मुझसे जैसे शब्द मिल जायेंगे, लेकिन 'मे नहीं मिलेगा। शायद इसकी वजह यह हो कि 'म और 'हम' का वजन बराबर हे, लेकिन वजन बराबर होते हुए भी 'म को निकालकर 'हम को अपना लेना, सर्वहारा की विचारधारा से प्रतिबद्ध कवियो के लिए भी आसान नही है, समकालीन उर्दू हिंदी कविता इसकी गवाह है। आज हमारे लिए फेज की सबसे बडी सार्थकता यही है कि हम उनसे सीखकर, अपने विश्वासो को बनाये रखकर, अपनी रचनाओ को उनकी तरह एक साथ कलात्मक, क्रातिकारी आर लोकप्रिय बनाय।

लय मे सामूहिकता का एहसास

राजेश जोशी

(1)

फैज की कविता मे तनहाई और इतजार, ये दो शब्द बार-बार आते है। जब नहीं आते है तब भी लगता है जैसे उनका अनुरणन उनकी कविता मे सुनायी दे रहा हे। यू ये ऐसे शब्द हे जो उर्दू कविता मे पहले भी हजारो बार प्रयुक्त हुए हे, लेकिन फैज की कविता मे आते ही ये इतने अलग से क्यो लगते ह? गालिब की तनहाई और फेज की तनहाई क्या एक ही हे एक ही पद का अर्थ जीवनानुभव के अतर के साथ कैसे बदल जाता है, फेज को पढते हुए इसे महसूस किया जा सकता है। उनके पहले सग्रह का नाम *नक्शे फरियादी* है जो *दीवान ए-गालिब* की पहली गजल के पहले शेर का पहला शब्द है। लेकिन गालिब ओर फेज का समय अलग हे और सामाजिक राजनीतिक स्थितिया भी अलग है, इसलिए गालिब का *नक्शे फरियादी* और फेज का *नक्शे फरियादी* ही अलग नही है, पेकरे तस्वीर के कागजी पेरहन के अभिप्राय भी बदल गये हे। इसी तरह तनहाई ओर इतजार जिस तरह और जिन अभिप्रायो क साथ फेज की कविता मे प्रयुक्त होते है, वे उर्दू की सामान्य रूमानी शायरी से न केवल फैज की कविता को अलग करते ह बल्कि वे उर्दू की रूमानी और पारपरिक कविता मे बार-बार इस्तेमाल होने वाले शब्दो, प्रतीको ओर लगभग रूढ हो गये बिबो का अर्थ एकबारगी बदल देते है। सभवत पूरे भारतीय उपमहाद्वीप मे फैज सबसे अधिक समय ओर सबसे अधिक बार राजनीतिक रूप से बदी बनाये गये ओर जेल म रखे गये। जेल की यातनाओ ने उन्हे इस उपमहाद्वीप प्रतिरोध का मिथक बना दिया है। उनकी कविता म प्रेम और प्रतिरोध एक दूसरे से एकमेक हो गये ह। भारतीय उपमहाद्वीप मे किसी भी अन्य भाषा के कवि को वह हेसियत बीसवीं सदी म प्राप्त नहीं हुई जो फेज को मिली है। उनकी कविता का बहुत बडा हिस्सा ऐसा है जिस पर जेल के सींखचो की छायाओं को कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष रूप स देखा और महसूस किया जा सकता है। उसम एक कैदी के सपने, उम्मीदे, इच्छाए, गुस्सा ओर सकल्प हे। उनकी कविता मे कफस, कद, सलाख जजीर, दार रसन, मकतल जेल से जुडे ओर भी कई पदो की पुनरावृत्ति होती हे। और यह आवर्तन पुनरावर्तन उनकी कविताआ के प्रभामडल को ओर अधिक विस्तृत करता जाता है। ये पद प्रतिबध का रूपक नहीं, विकट जीवनानुभव एक महादेश की ओपनिवेशिक दासताआ की तारीख और एक आजाद हुए देश म फोजी तानाशाही की सच्चाइयो का विराट बिब, बल्कि शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि एक महाकाव्यात्मक दृश्य विधान खडा कर देते ह। इन कडवी सच्चाइया

की टीस को उसमे सुना जा सकता है। अतीक़ुल्लाह ने अपने लेख 'फ़ेज अहमद फेज एक जिदा आवाज' मे लिखा हे कि 'केदो वद ओर दरवदरी और मुल्कवदरी से उन्हे गूनगू तजुर्बात हासिल हुए। उन तर्जुबात ने फेज के नजरियात को ताकत बख्शी। उनके फन को भी जिला (रोशनी) मिली।' (वसुधा 86) एक हद तक यह सही है कि फोजी तानाशाहो द्वारा वार-वार फेज की गिरफ्तारी और निर्वासन ने उनके इरादो को ताकत दी ओर रौशनी भी लेकिन जो दृष्टिकोण फेज को मिला वह मात्र जेलो और निर्वासन की देन नही था। इब्बार रब्बी से एक छोटी सी वातचीत मे रब्बी ने पूछा था कि 'मुझ से पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग' इस नज्म के पीछे क्या प्रेरणा थी? क्या कोई घटना या स्मृति विशेष इसके पीछे हे? इस प्रश्न के उत्तर म फेज ने कहा

> कोई घटना नही, इस नज्म के पीछे का हादसा सिर्फ कार्ल मार्क्स का कम्युनिस्ट मैनिफ़स्टो पढना था। सिर्फ मेनिफेस्टो पढने से लगा कि हम कहा पडे ह। तब वह नज्म लिखी थी। यह रचना कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो का प्रत्यक्ष परिणाम है। व्यक्तिगत घटनाए हाती रहती हे। इससे पहले भी होती थीं, पर समझ तभी आयीं।
> *(उत्तरगाथा* 18 1984)

जीवनानुभव ओर मार्क्सवाद जैसे जीवनदर्शन के मिलन ने उनके विजन को तो व्यापक बनाया ही, साथ ही उन्ह जनविरोधी शक्तियो को समझने की ताक़त दी और दुनिया के अलग-अलग हिस्सो मे चल रहे मुक्ति आदालना से कभी सीधे तोर पर ओर कभी भावनात्मक स्तर पर जोड दिया।

(२)

स्वतत्रता के ज्यादा सार्थक अर्थ को वही समझ सकता हे जिसकी आजादी छीन ली गयी हो। जेल मे रहते हुए फेज ने एशिया मे चल रहे स्वाधीनता सग्राम पर कविताए लिखीं। अफ्रीका ओर फिलिस्तीन पर कविताए लिखीं। पहली गिरफ्तारी से बहुत पहले ही फेज ने वह दृष्टि, वह नजरिया हासिल कर लिया था जिसके लिये फैज जाने गये। उनकी शायरी इस वात का भी साक्ष्य है कि सामाजिक राजनीतिक स्तर पर एक्टिविज्म एक कवि की रचना को किस तरह की ताकत आर रोशनी देता हे। *दस्ते-तहे-सग* की भूमिका, 'फेज-अज-फैज' म उन्हाने लिखा था

> सन् 1935 म मने एम ए ओ कॉलेज अमृतसर म मुलाजमत कर ली। यहा से मेरी आर मेरे वहुत से हम-अस्र लिखनेवालों की जहनी ओर जज्बाती जिदगी का नया दौर शुरू हाता है। इस दोरान कॉलेज मे अपने रूफ़का साहवजादा महमूदुज्जफर मरहूम और उनकी वेगम रशीद जहा से मुलाकात हुई। फिर तरक्कीपसद तहरीक की दागवेल पडी, मजदूर तहरीको का सिलसिला शुरू हुआ और यू लगा कि जैसे गुलशन म एक नहीं कई दबिस्ता खुल गये हैं।

फेज ने इन्हीं पाठशालाओ में अपने शुरुआती सवक पढे थे। *जिदानामा* की भूमिका फेज के साथ लगभग चार वरस जेल मे रहे उनके दोस्त मेजर मुहम्मद इसहाक ने लिखी थी। उन्होने जेल में फेज के मूड के कई रग देखे थे ओर उनका विस्तार से वर्णन किया है। उन्हाने लिखा हे कि

> मेरे जेहन में फैज साहव की शायरी के चार रग ह (या मूड कह लीजिए) पहला रग सरगोधा और लायलपुर की जेलों में उनकी तीन माह की क़ैदे-तनहाई का है। वे वहुत मुश्किल दिन थे। कागज क़लम दवात किताबें अखवार खुतूत, सवकी मनाही थी। उन्होंने इस तरफ़ इशारा भी किया है

मता ए लौह-आ-कलम छिन गयी तो क्या गम है
कि खूने दिल म डुबो ली है उगलिया मन
जबा पे मुहर लगी है ता क्या, कि रख दी है
हरेक हलकए-जजीर मे जबा मने

इस कैदे तनहाई का उन पर इतना असर हुआ कि हैदराबाद पहुचने पर वे अकेला रहने से बहुत वहशत खाते। इस दौर की अधिकाश कविताए *जिदानामा* म है और जो कुछ बच गयीं वे *दस्ते सबा* म शामिल की गयी है। उनकी शायरी का दूसरा रग हैदराबाद का है। यहा हमे हर तरह का जिस्मानी आराम जो जेल मे मुमकिन है, मयस्सर था। 'गोशे मे कफस के मुझे आराम बहुत है' की सी हालत थी कि जाहिरा आराम चैन के पर्दे मे हजारों हसरता का खून और लाखों तमन्नाओं का कब्रिस्तान था। हमारे खिलाफ कई ताजीरी दफाए ऐसी लगी थीं कि जिनकी सजा मौत थी। इसके अलावा, सफाई पश करने की सहूलियत बहुत हद तक हमे मयस्सर नहीं थी ।

तीसरा रग कराची का हे जहा फेज साहब दो माह के लिए मुकीम रहे। मुहम्मद इसहाक ने लिखा है कि कराची अस्पताल मे जेल की अपेक्षा ज्यादा आजादी थी इसलिए फेज को यहा आजादी की नेमतों का तीखा एहसास हुआ। इस तीखे एहसास के बाद जब वे मटगोमरी आये तो कैद का एहसास भी तीखा हो गया और उनकी शायरी मे जाहिर हुआ। इस एहसास के कारण ही उन्होने अपने सग्रह का नाम *जिदानामा* रखा था।

चोथा रग मटगोमरी की जेल का है।

हम अहले कफस तनहा भी नहीं, हर रोज नसीमे सुबहे वतन
यादों से मुअत्तर आती हे, अश्का से मुनव्वर जाती है।

(3)

मुझे लगता है कि जेल के प्रत्यक्ष अनुभव के कारण ही फेज की कविता म जेल की यातनाआ से जुडे बिब नही आये है। 1941 मे प्रकाशित हो चुके *नक्शे फरियादी* मे भी इस तरह के बिब मोजूद है। यह एहसास कही न कहीं औपनिवेशिक दासता के एहसास से जुडा है। *नक्शे-फरियादी* एक ऐसा सग्रह है जिसमे फैज की कविता मे तेजी से आ रहे परिवर्तनो को पढा जा सकता हे। यहा 'तनहाई' जेसी नज्म हे जहा गहरी उदासी है, निराशा है, हालांकि इसके बारे मे फिराक गोरखपुरी ने लिखा हे कि यह 'एक जीवत आधुनिक क्लासिक है।' उनका मानना हे कि यह कविता नही बल्कि 'जन्नत और दोजख का एकीकृत राग है'। यह चोथे दशक की कविता है। फेज की कविता के अनुवादक ओर समालोचक केरनिन ने लिखा है कि यह उन नाकामियो का नाहा (मातम) है जिनसे उपमहाद्वीप का स्वतत्रता सग्राम ग्रस्त था (फैज का सोदयबोध ओर अर्थ विन्यास, गोपीचद नारग से उद्धृत)। भारतीय समाज मे बीसवीं सदी का चोथा दशक भयानक मदी और गहरी निराशा का दशक रहा है। इसी अवधि मे *गोदान* ओर *कामायनी* लिखी गयी थी। गहरी निराशा के बुनियादी कारण गाधी इरविन समझौते मे माजूद थे। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा मे इस अवधि का जिक्र गहरी निराशा के साथ किया था और अत मे एलियट की पक्तिया उद्धृत की थीं 'इस तरह होता हे दुनिया का अत/धमाके से नही रिरियाहट के साथ । केरनिन का कथन इसीलिए विचारणीय लगता ह। ऊपरी तौर पर पूरी कविता निराशा मे डूबी एक प्रेम कविता

लगती है लेकिन अगर चौथे दशक की निराशाओ के सदर्भ मे इसे पढ़ा जाये तो यह गहरी राजनीतिक कविता लगती है। 'अजनवी खाक ने धुधला दिये कदमो के सुराग ' इस पद को जवाहरलाल नेहरू के गाधी-इरविन समझौते के दूसरे दिन [redacted] मार्च 1931 को आत्मकथा में गहरी निराशा के साथ लिखे वाक्यों के सदर्भ मे देखे तो इसके कई दूसरे अर्थ सामने आते है

> अव हमारी स्वाधीनता का, अर्थात हमारे उद्देश्य का महत्वपूर्ण प्रश्न वाकी रहा और समझौते की धारा दो से मुझे यह मालूम पड़ा कि यह भी ख़तरे में जा पड़ा है। क्या इसीलिए हमारे लोगा ने एक साल तक अपनी वहादुरी दिखायी? क्या हमारी वड़ी-वड़ी जोरदार वातों और कामों का ख़ात्मा इसी तरह होना था? क्या काग्रेस का स्वाधीनता प्रस्ताव और 26 जनवरी की प्रतिज्ञा इसीलिए की गयी थी?

जिस शून्यता के एहसास की वात नेहरू करते है फेज की अंतिम दो पंक्तिया भी इसी एहसास के करीव लगती हैं

> अपने वेख़्वाव किवाड़ो को मुकफ़्फल कर लो
> अव यहा कोई नहीं, कोई नहीं आयेगा

इस नज्म के वाद ही 'चद रोज ओर मेरी जान' जैसी नज्म है। जेल से जुड़े पद यहा भी हे। यह जेल जाने से पहले के दोर की नज्म है। इस वात का अध्ययन किया जा सकता हे कि *नक्शे फ़रियादी* मे आये जेल के चित्र ओर *जिदानामा* या वाद के सग्रहो मे आये जेल के चित्रा मे क्या फ़र्क है। जेल जाने के वाद की नज्मों मे जेल का एहसास ज्यादा तीखा हुआ है ओर उसी के अनुपात मे आजादी की नेमतों का एहसास भी ज्यादा तीखा होता गया है। *नक्शे-फ़रियादी* मे यह शब्दावली कुछ हद तक प्रतीकात्मक ज्यादा है

> जिस्म पर क़ैद है, जज्वात पर जजीरें है
> फ़िक्र महवूस है, गुफ़्तार पे ताजीरें है

(4)

फैज को पढते हुए अक्सर यह महसूस होता है कि उनका स्वभाव गजल के वनिस्वत नज्म के ज्यादा करीव है। शायद यह इसलिए भी हो कि उनकी गजल मे केफियत की एक यूनिटी मुसल्सल कायम रहती हे। फ़ैज खुद भी इस वात में यकीन करते है कि जिस गजल में भावभूमि की यूनिटी नहीं होती वह महज काफियावदी हे ओर अच्छा ओर सजीदा गजलिया कलाम ऐसा नहीं होता। गालिव की गजल पर अपने भाषण मे उन्होने कहा है कि अच्छी गजल में 'विषयवस्तु या भावनाओ की इकाई नहीं होती वल्कि उस चीज की इकाई होती हे जिसको आप मूड कह लें या एक केफ़ियत (भावधारा) कह ले।' फ़ैज की गजल म मूड की यह यूनिटी वनी रहती हे, शायद इसीलिए वह नज्म के कुछ करीव महसूस होती है। रशीद अहमद सिद्दीकी मानते हैं कि फ़ेज की नज्मे ऐसी है जो उर्दू की सर्वोत्तम नज्मो के हम-पहलू रखी जा सकती है। यही कारण हे कि जव वह गजल की ओर प्रवृत्त होते हैं तो उनकी नज्म की विशेषताए और अधिक निखर और सवरकर उनकी गजलो मे ढल जाती है (फ़ेज शमशेरवहादुर सिह, मुगीसुद्दीन फरीदी)। एक कारण और यह भी हो सकता है कि गजल मे हम जिस तरह की मुलायमियत की उम्मीद करते है वह फैज के यहा नहीं मिलती। सज्जाद जहीर ने अपने एक सस्मरण मे जेल के एक दिलचस्प

वाकये का हवाला दिया ह। उसम फेज ने कहा कि 'भई, तुम लखनऊ वाला को खुश करना मर लिए मुश्किल है। आखिर म सियालकोट का पजाबी हू ।' अपन कइ समकालीना की तरह फज म किसी किस्म का वोहेमियानिज्म नही है। न उनक व्यक्तित्व म, न उनकी शायरी म। वे मजाज से एकदम दूसरे छोर पर खडे नजर आते ह। शायद इसीलिए उनका रामेंटिसिज्म भी, रामेंटिसिज्म की परिचित सामाओं से मेल नहीं खाता। उनकी सलीकामदी आर गहरी उदासी उनक आशावाद को किसी हवाइ आशावाद में नहीं वदलने देती। आवारगी आर क्रांतिकारी अतिवाद के लिए उसम जगह नहीं। निदा फाजली ने अपन लेख, 'जितने सुख़न तुम्हारे थे' म वताया है कि फेज ने अपन वचपन क वारे में एक जगह लिखा है, 'हमारे घर मे ओरतो की भीड थी। हमारे भाई खलकूद म व्यस्त थ। हम अकेले इन औरता के साथ रहे, इसका कुछ नुकसान भी हुआ ओर कुछ फायदा भी। फायदा ता यह हुआ कि इस सगत ने हमको इतहाई शरीफाना जिदगी वसर करने पर मजवूर किया जिसकी वजह स कोइ गेरतहजीवी या वाजारू किस्म की बात उस जमाने म हमारे मुह से नही निकलती थी। अव भी नही निकलती।' इसी में आगे निदा ने लिखा कि फेज की वचपन की वात पढकर मुझे गजल विधा की कइ परिभापाआ म से एक परिभापा याद आने लगी, गजल को स्त्री से वातचीत के रूप म परिभापित किया जाता है। इस परिभापा म गजल की डिक्शन की सलीकामदी की तरफ छुपा हुआ इशारा भी ह। गजल की भापा वनकाव नही, पर्दादार होती है। यही सलीकामदी या तहजीव फज की शायरी की खूवसूरती ह।

(5)

फेज की कविता मे कठिन या कहे कि फारसी-अरबी के तत्सम शब्दा की वहुतायत हे। कई वार उनकी कविता अपनी वनक मे बहुत जटिल होती हे। लेकिन कठिन जवान आर कठिन शिल्प क वावजूद आम पाठक उसके प्रति आकर्पित होता है। वे इस महाद्वीप म ही नही, दुनिया क कई मुल्का म वहुत ज्यादा पढे जाने वाले एक लोकप्रिय कवि है। ऐसा क्या हे? मुझे लगता हे, इसका रहस्य उनकी कविता क अर्थ से ज्यादा उसकी लय म हे। उन्हाने 'म शब्द का इस्तमाल तकरीवन नही किया। वह 'हम की कविता है। उनकी लय म सामूहिकता का एहसास होता हे। इसलिए वह शब्द आर अथ का अतिक्रमण करके पाठक से अपना रिश्ता जोड लेती ह। इस लय म उनका अपना समय धडकता हुआ सुनायी देता है आर यही लय अपने समय का अतिक्रमण करके उनकी कविता को कालजयी वना देती है।

फान 0755-2770046

ख़्वाब का शायर

मगलेश डबराल

सन् 1972 मे फ़ेज को नयी दिल्ली मे एफ़्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन मे पहली वार देखा था, लेकिन ठीक से नहीं देखा था क्योंकि तव हम लोग इस सम्मेलन का विरोध और वहिष्कार कर रहे थे। एफ़्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन का रिश्ता भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ओर उसके प्रगतिशील लेखक सघ से था ओर हमारी निगाह मे ये तीनो सशोधनवादी सगठन थे। इस सम्मेलन म शमशेर वहादुर सिह भी मोजूद थे और कुछ समय वाद उन्होने हम कुछ दोस्तों से कहा था, 'मुझे आप लोगो का कदम वहुत अच्छा लगा था लेकिन उसके वाद म इतजार करता रहा कि किसी पत्रिका मे आपमे से कोई कवि लिखकर वतायेगा कि वास्तविक एफ़्रो-एशियाई लेखन क्या हे। लेकिन इतने दिन वाद भी मुझे ऐसा कोई लेख दिखाई नही दिया।' इस सम्मेलन के वारे मे इतना याद है कि फ़ेज अपने बहुत सकुचाते हुए ओर 'लो-प्रोफाइल' अदाज के वावजूद सबसे अहम भूमिका मे थे। उनके व्यक्तित्व मे कोई शायराना तत्व नजर नहीं आता था। वे वेरूत में रहते थे ओर एफ़्रो-एशियाई लेखका की नायाव पत्रिका 'लोटस' का सपादन करते थे जिसमे छपना हिंदी-उर्दू के प्रगतिशील लेखको का प्रिय सपना हुआ करता था।

फैज को दूसरी ओर आख़िरी वार इलाहावाद मे देखा आर शायरी पढते हुए सुना। इलाहावाद मे कई वर्षो वाद फ़ेज ओर फिराक गोरखपुरी की ऐतिहासिक मुलाक़ात देखने को मिली। मुलाकात के दोरान फ़िराक अपनी वडी-वडी आखो को घुमाते हुए खूव चहक रहे थे, लेकिन फेज को देखकर लगता था कि वे खासे अतर्मुखी है ओर अपने वारे मे ज्यादा कुछ नहीं वोल रहे ह। कुछ तरक्कीपसद लेखकों की पहल पर उनके कुछ कविता पाठ भी हुए। एक जगह फैज ने अपनी एक मशहूर गजल सुनायी थी 'हम परवरिशे-लोहो-क़लम करते रहेंगे/जो दिल पे गुजरती हे रक़म करते रहेंगे। फेज के पढने का तरीका क़तई आकर्पक नही था, वे जेसे किसी रस्म-अदायगी की तरह ओर ख़ासे निरासक्त तरीक़े से शायरी पढ़ते थे। लेकिन यह शेर इतना पुरअसर था कि वह मुझे तुरत याद हो गया ओर अव भी म उसे अक्सर अपने अदर दोहरा लेता हू। फ़ेज के पढने मे यह भावहीनता शायद इसलिए थी कि उनकी शायरी इतनी सहज-सरल ओर अर्थगर्भित थी कि अपने आप श्रोता तक पहुच जाती थी उसे ले जाने के लिए आवाज का अभिनय जरूरी नहीं था।

हमारी पीढी जिस तहजीवी साजो-सामा के साथ वडी हुई उसमे वहुत सी दूसरी चीजो के अलावा फेज की शायरी भी थी। तव तक फेज भारतीय उपमहाद्वीप ही नही, वल्कि पूरे एशिया के शायर, उसकी काव्यात्मक आवाज वन चुके थे। फ़ेज के साथ साथ फिलिस्तीनी कवि महमूद दरवीश की शायरी भी

एशिया म एक परिवर्तनकारी प्रतिध्वनि के रूप मे सुनायी दे रही थी। लेकिन दरवीश अपेक्षाकृत नये थे जबकि फैज तब तक कुछ कम्युनिस्ट होने के नाते ओर कुछ पाकिस्तान के फौजी तानाशाहों की मेहरबानी से बहुत कुछ भुगत चुके थे। शायरी और जिंदगी दोनो स्तरो पर वे तुर्की के महाकवि नाजिम हिकमत के समकालीन थे— उन्ही की तरह कैद, दरबदर, पलायन और जिलावतनी भुगते हुए और उन्हीं की तरह आगे आने वाले वक्त ओर लोगो की तरफ उम्मीद से भरपूर। एक और भी बात थी नाजिम और फैज दोनो की शायरी मे उदासी का एक तार, एक धीमा सा सगीत बजता हुआ सुनायी देता था—एकरस और मुसलसल। यह शायरी की पृष्ठभूमि मे रहता था ओर उसके आशावान कथ्य को दबाता या उस पर हावी नहीं होता था, बल्कि उसे एक और आयाम दे देता था।

दिल्ली मे कथाकार असगर वजाहत से पहली बार फैज की शायरी सुनने को मिली। उन्हे फैज की लगभग सारी कविता याद थी और फैज की नज्मे, खासकर 'रकीब से' और 'तेरे होठो की चाहत में' उन्हे बहुत प्रिय थी, जिन्हे वे चलते-चलते भी अनायास बुदबुदाने लगते जैसे खुद को सुना रहे हो 'तेरे होठो के फूलो की चाहत मे हम/दार की खुश्क टहनी पे वारे गये/तेरे हाथो की शम्मो की हसरत मे हम/नीम तारीक राहो मे मारे गये/सूलियो पर हमारे लबो से परे/ तेरे होठो की लाली लपकती रही /तेरी जुल्फों की मस्ती बरसती रही/तेरे हाथो की चादी दमकती रही/जब खुली तेरी राहो में शामे सितम/हम चले आये, लाये जहा तक कदम/लब पे हर्फे-गजल/दिल मे कदीले गम/अपना गम था गवाही तेरे हुस्न की/देख कायम रहे उस गवाही पे हम/हम जो तारीक राहों मे मारे गये।'

इस नज्म मे कोई जादुई चीज थी वह सीधे दिल जेसी जगह पर असर करती थी लेकिन वह वही नहीं रह जाती थी, बल्कि दिमाग मे चली जाती थी। शायद इसलिए कि यह किसी एक चीज नहीं, बल्कि एक साथ बहुत सी चीजो को, जिदगी के कई आयामो को सबोधित थी। वह प्रेम कविता लगती थी लेकिन उसी समय अपने वतन के लिए भी लिखी हुई लगती थी ओर अपने वक्त के लिए भी, किसी स्वप्न के लिए भी ओर आनेवाली पीढियो के लिए भी। फूलो की चाहत मे काठ की सूली पर चढने तक का एक लबा सफर जैसे इस नज्म मे 'कडेस्ड' करके रख दिया गया हो, जैसे मनुष्य के प्रेम से लेकर उसके भविष्य तक के सारे आयाम सगुफित कर दिये गये हो। इसी तरह 'रकीब से' शीर्षक नज्म भी थी। यह एक विलक्षण कविता है ओर शायद ऐसी कविताए दुनिया की तमाम जबानो मे उगलियो पर गिनी जाने लायक ही होगी। इसकी अर्तवस्तु का प्रारूप ही अजब है। वह ऊपरी तोर पर एक भूतपूर्व प्रेमी का आत्मकथन है जो किसी वर्तमान प्रेमी को सबोधित हे—उदासी और मोहभग की धुध मे लिपटे हुए एक इनसान का बयान जिसमे वह मोजूदा प्रेमी को अपना हाल बताने के लिए आमत्रित करता है 'आ के वाबस्ता है उस हुस्न की यादे तुझसे/जिसने इस दिल को परीखाना बना रक्खा था/जिसकी उल्फत मे भुला रक्खी थी दुनिया हमने/दहर को दहर का अफसाना बना रक्खा था। तूने देखी है वो पेशानी, वो रुखसार, वो होठ। जिदगी जिनके तसव्वुर मे लुटा दी हमने/तुझपे उट्ठी है वो खोयी हुई साहिर आखे/तुझको मालूम है क्यू उम्र गवा दी हमने।'

यह नज्म एक बेहद नाजुक उदास, शमशेर के शब्दो मे 'खफीफ दर्द को हमारे सामने रखती है, बल्कि अपनी अद्भुत चित्रमयता के साथ उसे दिखाती है, उसकी एकालाप की लय चितनपरक मन स्थिति को और भी शिद्दत दे देती हे और अपनी एक गहरी गूज हमारे भीतर छोड जाती है। आश्चर्य नहीं कि यह लय आर मनोदशा शमशेर की ही एक मशहूर कविता टूटी हुई—बिखरी हुई के सगीत से

कुछ मिलती-जुलती है 'हा, मुझसे प्रेम करो जैसे मछलिया लहरों से करती है/जिनमे वे फसने नहीं आतीं/जिनको वे गहराई तक दवा नही पातीं/तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मै तुमसे करता हू।' नज्म के आखिरी हिस्सो मे फैज प्रेम के उस अनुभव का कायातरण कर देते है ओर उस खोये हुए और टूटे हुए अनुभव के हासिल को वयान करते है 'आजिजी सीखी गरीबों की हिमायत सीखी/यास-ओ हिरमान के, दुख-ओ-दर्द के मानी सीखा/जेरदस्तो के मुसाइव को समझना सीखा/सर्द आहो के, रुखे जर्द के मानी सीखे'। इस तरह प्रेम का यह हासिल किसी निजी दुख में न वदलकर एक विस्तार पा लेता है और व्यापक मनुष्यता के दुख को समझने के विवेक मे वदल जाता है। यह फैज की सवसे वडी खूबी है कि वे व्यक्तिगत को समाजिक अनुभव तक पहुचा देते है और उर्दू शायरी के अति परिचित ओर लगभग तैयारशुदा इश्क को एक उदात्तता तक ले जाते है।

और यह रकीब कौन है जिसे कवि इतनी कशिश के साथ अपनी दास्तान सुना रहा है? यह उससे नफरत नहीं करता, रश्क नहीं करता, वल्कि प्रेम ही करता है। क्या रकीब की इस कल्पना मे एक नयी पीढ़ी की व्यजना है जिसे फैज सवोधित करते हुए एक स्वप्न का वेहद सुदर वर्णन कर रहे है? क्या फैज उस नयी पीढ़ी से सरगोशी कर रहे है और कह रहे है कि हम जिस स्वप्न को अजाम तक नहीं ले जा सके, वह अव तुम्हारे हवाले है। इससे मिलता-जुलता एक अनुभव जर्मनी के महान कवि और नाटककार वर्तोल्त ब्रेश्ट की कविता 'अगली पीढ़ी से' में मिलता है 'तुम जो कि इस वाढ़ से उवरोगे/जिसमे हम डूव गये/जव हमारी कमजोरियो की वात करो/तो उस अधेरे के वारे मे भी सोचना/जिससे तुम वचे रहे/जूता से ज्यादा देश वदलते हुए/हम वेचैनी के साथ वर्ग सघर्षो से गुजरते रहे/जव सिर्फ अन्याय था और प्रतिरोध कहीं नहीं था।'

उर्दू शायरी अपनी जवान से जानी जाती है। यानी कही गयी वात से अहम वात यह है कि उसे किस तरह कहा गया है। वडे शायर अपनी जवान की ऊचाई के लिए भी जाने जाते है। मीर, सौदा, गालिव, मोमिन ओर इकवाल का अदाजे-वया वहुत अलग-अलग है और ये सभी जवान के लिहाज से भी महान है। जवान की अहमियत इस कदर है कि वहुत से शायर जवान की उस्तादाना हिकमत के कारण भी वड़े मान लिये गये और कई वडे शायर ऐसे भी थे जो जवान की तराश के लिए उन उस्तादों से सलाह लेते थे जो शायर के तोर पर अहम नही थे। फैज ने कोई नयी जवान ईजाद नही की, वल्कि वे उपलब्ध भाषा और विवो से, यहा तक कि शायरी के घिसे-पिटे सिक्कों से काम चलाते रहे। शामे गम, गमे-उल्फत, शामे सितम, शमा ओर परवाने, रक्से-मय, रुखसार, पेशानी, हिज्र और वस्ल, मेखाना, कारवा, कफस ओर परवाज जैसे अल्फाज उनकी शायरी मे वहुतायत से है, लेकिन फैज का कारनामा यह है कि उन्होने इन पुराने शब्दो, विवों और प्रतीको को एकदम नयी व्यजनाओ से भर दिया ओर उनमे अर्थो के कई स्तर और विस्तार पैदा कर दिये। इससे जवान में वौद्धिकता भले न पैदा हुई हो, लेकिन एक वेजोड पारदर्शिता तामीर हुई जिसमे कोई धुध नहीं थी, कोई गुवार नहीं था। उर्दू की व्यक्तिपरक उस्तादी के वरक्स यह शायरी की जवान को लोकतात्रिक वनाने का काम था। शायद इसी से फेज की शायरी में एक अद्‌भुत दृश्यात्मकता और चित्रमयता आयी। मसलन 'जव तुझे याद कर लिया, सुवह महक-महक उठी/जव तेरा गम जगा लिया, रात मचल-मचल गयी या 'दर्द का चाद वुझ गया, हिज्र की रात ढल गयी' जेसी इन पंक्तियो मे हम दर्द के चाद को वुझते हुए ओर वियोग की रात को ढलते हुए 'देख' सकते है। लेकिन यह सिर्फ दृश्यात्मकता नहीं है, सिर्फ विव नहीं है, वल्कि ये पंक्तिया सहसा फ्रास के उत्तर सरचनावादी

दार्शनिक जाक देरिदा की एक उक्ति की याद दिलाती हैं कि 'शब्द सिर्फ अर्थ नहीं होते, बल्कि वे वही वस्तु होते ह जिसे वे अभिव्यक्त करते ह। उर्दू मे शायद अकेले फेज ही हे जो शायरी की शमा को तेयारशुदा मेखानो और महफिलो से बाहर एक बडे समाज के बीच ले गये ओर उसे उन्हाने एक नयी रोशनी स भर दिया। फैज का मैखाना भी मजलूमो, महरूमो ओर ख़ाकनशीनो का समाज हे 'रक्से मय तेज करो, साज की लय तेज करो/सूए-मखाना सफीराने हरम आते ह।

इसम कोई शक नही कि फेज एक बहुत लबे समय तक एशिया महाद्वीप की सबसे लोकप्रिय शायराना शख्सियत बने रहे। पाकिस्तान के फोजी तानाशाहो को अपने अदीबा ओर उनकी आवाज से बहुत डर लगता रहा ह और वहा के अदीबो ने भी अपनी प्रतिबद्धता पर, अवाम के प्रति अपनी जिम्मेदारी पर कायम रहत हुए ऐसे जोखिम उठाये ह और ऐसी तकलीफे सही ह जो हिदी के लखको- कविया को नहीं सहनी पडी। पाकिस्तान के अदीब ओर शायर अपने प्रतिरोध ओर आजादख़याली के लिए भी दुनिया मे जाने गये। फेज के इर्द गिर्द भी ऐसी ही कई घटनाए ह जिनम एक यह हे कि किस तरह जब मशहूर गायिका इकबाल बानो ने हजारा श्रोताओ के सामने करीब दो घंटे तक फ़ेज को गाया तो एक बडी हलचल ओर थरथराहट फेल गयी। उनके केसेट को सुननेवाले जानते ह कि जब इकबाल बानो ने फेज की वह मशहूर नज्म 'लाजिम है कि हम भी देखेगे' को गाना शुरू किया तो श्रोता भी पूरे आवेग के साथ गाने लगे ओर इसके बाद फौजी शासक जियाउल हक ने फैज ओर इकबाल बानो दोनो पर पाबदी लगा दी। भारत ओर पाकिस्तान मे ऐसा कोई गजल गायक नही हे जिसने फेज की रचनाए न गायी हो ओर नेयारा नूर जेसी गायिका ने तो फैज को इस तरह धीमे गायन के साथ पढा है कि वह एक यादगार अदायगी बन गयी हे।

फेज हिंदुस्तान ओर पाकिस्तान के अवाम के सबसे ज्यादा काम आने वाले शायरो मे से रहे हैं। उनकी शायरी बहुत अधिक इस्तेमाल म आयी है। बर्तोल्त ब्रेश्ट ने अपनी एक कविता म कहा था कि 'मे अपनी कब्र पर कोई समाधि लेख नही चाहता हू लेकिन अगर कुछ लिखना ही हो तो यह लिखा जाये कि उसने सुझाव दिये और हमने उनका इस्तेमाल किया। फेज पर यही बात लागू होती हे। कवि की इस भूमिका के बारे म ख़ुद फेज ने ही लिखा था 'हमने जो तर्जे फ़ुगा की थी कफस मे ईजाद, फेज गुलशन में वही तर्जे बया ठहरी ह। फेज ने दुख की जो भाषा ईजाद की, वह एक बडे समाज की अभिव्यक्ति म बदल गयी। यही एक बडे कवि का काम होता है कि वह अपने दर्द ओर अपने ख़्वाब को सबका दर्द ओर ख़्वाब बना दता हे। कभी-कभी लगता है कि अगर लोगा मे अब भी एक नयी सहर का इनसानी जज्बा बचा हुआ है तो यह बहुत कुछ इस वजह से भी है कि फ़ेज को बहुत पढा गया है, बहुत गाया गया है ओर बहुत इस्तेमाल किया गया हे।

मो 09910402459

इजहारे-अक़ीदत और वक़्त की कैफ़ियत

असद जैदी

हिंदी-उर्दू और अंग्रेजी मे साधिकार समानरूप से लिखने पढने वाले असद जैदी समकालीन कविता के एक महत्वपूर्ण रचनाकार है। फ़ैज पर गभीरता से विचार करने वालो म उनका ख़ास स्थान है। यह टिप्पणी 'फ़ैज पर कुछ नोट्स' के शीर्षक से तैयार की गयी है। इसमे उर्दू के काव्य परपरा से फ़ैज के जटिल रिश्ते और गजल की जमीन पर उनके योगदान की विशिष्टताओ को रेखांकित किया गया है।—स

1941 मे प्रकाशित अपने पहले सकलन का नाम फेज ने *नक्शे फ़रियादी* रखा। ये *दीवाने गालिब* के पहले दो शब्द ह। करीब एक चोथाई सदी बाद सन 1965 मे अपने चाथे सकलन का नाम फिर उन्होने गालिब ही से लिया—*दस्ते-तहे सग* (चट्टान के नीचे दबा हाथ)। यह कोई सयोग नही था। पुरानी रिवायत है कि दीवान की शुरुआत हम्द (ईश-वदना) से हो 'नक्शे-फरियादी हे किस की शोखी ए तहरीर का/कागजी हे पैराहन हर पेकरे तस्वीर का।' गालिब पहले ही शेर मे ऐसी कैफियत सामने रख देते हे कि पता नहीं चलता वे शरारत भरे अदाज मे आत्म स्तुति कर रहे है, या अल्लाह की तारीफ। अब जरा दस्ते-तहे-सग को देखे 'मजबूरी ओ दावाए गिरफ्तारी-ए उल्फत/दस्ते तहे-सग आमद पेमाने वफा हे।' हाथ एक भारी पत्थर के नीचे दबा हुआ है, ओर हम कह रहे हे कि जन्म-जन्मातर तक तुम्हारे प्यार के कैदी रहने की कसम खाये हुए हे।

❑

फ़ैज ने अपनी सारी जिदगी गालिब के साये म गुजारी। वे जब भी अपने से थक जाते ह तो गालिब की जमीन पर लोट आते है। उनकी तबीअत ओर मिजाज गालिब से अलग हे गालिब की जराफत विडबना-बोध, कडवाहट, ख़ुद पर हसने की आदत ओर अनासक्ति फ़ेज के यहा कम ही नजर आती हे। पर गालिब के बिना उनको अपनी अस्मिता ख़तरे म लगती है। बिना गालिब को याद किये वे गजल तो लिख नहीं सकते। अपनी अतिम गजल मे भी फैज बिलकुल उस्ताद के पहलू में बेठे दिखायी देते है 'हम एक उम्र से वाकिफ़ ह अब न समझाओ/कि लुत्फ़ क्या हे, मेरे मेहरबा सितम क्या ह/करे न जग मे अलाव तो शेर किस मकसद/करे न शहर मे जल थल तो चश्मे नम क्या हे//अजल के हाथ कोई आ रहा हे परवाना/न जाने आज की फेहरिस्त मे रकम क्या ह।

मोलाना अल्ताफ़ हुसेन 'हाली' के वाद गालिव की केंद्रीयता को पहचानने और फिर उसे कविता म लाजिम करने की जिम्मेदारी जिन लोगो ने उठायी उनमे फेज अहमद फ़ैज सर्वोपरि ह। हालांकि जितना ध्यान इस वात पर दिया जाना चाहिए दिया नही गया हे।

❑

इक़वाल के निधन के वक्त फेज 27 साल के थे ओर इक़वाल का असर पजाव और उत्तर-पश्चिमी भारत मे येसा ही सघन था जैसा वगाल मे रवींद्रनाथ का। इकवाल की तरह फ़ैज की पैदाइश भी सियालकोट ही की है। फैज इक़वाल के दवदवे ओर मार से केसे वचे रह सके यह भी एक गौरतलव चीज है। फ़ैज ने खुद इकवाल के महत्त्व से इनकार नही किया, और उनको अक़ीदत पेश करते हुए दो नज्मे भी लिखीं, लेकिन 'इक़वालियत' के काले वादल से खुद दूर रहे। फ़ैज की भावी महानता और उर्दू शायरी के विकास म उनकी ऐतिहासिक भूमिका की चावी शायद यही पर है। फ़ेज ने उर्दू शायरी के रिवायती साजो सामान और तरीक़े कार को फिर से सम्हाला, इक़वाल युग मे जो ढाचागत टूट फूट हुई उसकी मरम्मत की और वडे इत्मीनान से उसी पुरानी वुनियाद पर फिर से वही दरो-दीवार खडे किये। उन्होने नये से पुराने का काम लेने के वजाय पुराने से नये का काम लिया। उन्होने उर्दू शायरी को इक़वाल के परवर्ती अतिमानववादी फलसफे और नये अस्मितावाद से वचाया। उन्होने इकवालियत को सीधी चुनोती देने के वजाय उर्दू की परपरागत प्रगतिशीलता, नॉन-कन्फर्मिज्म और गालिवियन आधुनिकता की राह पकडी। फ़ैज ने अपने उदाहरण से सावित किया कि शायरी मे गालिव की परपरा ही मे आगे का रास्ता है, परवर्ती इकवाल का रास्ता एक अधी गली है। अल्लामा इकवाल को सफाई और आत्मविश्वास के साथ वाईपास करना फ़ेज के वडे कारनामो मे शुमार किया जाना चाहिए।

❑

राष्ट्रवाद आधुनिक इतिहास की एक केंद्रीय सचालनकारी शक्ति रही है, ख़ासकर उन देशो मे जो पश्चिम के उपनिवेश रहे। हिंदुस्तान जैसे मुल्को मे राष्ट्रवाद ने अनिवार्य साम्राज्यवाद-विरोधी जागरण का रोल अदा किया। लेकिन कोमी जागरण हर क़ौमी वीमारी का इलाज नही है इस वात को फैज से पहले प्रेमचद और इक़वाल ने और इनसे पहले रवींद्रनाथ ने देख लिया था। राष्ट्रवाद कई रगो मे ओर कई नामा स आता हे ओर इसके अनेक प्रकार ऐसे है जो सुधार के नाम पर और पुराने समाजो मे चली आ रही और दो-ढाई हजार सालो मे विकसित मानववादी परपराओ ओर एकताओ को नष्ट भ्रष्ट भी कर सकता है। फ़ैज ने वहुत जल्दी राष्ट्रवाद की इन विनाशकारी सभावनाओ को पहचाना ओर अपनी कविता मे सार्वभौमिक मानववादी परपराआ और प्रतिरोध की अवामी रिवायता को वुनियादी आधार वनाया। उन्होने जनजीवन मे रची वसी रूमानी मुक्तिकामी परपराओ (सूफी और गेर सूफी) के साथ हमदर्द का रिश्ता वनाया और उनके सहारे यथास्थिति के विरोध ओर न्यायपूर्ण समाज के निर्माण को अपने यूटोपिया का हिस्सा वनाया। फेज हमेशा यूटोपिया पर वल देते हे। व्यवस्थाए वनती विगडती रहती ह लेकिन यूटोपिया कभी नष्ट नही होते, वुनियादी कद्रा के लिए इनसान की लड़ाई जारी रहती ह। उनके काव्य में वतन से प्यार झलकता है लेकिन कहीं भी परवत वो सवसे ऊचा' जैसा घमड या उग्र राष्ट्रवाद नहीं

है। दूसरी तरफ़ ये राष्ट्रीय दुखातो के प्रतिनिधि कवि है 'निसार मे तेरी गलियों पे ए वतन कि जहा/चली है रस्म कि कोई न सर उठा के चले' या कि 'ये दाग दाग उजाला ये शब-गजीदा सहर'।

❑

दुनिया मे वदी-जीवन ओर निर्वासन या वतन-वदरी के फ़ैज जैसे शायर कम ही हुए है। इस तरह के दो शायरो, नाजिम हिकमत और महमूद दरवीश, से अक्सर उनकी तुलना की जाती है। फ़ैज से इन दोनो की दोस्ती भी थी और नाजिम हिकमत का तो उन्होने अनुवाद भी किया था। कैद और निर्वासन पर इन सभी का काम लगता है एक वहुत लवी, वहुभाषीय आलमी कविता का हिस्सा है।

❑

'निसार म तेरी गलियो पे ए वतन ' मे फ़ैज अपने प्रतिनिधि रूप म मोजूद है 'वहुत ह जुल्म के दस्ते वहाना-जू के लिए/जो चद अहले-जुनू तेरे नामलेवा हे//वने हे अहले-हवस मुद्दई भी मुसिफ भी/किसे वकील कर किससे मुसिफी चाहे//मगर गुजारने वालो के दिन गुजरते है/तेरे फिराक म यू सुवहो शाम करते हे गरज तसव्वुरे-शामो-शहर मे जीते हे/गिरफ्ते साया-ए-दीवारो दर मे जीते हे यू ही हमेशा उलझती रही है जुल्म से खल्क/न उनकी रस्म नयी है न अपनी रीत नयी/यू ही हमेशा खिलाये हे हमने आग मे फूल/न उनकी हार नयी हे न अपनी जीत नयी जो तुझसे अहदे-वफा उस्तवार रखते ह/इलाज-गर्दिशे-लेलो निहार रखते हे।'

यहा शायर की अपने वतन के लागो से मुहव्वत और देशभक्ति के नाम पर वतन पर काविज जालिमाना जमातो से नफ़रत एक साथ मोजूद हे। उसका यह अदाज उसे वीसवी सदी की कविता की मशहूर वागी आवाजो की उस सफ़ मे खडा कर देता है जिसमे ब्लोक, लोर्का, नाजिम हिकमत, नेरूदा, ब्रेख़्त, पासोलिनी, महमूद दरवीश, मीगेल एर्नान्देज और अर्नेस्तो कार्देनाल मोजूद हे। इन आवाजा मे उदासी ओर उम्मीद ओर विपमताओ के निरतर, स्थायी प्रतिरोध की प्रतिज्ञा' है।

फ़ैज पराजय के वाद की पस्ती और चुप्पी को भी इतिजार के एक वक्फे, प्रतिरोध की एक मुद्रा, ओर शाश्वत इंतिजार की निरतरता मे देखते है। यह वात उर्दू नज्म के लिवास म ओर विरह-मिलन, कफ़स ओर सैयाद, शामो-शहर, वहारो-खिजा की जवान मे आती हे तो सुनने वाले को इससे ऐसी तसल्ली और ताकत मिलती है जो इक़वाल की ओजपूर्ण, गेरत को ललकारती आवाज से नहीं मिलती। फ़ेज कहते नजर आते हे लडाई बुरी नहीं थी, ओर शिकस्त भी बुरी नहीं है। वे हताशा की गोद से उम्मीद उठा लाते ह। जैसा गालिव कहते हे 'वफादारी वशर्ते-उस्तवारी अस्ले-ईमा है ।

वह वर्तमान को धिक्कारते नहीं, उसे गुलशन के कारोवार का हिस्सा मानते हे। यह कौन सा कारोवार है और यह किसका इंतिजार है? वीसवीं सदी के मध्य तक आते-आते फेज उर्दू गजल ओर नज्म के वाह्य रूप, वुनियादी उपकरणो, केद्रीय रूपको और तरकीवो को छेडे वगैर एक अदरूनी इंकिलाव ला देते है। वे उर्दू शायरी के पुराने श्रोता वर्ग को खोये बगैर प्रेम ओर विरह के कवि नही रहते, उनका माशूक कोई मानवीय या आध्यात्मिक शे नही रहता, उनका गुलशन कोई गुलशन नही रहता—वे अपनी शायरी को सामाजिक क्रांति, इसाफ ओर आजादी की मुस्तकिल तशवीश ओर उम्मीद की शायरी वना देते हे,

ओर छिछली इश्किया शायरी का रास्ता लगभग वद कर देते हे। उनका आशिक हस्वे मामूल कू ए यार से निकलकर सू-ए दार की तरफ़ जाता हे, लेकिन इस आमदो-रफ्त के मानी स्थायी तोर पर वदल चुके हें। वह सूफियाना मजमून के धागो से समाजी ओर सियासी इक़िलाव का नया मिथक वुन देते हे, ओर यह मिथक उर्दू मे जदीदियत ओर उत्तर-आधुनिकतावाद के शोर, धूल ओर धुए के वीच अपनी जगह या चमक नही खोता। वाम विगेधी समूह भी फ़ेज से अदव से ही मुख़ातिब होते हे, लेकिन फरियादिया वाला 'कागजी पैराहन' पहनकर।

इस नरह फेज वीसवी सदी मे गजल को फिर से (और उसके साथ युवतर विधा नज्म को) प्रासंगिक बनाते हे। गजल अठरहवी आर उन्नीसवीं सदी की प्रधान विधा रही। उन्नीसवीं सदी गालिव की सदी थी। पर इसे वीसवी सदी मे जिलाये रखने मे भी गालिब के लोगो ही का योगदान सवसे ज्यादा हे–उन लोगो मे फेज सबसे आगे है। फ़ेज की शायरी मे गालिव से इजहारे-अकीदत ओर जिरह भरी हुई है। दोनो को एक दूसरे से काम पडता है।

❑

फ़ेज अपने उस्ताद के साथ शतरज खेलना नहीं भूलते। बल्कि यह भी उनका प्रिय व्यसन हे। गालिब कहते हें 'बुलवुल के कारोवार पे है खदा-हाए गुल/कहते है जिसे इश्क खलल हे दिमाग का'। फेज की वाजी कुछ आर हे 'गुलो मे रग भरे वादे-नोवहार चले/चले भी आओ कि गुलशन का कारोवार चले। ऐसी मिसाले वेशुमार है।

फ़ैज गालिव के मजमून पर इस तरह काम करते है और उसमे से ऐसी सूरत निकालते रहते हें जैसी कि सूरत मिक्लोश याचो ने एलेक्त्रा के यूनानी मिथक पर काम करते हुए अपनी अमर फिल्म 'एलेक्त्रा माई लव' मे निकाली थी।

❑

उर्दू मे यह वात रही है कि गजल के श्रोता और पाठक हमेशा दोरे हाजिर के शायरा पर ही तवज्जो देते रहे ह, पुराना की तरफ उनका खयाल ज्यादा नहीं रहता। इसकी वजह शायद यह होगी कि गजल परफोर्मिंग ट्रेडीशन की तरह ज्यादा लोकप्रिय रही। मसलन जोक, गालिव ओर ओर मोमिन के दोर म उनकी धूम थी। लखनऊ मे अनीसो-दवीर का शोहरा था फिर दाग की धूम हुई एक दोर इकबाल का आया, जिगर ओर हसरत ओर फिराक का जमाना आया। एक मीर ही थे जिन्हे हर दोर मे याद किया गया। गरज यह कि तरक्कीपसद तहरीक (प्रगतिशील आदोलन) के जमाने म ही यह सभव हो पाया कि गालिव या मीर या नजीर को पुराना की तरह देखने के वजाय प्रासंगिक समकालीना की तरह दखा जाये और उनसे सीधा सवाद स्थापित किया जाये।

फ़ैज को अपने आरंभिक दोर म गालिव की कडी जरूरत पडी आर यह रिश्ता जीवन पयत चला। फ़ैज के यहा मीर तकरीवन गायव ह। सिर्फ़ 1954 म जव फ़ैज मटगोमरी जेल मे कद थे उन्हे कुछ मीर की याद आयी। दो ही गजल एसी ह जहा मीर की सोहवत झलक़ती हे ('कव याद म तेरा साथ नही कव हाथ म तरा हाथ नही , आर 'कुछ मुहतसिवा की खिल्वत मं कुछ वाइज के घर जाती हे)। मीर

की तरफ इकबाल ने भी कम ही देखा था, और गौर करे तो 1947 से पहले पजाब सूबे मे मीर की ज्यादा पूछ नहीं रही। उपमहाद्वीप के बटवारे के बाद सबको मीर याद आये और बुरी तरह छा गये। नासिर काजमी और इब्ने इशा जैसे दो अलग-अलग मिजाज के शायर मीर की ही मजलिस मे रहे।

उर्दू जैसी भी बदकिस्मत जबान हो उसे जिलाये रखने मे पुराने बडे मददगार रहते है। वे अपनी समकालीनता खोते नही दीखते। आज फैज भी उन्ही पुरानो मे शामिल है।

❑

उर्दू शायरी मे निस्वानी आवाज (स्त्री स्वर) के लिए जगह बनाने और उसे स्थापित करने म प्रगतिशीलो का, उनमे भी सबसे ज्यादा फैज का रोल है, इसमे मुझे कोई शक नहीं है। इसके लिए फैज ने अलहदा से कुछ नहीं किया, उनकी उपस्थिति मात्र से ही यह राह खुल गयी। फैज ने परंपरा का जो ख़ामोश लेकिन मूलगामी आधुनिकीकरण किया उसी मे स्वरो के एक वास्तविक और लोकतात्रिक विस्तार और सह-अस्तित्व की जमीन मौजूद थी। गजल और नज्म म कवयित्रिया पता नही कब स लगभग मर्दाने लिबास मे मर्दानी बोली बोलते हुए पेश होती रही ह' जैसे पुराने नाटको म जहा औरतो की भूमिकाए पुरुष ही निभाया करते थे, शायरी म भी 'स्त्री-स्वर' पर शायर का ही एकाधिकार था, शायरा के लिए वह वर्जित ही था। हिद-फारसी काव्य परपरा की यह एक पुरानी समस्या है और तसव्वुफ की कुछ 'ख़ूबियो' मे एक यह ख़ूबी गौर करने लायक है। कथा साहित्य मे भले ही रशीद जहा, इस्मत, कुर्रतुल ऐन हैदर के लिए (या दूसरी तरह के लेखन मे सफिया अख़्तर और अनीस किदवई जैसे रचनाकारो के लिए) यह समस्या नहीं रही हो, पर शायरी का रास्ता पकडने वाली औरत की बडी मुश्किल रही है। कुछ-कुछ हाली के दौर से, पर खास तौर पर फैज की आमद के बाद से यह सभव हो सका कि उर्दू शायरी म स्त्री स्त्री की तरह पेश होने लगी और कवयित्रिया प्रथम पुरुष स्त्रीलिंग का बेधडक इस्तेमाल करने लगी। यही वजह होगी कि सारा शिगुफ्ता, परवीन शाकिर, फहमीदा रियाज और किश्वर नाहीद जैसी कवयित्रिया को पढते हुए फैज और मजाज तो याद आते है, नून मीन राशिद, मीराजी, अहमद नदीम कासिमी, नासिर काजमी और अख़्तरुल ईमान याद नहीं आते, जोश-ओ फिराक की तो बात ही छोडिए।

❑

फैज जैसा प्रतिबद्ध और नैचुरल अतर्राष्ट्रीयतावाद आज उर्दू कविता मे दुर्लभ है। हिंदी म मुक्तिबोध और शमशेर का छोड दे तो वह कम-कम ही था—और य भी उसी पीढी के नुमाइंदे है। आज के शायर/कवि की आफाकियत निस्वतन अप्रतिबद्ध अमूर्त और हल्की मालूम होती है—वह अक्सर प्रगतिशील अतर्राष्ट्रीय और वर्तमान दौर के प्रतिक्रियावादी भूमडलीकरण क बीच तमीज करना भूल जाता है। यह आफाकियत कम, आफाकियत का दावा ज्यादा है—असल मे यह अपने यहा की हकीकत से फरार का ही एक रूप है।

यही यह ख़याल भी आता है कि दुश्चक्रो म फसे अपेक्षाकृत छोटे देशो का आदमी ही सबसे ज्यादा अतर्राष्ट्रीयतावादी हो सकता है। उसे वैश्विक परिदृश्य, उसमे अपने समाज की लोकेशन और सामाजिक राजनीतिक दुर्दशा से इन चीजो के ताल्लुक का तीव्र एहसास होता है। उसके लिए देश का

बदल विदेश नही हो सकता—जो वैरूनी है वही अदरूनी को निर्धारित या प्रभावित करता है। हिंदुस्तान जैसे बडे देश मे सच्चा अतर्राष्ट्रीयतावादी होना इसीलिए मुश्किल और चुनौती भरा है कि देश ही पूरी दुनिया नजर आता है। अदरूनी का इतना विस्तार है कि वैरून वहुत दूर की चीज लगती है। भारत से वाहर जो हे विदेश है। पाकिस्तान या क्यूवा या अफ्गानिस्तान के वाहर जो भी है न सिर्फ वहुत पास हे वल्कि वुरी तरह गालिव हें। एक अच्छा पाकिस्तानी वुद्धिजीवी सिर्फ पाकिस्तान या पाकिस्तानी नियति के वारे मे सोचता नहीं रह सकता। उरुग्वे, चीले, आर्जेंतीना, परू या निकारागुआ के लेखक अपने-अपन देशो से कही ज्यादा पूरे लातीनी अमरीकी लोगो का प्रतिनिधित्व करते है। यही वात यहा के क्रांतिकारियो पर लागू होती हे। लगभग यही वात अरव दुनिया के वारे म सही है।

यही वजह है कि पाकिस्तान ने पिछले पचास साल मे इकवाल अहमद, हमजा अलवी, तारिक अली और फैज जैसी आलमी शख्सियते पैदा की (भले ही पाकिस्तानी सत्ता प्रतिष्ठान म उनकी कोई कद्र न हो) पर हमारे पास वताने के लिए वमुश्किल अमर्त्य सेन जैसा गैर-रैडिकल नाम है जो अतर्राष्ट्रीयतावादी कम, उदारवादी मानवतावाद के प्रवक्ता ज्यादा लगते है।



फैज के वाद फेज के वाद गुलशन का कारोवार कितना वदल गया हे। वाद का दार दक्षिण एशिया मे युद्ध, गृहयुद्ध, साप्रदायिक हिसा, धर्माधता, साम्राज्यवादी लूट, समाज ओर अर्थव्यवस्थाआ पर नव उदारवादी हमलो ओर लोकतत्र के पीछे हटने का दोर हे। राज्य द्वारा हर तरह के प्रतिरोध का दमन, जनक्षेत्र पर निजी पूजी का नियत्रण हमारे दोर की सचाइया हे। पाकिस्तान का हाल हिदुस्तान से भी खराव हुआ है। वहा जल्दी सुधार की कोई सूरत नजर नहीं आती। फज के वाद के पाकिस्तान के वुद्धिजीवी ओर लेखक आज हद से हद हिदुस्तान जेसी 'डेमोक्रेसी' ओर हिदुस्तान जेसी 'आजादी' चाहते हॅ—फैज के वशजा के सपने अव वहुत छोटे सपने ह। फेज की धरोहर अव वस भारत पाक सुलह, सिविलियन सरकार ओर नारी-अधिकार के अभियान मे काम आती हे। पाकिस्तान मे समानतावादी समाज की परियोजना का कोई जिक्र नही जिससे फैज की कविता इतनी प्रेरित थी, जिसकी वजह से फैज न कोई सात-आठ साल जेल मे और कई साल निर्वासन म गुजारे।



फेज के यहा इस्लाम के आरभिक इतिहास ओर क़ुरानी आयतो की अनुगूजे मिलती है। वे इन 'इस्लामी' सदर्भो का हमेशा वा-मकसद, सेकुलर और पारदर्शी इस्तेमाल करते है। उनकी आवाज थियोलोजी मे रगी, धार्मिकता मे भीगी हुई कपित आवाज नहीं है। वे किसी मजहवी चाशनी मे डूबे हुए कवि नही ह। वे न हिदी के उन प्रोग्रेसिवो की तरह है जिनकी दो या तीन पीढिया ऐसी तुलसी मय रहती आयी हॅ कि कोई ओर रग उनपर चढता ही नहीं न वे उर्दू के उन जदीदियो (आधुनिकतावादियो) की तरह हे जो जवानी म अराजकतावाद की हदो से गुजरकर अव तसवीह हाथ म लिये रहते है। उनकी मशहूर नज्म 'हम देखेगे लगभग पूरी की पूरी कुरान तसव्वुफ, ओर इस्लाम के कुछ ऐतिहासिक प्रसगो पर टिकी हुई है, लेकिन उसका किसी भी तरह का धार्मिक दुरुपयोग नहीं किया जा सकता। पहले वह जनरल जियाउल हक के

फ़ौजी शासन के ख़िलाफ़ पाकिस्तान मे अवामी बगावत का मुख्य प्रतीक बनती है। फिर इकबाल बानो की आवाज मे एक इकिलावी तरान का रूप ले लेती है—एक ऐसे वक्त मे जब सभी धार्मिक रूढिवादी तत्व जिया शासन का खुला समथन करते थे।

कुरान मे ईश्वरीय प्रकोप की चेतावनी ओर देवी गर्जना यहा सामाजिक क्राति का महान यूटोपियन आह्वान बन जाती हे—'वो दिन कि जिसका वादा हे/जो लोहे-अजल पे लिक्खा हे।' 'फेसले का दिन' इकिलावी सत्तापलट का दिन हो जाता है, जब जुल्मो सितम के भारी पहाड 'रूई की तरह' उड जायेगे, जब 'तख्तो-ताज' उछाले जायेगे, जब शासितो के 'पाव-तले यह धरती धड धड धडकेगी, जब 'अनल हक़' का नारा बुलद होगा, जब 'खल्के-खुदा' राज करेगी, 'जो तुम भी हो ओर मै भी हू।' मे अक्सर सोचता हू कि कौन सा इस्लामी प्रतिष्ठान इन नज्म को अपने साहित्य मे दाखिल करेगा, कोन वाइज इसे अपने वाज का हिस्सा बनायेगा। क्या यह कभी जुमे के रोज किसी मस्जिद के मेबर से पढी जायेगी? अभी तक तो ऐसा हुआ नही हे, ओर मुझे नहीं लगता कि ऐसा कभी होगा।

इस पर कभी गोर नहीं किया गया कि फैज तसव्वुफ (सूफ़ी दर्शन) को इस्लामी परपरा के नैरतर्य मे देखते हे, उसके विरोध या प्रतिरोध मे नहीं। जो वात इस्लाम के सदर्भ से नही कही जा सकती है, वह तसव्वुफ के सदर्भ से वहुत सफलता से कही जा सकती हे, ऐसा फज नही समझते। उनके लिए सूफ़ीमत इस्लाम का विकल्प नहीं हे। अव्वल तो फेज के यहा तसव्वुफ भी कोई विकल्प नही है। वह उनके लिए विचारधारा या जीवन दर्शन का रूप नही ले सकता। तसव्वुफ़ उनके लिए एक उपलब्ध मुहावरा ओर जवान हे, जेसे वह गालिव के लिए भी था। फेज उतने ही 'आध्यात्मिक' हे जितने महमूद दरवीश या एडवर्ड सईद।

मो 09868126587

रूमानियत का एक ख़ास अंदाज़

अरुण कमल

यह लेख दरअसल पुस्तक रिव्यू के रूप मे लिखा गया था किंतु इसमे फेज के सपूर्ण कवि व्यक्तित्व का आकलन और रेखाकन भी प्रस्तुत किया गया है। मेरे दिल मेरे मुसाफिर नामक फ़ैज के कविता सग्रह की कविताओ को नये सिरे पढते हुए अरुण कमल इस निष्कर्ष पर अपनी मुहर लगाते है कि ये कविताए हमारे वक्त की जरूरतो को पूरा करते हुए पर्याप्त सयम ओर तलख़ी का सहारा लेती है।—स

कुछ दिन पहले बातचीत के दारान एक मित्र ने कहा था कि फेज की कविता म रूमानियत हे, जो उन्हे यथार्थ के तल तक पहुचने स रोकती है। उसने यह भी कहा था कि हमारी अभी की हिंदी कविता फेज की शायरी के मुकाबले बहुत आगे जा चुकी ह, यानी अभी की हिंदी कविता जिस बेबाकी से जिदगी के विभिन्न हिस्सा का चित्रण करती है, वह बेबाकी फेज म नही हे।

एक रूमानियत होती है जो चीजो की पहचान को धुधला कर देती हे उनके तीखे किनारो को भी बहुत मुलायम आर चिकना कर देती ह। यह रूमानियत तब पैदा होती हे जब वस्तु से जितना लगाव हमारा होता हे उससे ज्यादा दिखलाने की हम कोशिश करते है। इस स्थिति मे उस वस्तुस्थिति या चरित्र की गहराई तक न पहुचकर हम उस कमी को रूमानियत द्वारा पूरा करते ह। लेकिन एक रूमानियत ऐसी भी हाती हे जो चीजो के प्रति गहरे लगाव से पदा होती हे ओर पाटका के मन मे भी वेसा ही गहरा लगाव पेदा कर देती हे। फज की रूमानियत ऐसी ही हे जिसमे हल्की 'आवारगी' भी हे, दोस्तो की सी नजदीकी भी ह, ओर उर्दू शायरी का वह खास मिजाज भी है, जिसके चलते बहुत ही सगीन मोका पर भी वे साकी मय, मयकदे ओर इश्क की मार्फ़त ही बात करते हे। 'लाओ तो कत्लनामा मेरा' म इश्क, साकी, मय ओर मयकदे सब मोजूद हे, लेकिन ये सब अपने वास्तविक अर्थो को छोडकर अपना तात्कालिक अथ व्यक्त करते ह। अजीब बीजगणित है फेज की शायरी का

ताहमत तुम्हारे इश्क की हम पर लगी हुई
रिंदा के दम से आतश ए मय के बगेर भी
है मयकदे म आग बराबर लगी हुई

--

लाओ ता कत्लनामा मेरा म भी देख लू
किस किसकी मुहर ह सर ए महजर लगी हुई

कत्लनामे की वजह अभी भी इश्क ही है। फ़ैज उर्दू के चले-चलाये सुपरिचित साचे से नयी मूर्ति गढते है और जब वे घोषणा करते है कि 'लाओ तो कत्लनामा मेरा मे भी देख लू। किस किसकी मुहर है सर-ए-महजर लगी हुई', तो सारे पुराने साचे टूट जाते हे, शब्दो के पुराने अर्थ समाप्त हो जाते ह मानो पुराने बीजो से नये पोधे उगे हो। इस तरह उनकी शायरी शक्ल अख़्तियार करती है। 'इश्क के तोहमत' के रूमानी वादे से शुरू करके फेज उसे 'कत्लनामे' तक ले जाते हे ओर यह अपने वक्त की क्रातिकारी कविता साबित होती हे। लेकिन यह सब कुछ होता है एक रूमानियत के अतर्गत ही।

रूमानियत तो यहा भी है—*मेरे दिल मेरे मुसाफिर* यानी पुस्तक के नाम मे ही। दिल को मुसाफिर कहना और उससे इस तरह मुख़ातिब होना घनघोर इश्क़िया शायरी का एक ख़ास अदाज हे। लेकिन दूसरी ही पंक्ति जेसे रोओ के दस्ताने को उलट देती है आर बहुत ही कडा चर्म-आवरण हमे मिलता हे—

हुआ फिर स हुक्म सादिर
कि वतन बदर हो हम तुम

और अपने घर के पते की तलाश करता आदमी हमे मिलता हे। यहा फिर मुसाफ़िर शब्द जो पहली ही पंक्ति म मिला था, धीरे-धीरे नये अर्थ ग्रहण करता जाता है और गोकि पहली पक्ति फिर दुहरायी नही गयी, मुसाफ़िर शब्द शुरू से आखिर तक मोजूद रहता हे बे-वतन, बेघर आदमी के पूरे दर्द को व्यक्त करता हुआ। एक दूसरी कविता मे फेज कहते हैं—

हम मुसाफ़िर यू ही मसरूफे ए सफ़र जायेगे
बेनिशा हो गये जब शहर तो घर जायेगे

यहा फेज की व्यक्तिगत जिदगी का दर्द तो हे ही, उन सब लोगो का दर्द भी है, जो पूरी जिदगी मुसाफिर बने रहेगे ओर शायद आखिर तक अपने घर, अपने मुकाम को न पहुच पायेग। इन सब लोगो म फ़िलिस्तीनी भी हो सकते ह, हम ओर आप भी। 'नेमत ए-जीस्त' (जीवन का वरदान) से क़र्ज जिस किसी को चुकाना है, उसे तो 'रह-ए-इश्क' के 'हर सख़्त मुकाम' से गुजरना ही होगा—

आनेवालों से कहो हम तो गुजर जायेगे

सारी कठिनाइयो, दु खो ओर यातनाओ के बाद भी फेज की शायरी जिदगी मे हमारे विश्वास को मजबूत करती जाती हे। 'नेमत ए-जीस्त' जिस किसी को मिली है उसे तो कर्ज भी चुकाना ही होगा। 'वाकिफ थे हर एक रग की झकार से हम'। इसी 'नेमत ए-जीस्त' के लिए तो सारा सघर्ष, सारी मुसीबत ओर जग हे—'तुझको कितना का लहू चाहिए ए अर्ज ए-वतन/जो तेरे आरिज-ए बेरग को गुलनार कर'। फेज की कविता एक तरफ़ तो जिदगी मे हमारे विश्वास को पुख़्ता करती हे और दूसरी तरफ़ अपने उसूलो के लिए, आदमी की पूरी इज्जत के लिए हमें जान को हथेली पर ले चलने की नेक सलाह भी देती है—'जान देते रहे जिदगी के लिए'। फ़ेज की शायरी बहुत ही ऊचे भावों ओर आदर्शो की प्रतिष्ठा करती है। आदमी का जो चरित्र हमारे सामने उभरता हे, वह हे हर जुल्म के विरुद्ध लडता हुआ, जान देता हुआ आदमी, आदमियत की ख़ातिर मरता हुआ आदमी। फ़ज मनुष्य के सघर्षशील, कभी न झुकनेवाले रूप के कवि है। यही उनकी समूची कविता की धुरी है।

रसन दर गुलू, पा ब-जोला हमे
इसी काफिले म कशा ले चला

यह काफिला है जिदगी से इश्क करनेवाला का। फैज ने फारसी का एक टुकडा अपनी कविता 'नज्रे हाफिज' म उद्धृत किया हे, जिसका अर्थ ह—मेरे नसीहत करनेवाले ने यह कहा कि इश्क मे सिवा दु ख के आर क्या रखा है। ऐ अक्लमद, जरा यह बताओ कि भला इससे वडी अच्छाई ओर क्या है?

फेज की कविता जहा एक ओर समूची दुनिया मे गमो-दुखो के वारे म वतलाती हे, वहीं राजनीतिक मामलो से पेदा हुआ आदमी का जा नितात व्यक्तिगत, निजी दुख-दर्द है, वह भी व्यक्त करती हे। सभी राजनीतिक या सामाजिक घटनाओ की अतिम परिणति अतत आदमी के व्यक्तिगत जीवन मे ही होती है। राजनीति ओर व्यक्ति के निजी जीवन का इतना गहरा ताल्लुक आज हो गया है कि एक राजनीतिक निर्णय फेज को 'वतन बदर' करता हे ओर उन तमाम मुश्किलो, दुखो को पदा करता हे जो आखिरकार एक आदमी को ही सहने पडते हे। शायद यही कारण हे कि फेज की शायरी राजनीतिक होते हुए भी व्यक्तिगत हे ओर व्यक्तिगत होते हुए भी राजनीतिक है। फेज राजनीतिक घटनाओ के मानवीय अर्थो को व्यक्त करते हे। फेज के शेर हम वहुत ही एकात के क्षणो म भी गा सकते हे ओर ऐसे मोका पर भी, जब पूरा हुजूम ससद की ओर कूच कर रहा हो। यह शायरी का काफी आगे बढा हुआ रूप है। अभी की कविता, खासकर हिदी की न तो हमारी व्यक्तिगत, निजी जरूरतो को दूर तक पूरा कर पाती है, न ही इस लायक होती हे कि पूरा का पूरा जुलूस उसे तराने के तौर पर गाते हुए 'दरबारे-वतन तक जाय।

फेज की शायरी हमारी कुछ ऐसी जरूरता को पूरा करती ह, जो अभी हमारी अपनी कविता से पूरा नही हो पाती या कम हो पाती हे। एक खास जरूरत होती हे। जव फेज कहते हें—

जो न आया उसे कोई जजीर ए दर
हर सदा पर बुलाती रही रात भर

तो एक नामालूम आदमी के लिए अनजाने ही हमारे दिल मे बहुत प्यार ओर सहानुभूति पेदा हो जाती हे। वह कान था, जो नहीं आया या नही आ सका? और वह कोन हे, जो इतजार करता रहा? फेज की मशहूर नज्म 'तन्हाई ('अपने-वे ख्वाब किवाडा को मुकफ्फल कर लो/अब यहा कोई नही, कोई नही आयेगा') जिस भाव का व्यक्त करती है, उसी की ज्यादा गहन, लकिन वहुत ही शात अभिव्यक्ति इस शेर म हुइ हे। इतजार के उस क्षण की पूरी बेचेनी ओर भावी आगतुक के न आने से उत्पन्न भय और आशका को पूरा-पूरा यहा रख दिया गया है। यहा कर्त्ता हे दरवाजे की जजीर। लेकिन हम इतना कुछ समझते नहीं, फूल देखने के पहल ही उसकी खुशबू हम तक आती है ओर एक गहरे दुख का एहसास हम होता ह। कविता की यह जो शक्ति होती हे हमे अपने इशारे पर नचाने की, वह फेज की ख़ासियत हे। इसी तरह

कुछ पहल इन आखा आगे क्या क्या न नजारा गुजरे था
क्या रोशन हो जाती थी गली जव यार हमारा गुजरे था

म कुछ ऐसा हे जिसकी व्याख्या शायद सभव नही। यह पूरी गजल अपने भाव और वस्तु म अवसाद स

भरी हे ओर एक तरह की नॉस्टेल्जिया से भी, लेकिन इसकी लय मे एक मस्ती है, और कही न कही सुख की अनुभूति भी। इसी की आखिरी पंक्ति हे—'आख उठते ही एक नजर मे आलम सारा गुजरे था'। इस गजल की लय मे अजव जादू ह, जो फ़ेज म हर जगह है—शब्दों का जादू, लय का जादू, जो अभी भी कविता मात्र की एक ख़ास ख़ूबी हे।

फ़ेज की दुनिया मे कदम रखते ही लगता हे, 'कितने हाथो से हम-आगोश मेरा हाथ रहा'। फेज की शायरी को पढते हुए हमेशा यह इच्छा होती हे कि कुछ दोस्त मुहिम भी साथ होते। फेज की शायरी लोगो से मिलने की इच्छा पेदा कर देती हे।

मेरे दिल मेरे मुसाफ़िर की इन कविताओ मे ज्यादा सयम है ओर इसीलिए ज्यादा तलखी है। 'लाओ तो कत्लनामा मेरा म भी देख लू, किस किसकी मुहर है सर-ए-महजर लगी हुई' की जड शायद यहा भी हो—'कोन कातिल वचा हे शहर मे फ़ज/जिससे यारो ने रस्मो-राह न की' ('शीशा का मसीहा)। लेकिन अव तलख़ी ज्यादा हे, वजन भी ज्यादा हे ओर अर्थ भी काफी विस्तृत हो चुका हे। फेज इन कविताओ मे वहुत कम शब्द वोलते ह। सारे फालतू शब्द छाट दिये जाते हे आर उतना ही वाकी रह जाता ह जितना वेहद जरूरी था। कभी-कभी तो फेज अपने अनुभवो को पूर्ववर्ती कवियो के अनुभवो से जोडकर उन्ही के अल्फाज से अपना काम चला लेते हे—

> हम क्या वुरा था मरना
> अगर एक वार होता

आर शायद यह भी उसी काव्य-कौशल की देन हे जिससे पुराने प्रतीक नये अर्थ व्यजित करते हे। इसी तरह मख़्दूम साहव की एक गजल की दो पंक्तियो की ताना भरनी पर फ़ज पूरी गजल वुन लेते ह, जो मख़्दूम की गजल से जुडी होने के वावजूद उससे भिन्न अर्थ भी व्यजित करती हे—'आपकी याद आती रही रात भर/ चादनी दिल दुखाती रही रात भर, या फिर दूसरी कविता म—'उसी अदाज से चल वाद-ए-सवा आखिर-ए-शव'।

फ़ेज के इस सग्रह मे अनेक रूपो, शिल्पो की कविताए ह। गजल तो हे ही एक दखनी गजल भी है—'सव पूछे थे अहवाल जो कोई दर्द का मारा गुजरे था', कव्वाली भी हे—'फ़ज़ा मे विजलिया लहरायी *फिर से ताजयानो की/ कलम होने लगी गर्दन कलम के पासवानो की'। इसी तरह गीत भी हे ओर* गद्य-कविताए भी। फ़ेज ने, जो पाकिस्तान के नागरिक हे, इनमे से कई कविताए वेरूत, पेरिस ओर मास्को मे लिखी ह, जो वहा की जिदगी से सवधित हे, लेकिन वस्तुत जो समूचे इनसान की जिदगी के वारे में ह। यह भी फ़ेज की शायरी का एक दिलचस्प पहलू हे। विश्ववादी शायरी के मुकावले यह है अतर्राष्ट्रीय शायरी। इस सग्रह मे दो कविताए पजावी म भी है। फेज कठिन शब्दो— अरवी-फारसी के शब्दो ओर लवे शब्द-समुदायो— के लिए मशहूर ह, लेकिन इस सग्रह म यह चीज कम होती गयी हे। यहा फेज ज्यादा सहल हे। कविता को वे ज्यादा से ज्यादा सुगम वनाते गये ह। इसी से वे पजावी किसानो को सबोधित करते ह —

> उठ उत्ता नू जट्टा

फ़ेज की शायरी मे आदमी पूरी गरिमा ओर शान के साथ मोजूद हे। मकतल की ओर जाते हुए भी उसका माथा नही झुकता। आदमी की खुद्दारी की इतनी जवर्दस्त अभिव्यक्ति आधुनिक कविता म वहुत कम

हुई है। यहा 'लघुमानवो' की बेचारगी नहीं है। 'मालवाले हिक़ारत से तकते रहे/तान करते रहे, हाथ मलते रहे।'

जहर से धा लिये है होठ अपने
लुत्फ़ ए साक़ी ने जब कमी की है
तेरे कूचे में वादशाही की
जब से निकले गदागरी की है

यह उस वक्त की शायरी है, जब

अब के वरस दस्तूर ए सितम मे क्या क्या बाब ईजाद हुए
जो कातिल थे मक़तूल हुए, जो सैद थे अब सय्याद हुए

फैज ने अपने वक्त की इस खासियत को व्यक्त किया है। इस पूरी किताब को पढने के बाद यही लगता है–

जो गुजरते थे दाग पर सदमे
अब वही केफियत सभी की है।

मो 09931443866

कपास में आग

कृष्ण कल्पित

प्रतीयमान पुनरन्यरेव वस्त्वस्ति वाणीपु महाकविनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्य मिवाङ्गनासु।।4।।

(महाकवियों के वचनों में अर्थवान कुछ और ही वस्तु है, जैसे स्त्रियो म उनके प्रसिद्ध अगा के अतिरिक्त लावण्य भासित होता है।)

9वीं शताब्दी में आनदवर्धन रचित *ध्वन्यालोक* में इसी लावण्य को काव्यार्थ वताया गया है। स्त्रियो का लावण्य और मुक्तावलियो की आव या आभा की तरह ही महाकाव्यो की कविताओ मे उनका अर्थ विभासित होता है—इसी लावण्य को आनदवर्धन अपने अमर-अप्रतिम काव्यशास्त्र-ग्रथ का आधार वनाते है, जिसे वे ध्वन्यर्थ के रूप मे विकसित करते हे और 'रस' पर आकर रूढ़ हो गयी सस्कृत काव्यशास्त्र परपरा को एक नयी राह दिखाते है।

फ़ैज अहमद फ़ैज की कविता पर लिखते हुए *ध्वन्यालोक* को याद करना अटपटा जरूर लग सकता है—लेकिन असगत नही। फ़ैज की समूची शायरी मे यह लावण्य-आव-आभा झिलमिलाती रहती हे। यही कारण है कि फ़ैज की कविता के अर्थ का अत नहीं होता।

वह नित्य-नवीन ध्वनियो की अर्थच्छाया से जगमगाता है। वहा मानी मरते नही वल्कि शेर सर्वथा नये रूप से *मानीख़ेज होता रहता है। इसी अर्थ मे कोई कविता काल को जीतने अर्थात कालजयी होने* का दावा पेश करती है। इसी तरह अक्षर अपनी अर्थ छवियो-ध्वनियो से मृत्यु को परास्त करते हे—यही कारण है कि फ़ैज की मृत्यु के चौथाई दशक वाद भी उनकी मृत्यु का आभास हमे नहीं होता। अपने जीवनकाल में फ़ैज जिस तरह अपनी कविता के जरिए हमारे साथ थे—आज भी हर घडी, हर समय, हर आफ़त सघर्ष-उल्लास मे फ़ैज हमारे साथ खडे नजर आते हे। हर महान कवि की मृत्यु अतत मिथक मे वदल जाती है—कालिदास-भर्तृहरि-तुलसीदास मीर-गालिब सब आज भी अपनी मृत्यु से परे अपने *काव्यार्थ मे झिलमिलाते रहते है और फ़ैज अहमद फ़ैज भी।*

फ़ैज अहमद फ़ैज अपने युवाकाल मे ही एक शायर के रूप मे मशहूर हो गये थे—और प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना के कुछ बरस पहले ही अपनी अनेक नज्मों के कारण उर्दू शायरी के एक महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित कवि मान लिये गये थे। उनकी पहली कविता-सकलन *नक्शे फ़रियादी* 1941 मे प्रकाशित हुआ।

दोनो जहान तेरी मुहब्बत म हार के
वो जा रहा है कोई शबे गम गुजार के
दुनिया ने तेरी याद से वेगाना कर दिया
तुझस भी दिलफ़रेब है गम रोजगार के

जेसी पक्तिया काव्य प्रेमियो की जवान पर चढ गयी थीं। गमे जाना आर गमे दोरा के वीच विचरण करने वाली उनकी शायरी ने इस उपमहाद्वीप् के लोगो का दिल जीत लिया। मीर के वाद गालिव ने उर्दू गजल विधा को मुनष्य की अतरआत्मा की आवाज वनाकर, दरअसल गजल के मेदान को वहुत विस्तृत आर मुश्किल कर दिया था। गालिव की मृत्यु के कोई साठ वरस वाद ख़ास तौर से तीन युवा शायरो फेज, मजाज आर मख्दूम ने उसकी रूमानियत वरकरार रखत हुए अपने समय-समाज ओर नये जमाने की हकीकता को पिरो कर, मीर ओर गालिव जसे महाकविया द्वारा अंतिम वूद की तरह निचोड ली गयी इस विधा म नयी जान फूकी। इस तरह फेज, मजाज आर मख्दूम की एक त्रयी वनती है, जिसने जीवन—समाज, सियासत, प्रेम, क्राति आर प्रतिरोध के तत्वा से गजल का एक नया असरदार कीमिया तेयार किया—जिसने वाद मे साहिर लुधियानवी जसे शायरा की राह आसान की।

इन तीनो के अलावा जज्वी, जानिसार अख्तर नून मीम राशिद आदि को जोडकर उस समय के वागी शायरो का एक पूरा गोल भी वनता हे। अली सरदार जाफरी अपनी पुस्तक लखनऊ की पाच रात' म इस दार का नक्शा इस तरह खीचते ह— ये इस अहद के वागी ह, सरफिरे, ऐशा-निशात के दिलदार मगर कफन वरोश। ये अभी अजीम नही है, लकिन इनके नाम के अफसाने वन चुके है, उर्दू शेरो-अदव के नये धारे अव उनके नाम पर वहेगे। ये नया जज्वा, नया एहसास, नयी जुवान लेकर आय ह, माजी का सारा विरसा इनके पास है, जदीद तालीम की आलातरीन डिग्रिया इनके पास ह, इसलिए कदीम व जदीद का इम्तजाज इनके यहा खुद-व खुद पेदा हो गया है। ये पुराने हीरो को नयी तरह तराश रहे ह। हिज्रो विसाल की दास्ताने इनको आती है। महवूव के वादा ए-फर्दा की लज्जत से वाकिफ है। लेकिन हिंदुस्तान की आजादी इनकी सवसे वडी महबूबा हे ओर इस महवूव के सामने नयी शायरी पर एतराज करने वालो की गरदन झुक जाती है।

सस्मरणो की इसी पुस्तक मे सरदार जाफरी फेज का खाका इस तरह खीचते ह—'ओर यह फैज अहमद फेज हे लाहोर के गली-कूचा की तखलीक। चेहरे की मुस्कुराहट उदास हे लेकिन आखे नर्म ओर मुहव्वत भरी आवाज मे हल्का-सा गुदाज ओर शेरो म दिल की धीमी धीमी आच जो लफ्जा के सगीत को पिघलाकर रग वना देती हे ओर हर एक मिसरा पटिग वन जाता हे। एक हसीन व जमील तस्वीर जो दिल म आवेजा हो जाती हे, तशवीहे व हस्तआरे नर्म रो शेरा के अदर विजलिया की तरह काधते है, ओर आखे चकाचोध हो जाती है, मगर ये वो विजलिया ह जो सिर्फ, फेज नन्हे नन्हे शरार स वना सकता हे—

गुल हुई जाती है अफ़सुर्दा सुलगती हुई शाम
घुल के निकलेगी अभी चश्म ए मेहताव से रात
आर मुश्ताक निगाहों की सुनी जायेगी
ओर उन हाथा से मस होगे ये तरसे हुए हाथ।

(मोजू सुख़न स)

आगे सरदार जाफ़री फैज की शख्सियत शायरी का वर्णन करते हुए लिखते है—'यह आहग फज की रूह के लिए नया बागे-जरस था जो आखिरी उम्र मे फैज को फिलस्तीनी मुजाहिदो के खेमा मे ले गया। कुछ यही सूरते हाल बेरूत मे फैज के साथ थी, जिसके हाथ मे रायफल नही थी, सिर्फ शायरी का गिटार था।

फ़ैज-मजाज-मख्दूम की त्रयी भले ही आगे चलकर बिखर गयी लेकिन इन्हाने उर्दू म तरक्कीपसद शायरी का रास्ता खोल दिया। मख्दूम दकन मे राजशाही से लोहा लेते रहे, मजाज जेसे मर्मस्पर्शी शायर को शराब की नागन ने डस लिया ओर फेज पाकिस्तान म तानाशाही का मुकाबिला करते हुए गिरफ्तार होते रहे—बाहर आते रहे। तानाशाही हुकूमता के दमन-चक्र भी फ़ज को डिगा नही सके। मनुष्यता के पक्ष मे ओर मानवीय मूल्यो को कुचलने वाली शक्तियो के विरुद्ध कविता से केसे काम लिया जाये—फेज की शायरी इसका जीवत उदाहरण है। मार्क्सवाद मे अपनी अडिग आस्था ओर कविता कला मे गहरे विश्वास के कारण फेज अहमद फैज सिर्फ पाकिस्तान या उर्दू के शायर ही नहीं रहे—बल्कि वे अपने जीवनकाल मे ही इस उपमहाद्वीप की आवाज बन गये। हिंदी के लिए उर्दू के उत्कृष्ट शायर कभी अजनबी नही रहे लेकिन फैज अपने जीवनकाल मे हिंदी और हिंदुस्तान के सभवत *सर्वाधिक प्रिय शायर बने रहे।* यही कारण था कि सातवे दशक के अत मे विश्वविद्यालय मे पढने वाले हम जेसे युवाओ को फेज का कलाम कठस्थ था ओर उसे हम आदोलनो-जलसो-पोस्टरो म इस्तेमाल करते थे। यह वह दौर था जब हमारे एक हाथ मे मुक्तिबोध ओर दूसरे म फेज की किताब हुआ करती थी।

तब तक फ़ेज की गजलो-नज्मो को मेहदी हसन, बेगम अख्तर ओर नूरजहा ने अपने सुरीले सुरो मे गाकर समूची दुनिया में और गेर-अदबी लोगा तक मशहूर कर दिया था। फ़ेज मुशायरो मे अपना कलाम तरन्नुम मे नही पढते थे। वे जिगर मुरादाबादी की तरह अपनी बेगम अख्तर खुद नही थे। मुझे दिल्ली मे और जयपुर म दो बार उनकी कविताए सुनने का अवसर मिला। वे बेहद सजीदा आवाज मे थम-थम कर अपना कलाम पढते थे, जेसे आपसे बातचीत कर रहे हो। लोकप्रियता से नाक-भो सिकोडते हिंदी-आधुनिका को फेज के उदाहरण से यह सीखना चाहिए कि उच्च कोटि के अदबी मेयार वाली शायरी भी लोकप्रिय हो सकती हे। 1980 मे पाकिस्तान के अखबारो मे इस बात का सर्वेक्षण किया गया था कि फेज आर फराज मे से अधिक लोकप्रिय कोन है? उस सर्वेक्षण मे गजल-गायकों के प्रिय रूमानी-लोकप्रिय शायर अहदम फराज से अधिक लोकप्रिय फज पाए गये। सर्वेक्षण के इस चोकाने वाले नतीजे पर मने उस वक्त *राजस्थान पत्रिका* मे आर *प्रभात खबर* म विस्तृत लेख लिखा था। वह लेख भी मेरी गुमशुदा प्रिय चीजो मे शामिल है।

उर्दू कविता और आलोचना को समझने का मेरा कोई दावा नहीं हे। फेज शताब्दी वर्ष मे फेज पर कुछ लिखने का साहस केवल इस आधार पर कर रहा हू कि उर्दू शायरी भी हमारी साझा परपरा का हिस्सा रही हे ओर फेज की शायरी ने भी हम उसी तरह मुतास्सर किया हे जेसे निराला ओर मुक्तिबोध की कविता ने। उर्दू की गभीर आलोचना म पता नही नज्म ओर गजल के भेद या किस तरह लिया गया हे लेकिन आपसी बातचीत ओर अदबी बहसो मे यह बात बहुत कही जाती हे कि कोई बडा कवि गजल का बडा शायर है या नज्म का। फिराक, फैज ओर मजाज को लेकर बार-बार इस तरह की बात की जाती रही ह। मेरा इस बारे म सोचना यह हे कि बात इस पर होनी चाहिए कि कोई बडा शायर है या नही? मीर अनीस आर दबीर मर्सिए के बडे शायर हे। यहा तक तो ठीक है, क्योकि मर्सिया एक भिन्न विधा हे। हिंदी मे ऐसी बहस कभी नही हुई कि कबीर दोहे का बडा कवि है या साखी या रमनी का या तुलसी

चौपाई के बडे कवि है या दोरे के या निराला छद के बडे कवि हे या मुक्त छद के या मुक्तिबोध लबी कविताओ के बडे कवि हे या छोटी कविताओ के या त्रिलोचन सॉनेट के बडे कवि हे या मुक्त कविता के इत्यादि। कोई कवि अपनी सपूर्ण सर्जना से ही वडा कवि बनता हे। मुझे लगता है कि उर्दू म भी इस बहस को अकादमिक दर्जा प्राप्त नही होगा बल्कि एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए ही ऐसे जुमले इस्तेमाल किये जाते होगे। जबकि यह तय है कि फिराक़, फैज ओर मजाज ने नज्म ओर गजल दोनो ही शिल्पो मे उत्कृष्ट काव्य रचना की है।

ऐसा नही है कि फैज को अपने वक्त मे आलोचनाओ का सामना नही करना पडा। बार बार जेल की सलाखो के पीछे धकेले जाने के बावजूद उन पर एलीट जीवनशैली, बीच-बीच म सत्ताधारियो से नजदीकी का ओर अपने अतिम दिना म इस्लाम मे आस्था का आरोप उन पर लगता रहा। उनकी कविता भी आलोचना से परे नही रही। अहमद नदीम कासिमी फेज क बारे मे लिखे सस्मरण के अत म लिखते हे—'फन ओर शख़्सियत के फेज नबर मे मैने जहा फेज की मीठी-रसीली शायरी का जिक्र किया, वहा ये भी कहा हे कि फैज फिक्र व हिकमत की गहराइयो मे जाने से जान कर गुरेज करत थे, वर्ना जिस तरह उन्हाने अपनी शायरी मे 'इकिलाब के मौजू' को वरत्ता, उसी तरह वो फिक्री शायरी को भी कलात्मक सौदर्य का एक हिस्सा बना सकते थे। उनके यहा अगर फिक्री गहराई नहीं है ता नक्काद हजरात ही इसकी वजहे बता सकते हे कि एक निहायत पढे लिखे और उर्दू, पजाबी के इलावा अग्रेजी, अरबी और फारसी जबानो के जानकार शख्स ने फिक्री शायरी को अमलन क्यो रोके रखा, जबकि गालिब, फिर इकबाल ओर दोरे-हाजिर मे नून मीम राशिद की शायरी ने फिक्र को शेर मे ढालने का काम आसान बना दिया था।'

अहमद नदीम कासमी की फेज की शायरी से यह माग और यह आलोचना कहा तक उचित है? क्योंकि कोई भी वडी शायरी बगैर फिक्र, बिना चितन, बिना सोच के केसे सभव हो सकती है? अगर अहमद नदीम कासमी का फिक्र से ताल्लुक किसी अध्यात्मिक चितन से नही ह तो।

दिल ना उम्मीद तो नही नाकाम ही तो है
लबी है गम की शाम मगर शाम ही तो है
भीगी है रात फैज गजल इब्तिदा करो
वक़्ते सरोद दर्द का हगाम ही तो है

दरअसल फेज की शायरी मे फिक्र की कमी का रोना रोने वालो के लिए मे फिक्र ही कर सकता हू, कासमी साहेब।

जब-जब भी फेज को पढता हू, मुझे शमशेर की वेतरह याद आती हे—पता नहीं क्यू? उर्दू के लिए? नहीं। शमशेर ने अपने समकालीन कविया पर जितनी मर्मस्पर्शी कविताए लिखी है—फैज भी उसी तरह अपने समकालीन कवि मित्रो के बारे मे तन्मय होकर लिखते हे। मख्दूम के बारे में, नाजिम हिकमत के बारे मे, नाजिम हिकमत की प्रेमिका पत्नी के बारे मे, वाज्नेसेस्की के बारे म, रसूल हमजातोव के बारे में—वे अपनी कविता के जरिये एशियाई कविता का पूरा परिदृश्य बुनते ह। और परपरा मे वे किसको अपनी कविता मे याद करते हैं—गालिब को, सौदा को, जोक को, ओर फारसी कविता मे उनक प्रिय कवि हाफिज ठहरते है। फैज की शायरी 'डॉक्यूमेंटेड' कविता है। 15 अगस्त 1947 का ऐसा दस्तावेज ('सुब्हे आजादी) फेज के अलावे और कौन कहेगा?

ये दाग-दाग उजाला, ये शब गजीदा सहर
वो इंतिजार था जिसका ये वो सहर तो नही।

फ़ेज की शायरी मे तारीखे बहुत महत्वपूर्ण है--यह अक्समात नही है कि फेज की अधिकतर शायरी म हमें लिखने की तारीख आर उस जगह का नाम मिलता है--जहा वह लिखी गयी।

अपने पूर्वज कवियो में गालिब फ़ेज के सर्वाधिक निकट ठहरते हे। गालिब की अपने समय स सघर्ष करती आधुनिक दृष्टि को ही फ़ेज अपनी तरक्कीपसद विचारधारा मे ढालते हे। गालिब को जाहिरा तौर पर तो फेज याद करते ही ह--इसके आगे जाकर वह फेज की कविता चेतना का हिस्सा बन जाते हे। मीर की शायरी के बियाबान वन के बीचोंबीच गालिब अपनी आधुनिक कोंचियो से जिस दिलफरेब बगीचे का निर्माण करते ह--फेज उस ही नये शिल्प, नयी विचारधारा मे ढालते ह। फेज 1968 मे पाकिस्तान मे 'इदारए-यादगारे-गालिब' की स्थापना करते हे ओर 1969 म गालिब की मृत्यु शताब्दी का आयोजन करते है। 1973 मे फेज गालिब की इस गजल को निबध लिखने के लिए चुनते ह

मुद्दत हुई है यार को मेहमा किये हुए
जोश-ए-कदह से बज्म चरागा किये हुए
मागे है फिर किसी को लब ए बाम पर हवस
जुल्फे सियाह रुख पे परीशा किय हुए

गालिब की इस गजल पर फेज साहब का निबध आपकी नजरो से गुजरा होगा, नहीं तो कोशिश करके गुजारियेगा, पाठ-आधारित आलोचना का यह दुर्लभ नमूना हे। जहा अपने समय का एक कवि अपने पूर्वज कवि के काव्यार्थ को एक नये अनूठे अदाज मे खोलता हे। वह मीर के बियाबान बेहद-वन मे बने गालिब के आधुनिक बगीचे मे अपनी कतरब्यात करता ह--गालिब की पद-रचना पर वे बार बार चलते दिखाई देते ह और अत मे तो व गालिब के यहा समर्पण करते हुए से लगते ह--

बहुत मिला न मिला जिदगी से गम क्या हे
मता ए दर्द बहम है तो बेशो-कम क्या है
सजाओ बज्म गजल गाओ जाम ताजा करो
बहुत सही गमे गेती, शराब कम क्या हे

'जो आख ही से न टपके तो फिर लहू क्या हे' की जमीन की याद दिलाती हुई फैज की यह गजल 'सारे सुखन हमारे' मे उनकी अंतिम गजल के बतार प्रकाशित हे--हालांकि उसके बाद तीन चार ओर रचनाए भी उनकी अंतिम कविता की तरह प्रचारित की गयीं जिनम उनकी इस्लाम के प्रति आस्था को स्थापित करने की कोशिश की गयी। सच तो ये है कि फेज ने एक सच्चे कम्युनिस्ट ओर प्रतिबद्ध कवि का जीवन जिया।

फैज एक ऐसी शख्सियत थे, जिनके हर कदम को बहुत गोर से देखा जाता था। अहमद नदीम कासमी कहते है-- ' मगर आपने किस खुशी मे अपनी तारीख के घिनाने किरदार अग्रेज की फोजी मुलाजमत गुलामी ही के दिनो में कबूल फर्मा ली थी' शुरुआती दार क इस काम के लिए फैज़ साहब पर अक्सर छीटाकशी की गयी। मजाज लखनवी का यह हिजो तो बहुत मशहूर ह--

शायर हू आर अभी हू उरूसे सुख़न का म
कर्नल नही हू, खान वहादुर नही हू मै।

लेकिन फज अपनी आलोचनाओ का उत्तर अपनी शायरी की नैतिक ताकत से देते रहे। 93 पृष्ठ की छोटी-सी किताब *नक्शे फरियादी* प्रकाशित होते ही फेज मशहूर हो गये ओर एक सार्वजनिक शख़्सियत वन गये थे। इस वारे म यह आकलन दखिए— 'इस छोटी सी कृति के कारण जो प्रतिष्ठा एव ख्याति फज को प्राप्त हुई इससे पूञ किसी भी उर्दू शायर को इतनी अल्प कविता-निधि पर ओर इतनी शीघ्र प्रसिद्धि नसीव नहीं हो पाई। मिर्जा गालिब का दीवान भी अन्य शायरो की तुलना म वहुत सक्षिप्त हे ओर उनका स्थान शायरा में सर्वोपरि समझा जाता ह, किंतु यह प्राथमिकता एव यश उन्हे अपने जीवनकाल म न मिलकर 30-40 वर्ष के बाद प्राप्त हुआ।'

इसके वाद फैज का जीवन और शायरी एक हो गयी। यह अजव वात है कि फैज की शायरी को उनकी आत्मकथा की तरह भी पढा जा सकता हे। फेज क साथ रावलपिडी अभियोग मे वदी मेजर मुहम्मद इस्हाक लिखते हैं 'सरगोधा आर लायलपुर की जेलो मे तीन महीनो की केदे-तनहाई क दिन वहुत मुश्किल दिन थे। कागज-कलम, दावात किताबे, अखबार-खतूत सव चीज वर्जित थी '

मता ए लोह-ओ कलम छिन गयी तो गम क्या है
कि ख़ूने दिल मे डुबो ली है उगलिया मैने
जवा पे मुहर लगी हे तो क्या कि रख दी हे
हरेक हलकए-जजीर म जवा मैने

फेज साहव पर लिखते हुए मेने इस वात का ध्यान रखना चाहा है कि आलेख मे उनकी कविता क उद्धरण कम से कम दिये जाये, अन्यथा मुश्किल है कि उनके 'सारे सुखन' लिखने पडेगे। फेज की कविना पर विचार करते हुए सब कुछ कहा गया हे कि यह उच्च कोटि की नैतिक शायरी है, प्रतिवद्ध प्रगतिशील शायरी हे, मुहब्वत और इकलाब की शायरी ह, लेकिन उनकी शायरी की इस खूबी की तरफ इशारा कम किया गया है कि फैज की शायरी सच्चे और अलग अर्थो म पूरब की शायरी है। फेज की तमाम शायरी मे जो रूपक उपमान, प्रतीक सव उदू-फारसी की पारपरिक शायरी से लिए गये है—फैज ने वडी खूवी से उसकी अतर्वस्तु वदल दी हे। यह अकारण नहीं हे कि फारसी महाकवि हाफिज फेज के प्रिय कविया म शुमार हे। उर्दू के एक उत्साही नक्काद न एक वार 'चले भी आओ कि गुराशन का कारोवार चले के हवाले से यह स्थापित करने की कोशिश की थी कि फेज साहब ने कारोवार जैसे गेर शायराना ओर वाजार के शब्द को किस सलाहियत क साथ अपनी कविता मे इस्तेमाल किया इत्यादि। अति उत्साह मे ये नक्काद मीर तकी मीर को भूल गये—जहा हर मोड पर शायरी का कारोबार' है।

फ़ेज अहमद फज न अपनी शायरी मे अपने समकालीन कविया के अलावा हाफिज, गालिब, सादा जोक़, दाग आदि अपने पूर्ववर्ती कविया को याद किया ह लेकिन यह आश्चर्यजनक तथ्य हे कि वे मीर तकी मीर को कहीं भी याद नही करते। दो-तीन दक्खिनी रग की गजला का छोडकर उनके यहा रेख़ते का प्रयोग भी कम देखने म मिलता है। यह सही है कि फ़ज के समय तक उर्दू का परिष्कृत स्वरूप वन चुका था—उनकी समूची शायरी इसी परिष्कृत उर्दू म हे। पजावी फज की मातृभापा थी—जिसम उन्होने कविता भी लिखी हे। अगर पूर्व म युक्त रूपक का सहारा लेकर कहू तो फेज गालिव के तराशे

हुए, उत्कृष्ट, कलात्मक बागीचे तक ही खुद को महदूद रखते हे और गालिब के इस दिल फरेब-बगीचे के बाहर मीर तक़ी मीर का जो बीहड वन फेला हुआ हे—वे उधर का रुख कभी नही करते। मुझे यह कहने दिया जाये कि गालिब के बगीचे का स्तब्ध कर देने वाला सादय सिर्फ इसलिए तो नही ह कि वह मीर की शायरी के बीहड वन के बीचोबीच बना हुआ हे। मीर के जगल ने गालिब के बागीचे के सौदर्य, उसकी प्राण-वायु को बचा रखा हे।

फेज के जीवनकाल मे भी मीर के इस उजाड जगल की जगली, खुशनुमा, सादा-सरल बेले नासिर काजमी के रूप मे उगती रहीं। फेज ने जहा गालिब की आधुनिकता को मार्क्सवादी विचार से जोडकर उर्दू कविता म एक नयी वेचारिकता ओर कलात्मकता पेदा की वही नासिर काजमी ने मीर तक़ी मीर के बीहड सुनसान ओर मनुष्य को सर्वोपरि मानने वाली शायरी मे नये अध्याय जोडे। नासिर काजमी फेज का विपक्ष नहीं हे बल्कि फ़ज की अतर्राष्ट्रीय दृष्टि जब-जब मामूली, अपने आसपास की, धूल-मिट्‌टी गर्दो गुबार को भूलती हे, तब नासिर उन छूटी हुई जगहा को अपनी उदासी, सन्नाटे ओर खास हिदुस्तानी पाकिस्तानी परिंदा की आवाज से उसे भरते हे। इस तरह आजादी के बाद पचास बरसो की उर्दू-शायरी का चित्र मुकम्मल होता हे।

अपने आखिरी दार मे फेज सचमुच अतर्राष्ट्रीय शख्सियत बन चुके थे। लनिन शाति पुरस्कार तो फज को 1962 मे ही मिल चुका था। 1973 के बाद वे अफ्रो एशियाई लेखक सगठन म सक्रिय हुए। फेज ने अफ्रो-एशियाई लेखक सघ की पत्रिका लोटस का भी एक अरसे तक सपादन किया। इस दोर म फेज ने एशिया-अफ्रीका के प्रगतिशील लखकों-कवियो की एक नयी बिरादरी कायम की। इस दोर म वे कभी ताशकन्द, बीजिग, काहिरा, लेबनान, टर्की लदन, पेरिस घूमते रहे। हिदुस्तान तो उनका दूसरा घर था ही। जिन शहरा म फज का मुकाम रहा उन पर फेज ने यादगार नज्म लिखी ह। पूरब के शायर होते हुए भी उनमे एक विश्व चेतना बसी हुई थी। इसी चतना ने उनसे 'पेरिस' पर वह यादगार नज्म लिखवाइ, जो मेरी प्रिय कविताओ मे शामिल ह। पेरिस पर, जो कि यूरोपीय बाद्धिकता का मरकज कहलाता ह, दुनिया भर के लेखका-कवियों ने कथा-कहानी, गद्य-कविता, उपन्यास आदि लिखे ह लेकिन फेज की 'पेरिस' कविता बेजाड हे। पेरिस की यातना-राशनी-अधरे-बेसराकारी आर उसकी समूची आत्मा को फैज ने जेसे इस छोटी सी नज्म मे निचोड लिया है।

किसी साया ए दीवार से लिपटा हुआ साया कोई
दूसरे साए की धुधली सी उम्मीद लिए
जरे-लब शामे गुजिस्ता की तरह
शर्हे बेदरदी ए-अय्याम की तमहीद लिए
ओर कोई अजनबी
इन रौशनियो के सायों से कतराता हुआ
अपने बेख़ाब शबिस्ता की तरफ जाता हुआ।

'ध्वन्यालोक' में आनदवर्धन जिसे ध्वनि या लावण्य कहते हे, उसे ही शायद अरबी फारसी-उर्दू काव्यशास्त्र म फिक्र कहते होगे। जो हो, फज की समूची शायरी फिक्र मे लिपटी हुई शायरी हे, जिसके हर शब्द में से लावण्य झिलमिला रहा हे, रहेगा। जेसे—मुक्ता-मालाआ म आब-आभा दिपदिपाती रहती हे। हर बार एक नयी कांध, नया रग, नया उजाला ओर नया अर्थ।

गुरूरे इश्क़ का बांकपन

मनमोहन

फैज पर हिंदी के रचनाकारो खासकर कवियो ने बहुत कम लिखा है। लेकिन फ़ैज के रचनाकर्म उनके मिजाज तेवर और प्रगीतात्मक सवेदन से हिंदी-उर्दू क्षेत्र के रचनाकारो का जो रिश्ता रहा है उसे पूरे ऐतिहासिक परिदृश्य में मनमोहन ने प्रस्तुत किया है। —स

फेज अहमद फैज ओर उनकी शायरी की जगह ओर उसका मूल्य ठीक-ठीक वही बता सकते हे जो उर्दू ज़ुबान ओर अदब के अच्छे जानकार और अधिकारी विद्वान ह। मेरी समाई तो सिर्फ इतनी है कि अपने कुछ 'इम्प्रेशन्स' (या इस कवि के साथ अपने लगाव की कुछ तफसीलें) रख दू, सो यहा म इन्ही का रखने की कोशिश करता हू।

7वी दहाई के जनवादी उभार के वर्षो मे खास तोर पर, ओर उसके बाद लगातार, हमारी पीढी की हिंदी रचनाशीलता को हमारे जिन बुजुर्ग उस्तादो का खामोश लेकिन मजबूत साथ ओर सहारा मिला उनम जर्मनी के बर्तोल्त ब्रेख्त, तुर्की के नाजिम हिकमत और हमारी उर्दू जबान के फैज अहमद फज शायद सबसे अहम थे। शायद इस पूरे दोर म नयी रचनाशीलता को ब्रेख्त की कठोर आलोचनाशीलता ओर द्वद्वात्मकता ने देखना सिखाया है ओर फैज या नाजिम हिकमत की खरी क्रातिकारी रूमानियत ने मोजूदा रणक्षेत्र मे अपने पक्ष के साथ खडे रहने का हौसला दिया हे ओर पराजय और अलगाव के कठिन क्षणा मे अपनी स्वप्नशीलता ओर स्वाभिमान की हिफाजत करना सिखाया है।

यह वात भी गौर करने लायक है कि पुराने प्रगतिशील आदोलन की अत्यत सपन्न विरासत म भी क्या फेज की उपस्थिति हमे सबसे जीवित और दमदार लगती रही है। वे आज भी लगभग हर तरह से हमारे समकालीन ह। वल्कि म सोचता हू, 1990 के बाद नव-साम्राज्यवादी वर्बरता के नये आलम मे फ़ेज की शायरी म हमारे दिलो की धडकन ओर ज्यादा साफ सुनायी देने लगी है।

मुझे याद है कि इमरजेसी के खोफनाक दिनो मे जव सव्यसाची द्वारा सपादित 'उत्तरार्द्ध का पहला अक (वेसे अक-11) छपा ओर पत्रिका की पीठ पर फैज की नज्म 'लहू का सुराग' ('कही नही ह, कहीं भी नही लहू का सुराग') छपी तो कितना बुरा भला सुनना पडा। एकाध क्रातिकारी दोस्तो ने यहा तक कहा कि फ़ेज 'भुट्टो के एवेसडर' के सिवा क्या ह। इनकी कविता आपने क्यू छापी ओर दस्ते-नाखुने-कातिल' या खूवहा जसे लफ्जा को कितने लोग समझते ह? लेकिन मेरा खयाल है कि यह नज्म आर इसके अलावा उन दिना इसी पत्रिका म छपीं 'वाल के लव आजाद ह तेरे' ओर 'निसार म तेरी गलियो पे नज्म न सिर्फ समझी गयीं वल्कि इन्हान उस कठिन समय म अजीव सी ताक़त दी आर हमारे नैतिक भावनात्मक

विक्षोभ को स्वर दिया।

यह मेरी खुशनसीवी हे कि मुझे फेज साहब को सुनन का ओर उनसे छाटी सी मुलाकात का मोका मिला। शायद यह 1978-79 के बीच की बात ह। एक दिन सुनायी दिया कि फेज हिंदुस्तान ही मे हे और (शायद 'विजिटिग प्रोफेसर' हो कर?) कुछ दिन के लिए जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी मे ही चले आये हैं। हम लोग वडे खुश थे। फिर एक दिन उनका काव्य-पाठ हुआ। शायद उस वक्त के 'डाउन कपस' की क्लव बिल्डिग क पास की खुली जगह मे कुछ कनाते खडी की गयी थी आर मच भी वाधा गया था। उस धूप वाले दिन का खुला नीला आसमान अभी भी याद हे। फैज साहव ने जम कर अपनी ढेर सारी नज्मे, गजले कही थी। जब वे खडे हुए ओर उन्हे पहली बार देखा तो थोडा अजीव सा लगा। सिफ उन्हे देख कर एक वार उस छवि को कुछ धक्का सा लगता था जा उनका पढत सुनते हुए मन ही मन बन गयी थी। सफारी सूट पहने (शायद एकाध अगूठी भी), कुछ भारी भारी सा डील डोल लिये यह गजे से सर वाला लवा-चोडा शख़्स देखने म कतई स्टेट वक या जीवन वीमा निगम का 'टिपीकल अफसर या मेनेजर लगता था। लेकिन जव फेज साहव ने सुनाना शुरू किया तो उनकी आवाज ने दिल को छू लिया, वल्कि सीधे पकड लिया।

हालांकि हमने मुशायरे की परपरागत धज मे तरन्नुम के साथ 'जलद-मद्र-स्वर' म किया हुआ मजरूह सुल्तानपुरी का प्रभावशाली पाठ सुना हे, धारावाहिक वक्तृता की शेली म केफी आजमी या सरदार जाफरी का नज्में पढना देखा हे, वावा नागार्जुन की वाघ लेने वाली 'थियेटरीकल' प्रस्तुतिया देखी ह, आलोक धन्वा का अविस्मरणीय काव्य-पाठ सुना हे ओर तो और जे एन यू के 'स्पेनिश सेटर' की मेहरवानी से 'रिकॅर्डेड' आवाज म नेरूदा के स्पेनिश पाठ की एक वानगी देखने ओर आरोह-अवरोह के साथ उनकी नाद-गुण सपन्न गहिर गभीर वाग्मिता की स्पदित स्वर लिपि को सुनने का सोभाग्य भी मिला हे। लेकिन फेज का अदाज इन सवसे अलग था। यह किसी भी तरह की 'परफोरमेस' से कोसा दूर था। फिर भी उनकी आवाज मे एक जादुई छुअन थी, जिसमे अपने कमाये हुए गहरे दर्द के एहसास के साथ एक ठहरी थकान ओर अनमनेपन मे लिपटी विलक्षण कामलता ओर आत्मीयता का मेल था। यह एक दुख उठाये हुए अनुभव सपन्न, उम्रजदा शख्स की दिलासा ओर भरासा दिलाती हुई आवाज थी। ऐसी आवाज शायद अव कुछ पुरानी वूढी, घरेलू स्त्रियो के पास ही बची मिलगी। फेज इतने वेवनाव ओर सादे तरीके से कविताए कहते थे कि कोई भी काव्य-रसिक उसे ख़राव तरीके का काव्य पाठ भी कह सकता था लेकिन यह शायद ज्यादा अच्छा तरीका था। उनके अलावा यह चीज रघुवीर सहाय के काव्य-पाठ मे भी मिलती थी, वल्कि वे तो इसका उपयोग एक सचेत युक्ति की तरह करते थे। शमशेर का कहन का अदाज भी गुफ्तगू ही का अदाज था जो उनकी कविताओ के मिजाज मे ढला हुआ था और गजल तो अपनी परिभाषा म ही दिल से दिल की गुफ्तगू है।

ख़ेर, फेज साहव ने जम कर सुनाया। वह नज्म भी - 'कुछ इश्क किया कुछ काम किया'। फरमाइशें भी खूव हुइ। जो किसी ने कहा 'फेज साहव, 'गुला मे रग भरे भी सुनाइये', तो फेज साहव ने हस कर कहा 'कोन सी सुनाऊ, नूरजहा वाली सुनाऊ कि मेहदी हसन वाली सुनाऊ आर सव हस पडे।

इस वात का कम महत्त्व नहीं ह कि फेज की शायरी का नूरजहा, वेगम अख़्तर, अमानत अली खान, मलिका पुखराज, इकवाल वानो, अली वख़्श जहूर, फ़रीदा ख़ानम, फिरदासी वेगम वरकत अली खान शांति हीरानद ओर मेहदी हसन जेसी अद्भुत आवाजें नसीव हुइ। गालिव की शायरी क वाद इतनी तादाद

म अव्वल दर्जे के गायकों ने, किसी और शायर की चीजें शायद ही गायी हों। यकीनन इससे फैज की शायरी का दायरा विस्तृत हुआ है। उनकी शायरी के गूढार्थ और अनक अर्थच्छटाए उद्घाटित हुई है। फैज को पढकर हमने जितना जाना है, हिंदुस्तान और पाकिस्तान के महान गायको से सुनकर कम नहीं जाना। गायक भी आखिरकार अपने गाने से 'टैक्स्ट' की अपनी व्याख्या पेश करता है और एक प्रकार से कृति की पुनर्रचना करता हे लेकिन शायद इसकी गुजाइश 'टैक्स्ट' म पहले से छिपी होती ह।

एक दिन रूसी भाषा कद्र के ऑडीटोरियम म फैज ने अल्लामा इकवाल पर अपना पर्चा पढ़ा, शायद अग्रेजी मे। यह विद्वत्तापूर्ण ओर जानकारी से भरा हुआ पर्चा उनकी शायरी के मिजाज से मेल नहीं खाता था। वेसे अग्रेजी मे उपलब्ध उनके ज्यादातर गद्य म कई वार नवशास्त्रीय किस्म की अकादमिकता हावी दिखायी देती हे। इकवाल की शख़्सियत ओर उनकी शायरी में फैज साहव को कुछ खास आर वुनियादी किस्म की दिलचस्पी लगती थी। कुछ-कुछ वेसा ही रिश्ता था जेसा रवींद्रनाथ और निराला का या प्रसाद और मुक्तियोध का। वाद म यह भी पता चला कि इकवाल भी सियालकोट के ही थे और इकवाल के प्रभाव की सघन छाया म ही एक नवोदित कवि के रूप म फैज का विकास हुआ था।

1978 मे म रोहतक आ गया था। लेकिन इसके याद भी लगभग दो साल तक मेरा रिश्ता जे एन यू के भारतीय भाषा केद्र से वना रहा। रोहतक मे डॉ ओमप्रकाश ग्रवाल अग्रजी विभाग मे प्रोफेसर थे। उन्होने ओर डॉ भीम सिह दहिया (जो उस वक्त विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार भी थे) ने मुझ से कहा कि मै किसी तरह फेज साहव को रोहतक लाऊ। मने डॉ मुहम्मद हसन (जा एम ए मे मेरे शिक्षक भी रहे थे) से कहा कि फैज साहव को मुझे रोहतक ले जाना हे। उन्हाने कहा कि म अगले दिन 11 वजे सटर मे उनके कमरे मे आ कर फेज साहव से खुद ही वात कर लू।

शुरू मे मुहम्मद हसन साहव से मेरा रिश्ता कतई ओपचारिक ओर नपा-तुला था, लेकिन गहरा था। यो वे बात करने मे सख्त, कजूस ओर वेहद चोकन्ने शख़्स लगत थे लेकिन उनके अदर बटवारे का सच्चा दर्द और एक तरह का सात्विक विक्षोभ था। नामवर जी ओर मुहम्मद हसन के जे एन यू मे आने के बाद हिंदी-उर्दू के पाठ्यक्रमो को लेकर, खास तोर से हिंदी विद्यार्थिया को उर्दू का क्रेडिट कोर्स करने या पाठ्यक्रम के एक हिस्से को दोनो भाषाओ के लिए समावेशी ढग से तेयार करने को लेकर पहली स्टूडेट फेकल्टी कमेटी मे जो वहस हुई उसम हसन साहव ओर हमारा एक ही पक्ष था। 'प्रगतिशील लेखक महासघ' (जो उन्ही दिनो नयी शक्ल मे खडा किया गया सगठन था) के आपातकाल के समर्थन मे निकले प्रपत्र पर छपे अपने नाम को लेकर उनके मन मे घोर ग्लानि थी। उन्ही दिना आपातकाल को लेकर उन्होने अपना बेहद अच्छा नाटक 'जेहाक' हमे सुनाया था।

खेर, अगले दिन जव मे 11 बजे मुहम्मद हसन साहव के कमरे मे दाखिल हुआ तो फेज साहव उनकी 'अध्यक्षीय' कुर्सी के सामने की कुर्सी पर बेठे थे। हसन साव ने मुझे देखते ही उनसे कहा, 'जनाव यही है, जिनका जिक्र मे कल आपसे कर रहा था। मनमोहन साव हमारे शागिर्द है। इन दिना रोहतक यूनीवर्सिटी मे ह ओर आपको रोहतक ले जाना चाहते है।' फेज साहव ने, जो अव तक खडे हो गये थे, तपाक से हाथ मिलाया जैसे गले मिल रहे हो। उनकी आखे झिलमिला रही थीं, वोले, 'रोहतक! अरे भाई रोहतक तो हमारा वतन है जरूर चलेगे। वेसे म अभी कुछ दिन पहले ही चडीगढ (या शायद कुरुक्षेत्र?) हो कर आया हू, लेकिन रोहतक जरूर चलना है। अभी तो वाहर (विदेश, फ्रास या शायद सोवियत यूनियन?) जाना है, लोट कर प्रोग्राम वनाते हें। मे सोचता रह गया रोहतक ओर इनका वतन!

कुछ दिनों बाद समझ मे आया कि उनके दिमाग म सयुक्त पजाव का पुराना नक्शा था जिसका एक अहम शहरी केंद्र शायद रोहतक भी रहा होगा। जिया-उल हक़ के पतन से पहले दसिया हजार लोगो की रैली मे बुलद आवाज मे फ़ैज का वो अविस्मरणीय तराना 'हम देखेगे, लाजिम है कि हम भी देखेगे' की अद्‌भुत प्रस्तुति करने वाली प्रख्यात पाकिस्तानी गायिका इक़बाल बानो मूलत रोहतक की ही रहन वाली थीं। ख़ेर हम लोग कुछ देर उनके साथ वेठे ओर उन्हे वाहर टैक्सी तक छोडा। वाहर जो विदशी मूल की महिला उनका इतजार कर रही थी शायद उनकी बीवी एलिस ही रही होगी। अफ़सोस है कि फेज साहव से फिर कभी मुलाक़ात नही हो पायी ओर उन्हे रोहतक लाने का हमारा ख़्वाव जिसम शायद उनका भी कोई ख़्वाव छिपा था, अधूरा ही रह गया।

इस वात पर जव गोर करते हे कि क्यो हमारे वक्त मे फ़ज की उपस्थिति दिनोदिन इतनी प्रवल, इतनी वास्तविक और इतनी अनिवार्य होती चली गयी है तो सवसे पहले यही ख़याल आता ह कि उनकी शायरी हमारे इस वेचनी भरे ऐतिहासिक दोर मे न्याय के कठिन सघर्ष मे उलझी ताकतो के भावनात्मक आर नैतिक उद्वेगो को, उनकी व्याकुलता ओर आतरिक विक्षोभ को, अपमान ओर पराजय के वीच भी उनकी उद्दीप्त आत्मगरिमा, अकूत धेर्य, साहस ओर सुदरता को वेमिसाल ढग से उद्‌घाटित करती हे, सचाई ओर पूरेपन के साथ। यही एक चीज हे जो फ़ैज को फ़ैज बनाती हे ओर उन्ह हमारी 'आत्मा का मित्र' वना देती है।

मीर और गालिव के वाद उर्दू ज़ुवान मे शायद फ़ेज हमारी स्मृति मे सवसे गहरे उतरने वाले शायर म है। पिछली तीन शताव्दी मे दूसरी भारतीय भापाआ की कविता मे भी इन तीनो जितनी पुख़्तगी कितने कवियो मे मिलेगी, कहना कठिन है। इसकी वजह जो समझ मे आती है वो ये कि ये तीनो कवि गहरे अर्थो मे अपने-अपने वक्तो की भीपण उथल पुथल की उपज हे। यह उथल पुथल कोरा 'ऐतिहासिक सदर्भ' ही नहीं है, यह इनके भीतर से, इनके निजी जीवन और दिल-दिमाग के वीचो वीच से इन्हे घल विचल करते हुए कुछ इस तरह से गुजरी है कि इनके व्यक्तित्वो की अदरूनी वनावट मे रच-वस गयी है। इससे भी ज्यादा अहम यह है कि तीनो अपन-अपने ढग से घोर अवमूल्यनकारी अपमानजनक और हृदयहीन परिस्थितियो म मनुष्य की गरिमा की प्रतिष्ठा करते ह भीपण आतरिक यातना ओर विक्षोभ से गुजर कर इसकी पूरी कीमत चुकाते हे लेकिन इसका पूरा दावा रखते है। इस तरह तीनो ही मनुष्य को तुच्छ बनाने वाली ओर कुचलने वाली परिस्थिति को मानने से इकार करते ह। यही इनका प्रतिरोध है। यह प्रतिरोध फ़क़त इनके अपने सचेत चुनाव या पक्षधरता की वजह से पेदा हुआ हो ऐसा भी नही है। यह इनके लिए लगभग एक 'वुलफाइट' मे उलझ, घिरे और आत्मरक्षा की काशिश मे लगे हुए शख़्स की मजवूरी की तरह निर्विकल्प और अनिवार्य था।

दिलचस्प तथ्य यह है कि तीनो गजल के शायर है। गजल एक किस्म का 'लिरिक' ही मान लिया गया है (हालांकि यह धारणा पूरी तरह सही नही है)। लेकिन इन्होने गजल के आत्मपरक ढाचे म एक क्लासिकी' अदाज पेदा किया। यह क्लासिकी किस्म की महाकाव्यात्मकता 'फिनोमिनल' कोण पेदा करने वाली उस विद्युत्धर्मिता और वुनियादी नजर की माग करती है जो महान त्रासदियो म हमे अक्सर दिखायी देती है (मिर्जा गालिव के यहा शायद यह चीज सवसे ज्यादा हे)। इस खूबी के वाद गजल सिर्फ एक आत्मपरक उच्छ्‌वास या कोरा 'लिरिक' नही रह जाती। वह चाहे एहसास के पर्दे पर ही सही अपने युग के महानाटक की अदरूनी कशमकश के जहा-तहा कोदने वाले अक्स फेकती चलती हे।

खुद फेज ने गजल के काव्यरूप की इस विलक्षणता और चमत्कारिक लचीलेपन के बारे म कहीं लिखा है कि प्रतीक-व्यवस्था के सीमित प्रारूपा और एक रिवायत मे वधी वधायी पदावली और भगिमाओं के दायरो के अदर गजल कैसे नये-नये अर्थ ओर एक साथ अनेक स्तरीय अर्थछटाए पैदा करती आर खोलती हे और नये अवकाश रच लेती है। कसे इसमे अर्थ की नयी अनुगूजे पेदा होती है आर सुनायी देती हें। फैज ने यह भी वताया हे कि शायद इसीलिये यह नाजुक काव्यरूप उठाईगीरी, फरेव और तरह-तरह के दुरुपयोग के लिए भी ज्यादा खुला हुआ है। एक जैसी लगने वाली भगिमाओ ओर पदावली की वजह से अच्छी गजल ओर खराव गजल के वीच फर्क की तमीज पेदा करना थोडा मुश्किल हो सकता है।

कुल मिलाकर यह कि मीर, गालिव ओर फेज इसलिए महत्वपूर्ण है कि वे अपनी शायरी के जरिये न सिर्फ अपने निजी एहसास की बल्कि अपने-अपने वदलते वक्तो की तर्जुमानी करते हे ओर उनकी नुमाइदगी करने वाली प्रामाणिक आवाज बन जाते हें। मानव स्थितिया की इसी बुनियादी आर अस्तित्वमूलक पकड की वजह से उनकी अनुगूजे उनके वक्तो के वाहर भी जव-तव सुनायी देती हें।

मीर का जमाना एक बस्ती के उखडने का जमाना है ('कैसी-केसी सोहवते उखड गयी")। अत स्फोटो के वीच अपने ही मलबे मे धसते ह्रासग्रस्त सामतवाद के उन दिना मे तमाम लूटपाट, अफरा-तफरी ओर वदहवास आपाधापी के वीच शाही अभिजात वर्ग के एक नुमाइदे के तोर पर मीर (किसी हद तक अपने उदार सूफ़ियाना मिजाज की वजह से भी) अपने युग की जलालत और क्रूरता के तीखे एहसास से गुजरते ह। उनकी शोकमग्न आत्मा इस हानि का बोझ उठाती है ओर इसे बताती ह। यह भी एक प्रत्याख्यान ही है। अगली सदी मे, ओपनिवेशिक विजय के युग मे, इसी पिटेपिटाये शाही आभिजात्य के आखिरी अवशेष की तरह मिर्जा गालिब एक ज्यादा विडवनामय जमीन पर खडे हुए इसी तरह की आत्मपीडा, लाछना, नैतिकत्रास और sense of loss से गुजरते है और तुच्छताओ मे घिर कर घिसटते अपने अस्तित्व के साथ मनुष्य की उद्दीप्त आत्मगरिमा की लौ को वचाते और प्रतिभासित करते चलते हे।

फ़ेज का वक्त और फैज का जीवन कतई अलग था। उनका रगमच ओर उस रगमच के किरदार अलग थे। कुल मिलाकर फेज का युग इतिहास की ऊर्ध्वगति और भविष्यवादी प्रेरणाओ की क्रियाशीलता का युग है। फिर भी फ़ैज का आयुष्यक्रम कभी-कभी गालिब के विरोधाभासी जीवन की याद दिलाता है।

पेतृक रूप से एक भूमिहीन परिवार मे जन्मे फेज के पिता ने भी अपनी जिदगी की शुरुआत चरवाहे और कुली की तरह की थी, लेकिन किसी सयोग से उनके दिन फिरे और वे नाटकीय ढग से अफगानिस्तान के बादशाह के यहा ऊचे नोकरशाह बन गये। फैज के ही लफ्जो मे उन्होने काफी 'रगीन जीवन बिताया। फिर एक दिन साप सीढी के इस खेल म वापिस अपनी जगह पहुच गये। मामूली देहाती मा के बेटे फ़ैज के हिस्से म ज्यादा से ज्यादा पिता के रुतवे की 'जली हुई रस्सी के कुछ बल ही आये होंगे।

प्रथम महायुद्ध के बाद साम्राज्यवाद विरोध की उत्ताल तरगो से आदोलित दुनिया मे फ़ैज ने होश सभाला। उनका बचपन और किशोरावस्था काल सोवियत क्रांति की विजय ओर असहयोग और ख़िलाफ़त आदोलनो की हलचलो के साक्षी बने और राष्ट्रीय मुक्ति सग्राम के लोकव्यापीकरण के गहरे प्रभावो और ऊर्जाओ को जज्ब करते हुए गुजरे। 1930 के 'ग्रेट डिप्रेशन का अपने सदर्भ मे फेज ने ख़ास तौर पर जिक्र किया है। ये तव 20 21 साल के नोजवा ा थे। इस सर्वग्रासी मदी ने जहा एक तरफ उनके अपने परिवार को भुखमरी के कगार पर पहुचा दिया ओर उनके सामने जीवनयापन का प्रश्न उपस्थित किया,

वही दुनिया मे इसने फासीवाद के उभार के लिए ईधन का काम किया। देश मे आजादी की दिनो दिन तेज होती जग और योरप मे युद्ध के खिलाफ ओर अमन के हक म उठी प्रवल हिलोर के गहरे असर मे फ़ैज इन्ही दिनो आये। इसी बीच कम्युनिस्ट आदोलन और मार्क्सवाद से भी उनका रिश्ता जुडा। यह फ़ैज के आत्मनिरूपण (Self-formulation) के महत्वपूर्ण वर्ष थे। भारत म प्रगतिशील साहित्यिक-सास्कृतिक आदोलन और प्रगतिशील लेखक सघ की प्रतिष्ठा करने वाली अग्रणी शख्सियता मे से एक फ़ेज भी थे। इस शुरुआती दौर की प्रेरणा, लक्ष्य और स्वप्न ही फ़ैज के अतर्व्यक्तित्त्व की धुरी बन गये। फ़ेज की शायरी इस वात की गवाही देती है कि ये चीजे उनसे कभी दूर नही हुइ आर उनके लिए कभी झूठी नही पडीं। इनक स्रोत उनके यहा कभी सूखे नही, कठिन से कठिन वक्त मे भी नही।

1941 मे जब फ़ैज का पहला सकलन नक्शे फ़रियादी प्रकाशित हुआ तो उसमे उनके अतर्जगत के मानचित्र की शुरुआती निशानदेही हा गयी। इस सग्रह मे उनकी 1928 के वाद की प्रारंभिक रचनाआ से लेकर, प्रगतिशील आदोलन की प्रेरणाओ से उनके रिश्ता वनाने तक की विकास यात्रा संचित है। सद्य जात उच्छ्वसित रूमानी सवेगो की शुरुआती बेकली और तीव्रता इनम से पहले दोर की अनेक रचनाओ की सचालिका शक्ति है जो ज्यादातर निजी किस्म की हे और तेजी स चढती और गिरती है। इनमे लगता है कि कवि की एक उम्र है ओर 'वाहर' अभी ज्यादातर वाहर ही है 'अदर' नही आया हे। निजी अभी तक निजी ही वना हुआ है। हालाकि अपने दौर की मुख्य दिशा के मुताबिक कवि ने वाहर की दुनिया की कठोर हकीकत ओर नैतिक तकाजो से अपने भाव ससार का मेल करना शुरू कर दिया है। लेकिन इस प्रक्रिया मे कवि को खुद को वार-वार समझाना बुझाना पडता है 'मेरा दिल गमगी ह तो क्या, गमगीं य दुनिया है सारी' ओर 'ये दुख तेरा है ना मेरा हम सबकी जागीर है प्यारी इसलिए 'क्यू न जहा का गम अपना ले, वाद म सब तदवीरे सोचे'। एक तरफ 'अपनाने' की यह जद्दोजहद चलती है तो दूसरी तरफ एक और ही निजी उधेड्वुन चलनी रहती ह जो कभी भी कह उठती है, हो चुका ख़त्म अहदे हिज्रो विसाल जिदगी मे मजा नहीं वाकी' या 'अपने बेख़्वाब किवाडो को मुकफ्फ़ल कर लो, अब यहा कोई नहीं, कोई नहीं आयेगा।

नक्शे फ़रियादी म ही फ़ेज की वेहद लोकप्रिय नज्म 'मुझसे पहली सी मुहव्वत मिरे महबूब न माग सकलित है। यह नज्म प्रगतिशील आदोलन की तत्कालीन मुख्यधारा की उन ढेर सारी रचनाआ के नमूने म ही ढली हुई है जिनमे कई बार भावनात्मक अनुरोध अपनी जाच किये बगैर अति नाटक की मदद से आर नैतिकीकरण की युक्ति का सहारा लेकर सहानुभूति का नया ढाचा खडा करना चाहत ह ओर 'न्याय चेतना' के अनुरूप स्थित होना चाहते है। नक्शे फ़रियादी मे ही फ़ेज न एक नये कवि की इस स्वाभाविक लड़खडाहट को पार कर लिया था। 'बोल क लब आजाद है तेरे' जैसे तराने या 'दोनो जहान तेरी मुहब्बत मे हार के' जैसी मर्मस्पर्शी गजले इसी सकलन मे शामिल थी।

नक्शे फ़रियादी की एक गजल मे फ़ेज का यह शेर है

फ़ैज तक्मीले गम भी हो न सकी
इश्क़ को आजमा के देख लिया

लेकिन हम जानते है कि इश्क़ की मुश्किल आजमाइश अभी शुरू ही हुई थी ओर तानिदगी जारी रही। इसे अभी कई बीहड़ रास्तों से गुजरना था। तक्मीले गम भी ख़ूव हुई लकिन फिर भी कम ही ठहरी।

आजादी के बाद राष्ट्रीय आदोलन के विखराव के वर्षो म, ख़ासकर 50 के दशक म प्रगतिशील आदोलन की स्वत स्फूर्त ऊर्जा ख़त्म होने लगी और धीरे-धीरे कम से कम एक बार पूरा आदोलन ही बिखर कर विसर्जित हो गया। 'आख़िरी शव के हमसफर' अपना-अपना सफ़र ख़त्म करक सुस्ताने के अपने ठिकाने ढूढ रहे थे। कोई किसी किनारे लगा, काई किसी आर क़िनारे। धीरे धीरे अच्छी ख़ासी तादाद मे लोग प्रलोभना या पराये वेचारिक दवावा ओर प्रभावा मे आये आर ख़ामोशी से कहीं ओर चले गये। उर्दू-हिंदी के कितने ही तरक्क़ीपसद, 'इप्टा' ओर 'पृथ्वी थियेटर्स' की कितनी ही प्रतिभाए जो कभी इस तहरीक का परचम उठाये गावो-कस्वो की ख़ाक छानती फिरती थीं, एक दूसरी ही दुनिया मे जा बर्सी। न जाने कितने कलाकार सस्कृति के व्यावसायिक ढाचो म जज्व हो गये या फिर फिल्म उद्योग के विशाल उदर मे ठीक ठीक समा गये। क्राति का ख़याल अव कोई ख़ास ख़लल पैदा न करता था। इन प्रतिभाओ ने इन नयी जगहो को भी कुछ वक्त के लिए अपनी जल्वागरी से रोशन जरूर किया, लेकिन एक आदोलन जिसकी जडे मामूली लोगो की ठोस जिदगी म, उनके दुखदर्द मे, उनके सपना ओर देनिक सघर्षो म थीं एकबारगी खत्म हो गया।

लेकिन फज साहव का मामला कुछ अलग था। उनका दर्दभरा लवा ओर मुश्किल सफर अभी बचा हुआ था जिसे उन्हे लगभग अकेले ही तय करना था। अलग पाकिस्तान के खयाल को फैज ने कुबूल कर लिया था और जनवरी '47 मे ही *पाकिस्तान टाइम्स* का सपादन करने लाहौर आ चुके थे। हालांकि अगस्त 1947 मे फेज लिख रहे थे, 'ये दाग-दाग उजाला, ये शवगजीदा सहर, वो इतिजार था जिसका ये वो सहर तो नही'। लेकिन शायद तव उन्हे भी इस वात का इल्म न रहा होगा कि आने वाले दिन इस कदर काले होगे। फैज की जिदगी का एक वहुत ही अहम और पेचीदा पहलू यह हे कि वटवारे के बाद वे पाकिस्तान ही मे रहे। लिहाजा आजादी की वे खुशफहमिया ओर झूठी तसल्लिया उनके हिस्से मे नही आयी थी जो प्रगतिशील आदोलन से निकले उनके किसी जमाने के सगी साथियो को हिंदुस्तान मे आसानी से नसीव थी। ज्यादातर वक्त उन्होने पाकिस्तान मे जनवाद को कुचल कर रखने वाले अमरीकापरस्त जालिम भूस्वामी सेनिक गठजोड की दमघोट सुरग मे घोर आत्मविच्छिन्नता से गुजरते हुए या एक निर्वासित की जिदगी जीते हुए विताया। आजादी उनके लिए अभी भी एक सपना थी। सेना मे शामिल होकर फासीवाद के खिलाफ लडने वाले फैज क लिए फासिज्म लगभग तमाम उम्र एक जिदा हकीकत रहा, लेकिन वडी वात यह थी कि घोर अलगाव ओर अकेलेपन की इन मुश्किल परिस्थितियो मे फेज ने अपन निरूपण (Self formulation) काल की लो की हिफाजत अपनी आबरू की तरह की, उसे न सिर्फ जिलाये रक्खा वल्कि इस पूरे दोर मे उनके अत करण मे उसकी दीप्ति ओर भी ज्यादा स्वच्छ, उदग्र ओर प्राणवत हो गयी। 'गुरुर इश्क का वाकपन' कम न हुआ उल्टा वढता गया। यह नहीं भूलना चाहिए कि न्याय के लिए लडने वाले लोग वर्गारोहण आर वूर्ज्वा सुखभ्रातियो की भूलभुलेयो मे ही गुम नहीं होते दमनकारी परिस्थितिया मे नृशसीकरण ओर हताशा के सामने भी अलग थलग ओर लाचार होकर टूट जाते हे आर समर्पण कर देते ह। खासकर तव जवकि परिदृश्य मे सगठित प्रतिरोध के कोई विश्वसनीय लक्षण दिखायी न देते हो। इसलिए फेज का ही इस वात का पूरा श्रेय दिया जाना चाहिए कि वे इश्क के इस कठिन इम्तहान मे सुर्खरू हो कर निकले।

नक्शे फ़रियादी के वाद फेज की शायरी को जैसे अपना आपा मिल गया। कवि जसे अपने असल मेदान म आ पहुचा हो। जेल की जिदगी ने मच को ठीक ठीक वाध दिया ओर उन्हे अपने वक्त के नाटक

के बीचोबीच उस केंद्रीय जगह ला खडा किया जहा से वे अपने भीषण आतरिक सघर्ष के जरिये भी बीसवीं सदी के अल्पविकसित नवस्वतत्र देशो के मुख्य सघर्ष की रूपरेखा को सकेतित कर सकते थे और आजादी और जनवाद के ज्वलत प्रश्न की त्रासद विडबना को ज्यादा से ज्यादा उद्घाटित कर सकते थे।

दस्ते-सबा (1952) ओर *जिंदानामा* (1956) ओर उसके बाद *दस्ते-तहे-सग* (1964) म फेज की शायरी की तमाम खूबिया एक रचनात्मक सश्लेषण मे ढल कर अपनी मौलिकता ओर उत्कर्ष के साथ उभर कर आती हैं और अपनी पूरी आजमाइश करते हुए उनके कवि व्यक्तित्व का तमाम पहलुआ को समग्रता मे सामने लाती है। यह चीज बाद तक आने वाले दूसरे सग्रहो मे भी हम देखते ह।

इस पूरे लबे दोर को एक साथ देखे तो फैज की ताकत इस बात मे छिपी लगती है कि वे न्याय क बीहड सघर्ष की सच्चाई, सुदरता ओर जटिलता को पूरी गहराई से समझते हैं, उसका सरलीकरण नही करते। इस इश्क के गुरूर, इसकी आबरू ओर शान को वे दिल से जानते ओर समझते ह, इसके तमाम बोझ ओर जानलेवा तकाजो क साथ। इस दर्द का सोदा उन्होंने अपनी इनसानी गरिमा की हिफाजत की ज्यादा गहरी खुशी के लिए किया हे, यह जानते हुए कि इस लडाई मे कामयाबी की या मजिल पा लेने की कोई गारटी नहीं। इसमे बार-बार की नाकामी कोई खास मानी नही रखती यह मश्क ही खुद म कामयाब है। फेज ही कह सकते थे 'फेज की राह सर-ब-सर मजिल, हम जहा पहुचे कामयाब आये'। इस कठिन रास्ते का तमाम अधूरापन इसके तमाम पेच-ओ-खम के साथ उन्हे मजूर हे। बेगानगी, उदासी, अकेलेपन, विकलता ओर बेबसी के भयानक रेगिस्तान को वे जिस बडप्पन, धीरज और साहस से पार करते हे ओर जिस सलग्नता ओर आत्मगर्व के साथ अपने स्वप्न की स्वच्छता आर अपनी आशिकी की उत्कटता को हर कीमत पर बचाना चाहते ह वह फेज के कवि व्यक्तित्व की पुख्तगी की ही एक मिसाल है।

अपनी एक नज्म म फेज ने कवि के अत करण को 'अत्याचार आर न्याय का रणक्षेत्र' ('तबअ ए शायर है जगाह ए-अद्लोसितम') कहा है। कहना गेरजरूरी हे कि सबसे ज्यादा ये फेज के अपने भावजगत का ही बखान हे। प्रामाणिक ढग से वही कह सकते थे 'दुख भरी खल्क का दुखभरा दिल हे हम'। हम आगे की उनकी तमाम शायरी मे 'अत्याचार' आर 'न्याय' के इस भीषण सग्राम की बदलती शक्लो के साथ कवि की दुर्द्धषता की अनेक सुदर ओर शानदार छविया देखते ह। बार-बार हार कर भी इस 'बदी हुई बाजी' मे कवि हारता नही, अपने शोक ओर एकाकीपन को एक 'ट्रेजिक हीरो' की शान, आत्मगरिमा आर बडप्पन के साथ धारण करता हे, अपनी सजा को कुबूल करता ह आर समर्पण स इकार करता हे। दरअसल फैज एक ऐसे कवि है, जिन्होने मसूर ओर फरहाद की पुरानी परपराओ से लेकर कुर्बानियों स भरी प्रतिरोध की तमाम साम्राज्यवाद विरोधी, फासीवाद विरोधी मुक्तिकामी आधुनिक परपराओ का आत्मसात किया ओर उनकी कीमत समझते आर चुकाते हुए उनके सवाहक बने। हम जानते है कि एशिया, अफ्रीका, लातीनी अमरीका ओर तमाम दुनिया के मुक्तिकामी जनगण के सघर्षो क साथ कैसे उनके दिल की धडकने पेवस्त थीं। वे सबसे अच्छी तरह यह जानते थे कि अदर स यह एक ही लड़ाई है। यह बात अलग ह कि अपने इस सफर म फेज को कभी यह लगा कि 'उठेगा जब जम्म ए-सरफरोशा/पड़ेंगे दार-ओ रसन के लाले/कोइ न होगा के जो बचा ले' तो कभी एसा भी वक्त रहा आर ज्यादातर रहा, कि लगा, 'न रहा जुनूने-रुखे-वफा/ये रसन ये दार करोगे क्या'। लेकिन फैज इन सब स्थितियों के बीच अपनी खुदी को बचाना जानते ह। उनकी खूबसूरत नज्म 'आज बाजार मे पा-ब-जौला चलो' जालिमो के निजाम म अपने लाछित और अपमानित प्रेम की सुदरता, शान ओर आत्मगर्व का जिस तरह पूरे कद म सामने

लाती है और उसका जश्न मनाती है, उससे फैज की आशिक़ी की गहराई और नैतिक तड़प का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। यह कविता अत्याचार और न्याय के बीच के रणक्षेत्र को उसी तरह एक ऐतिहासिक थियेटर म बदलती है, जैसे मुक्तिबोध की कविता 'भूलगलती'।

फ़ज सच्चे वतनपरस्त और सच्चे अतर्राष्ट्रीयतावादी थ। दुनिया भर के जनसघर्षों के साथ एकजुटता व्यक्त करके अतर्राष्ट्रीयतावादी हो जाना आसान है लेकिन अतराष्ट्रीयतावाद की असल परख तब हाती है जब आपका मुल्क एक अविवेकपूर्ण युद्ध म झाक दिया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि 1965 मे भारत के साथ अनावश्यक जग का और 1971 म बाग्लादेश पर आधिपत्य बरकरार रखन के लिए फौजी हुक्मराना क द्वारा की गयी कत्लोगारत का फैज ने अपनी रचनाओ के माध्यम से प्रतिकार किया और अपने मुल्क की अधराष्ट्रवादी धारा का विरोध मोल लिया जबकि 1962 मे चीन के साथ भारत के युद्ध के हक म प्रगतिशील आदोलन के उनके हिदुस्तानी दोस्तो का एक अच्छा खासा तबका अधराष्ट्रवादी मुहिम का शिकार हुआ।

एक बात जो खास तार पर समझने की है, वो ये कि फैज का खुद के सरोकारा से रिश्ता कोरा वैचारिक, नैतिक या कोई रस्मी रिश्ता नही हे। वे उनके खुद के सरोकार है, खुद कमाये हुए, 'ऑर्गेनिक' आर अपरिहार्य। इनमे उनके वास्तविक और निजी 'स्टेक्स थे। सामाजिक सरोकार आर निजी सरोकारों म, ऐतिहासिक कार्यसूची ओर निजी कार्यसूची म उनके लिए कोई अतर न था। इसीलिए 'रेटरिक का सहारा लेने की जरूरत उन्हे कभी महसूस नहीं हुई जबकि उनके निरूपण (formulation) काल म इसका चलन आम था। एक अमूर्त क्रातिकारी रूमान, अमूर्त देशप्रेम या अमूर्त आवारगी ओर दीवानगी की अनुष्ठानिक भगिमाए उकेरने के लिए यह काफी मुफ़ीद है। 'रेटरिक' कई बार एक कर्मकाड के खोल या परिधान की तरह होता है जिसे पहन कर दिये हुए 'पार्ट को अदा करने की सहूलियत काफी मिल जाती है लेकिन उस कवि का काम कोरे 'परफारमेस से कसे चल सकता है जिसका अपना अनुभव ओर बोध एक बाध्यकारी ओर निर्विकल्प अस्तित्वमूलक सघर्ष के जरिए परिभाषित हो रहा हो ओर इसी को चलाने के लिए उसे भाषा की जरूरत पडती हो। फेज के शब्द अगर बजने के बजाय गूजते है, सच्चे लगते हैं ओर दिल मे उतरते ह तो उसकी बडी वजह यही है कि वे असल की ताकत लेकर आते ह। उनमे वही उत्कटता ओर मार्मिकता है जो फैज की अपनी जद्दोजहद मे थी।

जिस चुनौती से फेज का सामना था वह आज ओर भी विकराल हो कर सामने है। उनका सपना चाहे ऊपर-ऊपर टूट गया लगता हो, किंतु इसके बावजूद यह इतिहास के गर्भ मे फिर से स्पंदित ओर जीवित है। इस समय का सघर्ष ज्यादा भीषण आर जटिल है, लेकिन उसी अनुपात मे प्रतिरोध की सभावनाए ज्यादा सघन व्यापक और मूलगामी हुई हे। इस लज्जित और पराजित युग मे भी तमाम थकन उदासी, विछोह और व्यथापूर्ण 'अकेलेपन के बीच फैज का अत सघर्ष उनका जीवट, धेर्य, उनकी हठी पक्षधरता ओर उनका अप्रतिहत प्रतिरोध हमारी स्मृति में अपनी सच्चाई और प्राणमयता के साथ तब तक जीवित है, जब तक यह लडाई जारी है। कठिन आशिकी की फैज की यह परपरा आने वाले लबे दौर मे हमारे साथ चलेगी।

फो 0212 273759

निर्वासन के दर्द का एहसास

चचल चौहान

मशहूर उत्तरउपनिवेशवादी चितक एडवर्ड सईद ने कई अन्य पाश्चात्य चितको की तरह निर्वासन के शिकार या विस्थापित अदीबो और अवाम के बारे म विस्तार से लिखा हे। अपने इसी सैद्धातिक चितन के बीच उन्होने महमूद दरवीश ओर फ़ेज अहमद फेज का भी उल्लेख किया है। वे फेज से बैरूत मे उन दिनों मिले थे जब पाकिस्तान मे जियाउल हक की फौजी तानाशाही फैज जेसे जम्हूरियतपसद अदीबो आर दानिशिवरो पर किसी भी तरह का कहर बरपा कर सकती थी। फेज से अपनी मुलाक़ात का ज़िक्र करते हुए एडवर्ड सईद ने अपने एक लेख, 'निर्वासन पर कुछ चितन' मे लिखा

> कई बरस पहले मेने अपने जमान क उदू के अजीमतर शायर फ़ेज अहमद फैज क साथ कुछ वक़्त विताया था। व अपन वतन पाकिस्तान में जिया के फ़ोजी शासन के चलते निर्वासित हो कर वैरूत आ गये थे जहा उनका एक तरह से स्वागत हुआ। फ़िलिस्तीनी उनके स्वाभाविक तोर से जिगरी दोस्त थे। मैंने महसूस किया कि उन म आपस में वडी गहरी आत्मीयता थी जब कि उनकी न तो जबान या शेरी रवायत या ज़िदगी की तारीख़ ही उनसे मिलती जुलती थी। सिर्फ़ एक बार मैने फेज को अपने निर्वासन के दर्द से उबरते हुए देखा था जब उनके एक पाकिस्तानी दोस्त इकबाल अहमद बैरूत आये थे जो ख़ुद भी निर्वासित थे। हम तीनो एक गंदे से रेस्त्रा में देर रात तक जमे रहे, फ़ेज अपनी नज्मे सुनाते रहे। कुछ देर बाद इकवाल और उन्होंने हमारे लिए नज्मो का तर्जुमा करना बद कर दिया। जैसे रात गुजरती गयी, इससे कोई दुश्वारी पेश नहीं हुई। जो मे देख रहा था, उसके लिए किसी तर्जुमे की दरकार नही थी। यह नजारा एक तरह से प्रतिरोध के स्वर से भरी घरवापसी जैसा था, मानो वे कह रहे हो, ऐ जिया, ले हम आ गये, लाजिम है, हम भी देखेगे। जिया तो असलियत मे अपने मुल्क मे ही था, वह उनके प्रतिरोध की आवाज नहीं सुन रहा था।

एडवर्ड सईद ने फ़ैज के साथ अपना वक्त गुजारने की इतनी भर दास्तान लिखी लेकिन इतने से ही निर्वासन के उस दर्द का एहसास हमे जरूर करा दिया जिसे फैज साहब ने अपनी जिदगी के कई बरसा तक या तो जेलों मे रह कर झेला था या फिर दूसरे मुल्को मे रह कर। उनके इस दर्द को अब इस हक़ीक़त मे भी देखा जा सकता है जो फ़ैज साहब के नज्म सुनाने के अदाज में छिपी हुई रहती थी और जिससे सुनने वाला को शिकायत रहती थी। मुझे भी उन्हे सुनने का मोका मिला था। नयी दिल्ली क फिक्की आडीटोरियम मे उनका जलसा था जिसमे उन्होने नज्मे और गजले सुनायीं, उसी गेरनाटकीय तरीक़े से जिसका जिक्र अक्सर लोग करते थे। उमा शर्मा ने उनकी गजलों पर एक नृत्यनाटिका तेयार की थी

जिससे जलसे म एक नया ही रग आ गया था, फिर भी वह गायकी सुनने को नहीं मिली जो इकबाल बानो की 'लाजिम है कि हम भी देखेगे' की चुनौतीभरी आवाज मे उन दिना सुहैल हाशमी के पास के एक केसेट से सुनी थी और उसकी प्रतिलिपि अपन पास भी मैने रखी थी। अब तो इसे इटरनट पर आसानी से इकबाल बानो की वीडियो रिकार्डिग मे सुना जा सकता है।

फ़ेज की शायरी मे 'दर्द' ओर 'तनहाई' शब्द वार वार आये हे, लेकिन ये शब्द आधुनिकतावादियो की तरह ओढ़े हुए 'अकेलेपन' या 'दुख सवको माजता हे' के सूत्रबद्ध 'दर्द' का आख्यान नहीं ह। ये तो एक अलग तरह की अनुभूति से उपजे शब्द ह। सज्जाद जहीर ने इस तरह के अकेलेपन को फेशन के तोर पर अपनाया हुआ अकेलापन वताया था। हिदी मे अज्ञेय ने इसी तरह का 'अकेलापन' ओढा हुआ था ओर लिखा था कि 'ये ही सब चीज तो प्यार है / ये अकेलापन ''। यह तो एक आम कहावत हे कि 'जाके पेर न फटी बिवाई/सो का जाने पीर पराई'। एडवर्ड सईद ने भी निर्वासन के दर्द का फलसफ़ाई जायजा लेते हुए इस सत्य को रेखांकित किया है। उन्हाने लिखा है कि 'बीसवीं सदी के पमाने पर, निर्वासन की घटनाआ को न तो सोंदर्यशास्त्रीय तरीके से ओर न ही मानवतावादी नजरिये से ठीक से समझा जा सकता हे। निर्वासन के बारे मे रचा गया साहित्य तो सिर्फ़ उस दर्द ओर नियति को एक वस्तु मे बदल भर देता हे जिस दर्द से होकर ज्यादातर लोग खुद नही गुजरे हे।' यह सच्चाई हे कि निर्वासन खुद जिसने झेला है, वह उसका जिस गहरी अनुभूति के साथ बयान कर सकता हे, वह दूसरा कोई नही कर सकता । फैज अपने इस एहसास को यो कहते हैं

कही तो कारवा ए दर्द की मजिल ठहर जाये
किनारे आ लगे उम्र ए रवा या दिल ठहर जाये

अमा केसी कि मौज ए खू अभी सर से नही गुजरी
गुजर जाये तो शायद बाजू ए-कातिल ठहर जाये

फैज की शायरी के वाचक मुक्ति का इतजार करते हे, यह मुक्तिकामना उनकी अपनी किसी जेल से रिहाई या अपने वतन से दूर रहने के दर्द से निजी मुक्ति से जुडी हुई नही हे। इसीलिए वह निजी या लिरिकल लगती हुई भी एक नाटकीय या वस्तुपरक आख्यान बन जाती हे, क्योंकि इसम तो उस सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति का इतजार है जो अभी हासिल नही हुई। मुक्ति की उस सुबह का इतजार हे जिसम आदमी द्वारा आदमी का शोषण नही होगा, जिसम सामराजी मुल्क तीसरी दुनिया क मुल्को पर अपना कब्जा बनाये रखने म कामयाब न हो पायेगे और सामराजी ताकते पूरी दुनिया को किसी आलमी जग मे न झोंक पायेगी। समाजवाद का सपना देखने वाले तमाम राजनीतिक ओर विचारधारात्मक सगठनों और रचनाकारा, कलाकारो को उसी मुक्ति की सुबह का इतजार आज भी हे। भारत जब आजाद हुआ तो उस आजादी की सुबह ने कवियो आर कलाकारो के जागरूक हिस्सो को उस तरह की खुशी नहीं दी जो आजादी उनके सपना मे बसी मुक्ति हासिल होने पर होती। उन्ह इसका गहरा एहसास था कि राजनीतिक सत्ता विदेशी पूजीपतिया के हाथ से देशी इजारेदार घरानो के तबके के हाथ आयी है, उसने बड़े भूस्वामियो से गठबधन कर लिया है ओर विदेशी पूजी से भी समझोता किया हुआ है, इसलिए नयी व्यवस्था म भी शोषण की तेग गरीबो पर चलती रहेगी। उर्दू के कई शायरा ने अपने इस एहसास को वाणी दी फैज ने भी बेखौफ तरीके से अपनी मशहूर नज्म 'सुबहे आजादी म इस एहसास को कहा

ये दाग दाग उजाला, ये शबगजीदा सहर / वो इतजार था जिसका, ये वो सहर तो नही।

पाकिस्तान के शासकवर्गो ने बार बार वहा के अवाम को सेनिक तानाशाहो के माध्यम से जुल्म और शोषण का शिकार बनाया तो वहा के वामपथी ओर जम्हूरियतपसद शायरो और अदीबो ने बहुत तकलीफे झेली, फ़ेज आर हवीब जालिब जैसे शायरो को जेलो मे वद रहना पडा, फ़हमीदा रियाज को भागकर भारत मे शरण लेनी पडी। इन हालात पर नजर डालने से यह समझ मे आता हे कि फेज की कविता मे 'दर्द', 'दुख', 'गम','तनहाई' जैसे बार बार आने वाले शब्दा का क्या सामाजिक सदर्भ है। इसी तरह के एक सदर्भ का हवाला एडवर्ड सईद ने थ्योडोर एडोर्नो की निर्वासन के दोरान लिखी उनकी आत्मकथा, *क्षत विक्षत जिदगी पर विचार (Reflections from a Mutilated Life)* के बारे मे दिया है। 'निर्वासन मे रह रहा बुद्धिजीवी खुद को एक वस्तु मे तब्दील होने से इनकार करता हे।' फेज के साथ भी यही होता हे कि ये खुद को एक कमोडिटी मे तब्दील नही होने देते, तानाशाहो को उनसे यही तो शिकायत थी। ऐसी ही स्थिति तो हमारे यहा एमर्जेसी के दोर मे थी जब बहुत से बुद्धिजीवियो ने खुद को वस्तु मे या मिट्टी का माधो वनने से इनकार कर दिया था और निर्वासन की यातना झेली थी।

फैज ने अपने निर्वासन का दर्द जिस तरह सहा, वह भी एक मिसाल ही हे, क्याकि उसे उन्होने दुनियाभर के दुखी, गरीब, मजलूमो के गम के साथ घुलामिला दिया। ऐसा ही मशविरा उन्हे रशीद जहा से मिला था जिसका हवाला फैज ने बी बी सी को दिये अपने एक इटरव्यू मे दिया था कि अपने गमो के वजाय दुनिया भर के गरीवो और वचितो के गमो को महसूस करो और उन दुखो को वाणी दो। फ़ेज ने फिर वही किया। अपनी महबूवा को भी कह दिया कि पहले जेसी मुहब्बत की माग पूरी करना मुमकिन नही। यहा फ़ैज ने अपने 'स्व' के विस्तार की बात कही है जिसे मुक्तिबोध ने अपनी कई कविताओ मे *बयान किया था। अपने निज के दर्द से ऊपर उठने की प्रक्रिया आसान नहीं होती, मगर महान कविता* के लिए यह जरूरी तो होती ही है

बात वस से निकल चली है
दिल की हालत सभल चली हे
अब जुनू हद से वढ़ चला है
अब तबीअत बहल चली हे
अश्क खूनाब हो चले हे
गम की रगत बदल चली है

गम की इस वदलती रगत ने उनकी शायरी म एक नया ही रग ला दिया। फैज ने दुनिया के शोपितो को वे गीत ओर तराने दिये जो उनकी जवान पर नारे बन कर सभी जगह गूजने लगे। उन्हें अपनी सगठित शक्ति का एहसास कराया, जालिमो के अत की आशा दी, अपनी अभिव्यक्ति की आजादी बनाये रखने का होसला दिया, उन्होने ही हमे सिखाया, 'बोल कि लब आजाद हे तेरे'। उन्होने अपने निर्वासन मे अभिव्यक्ति की जो शेली ईजाद की वही सारी जनवादी कविता की शैली बन गयी, 'हमने जो तर्जे-फ़ुगा की है कफ़स मे ईजाद / फ़ेज गुलशन मे वही तर्जे-वया ठहरी हे'।

निर्वासन के दर्द को सहने ओर उसे रचनात्मकता के जुनून मे भुलाये रहने की आदत ने फ़ैज मे क्रांतिकारी आशावाद जिदा रखा। अगर निर्वासन से टूट जाते तो सर्वहारावर्ग के दुश्मनों की ही जीत होती।

जिनपे आसू वहाने का काई न था
अपनी आख उनके गम म वरसती रही
सबस ओझल हुए हुक्म हाकिम प हम
केदखाने सहे ताजयाने सहे
लाग सुनते रहे साजे दिल की सदा
अपने नग्मे सलाखो स छनते रहे

फेज की कविताओ म निर्वासन या कद के जो विव आर प्रतीक आये है, या जो नग्मे सलाखा से छनते रहे, उन्हे कुछ आलोचका ने रूपवादी सरचनावादी नजरिये स देखने की कोशिश करते हुए उनके अर्थो ओर उनके अतर्निहित रुझान को विकृत भी किया ह। ऐसी ही एक कोशिश गोपीचद नारग की भी मुझे दिखायी पडी जिन्हाने फेज की एक मशहूर नज्म, 'दस्ते तहे सग आम्दा' (जिस पर फेज ने अपने एक सकलन का नाम भी रखा) की सरचनावादी व्याख्या करके यह वताया कि यह केदखाना विचारधारा का भी हो सकता हे जिसस मुक्ति की काशिश शायर कर रहा था। ऐसा अर्थ निकालते हुए उन्होने प्रगतिशील आदोलन पर भी लगे हाथ चोट कर दी, ओर फेज को अली सरदार जाफरी के मुकावले विचारधारा की जकडवदी से मुक्त तथा इडोपर्शियन सादर्यशास्त्र का पालन करने वाला शायर वताया ओर यह भी कहा कि मार्क्सवादी इस सादर्यशास्त्र को 'वूर्जुआ' कहते ह। वे मानते ह कि फेज की कविता म 'मान' ओर 'अतराल' ही उन्हे विचारधारा को अतिक्रमित करने म मदद पहुचाते ह। गोपीचद नारग का यह नही मालूम कि विचारधारा को परोक्ष रखने की सलाह रचनाकारो को सवसे पहले एगेल्स ने ही दी थी जो मार्क्सवाद के प्रणेता थे। अपनी काव्य परपरा ही नही, पूरे अतीत की सस्कृति का वाहक सर्वहारावर्ग को ही होना ह ओर यह सदेश लेनिन ने ओर माओ ने भी प्रगतिशील रचनाकारो ओर सस्कृतिकर्मियो को अपने अपने समय मे दिया था जो आज भी प्रासंगिक है। इसलिए अगर फैज ओर मुक्तिबोध अपनी कविताओ के लिए इडोपर्शियन सादर्यशास्त्र से काम ले रहे थे या समूचे विश्व के वेहतरीन अदव आर कला की रवायत को आगे वढा रहे थे, इससे उनकी विचारधारा का कोई विचलन नहीं था ओर न किसी मार्क्सवादी ने इस सोदर्यशास्त्र को 'वूर्जुआ' या 'सामती' कहा। यह तो नारग की अपनी ही ख़ामख़्याली है वकोल फेज, वो वात, सारे फसाने मे जिसका जिक्र न था / वो वात उनको वहुत नागवार गुजरी हे।' फेज के *जिदानामा* मे कविताओ से पहले सज्जाद जहीर की एक छोटी टिप्पणी उस सकलन मे शामिल है जिसमे इस शायर ओर अपने हमदम, अपने दोस्त ओर केद के सगी साथी की कविताओं म परपरा से लिये गये सादर्यवोध की तारीफ की गयी हे। उन्होने तो इस वोध को 'वूर्जुआ' या 'सामती' नही कहा जवकि वे तो प्रगतिशील लेखक सघ की वुनियाद रखने वाले वाले अदीव थे। उन्होने लिखा

> जहा तक उन इकदार (मूल्यों) का तआलुक है जिनको शायर ने उन म पेश किया हे वो तो वही है जो उस जमाने म तमाम तरक्कीपसद इसानियत की इकदार है लेकिन फ़ेज ने उनको इतनी ख़ूवी से अपनाया है कि वो न तो हमारी तहजीवो तमद्दुन की वेहतरीन रवायत से अलग नजर आते हे और न शायर की अनफ़रादियत उसका नर्म शीरीं और मतरन्नुम अदाज ए-कलाम कहीं भी उनसे जुदा हुआ है।

नारग जैसे वहुत से आलोचक पश्चिम से उधार ली गयी या चोरी की हुई आलोचना पद्धतिया का इस्तेमाल अक्सर प्रगतिशील जनवादी विचार परपरा पर हमला वोलने के लिए करते है और ज्यादा मगजपच्ची सरचनावाद पर करते हुए वे पाठको को यह सीख देते हे कि 'फेज को किस तरह नहीं पढ़ना चाहिए'

(उनके लेख का यही शीर्षक है) और कैस पढ़ना चाहिए इसके लिए उन्होंने उनकी एक नज़्म 'दस्ते तहे सग आम्दा'(चट्टान के नीचे दबा हाथ) की सरचनावादी व्याख्या की ह। यह बिंव कवि ने गालिब स लिया है। गालिब के यक्त उपनिवेशवादी ईस्ट इंडिया कपनी की चट्टान क नीच कलाकार का हाथ दबा था। 1857 के उस यक्त के वहशी दमन ओर उत्पीडन को गालिब न अपनी आखो दखा था। फैज न मार्शल लॉ की चट्टान के नीचे दबे हुए तख़्लीक़ी हाथ को देखा था। उन्होन रचनाकाग की अभिव्यक्ति की आजादी पर लगी पाबदी ही नहीं, दुनिया के कई देशो पर सामराजी दमन क वहशीपन को भी दखा और तमाम वंचितो, वतन बदर किये गये अवाम और निर्वासन मे जी रह इनसानो का दर्द भी तल्ख़ी स महसूस किया था। लुदमिला वेसिलेवा की फैज पर लिखी किताव का रिव्यू करत हुए अदीव ख़ालिद ने इस बात को रेखांकित किया हे। उन्होने लिखा है कि फैज साहब ने 1982 के एक वक्तव्य म खुद यह कहा था

> एक मुसन्निफ़ की हैसियत स हालांकि में किसी मुल्क का कामकाज नही सभालता हू ओर न ही मेरे पास कोई प्रशासनिक ताक़त है मुझे यह एहसास करने का हक़ जरूर है कि म अपन भाई बधुओ का अभिभावक हू और मेरे भाई बधु पूरी दुनिया के अवाम है। मेरे तई अमन, आजादी, युद्धवदी आर एटमी होड की मुख़ालिफ़त ही प्रासंगिक है। इस विशाल भाईचार म स मर ओर मर दिल के सबस नजदीक व अवाम ह जो अपमानित, निष्कासित और वंचित हैं, जो गरीब, भूखे और परेशान ह। इसी वजह से मेरा लगाव फ़िलिस्तीन, दक्षिण अफ्रीका नामीबिया, चिले के अवाम और अपने मुल्क के अवाम आर मुझ जैसे लोगो से है।

जिस तरह वे खुद निर्वासन का दर्द झेल रहे थे, उसी तरह वतन वदर हुए अनेक फ़िलिस्तीनी अवाम और दुनिया के कई मुल्को मे दमन ओर उत्पीडन क शिकार भोले भाले लोग उनके स्वाभाविक तार पर हमराही थे, उनका दर्द भी वे अपनी शायरी म व्यक्त कर रहे थे, कहीं कही वह दर्द सीध सीधे सीधे कहा गया है तो कहीं वह प्रतीकों ओर बिंबो के माध्यम से आया हे। लेकिन सबस बडी बात यह है कि व पस्तहिम्मती नही दिखाते, एक उम्मीद हर जगह जताते है, जुल्मोसितम के अंधेर छटेंगे और बेहतर भविष्य की सुबह आयेगी। इसलिए चट्टान के नीचे दबे हाथ के बावजूद वे अपनी कल्पना म उस सुबह को भी कई बार जीत है। उदाहरण के तौर पर 'दस्ते तह सग आम्दा' नज़्म को देखा जा सकता हे जिसकी तथाकथित 'सरचनावादी व्याख्या' करने की नाकाम कसरत गोपीचद नारग न की हे। नज़्म की पहली दो पंक्तिया मायूसी दशाती हे मगर, उनक बाद दो पंक्तिया उस मायूसी को छाट देती ह और 'चल चलो की प्रेरणा जो उनकी कई नज़्मो से ध्वनित होती है, उनम लक्षित होती है

> बेजार फ़ज़ा ह, दरपय आजार सबा है
> यू है कि हर इक हमदम ए देरीना ख़फ़ा है
> हा बादाकशो, आया है अब रग प मौसम
> अब सैर क क़ाबिल रविशे आबोहवा है

गोपीचद नारग इस पूरी नज़्म का एक सरचनावादी पाठ पेश करने का दम भरते हे ओर यह घोषणा करते है कि यह कविता 'न तो प्रेम कविता है ओर न राजनीतिक कविता'। मगर जब इस नज़्म के मेटाफ़र व्याख्यायित करने लगते हैं तो उनके सामाजिक-राजनीतिक पक्ष ही उजागर करन पर मजबूर होते है।

इस पूरी कविता मे 'इल्जाम की बरसात', 'जहर हलाहल', 'जुल्म', 'जेल', 'जजीर', 'सजा', 'हथकड़िया' और अत म गालिब से लिये हुए बिंब, 'गिरफ्तारी','चट्टान के नीचे दबा हाथ' क्या उस राजनीतिक चेतना के बगैर व्याख्यायित किये जा सकते ह जिसकी वजह से शायर अपने 'वतन की गलिया पे निसार' होता है और दुनिया की उस जनशक्ति को अपनी महबूबा की तरह देखता हे जिसकी मुक्ति के लिए वह तडपता है, इसलिए यह कविता एक प्रेमकविता भी हे और राजनीतिक तो है ही। सरचनावाद का जप करने से या अल्थ्यूसर ओर रोला बार्थ का नाम स्मरण कर लेन से सरचनावादी व्याख्या नहीं होती ओर की जायेगी तो निहायत फूहड किस्म की ही होगी।

फैज साहब की शायरी की यही तो खूबी है कि वे इश्क, वतन से मुहब्बत, अपनी इकलाबी विचारधारा और दुनिया के मेहनतकशो ओर वचितो व मजलूमा के साथ हमदर्दी और अपने निर्वासन के दद को इस तरह अपनी शायरी मे घुलामिला देते ह कि उसमे यथार्थ की बहुत सारी परते कलात्मकता का नयी झलक देती है। 'कैद-ए-तनहाई' शीर्षक नज्म की आखिरी तीन पक्तिया देखे तो यह जादू साफ दिखायी देगा

हसरते रोजे मुलाकात रकम की मेने
देस परदेस के याराने कदहख्वार के नाम
हुस्ने आफाक, जमाले लब ओ रुख्सार के नाम

उनकी विचारधारा के विरोधी भी उनकी इस कलात्मक सश्लिष्टता पर मोहित है और उन्ह अपनी घटिया आलोचना का शिकार नहीं बना पाते। हम लोगो का प्यारा यह शायर उर्दू म ही नही, पूरी दुनिया के अदब मे हमेशा हमेशा एक चमकता सितारा रहेगा।

मो 09811119391

आशा भरे अवसाद के विश्व-कवि

प्रणय कृष्ण

नेरुदा की कविताओं के अब तक के सबसे बेहतर अनुवाद हिंदी में लानेवाले कवि नीलाभ ने नेरुदा की लंबी कविता 'वह लकड़हारा जागे' के बारे में लिखा है, 'इस कविता का अंत उस आशा भरे अवसाद में होता है, जो नेरुदा की अपनी ख़ासियत है।' दरअसल, यह नेरुदा की ही नहीं, बल्कि 20वीं सदी में रचनारत ऐसे विश्वकवियों की एक ख़ास विशेषता है जो तीसरी दुनिया के मुल्कों से आते थे और बेहतर दुनिया के संघर्ष और स्वप्न को जीवित रखने के लिए अपनी मातृभाषाओं में कविताएं लिखते रहे। चूंकि ये जनसंघर्षों से जुड़े कवि थे, लिहाजा उन संघर्षों के उतार चढ़ाव, आशा-निराशा, सफलता-असफलता का उनकी कविता पर प्रभाव लाजिमी था। ये कवि ऐसे थे जिन्हें बहुधा अपने वतन से बेदखल होना पड़ा, जेल की सजा काटनी पड़ी, यातनाएं सहनी पड़ीं और अपनों का विछोह सहना पड़ा। वतनबदरी ने उन्हें दुनिया भर में साम्राज्यवाद, औपनिवेशिक उत्पीड़न, फ़ासीवाद और तानाशाही के ख़िलाफ़ चलने वाली लड़ाइयों के साझेपन, बहिनापे और दर्द के आपसी रिश्ते की चेतना दी। ये खुद जिन देशों से आते थे, उनकी भौतिक, ऐतिहासिक, भू-राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में समानता के भी तत्व थे, भिन्नता के भी। वे जिन जातीय काव्य परंपराओं के वारिस थे, वे भी अलग-अलग थीं। लेकिन उनकी कविता में 'आशा भरे अवसाद' के स्वर की समानता का सीधा संबंध उनकी जनांदोलनों से गहरी संलग्नता और बेहतर, सुंदर, आजाद दुनिया तथा मानव नियति के सरोकारों से है। जिन भौतिक और आध्यात्मिक सवालों से उनकी कविता संबद्ध है उनका समाधान 20वीं सदी न दे सकी। वे सवाल भी ऐसे नहीं हैं जिनका हल आसान या समय के निश्चित दायरे में अपरिवर्तनीय ढंग से संभव हो। इसी वजह से उनकी इतिहास-चेतना भी एक-रेखीय, परिणामवादी और निर्धारणवादी नहीं है। इन कवियों में अवसाद मिलेगा, लेकिन निराशा नहीं। आज 21वीं सदी में हम 'आशा भरे अवसाद' की इनकी स्वर-भंगिमा से और भी ज्यादा निकटता महसूस करते हैं क्योंकि आज के संघर्ष और ज्यादा पेचीदा हैं, साम्राज्यवाद के पक्ष में झुके विश्व शक्ति संतुलन का कोई प्रति संतुलन मौजूद नहीं है, इसलिए कोई आसान हल भी हमारे सामने मौजूद नहीं है। ये कवि इतिहास की गति के बीच अपनी कविता को रखते हैं, इसलिए वे वर्तमान के संघर्षों के गर्भ में पल रही उम्मीदों के रचनाकार हैं, जिंदगी की रोज-ब-रोज की जद्दोजहद से कटे किसी यूटोपिया के सर्जक नहीं हैं। ये आसान समाधानों और नुस्खों के कवि नहीं हैं। उन्हें एहसास है कि जिन संघर्षों में उनकी जनता और कविता मुब्तिला है, वे लंबे चलनेवाले हैं, वे पस्तहिम्मती भी ला सकते हैं, लिहाजा उनकी कविता इस

से आगाह करती है और नयी उम्मीद भरने के कर्तव्य का निर्वाह भी करती चलती है। नाजिम हिकमत की एक मशहूर कविता का यह टुकडा देखे

'मान लीजिए हम मोर्चे पर हे
लडने लायक किसी चीज के लिए।
वहा पहले ही हमले मे,उसी दिन
हम आधे गिर सकते है, मुह के बल, मुर्दा।
हम जानते होगे इसे एक अजीब गुस्से के साथ
फिर भी हम सोचते सोचते हलकान कर लेगे खुद को
उस युद्ध के नतीजे की बाबत जो बरसो चल सकता है।
मान लीजिए हम जेल मे हे
और पचास की उम्र की लपेट मे,
ओर लगाइए कि अभी अट्ठारह बरस बाकी है
लोह फाटको के खुलने मे।
हम फिर भी जियेगे बाहर की दुनिया के साथ
इसके लोगो पशुओ, सघर्षो और हवा के-
मेरा मतलब कि दीवारो के पार की दुनिया के साथ
मेरा मतलब, कैसे भी कहीं भी हों हम
हमे यो जीना चाहिए जेसे हम कभी मरेगे ही नही।

(अनु वीरेन डगवाल *पहल पुस्तिका*, जनवरी फरवरी, 1994, स ज्ञानरजन)

फ़ैज साहब का आख़िरी कलाम जो हिंदीभाषियो को एक गजल के रूप में उपलब्ध है, उसमें भी वे कहना नही भूलते कि उन्हे मालूम हे कि जिदगी की लडाइयो मे, खुशी और गम, उत्थान पतन, जय पराजय क्या हे। लिहाजा सब सोच समझ कर ही उन्होने एक शायर के रूप मे उन्हे क्या करना हे, इसका चुनाव किया है। वे लिखते है

हम एक उम्र से वाकिफ़ है अब न समझाओ
कि लुत्फ क्या है मेरे मेह्रबा सितम क्या है
करे न जग मे अलाओ तो शेर किस मक़सद
करे न शह्र में जल थल तो चश्मे नम क्या है।

इतिहास की गहरी समझ, जिदगी के सघर्षों मे पराजय और धक्को के एहसास के बीच भी सघर्ष की अपरिहार्यता, उम्मीद का सृजन ओर अपने काम की, जनता के कवि के काम की अहमियत मे यकीन इन कविया को एक ख़ास तरह के रिश्ते म बाधती है। फ़ेज के समकालीन ऐसे विश्व-कवियो म नेरुदा (1904 1973), हिकमत (1902-1963) ओर महमूद दरवीश (1941-2008) का नाम सबसे ऊपर लिखा हुआ है। फ़ैज साहब का इन सबसे व्यक्तिगत जिदगी मे भी आत्मीयता का रिश्ता रहा। इन कवियों की एक विशेषता यह भी रही कि इन्होने अपनी कविताओं का जा देश ओर काल रचा यह साम्यतिक था, एक पूरे महाद्वीप या उप महाद्वीप की स्मृतिया ओर यथार्थ इनकी शायरी म मुखरित हुए। ये कवि किसी राष्ट्र राज्य की चारदृदी में बध कवि न थ क्योंकि राष्ट्र-राज्यो का उदय पूजीवाद के साथ हुआ जबकि

ये कवि हक, इसाफ, बराबरी और शाति के पक्ष मे लिखते हुए पूजी के युग मे पैदा किये गये राज्य, समाज और सस्कृति के सस्थानो से पहले के ऐतिहासिक जन-जीवन, मिथकीय भाव-जगत, साभ्यतिक अनुभूति की सरचनाओ को वर्तमान के मुक्ति सग्राम के दृष्टिकोण ओर मानव-मुक्ति की भविष्य-दृष्टि के साथ काव्य मे रूपातरित ओर सप्रेषित करते है। काव्य-दृष्टि की इस विराटता के चलते ही वे विशिष्ट सभ्यताओ और काव्य-परपराओ से आने के बाद भी विश्व मानव की आकाक्षाआ ओर सवेदनाआ के वाहक हुए। आज बहुप्रचारित ओर साम्राज्यवादियो द्वारा अमल म लाये जा रहे 'सभ्यताआ के सघर्ष' का सिद्धात इनकी कविताओ के सामने बालू की भीत सा लगता हे, क्याकि इनम से हर कवि अपनी विशिष्ट सभ्यता की अनुभूतियो की जटिल बुनावट के भीतर से सामान्य मानव मुक्ति के स्वप्न ओर यथार्थ का उभार देता है। उपनिवेशवाद विरोधी सस्कृति-कर्म की एक खास भगिमा यह भी थी कि न केवल वर्तमान को, बल्कि इतिहास ओर स्मृति को भी साम्राज्य के कब्जे से छुडा लाया जाये। यह काम इन सभी उपनिवेशवाद-विरोधी शायरो ने बख़ूबी अजाम दिया। फ़ेज न केवल पूरे उप-महाद्वीप के शायर ह, बल्कि इडा-परशियन काव्य परपरा के वारिस होने के चलते एक बडा सभ्यतागत घेरा अपने काव्य मे बनाते ह। हिकमत को आटोमन साम्राज्य के भीतर समाहित शताब्दियों मे विकसित अनेक कौमा की साझा सस्कृतिक विरासत मिली थी जो उनके काव्य म अपनी ख़ास छटा लेकर आती ह। हिकमत के पुरखो मे तुर्की, पोलिश जर्मन और काकेशस की आडिग जनजाति से आनेवाले लोग थे, लिहाजा पारिवारिक विरासत के लिहाज से भी वे कास्मोपालिटन थे। महमूद दरवीश महज फिलिस्तीनी राष्ट्र के नहीं, बल्कि उदात्त अरब अस्मिता के कवि थे और कविता भी उन्होने अरबी भाषा म ही लिखी। नेरुदा इसीलिए महज अपने देश चिले के कवि नहीं, बल्कि सारा लैटिन अमरीका उनके काव्य की रगस्थली है। 1943 मे नेरुदा ने पेरू की यात्रा की और शताब्दियो पहले लुप्त हो चुकी इका सभ्यता के खडहरो म घूमे। दो ऊची पहाडिया के बीच स्थित इका सभ्यता के प्रमुख नगर-केद्र 'माच्चू पिच्चू' को उन्हाने देखा ओर अपनी महान कविता 'माच्चू पिच्चू के शिखर' लिखी। इस खोये हुए पहाडी नगर की चढाइ का वृतात कविता मे एसे ढलता है कि वह लेटिन अमरीका के खाये हुए अतीत, उसके सघर्षो, उसके प्राकृतिक ओर मानवीय सोदय तथा उसकी स्मृतियो के सधार मे तब्दील हो जाता ह। कविता के अत म नेरुदा शताब्दिया के मृतकों का अपनी वाणी मे फ़िर से जन्म लेने का आह्वान करते ह

उठो जन्म लो मेरे साथ, मरे सहजात

देखो मेरी ओर धरती की गहराइयो से
हरवाहे, जुलाहे, ख़ामोश चरवाहे
विघ्नहर्ता ऊटो के पालक
खतरनाक पहाडा पर चढ़े हुए राजगीर
एडीज के आसुओ के कहार
कुचली उगलिया वाले मणिकार
अखुवाते बिरवो मे लरजते किसान
अपनी माटी मे बिखर कुम्हार
इस नयी जिदगी के प्याले तक लाओ

अपने पुराने दबे पड़े दुख।

मै आया हू तुम्हारे निस्पद मुखों की ओर स बोलने।

(पाब्लो नेरुदा, अनु नीलाभ, *माच्चू पिच्चू के शिखर*
सदानीरा प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ 68-69)

इन कविया का काव्य रूमानी, आदर्शवादी, मानवतावादी कविया की तरह अमूर्त नहीं, वल्कि यथार्थ म गहरे धस कर, गहरे अर्थ मे राजनीतिक और प्रतिबद्ध हे। ये सभी कवि अपनी काव्य यात्रा की शुरुआत से ही कम्युनिस्ट न थे, वल्कि अपने काव्य की जो भूमिका इन्होने चुनी, वह इन्हे कम्युनिस्ट बनाने तक ले गयी। इन कविया ने कविता की जरूरत, उसकी ताकत ओर भूमिका को भी एक नयी जमीन दी है। वास्तविक दुनिया की विभीषिकाओ के वरखिलाफ कविता की काल्पनिक दुनिया मे जिदगी के अर्थ को, उम्मीद को फिर से जगाना ओर पाना इन कविया की ख़ास भगिमा है। इनकी जीवनगत परिस्थितियों ने भी कविता की इस ख़ास भूमिका की खोज के लिए उन्हे प्रेरित किया। महमूद दरवीश ने अपनी मृत्यु से एक साल पहले दिये गये एक साक्षात्कार मे डालिया कार्पेल नामक पत्रकार के एक सवाल के जवाब मे कहा था, 'जब उम्मीद न भी हो, हमारा फर्ज बनता है कि हम उसका आविष्कार आर उसकी रचना कर। उम्मीद के विना हम हार जायेगे। उम्मीद से सादगीभरी चीजो स उभरना चाहिए। प्रकृति की महिमा से, जीवन के सादर्य से, उनकी नजाकत से। केवल अपने मस्तिष्क को स्वस्थ रखने की ख़ातिर आप कभी कभी जरूरी चीजो को भूल ही सकते है। इस समय उम्मीद के बारे मे बात करना मुश्किल है। यह ऐसा लगेगा जेसे हम इतिहास और वर्तमान की अनदेखी कर रहे है। जैसे कि हम भविष्य को फिलहाल हो रही घटनाओ से काट कर देख रहे है। लेकिन जीवित रहने के लिए हम वलपूर्वक उम्मीद का आविष्कार करना होगा। (*कवाडखाना ब्लाग से* साभार)

जिस फिलिस्तीन के महमूद दरवीश राष्ट्र-कवि जैसे है, वह आजतक एक राष्ट्र बन नही पाया हे। निहत्थी फिलिस्तीनी जनता, अपनी अधिकाश जमीन से पूरी तरह वेदखल, अपने ही देश मे शरणार्थी, महज जीवित रहने के लिए पूरी तरह से विदेशी सहायता पर निर्भर होने के वावजूद अपने अधिकार, इज्जत और सप्रभुता के लिए एक असभव सा युद्ध लड रही है। पिछले चार दशको मे फिलिस्तीनी सघर्ष आगे कम बढा है, उसे झटके ही ज्यादा लगे हे ओर शेप दुनिया मूक दर्शक वनी रही हे। फिलिस्तीनी मुक्ति सघर्ष 1967 से ही जारी है। इस बीच फिलिस्तीनी अपनी लगभग सारी ही जमीने इस्राइल का हार चुके हे और अब वे अलग थलग, कटे-फटे जमीन क उन टुकडो पर जीवन बसर करते ह जो चारा ओर से इस्राइली कब्जे वाले इलाको से घिरे हुए है। इस पूरे इलाके पर अमरीका के समर्थन ओर शह पर इस्राइल ने जिस प्रकार के हमले, कब्जे ओर जनसहार को अजाम दिया है उसकी तुलना अतीत की सिर्फ एक ही घटना से हो सकती है—वह है कोलवस के अमरीकी तट पर पहुचने के बाद वहा चलाया गया कब्जा ओर हत्या अभियान। ऐसे लहूलुहान मुल्क के कवि के पास उम्मीद की भला क्या वजह हो सकती थी? फिलस्तीनी आवादी न केवल विभाजित हे, वल्कि इन स्थितियो के बीच वहा लोकतत्र और मानवाधिकार भी गिरावट पर है। वाहरी हमला ओर कब्जे तथा घेरेवदी की स्थितिया भीतरी कलह को भी जन्म दती हैं और महमूद दरवीश ने अपने जीते जी गाजा म अल फतह ओर हमास क बीच ख़ूनी सघर्ष को देखा था। वहुत पहले फ्रंज फैनन ने औपनिवेशिक घेरेवदी म जीनेवाला के आपसी कलह के वारे म स्थापना

देते हुए लिखा था, 'अपनी पूरी ताकत के साथ जब देशी लोग एक दूसरे के प्रति घृणा म कूद पडते है तो वे स्वय को समझा रहे होते है कि उपनिवेशवाद अस्तित्व मे नहीं है, कि सब कुछ पहले जेसा ही है, कि इतिहास जारी हे। सामुदायिक सगठनो के स्तर पर हम परिवर्जन (या बचने) के सुपरिचित व्यवहार को देखते है, मानो आपसी खूनी लडाइयो ने उन्ह (वास्तविक बाधाओं) को नजरअदाज करने और उपनिवेशवाद के खिलाफ अपरिहार्य सशस्त्र सघर्ष के चुनाव को टाल देने का मौका दे दिया हो। इस प्रकार सामूहिक आत्मविनाश उन तरीका मे से एक हे जिनसे देशिया की मासपेशियो का तनाव मुक्त होता ह। इस तरह के व्यवहार ख़तरे की स्थिति मे मृत्यु की प्रतिक्रिया हे, एक आत्मघाती व्यवहार ।'

जरा सोचिए, कहा और केसे आये ऐसी स्थितिया म उम्मीद? लेकिन यही एक कवि अपनी कविता की ताकत पर भरोसा करता हे, अपनी लहूलुहान मातृभूमि को कविता मे निर्मित करता हे ओर महज यथार्थ के नहीं, बल्कि कल्पना के तत्वो से उसकी कविता जनता के मुक्ति-सघर्ष मे अपनी भूमिका निभाती हे, एक पराजित जाति क लाग उस कविता म अपनी उम्मीद और सपना को महफूज पाते हे। इन पंक्तियों के लेखक ने ख़ुद दिल्ली म वतनबदरी की हालत मे रह रहे फिलिस्तीनी नोजवानो के कमरा म दरवीश की कविताओ के पोस्टर ओर किताबे देखी हैं। अपने पूर्वोक्त साक्षात्कार मे दरवीश कहते हे, 'मै उपमाओं का कर्मचारी हू, प्रतीका का नहीं। म कविता की ताकत पर भरोसा करता हू, जो मुझे भविष्य को देखने और रोशनी की झलक को पहचानने की वजह देती हे। कविता एक असल हरामजादी हा सकती हे। वह विकृति पेदा करती हे। इस के पास अवास्तविक को वास्तविक मे आर वास्तविक का काल्पनिक मं बदल देने की ताकत होती हे। इसके पास एक ऐसा ससार खडा कर सकने की ताकत होती है जो उस ससार के बरखिलाफ होता है जिसमे हम जीवित रहते हे। मे कविता को एक आध्यात्मिक ओपधि की तरह देखता हू। मं शब्दा से वह रच सकता हू जो मुझे वास्तविकता म नजर नही आता। यह एक विराट भ्रम होती हे लेकिन एक पाजिटिव भ्रम। मेरे पास अपनी या अपने मुल्क की जिदगी के अर्थ खोजने के लिए ओर कोई उपकरण नही। यह मेरी क्षमता के भीतर होता है कि मै शब्दो के माध्यम स उन्हे सुदरता प्रदान कर सकू ओर एक सुदर ससार का चित्र खीचू ओर उनकी परिस्थिति को भी अभिव्यक्त कर सकू। मेने एक बार कहा था कि मेने शब्दो की मदद से अपने देश ओर अपने लिए एक मातृभूमि का निर्माण किया था।'

जिन्हें 'आशा भरे अवसाद' के इस द्वद्वात्मक सोदर्य-विधान का अभ्यास नहीं है, वे या तो आशा देखते हे या अवसाद ओर दोनो को अलगाकर अलग-अलग दिशाओ के निष्कर्ष निकालत ह। ऐसी ही स्थिति मे फ़ैज की जीवनीकार रूस की उर्द विदुषी लुदमिला वासिलेवा खुद को पाती हे। उनके द्वारा रूसी भाषा में लिखी फेज की बेहतरीन जीवनी 2002 मे प्रकाशित हुई। फिर 2007 मे उसका परिवर्धित उर्दू सस्करण 'परवरिश ए-लोहो-कलम फज, हयात और तख़लीकात' नाम से प्रकाशित हुई। अदीब ख़ालिद ने इसकी समीक्षा 'ऐनुअल आफ उर्दू स्टडीज (खड 23, 2008) मे की हे। उनके लिखे के मुताबिक जीवनीकार वासिलेवा यह मानती हे कि 'वे राजनीतिक ओर सामाजिक मूल्य जा फज के लिए प्राथमिक महत्व के थे,समय की कसोटी पर खरे नही उतरे'। जाहिर हे कि वासिलेवा रूस की ह ओर सोवियत विघटन से उन्होंने बहुत से लोगो की तरह यह निष्कर्ष निकाला हा कि समाजवाद के पहल प्रयोग की विफलता समाजवाद मात्र की विफलता हे, ता कोई आश्चर्य की बात नही। मुश्किल तब आती हे जब वे अपनी समझ को फज की शायरी पर थोपती ह। फेंज सोवियत विघटन देखने को जीवित न थ। अदीब ख़ालिद

के साक्ष्य पर हम ज्ञात होता है कि वासिलेवा फैज के आखीरी काव्य सग्रहों— *मेरे दिल, मेरे मुसाफिर* और *गुबारे-अय्याम* में व्यक्त अवसाद की न केवल फैज क सोवियत सघ के प्रति संदेह के बतौर व्याख्या करती है, वल्कि इससे भी आगे बढ़कर वे इसमें उन उद्‌देश्या और आदर्शों से भी फैज के मोहभग को लक्षित करती है, जो उन्हे जीवनभर प्रिय रहे। फैज के इन दोनो सग्रहों में अवसाद वैसा ही है जैसा उनके पिछले सग्रहो मे भी दिखायी पड़ता है, लेकिन एक उम्मीद बराबर साथ लगी रही है। लुदमिला वासिलेवा को आख़िरी सग्रहो मे जो नाउम्मीदी और शुब्हा दिखायी पड़ता है, उसम अफ़गानिस्तान पर सोवियत हमले की छाया देखना तो शायद उतनी दूर की कौड़ी नहीं है, लेकिन उदासी का यह गाढ़ापन क्या सचमुच उन मूल्यो से फैज का मोहभग है जो फैज को जीवनपर्यंत प्रिय रहे? आइए देखें कि इन सग्रहों में व्याप्त उदासी के बीच कौन से मूल्य व्यक्त होते है। *मेरे, दिल, मेरे मुसाफिर* म एक नज्म है 'मजर'। यह दृश्य है आसमान का जिसम समुद्र जैसा शोर है। बादलों के गड़गड़ाते हुए जहाज है, नील में नहाती हुई अबाबील है, तो कहीं चील गोते लगा रही है। हरकतो से भरा आसमान है ओर 'एक बाजी म मसरूफ है हर कोई'। लेकिन इस शोरगुल मे कहीं ताक़त की जोर-आजमाइश नहीं है

कोई ताक़त नहीं इसमे जोर-आजमा
कोई बेड़ा नहीं है किसी मुल्क का
इसकी तह मे कोई आबदोजें नहीं
कोई राकट नहीं कोई तोपें नहीं
या तो सारे अनासिर है या जोर में
अम्न कितना है इस बहरे-पुरशोर म।

हरकतो से भरे, शोरगुल से भरे आसमान का चित्र यहा दुनिया मे दो महाशक्तियों के बीच चल रही हथियारो की होड, युद्ध की विभीषिका के भयानक चित्र के साथ जक्स्टापोज किया गया है। दोनों जगह शोरगुल है, प्रकृति के दृश्य मे पचतत्वों का शोर हे, जबकि महाशक्तियो की हथियारों की स्पर्धा में जहाजी बेडो, पनडुब्बियो, राकेटो ओर तोपो का। प्रकृति के दृश्य मे शोर तो है, लेकिन शांति है और सौदर्य भी, कोई किसी के ख़िलाफ़ युद्धरत नहीं है जबकि मानवीय दृश्य के शोरगुल मे न शांति है न सौदर्य, बल्कि विनाश का ऐलान ही हे सब ओर। जैसे बादलो से गडगडाते आसमान का दृश्य ह, वैसे ही अनेक दृश्य और भी हमे मिलते हे जहा शोर तो होता हे, लेकिन वह ताकतवरा का विनाशकारी शोर नहीं होता, जैसे कि खेल-कूद करते बच्चो का शोर। पहले हमने उद्धृत किया है महमूद दरवीश को जहा वे कहते है कि हमे नाउम्मीद समय म भी प्रकृति की महिमा से और जीवन के सौदर्य से उम्मीद रचनी चाहिए। फैज ने इस कविता मे यही किया है। यह कविता विश्व-शांति के पक्ष मे, मुल्को के बीच आपसी युद्धों और हथियारो की होड के ख़िलाफ़ प्रकृति का एक दृश्य खडा करके पैदा की गयी है। क्या विश्व शांति वह मूल्य नहीं जो फैज को जीवन भर प्यारा रहा और जिसके पक्ष मे वे शुरू से लिखते रहे? इसी सग्रह की एक कविता है *'शायर लोग'* जहा फैज एक बार फिर अपनी शायरी के सबसे बडे मूल्य 'ऐहतिजाज का, हाकिमो के ख़िलाफ़ मजलूमो का पक्ष लेने के एवज मे कुर्बानिया देने की शायराना रस्म की याद दिलाते हैं

'जो भी रस्ता चुना उस पे चलते रहे
माल वाले हिकारत से तकते रहे
तान करते रहे हाथ मलते रहे
हमने उन पर किया हर्फ़े हक सगजन
जिन की हैबत से दुनिया लरजती रही
जिन पे आसू बहाने को कोई न था
अपनी आख उनके गम म बरसती रही
सबसे ओझल हुए हुक्मे हाकिम पे हम
कै़दखाने सहे ताजयाने सहे
लोग सुनते रहे साजे दिल की सदा
अपने नगमे सलाखो से छनते रहे '

क्या ये उस शायर का कलाम है जिसका अपने उद्देश्यो और आदर्शो से मोहभग हो गया है, जैसा लुदमिला चाहती है कि हम समझे? जरा देखिए कि 'गुबारे-अय्याम' मे वे मोलाना हसरत मोहानी को कैसे याद करते ह

मर जायेगे जालिम कि हिमायत न करेगे
अहरार कभी तर्के-रवायत न करेगे

जाहिर है कि आजादी, बराबरी ओर भाईचारे के इस शायर ने आख़िर तक उस रवायत को तर्क नहीं किया जो इन मूल्यो के लिए प्राण न्योछावर कर देनेवालो की रही है। याद आती हे फ़ेज की ही *दस्ते-तहे सग* म सकलित वह महान गजल जिसका एक शेर यो है

करो कज जबीं पे सरे कफ़न, मेरे कातिलो को गुमा न हो
कि गुरूरे-इश्क़ का बाकपन पसे मर्ग हमने भुला दिया

क्या यह पर्याप्त चेतावनी नही है उन तमाम समीक्षको के लिए जो फ़ेज के न रहने के बाद उन्हे उनके आदर्शो और मूल्यो से काट कर पढना चाहते ह, खासकर आख़िरी दिनों की शायरी मे। 'शोपेन का नगमा बजता है' जैसी बेहद उदास नज्म में भी आजादी के लिए प्राण देनेवालो का गर्वमय जिक्र आता है

कुछ आजादी के मतवाले, जा कफ पे लिये मैदा मे गये
हर सू दुश्मन का नर्गा था, कुछ बच निकले, कुछ खेत रहे
आलम में उनका शोहरा है
शोपेन का नगमा बजता है।

इन आख़िर के सग्रहो मे भी महज उदासी या फिर 'आशा भरे अवसाद' की ही शायरी नही है, बल्कि जोशीले आह्वान की भी नज्मे हे। 'आवाजे' शीर्षक नज्म का आखिरी हिस्सा है—'निदा ए-गेब' जो कि क्रमश 'जालिम' और 'मजलूम शीर्षक दो हिस्सो के बाद आता है। पहले दो हिस्सा में क्रमश जालिम की गर्वोक्तिया और मजलूम के दर्द और गुस्से के बयान के बाद इस आख़िरी हिस्से में जालिमा को सीधी सीधी चेतावनी दी गयी हे ओर क्रांतिकारी शक्तिया द्वारा इसाफ का भय दिखाया गया हे

हर इक उलुल-अम्र को सदा दो
कि अपनी फ़र्दे-अमल सभाले
उठेगा जब जम्मे सरफ़रोशा
पडेगे दारो-रसन के लाले
कोई ना होगा कि जो बचा ले
जजा सजा सब यहीं पे होगी
यही अजाबो सवाब होगा
यहीं से उट्ठेगा शोरे महशर
यहीं पे रोजे हिसाब होगा।

उसी *गुबारे-अय्याम* मे 'एक तराना मुजाहिदीने-फ़लिस्तीन के लिए' भी है, लडाको को जोश दिलाता हुआ

हम जीतेगे
हक्का हम इक दिन जीतेगे
बिल आखिर इक दिन जीतेंगे

अगर इससे भी इत्मीनान न हो तो *गुबारे-अय्याम* का वह अमर तराना तो जरूर ही उन लोगो को याद दिलाना होगा जो फ़ैज के आख़िरी सग्रहो मे उनके जीवनपर्यत प्रिय उद्देश्यों ओर आदर्शो से उनके मोहभग का सिद्धात प्रतिपादित कर रहे है। 'तराना-2' की इस उम्मीद को वे केसे परिभाषित करेगे, जहा शायर को यक़ीन है उस दिन का जब 'सब ताज उछाले जायेगे, सब तख़्त गिराये जायेगे'

उट्ठेगा 'अनहलक' का नारा
जो मे भी हू ओर तुम भी हो
और राज करेगी ख़ल्के-खुदा
जो मै भी हू ओर तुम भी हो।

यू लुदमिला अकेली सिद्धातकार नही हे इस तथाकथित 'मोहभग की। समीक्षक अदीब ख़ालिद भी जीवनीकार से सहमत दिखायी देते है ओर उन्हे भी लगता हे कि आख़िरी दिनो के इन सग्रहो की नज़्में जो उन्होने निर्वासन में लिखीं, उनम समाजवादी मूल्यो से मोहभग के साथ साथ उनका अपना वतन उनकी शायरी के केंद्र में आ जाता है। इसीलिए अपना आत्मनिर्वासन ख़त्म कर वे मौत से पहले 1983 में अपने वतन वापस लौट आये। इशारा यह है कि तीसरी दुनिया की एकता या अतर्राष्ट्रीयतावाद, दुनिया के मजदूरा और मजलूमो की एकता के आदर्शो की जगह अब वे अपने वतन को ही केंद्रित करना चाहते है शायरी में। अगर ऐसा है तो फिर उसी *मेरे दिल, मेरे मुसाफिर* मे फ़िलिस्तीन के लिए नज़्मे क्या है? फ़िलिस्तीन के जो योद्धा परदेस मे शहीद हुए उनके लिए लिखते हुए फ़ैज 'उत्तम पुरुष मे लिखते हैं मानो कवि का वतन वही है जो उन शहीदा का और शायर उनका अपना हमवतन है

मै जहा पर भी गया अर्ज़े-वतन
तेरी तजलीन के दाग़ों की जलन दिल में लिये
तेरी हुर्मत के चरागों की लगन दिल में लिये
तेरी उल्फ़त तेरी यादों की कसक साथ गयी

इन पंक्तियो का दर्द जितना फिलिस्तीन के परदेस मे मारे गये योद्धाओ का है, उतना ही वतनबदर शायर फैज का भी, दर्द के रिश्ते मे वतनियत के आधार पर कोई तकसीम नहीं हे। बहरहाल, जहा जीवनीकार न एक ही झटके म फंज को समाजवाद, बरावरी, न्याय, स्वतत्रता, विश्व-बधुत्व जेसे उन मूल्यो से अलगाया जो फेज को जान से ज्यादा प्यारे थे, वहीं जीवनी के समीक्षक ने उन्हे पूरी दुनिया म सरमायादारी ओर साम्राज्यवाद के खिलाफ मेहनतकशो की एकता के शायर के ओहदे से उतार कर 'राष्ट्रवाद' की तग सरहदो में उनकी शायरी को केद करने की दिशा ली। वतन कव फेज की शायरी म नहीं रहा? क्या उनका ऐसा भी कोई सग्रह है जिसमे अपने वतन के मेहनतकशो ओर आम लोगा की खुदमुख्तारी, बराबरी और आजादी की चाहत के तराने न हो? हाकिमो के ख़िलाफ प्रतिरोध के स्वर मे एक प्रतिरोधी राष्ट्रीय भावना न हो? अवाम की वदहाली के शोकगीत न हो? फेज अपने देश के तानाशाहो से लडते रहे और कभी भी उनके 'जगजू' राष्ट्रवाद क साथ खडे नही हुए। व शुरू स उस वतन के दद के गीत गात रहे जिसे जालिम रोद रहे थे। उनका राष्ट्रवाद अगर कुछ था, तो एजाज अहमद के शब्दो मे 'गमजदा' राष्ट्रवाद ही था, शुरू से आखिर तक। देश की सत्ता और सपत्ति पर मेहनतकशो का कब्जा हो, भविष्य के इसी राष्ट्र के वे शायर थे, जिससे उन्हे कोई देशनिकाला नही दे सकता था। ऐसा ही मेहनतकशो का राष्ट्र दुनिया के मेहनतकशा से एका कायम कर सकता है और विश्वमेत्री भी। इसीलिए फेज प्रचलित अर्थो मे जिसे राष्ट्रवाद कहा जाता है, वेसे राष्ट्रवादी न थे। वतन तो हरदम उनकी शायरी के केद्र मे था - वह वतन जो पहले एक था और उनके जीवनकाल मे ही तीन हिस्सो मे बटा। जब उन्होने 'सुवहे-आजादी' लिखी थी, तब भी न उसमे अवसाद कम था और न ही उम्मीद का दामन छूटा था। उस नज्म के आख़िर मे वह कौन सी मंजिल है जिस तक पहुचने की उम्मीद में व कह रहे है कि, 'चले चलो कि वो मंजिल अभी नही आयी?' बाग्लादेश के अलग हो जाने के बाद 'ढाका से वापसी' शीर्षक नज्म मे भी इस बात का ही दर्द उभरा हे कि केसे जो कोमे एक साथ रही सदियो तक, वे अचानक ऐसी अजनबी हो गयीं एक दूसरे के लिए कि सारी मेहमाननवाजी के बाद भी, अजनवियत है कि मिटती ही नही। दरअसल सरमायादार और जमीदारी की ताकत जब राष्ट्र की कमान सभाल लेती हे, तो वे बटवारे को ही लगातार बढाती जाती है। एक कौम को दूसरे के खिलाफ खडा करके, भाषा, धर्म, जाति के झगडों को उकसाकर वे मेहनतकशो की एकता को कमजोर करती है और खुद को सत्ता मे महफूज रखती है। अक्सर ऐसे निजाम ये सब कुछ वतन, देश या राष्ट्र के नाम पर करते हे। वे खुद को देश घोषित करते हैं और अपने जुल्मो के ख़िलाफ लडनेवालो को देश-विरोधी। हर थोडे थोडे वक्त वाद उन्हे 'देश पर ख़तरे' के वादल मडराते दिखते हे ओर फिर ये देश की रक्षा मे किसी न किसी क्षेत्रीय, धार्मिक, भाषाई या उप राष्ट्रीय समुदाय पर लाव-लश्कर लेकर टूट पडते है। धीरे धीरे दिलो के घाव वतन की तक़सीम मे बदल जाते हे। फेज ने ये सब अपने देश और पूरे उपमहाद्वीप मे देखा था ओर इसके दर्द को अपने स्नायुओ पर झेला था। किसी अदीब ने ही मजाक मे कहा था कि पाकिस्तान की फोजे हर कुछ साल वाद अपने ही देश को फतह कर लेती ह। 'देश पर ख़तरे से निपटने क लिए फोजी तानाशाहिया स्थापित होती हे जिन्हें वरक़रार रखने के लिए अक्सर 'धर्म पर ख़तरे' का आविष्कार किया जाता हे। फ़ेज ने सरमायादारो, फ़ोजी तानाशाहो ओर जागीरदारो की कथित वतनियत के शिकार उस लहूलुहान वतन को पुकारा है अपनी शायरी में जिसके आसू पोछनेवाला कोई न था। वतन ऐसे ही आता हे फ़ैज के यहा--दुख की गाथा के रूप मे, इसाफ़ की चीख़ के वतौर, प्यार के पैगाम के वतोर। 'हम लाग' (नक्शे फरियादी), 'निसार म

तेरी गलियों पे (दस्ते सबा) 'सुब्हे आज़ादी' ग़म (दस्ते तहे संग) 'दरीचा', 'ऐ वतन ऐ वतन', 'दुआ' (सरे-वादिए सीना) 'हम तो मजबूर वफ़ा हैं' (मेरे दिल मेरे मुसाफ़िर) जैसी नज़्मों में उनका ही वतन उभरा है।

यह ताक़ीद अवाम से अलग कभी भी था: तसव्वुर उनके पास न था। 'तराना' (दस्ते-सबा) 'तराना 1' (सरे-वादिए सीना) और 'तराना 2' (गुबारे-अय्याम) मेहनतकशों और अवाम की इन्कलाबी कार्रवाइयों के गीत हैं। अपने वतन के मेहनतकशों का दर्द, आम लोगों की तकलीफ़ें और आकांक्षाओं ने ही उन्हें दुनिया भर के संघर्षरत अवाम के साथ जोड़ दिया था। पर असल उनके आखिरी दो दशकों को केन्द्र करके लुमुम्बा, वियतनाम और अफ़्रीका एशिया तक लिखी गयी नज़्मों को इन्कलाब की सिर्फ़ शायरी के महान रचनाओं के रूप में फ़ैज़ को दरकिनार कर किसी देश और भाषा की सीमाओं में सीमित एक सौंदर्यवादी शायर के रूप में देखना उन्हें नज़रअंदाज़ करने के आपराधिक प्रयासों के बतौर ही समझा जाना चाहिए। हमारे यहां गोपीचंद नारंग ने अभ्युदय, मार्क्स पार्टी और गया नाम के कुछ पाठीय उपकरणों जिनको जोड़-जोड़ कर फ़ैज़ के पाठ की एक ऐसी वैकल्पिक पद्धति का प्रस्ताव किया है जिसमें पंक्तियों/शब्दों के बीच की जगह/अंतराल और खामोशियों के माध्यम से उनकी शायरी के गहरे, अंतर्निहित सौंदर्यात्मक अर्थों की अनकही परतों को खंगालने की सलाह दी गयी है, जो कि उनके अनुसार सामने की वैचारिक सतह के नीचे दब गयी है। नारंग का अभिप्राय यह है कि इस पाठ पद्धति के जरिये अर्थ के दबे हुए स्तर शायर के क्रांतिकारी उद्देश्यों की बाहरी सतह को तोड़कर उभर आते हैं। ऐसा नहीं कि फ़ैज की शायरी का ही सौंदर्यवादी पाठ प्रस्तावित किया जा रहा है। तमाम इन्कलाबी अदीबों के साथ यह नियमित तौर पर घटनेवाली चीज है। अदीब ही क्या, क्रांतिकारी योद्धाओं और यहां तक कि आंदोलनों के साथ भी ऐसा होता है। सबसे बड़ा प्रमाण तो चे ग्वेवारा हैं, जिनकी हत्या के बाद उन्हें उत्तरी अमरीका में बाजार की ताकतों ने बेपरवाह अमरीकी किशोरों और युवाओं के फैशन आइकन में बदल दिया। यह प्रतीकों की राजनीति है जो संकेत-तंत्रों के भीतर वर्गीय शक्ति संतुलन का विस्तार है। हम देखते हैं कि कैसे जन-आंदोलनों को कुचलने के बाद जनता के बीच उनकी पवित्र स्मृति की ताकत को दुहने के लिए शासक जमातें उनके प्रतीकों, नारों वगैरह को उनकी अंतर्वस्तु से विरहित कर आत्मसात कर लिया करती हैं। जब व्यक्ति या आंदोलन सत्ताधारियों के लिए खतरे का सबब नहीं रह जाते, तो प्रतीकों में ढालकर सत्ता प्रतिष्ठान में उनकी वापसी होती है। इस तरह सत्ता इस बात की भी गारंटी करने की कोशिश करती है कि उनकी स्मृति का ऐसा विरूपण हो जाये कि वह भविष्य के संघर्षों की प्रेरणा न बन सके यह अलग बात है कि ऐसे हर प्रयास कामयाब ही नहीं होते। हमारे देश के साम्राज्यपरस्त हुक्मरान किसानों की आत्महत्याओं के बीच चैन की बंसी बजाते हुए उस 1857 की डेढ़ सौवीं वर्षगांठ भी मना डालते हैं जिसमें लाखों किसान अंग्रेजों से लड़कर शहीद हुए थे। अभी पिछले साल सन 2009 में तुर्की सरकार ने नाजिम हिकमत की मौत के 46 साल बाद उनकी नागरिकता लौटा दी। अपने जीवन काल में हिकमत जिस देश में कम्युनिस्ट होने के चलते जेल में रखे गये, अपराधी बताये गये, यातनाएं झेलते रहे, आज वहीं जनता में उनकी अपार लोकप्रियता और इज्जत के जज्बे को अपने पक्ष में मोड़ने की खातिर हुक्मरान उनकी नागरिकता वापस कर रहे हैं।

यह सच है कि *मेरे दिल, मेरे मुसाफ़िर* में उदासी का रंग गाढ़ा है, लेकिन उसका सबब भी उसी में बयान होता है। पाकिस्तान में फ़ौजी हुकूमत के चलते वतनबदर होना, फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष

की तमाम शहादतो के बावजूद जीत न मिलना, मध्यपूर्व का जलते रहना, दुनिया मे युद्धों का सिलसिला ख़त्म न होना, अणुबमो से लैस महाशक्तियो की अतहीन स्पर्धा और जिस उपमहाद्वीप के वे शायर थे वहा परिवर्तन की रफ्तार का बेहद कम होना और बार बार जुल्म और तानाशही के निजाम की ओर प्रत्यावर्तन, ऐसे तमाम कारण थे। *मेरे दिल, मेरे मुसाफ़िर* की पहली ही नज्म 'दिले-मन मुसाफिरे-मन' बार बार वतनबदर होने के गहरे अवसाद मे लिखी गयी है

मेरे दिल, मेरे मुसाफ़िर
हुआ फिर से हुक्म सादिर
कि वतन बदर हों हम तुम
दें गली गली सदाए
करे रुख नगर नगर का
कि सुराग कोई पाये
किसी यार-ए-नामा बर का
हर एक अजनबी से पूछे
जो पता था अपने घर का

यह पूरी नज्म गालिब के रग मे ही नही, बल्कि उनके अदाजे-बया, उनकी दर-बदर भटकती आत्मा के गहरे अवसाद की शायरी से एक उपमहाद्वीपीय, शायराना रवायत का सबध बनाकर लिखी गयी है

तुम्हें क्या कहू कि क्या है
शब ए गम बुरी बला है
हमे ये भी था गनीमत
जो कोई शुमार होता
हमे क्या बुरा था मरना
अगर एक बार होता

दरअसल वतन से अलग होना फ़ेज के लिए अपनी हस्ती से, अपने वजूद से अलग होना है, वर्ना गालिब क्यों याद आते? वे तो वतन से बदर न हुए थे। गालिब अलग हुए थे उस दुनिया से जो उनके वजूद को अर्थ देती थी, जिसमे उनकी मुहब्बत थी, जिसमे वह सब कुछ था जो वे खुद थे। नामावर की तलाश गालिब को रहा करती थी ताकि वे उससे सपर्क कर सकें जो अपना था, पर छूट चुका है। वतन का छूटना, कू ए यार का छूटना, अपनी हस्ती को अर्थ देनेवाली तमाम चीजो, परिस्थितियो और इनसानो का छूटना एक ही तरह की दर्द की तीव्रता पैदा करता है जिसके चलते फ़ैज अपने पुरखे गालिब की आवाज मे अपनी आवाज मिला देते है। एलियट मानते थे कि किसी शायर के कलाम मे उसके पुरखो की आवाज भी मिली होती है, यह अलग बात है कि ऐसा जदीद शायरी म कम, तरक्कीपसदा मे ज्यादा देखने में आता है। 'आज शब कोई नहीं' या 'मेरे मिलने वाले' जैसी नज्मों की उदासी को लक्ष्य करके जो लोग फ़ैज के मोहभग का मिथक रचते है, उन्हें नहीं मालूम कि वे क्या कह रहे हे। वे फ़ैज को समझ नहीं पाते क्योंकि वे उस ज्ञान-मीमासा से ही इत्तेफाक नहीं रखते जो बगैर शामिल हुए जानने का दावा नहीं करती। फ़ैज 'इनसाइडर' थे, वे आदोलन के शायर थे बाहर से बैठ कर उसपर निर्णय सुनाने वाला में नहीं थे। 'गुबारे-अय्याम' की पहली नज्म 'तुम ही कहो क्या करना है' पढकर बाहर बैठे लोगो को भरम

हो सकता है कि शायर को अपने उद्देश्यों और आदर्शों को लेकर शुब्हा हो गया है। लेकिन दरअसल यह शायर का वहम नहीं, बल्कि उन लोगों का है जिन्होंने अगर जालिम का साथ न भी दिया हो तो भी हरदम किनारे पर बैठकर आंदोलनों की उठती गिरती मौजों पर फैसले सुनाते आये हैं। 'तुम ही कहो क्या करना है' शीर्षक नज्म में कवि मंजिल पर पहुंच पाने की विफलता की बात करता है, उसके कारण भी बताता है, लेकिन कहीं भी यह अफसोस जाहिर नहीं करता कि मंजिल चुनी ही गलत थी या कोई और रास्ते भी मौजूद थे जिन पर न चलने की गलती की गयी। शायर का कहना है कि जिस मर्ज का इलाज किया जाना था, वह इतना पुराना था कि वैद्यों के सारे आजमाये हुए नुस्खे बेकार गये। इस नज्म का अर्थ उन लोगों के लिए बिलकुल अलग है जो किसी आंदोलन का हिस्सा हैं, 'इनसाइडर' हैं। नज्म की शुरुआती पंक्तियां देखें

जब दुख की नदिया में हमने
जीवन की नाव डाली है
था कितना कस-बल बाहों में
लोहू में कितनी लाली थी
यूं लगता था दो हाथ लगे
और नाव पूरम्पार लगी
ऐसा न हुआ, हर धारे में
कुछ अनदेखी मझधारें थीं
कुछ माझी थे अनजान बहुत
कुछ बेपरखी पतवारें थीं
अब जो भी चाहो छान करो
अब जितने चाहो दोष धरो
नदिया तो वही है, नाव वही
अब तुम ही कहो क्या करना है
अब कैसे पार उतरना है।

पहली छह पंक्तियों में विफलता का, संघर्ष शुरू होने के समय के उत्साह के आगे चलकर छीजने का बयान है। लेकिन इसके आगे विफलता के कारणों का बयान है जो बाहरी भी है और भीतरी भी। जो लोग जन-आंदोलनों के हिस्सेदार हैं, वे ही समझ सकते हैं कि कैसे 'हर धारे में कुछ अनदेखी मझधारें हुआ करती हैं' बिलकुल नयी परिस्थितियां जिनका पहले से कोई अनुमान संभव ही नहीं होता। अगर सब पहले से मालूम हो तो इतिहास और गणित में फर्क ही क्यों हो। ये तो हुईं वे भौतिक परिस्थितियां जो किसी भी आंदोलन या संघर्ष के दौरान बड़ी रुकावट बन कर खड़ी हो जाती हैं, जिनका पहले से अनुमान लगाना मुश्किल हुआ करता है। (क्या रूसी क्रांति के बाद या आज भी 21वीं सदी में लेटिन अमरीकी देशों और पड़ोसी नेपाल के क्रांतिकारियों का अनुभव 'हर धारे में, अनदेखी मझधारों' की तस्दीक नहीं करता?) दूसरी ओर आत्मगत परिस्थितियां हैं—संघर्ष चला रहे लोगों की कमजोरियां, अदूरदर्शिता (कुछ माझी थे अनजान बहुत) और काम-काज के तरीकों, लड़ाई के अस्त्रों की गड़बड़ियां (कुछ बेपरखी पतवारें थीं)। इन्हें रेखांकित करने के बाद, शायर जोर देकर कहता है कि चाहे जितनी भी छानबीन कर

लो, चाहे जिसको दोष दे डालो, ओर कोई नयी वात इसमे से नही निकलेगी। जोर देने के लिए जो शब्द शायर इस्तमाल करता हे, वह है 'भी' (अव जो *भी* चाहे छान करो)। आगे जव वह कहता है कि ' नदिया तो वही हे, नाव वही' तो अपनी तरफ से वातो को बिलकुल साफ कर देता हे। नदिया (लोगा के दुख, नाइसाफी, गेर-बराबरी, अशांति, भूख, गरीबी आदि) भी वही है ओर नाव (यानी खुद का जीवन, उसके एहसास, तजर्बे, ज्ञान ओर जिसकी बदौलत सघर्प के वेचारिक तत्र, सगठन आदि का चुनाव किया था) वही है। इनम कोई शुव्हा नहीं। 'वही' शब्द भी जोर देने के अर्थ मे ही लाया गया ह। आगे जव वे कहते है कि अपनी छाती मे देखे गये देश के घावो के इलाज के लिए जिन वैद्यो और नुस्खो पर यकीन था, वे रोग की तह पाने मे कामयाब नही हुए। वहा भी शायर न वैद्यो को दाष दे रहा हे, न नुस्खा को, बल्कि रोग ही इतने पुराने थे कि लाइलाज हो गये

ऐसा न हुआ कि रोग अपने
तो सदियो ढेर पुराने थे
वैद इनकी तह को पा न सके
और टोटके सब नाकाम गये।

इस नज्म का पाठ करते हुए एक सवाल उठता है कि ये सवोधित किसको है, खुद को या उन लोगो को भी जिन्होने दुख की नदिया मे जीवन की नाव डाली ही नही आर अव निर्लिप्त भाव से असफलता की छानवीन मे लगे हे ओर दोप धरने के लिए 'स्केपगोट' खोज रहे हें। या तो शायरी के एकदम निर्दिष्ट भौतिक सदर्भ खोजना मुश्किल ओर कभी कभी अतिशयता के खतरे से भरा होता है, लेकिन यह सोचना वहुत गलत न होगा कि पाकिस्तान मे वार वार लोकतत्र की ताकतो की विफलता ओर सेनिक धार्मिक तानाशाहियो की ओर उसका प्रत्यावर्तन भी इस नज्म के असफलता वोध के पीछे सक्रिय हे, खासतोर पर तव जवकि शायर इसी कारण फिर से वतनबदर होकर रहने के लिए अभिशप्त हे। 'सुवहे-आजादी' जैसी नज्म 1947 मे लिखनेवाले शायर का यह वोध काफी पहले का है कि इस उप महाद्वीप के रोग ऐतिहासिक है, जहा कोई नयी चीज जन्म लेने से पहले ही दम तोड दिया करती हे, इतिहास अपनी प्रसव पीडा के बाद किसी नये को जन्म देता भी हे, तो उसकी उम्र कम होती हे, चीजे फिर अपने ढर्रे पर वापस आ जाया करती ह। इसका सवसे तल्ख एहसास शायर को तव हुआ था जव इतनी कुर्वानिया के वाद आयी आजादी 'दाग दाग उजाले' और 'रात से डसी हुई सुवह' की तरह निकली। *दस्ते-तहे सग* मे सकलित एक नज्म हे 'शाम' जो एक ठिठकी हुई शाम का मजर खीचती है। लेकिन इसके विव एक पुरातन सभ्यता के वक्त मे कैद होने का, एक सनातन अवरुद्धता का रूपक हाने का एहसास कराते ह

इस तरह है कि हर इक पेड कोई मंदिर है
कोई उजडा हुआ, बेनूर पुराना मंदिर
ढूढता है जो ख़रावी के वहाने कव से
चाक हर बाम, हर इक दर का दमे-आख़िर हे
आसमा कोई पुरोहित हे जो हर बाम तले
जिस्म पर राख मले माथे पे सिदूर मले

हिंदुस्तान का गीतात्मक इतिहास

आमिर आर मुफ्ती

म्यूज (बाउडरी 2 वॉल्यूम 31, नबर 2, समर 2004) म छपे 30 पृष्ठो के इस आलेख को हम यहा अविकल रूप में प्रस्तुत नही कर पा रहे है। लेख से कुछ हिस्सा का चुन कर उनका अनुवाद इस खयाल से दिया जा रहा है कि इस तरह की विश्लेषण पद्धति का एक जायका हमारे पाठको को मिल पाये।—स

> अलग किये हुए अर्द्धांशा को जोड कर सपूर्ण को एक साथ नही रखा जा सकता, लेकिन दोना म चाहे जितने भी दूरस्थ रूप में सही, उस सपूर्ण के बदलाव प्रकट होते है जो अतर्विरोधो म ही गतिशील होता है।
>
> —थ्योडोर अडोर्नो[1]

अपने सर्वोत्तम रूप मे, फेज अहमद फ़ैज (1911-1984) की प्रगीतात्मक कविता पाठक को एक विभ्रमकारी भावातिरेक तक पहुचा सकती है, आत्म के विचाराधीन बनाये जाने पर हासिल उल्लास की अनुभूति, जो पूरी तरह से सक्यूलर पाठक को भी ऐसे भावात्मक कल्पनालोक का आस्वाद देती ह जिस धार्मिक एहसास से एकदम अलहदा दिखा पाना मुश्किल है। उनकी कविता जिसमे सस्कृति ओर भाषा क लौकिकीकरण (सेक्यूलराइजेशन) के प्रति दिलचस्पी साफ़ दिखलायी पडती हे, क स्पष्टत मार्क्सवादी ओर मुल्लाविरोधी जुडावो के मद्देनजर यह अनुभूतिया की एक विरोधाभासी सरचना है। फ़ज उत्तरओपनिवेशिक दोर क सबसे महत्वपूर्ण उर्दू शायर के रूप में व्यापक तोर पर मान्य ह। उनकी कविता ब्रिटिश शासन से आजादी मिलने क समय भारत क बटवारे क नतीज के तोर पर आने वाले उर्दू लेखन की कुछ कद्रीय दुविधाआ को उदाहृत करती है। वह साहित्यिक उत्पादन का दोना उत्तरओपनिवेशिक राज्या की सास्कृतिक परियोजनाओ से वियुक्त करने के एक गभीर प्रयास को सामन लाती हे, वियुक्त करन का प्रयास ऐसे दृश्यमान आशया का रचन की गरज से, जो अभी भी राष्ट्र राज्य व्यवस्था क सास्कृतिक तर्क के भीतर पूरी तरह से अतर्भुक्त नहीं हो पाये ह। पाकिस्तान के वजूद के शुरुआती अनेक दशको तक यहा शायरी के बेताज बादशाह वाली उनकी हेसियत के बावजूद, उनक कृतित्व का विराट् पाठक वर्ग उस पूरे इलाक क आर-पार मिलता ह जो एक समय का उत्तर भारत था—उसके पाठ्य-ग्राहक-ससार का नक्शा उन राष्ट्रीय सीमाआ को मिटाता प्रतीत होता हे जो बटवार की विरासत है। फ़ेज की बहुतेरी आलोचनाओ से अलग, मे यहा यह स्थापित करना चाहता हू कि फ़ज की शायरी की सर्वप्रमुख थीम, एक लेखन-समार क तोर पर इसे परिभाषित करने वाली थीम बटवारे का आशय

विभाजन पूर्व की कविताओ म पहले से मौजूद ह, कम-से-कम एक सभावना क रूप मे, जिसकी ओर ये कविताए इशारा करती है या जिन्ह पूर्वाशित करती ह। फ़ैज की प्रगीतात्मक कविताओ म प्रकट होने वाला सामाजिक सत्य यह है कि (आधुनिक) आत्म का उदय उसका आत्म-विभाजन भी है। आत्म का सत्य है, उसकी अतर्विरोधी और तनावपूर्ण वास्तविकता। फ़ज उन पदो मे विभाजनोत्तर दक्षिण एशिया म अस्मिता के बारे मे विचार करना सभव बनाते हैं जा उत्तरओपनिवेशिक राज्यो के साझा शब्दभडार क भीतर सामान्यीकृत हो चुके पदो से भिन्न ह। (उनके यहां) विभाजन म निकले कथित स्वायत्त राष्ट्रीय आत्मा की असलीयत को उजागर कर दिखाया गया ह कि वे क्या ह—भारतीय आधुनिकता की द्वद्वात्मकता के भीतर के क्षण। और विभाजन अपनी सामान्य अर्थवत्ता से बहुत भिन्न अर्थ ग्रहण कर लेता है। अब वह सिर्फ 1947 (या यहा तक कि 1946-48) की घटनाओ का ही हवाला नही देता बल्कि भारतीय आधुनिक आत्म क इतिहास के साथ-साथ विस्तृत, सामाजिक ('साम्प्रदायिक') पहचानो के इतिहास का हवाला देता ह। हिदी-उर्दू इलाकों म फ़ैज की कविता की जबदस्त लोकप्रियता एक एसे आत्म के अनुभव को, जो समावेशी अर्थ म—साम्प्रदायिक और राष्ट्र-राज्य के विभाजनो की सीमाओ के आरपार—भारतीय है, उपलब्ध कराने म इसकी सफलता का अस्पष्ट कितु नतीजाखेज पैमाना है। लेकिन यह आत्मत्व का ऐसा मचन है जा बटवारे को महज दूसरे दर्जे की परिघटना मानने से इकार करता हुआ उसे सजीदगी से लेता है, जैसा कि विविधता-म एकता के भारतीय फॉर्मूले म है। असल मे, यह सुझाता ह कि बटवारा, अपने प्रमपरा से अनिश्चित काल के लिए अलगाव, वह खास आधार सघटित करता ह जिस पर मिलन के बारे में विचार किया जा सकता है। फ़ज की आलोचना मे उनकी शायरी की सारभूत विशेषता क रूप म देश या राष्ट्र के प्रति प्यार की चर्चा करना आम है।[8] फ़ैज खुद कई मौको पर इसे स्पष्ट कहते ह जैसे अपनी शुरुआती नज्म 'दो इश्क' मे 'चाहा है उसी रग म लैला-ए वतन का / तड़पा ह उसी तौर से दिल उसकी लगन म'। लेकिन यह सयोग नही कि न तो आलोचना और न ही खुद य नज्म इस बारे म साफ है कि वतन शब्द यहा क्या सकतित कर रहा ह। यहा तक कहा जा सकता है कि फ़ैज के प्रसग म वतन और कौम की बात करना उन चीजो के बारे म बहुत मानीखेज तरीके से चुप्पी साधे रखना ह जिनकी ओर वे इशारा कर रहे है। वे हे क्या फ़ैज़ की शायरी की हुब्ब-उल-वतनी (देशभक्ति) दक्षिण एशिया क किसी भी एक उत्तरओपनिवेशिक राज्य मे खुद को जोड़ती है? क्या यह इन राज्यो के विलयन की उम्मीद को सामने लाती है? क्या इसम कोई सभ्यतामूलक सदर्भ निहित है? अगर है, तो कौन सी है वह सभ्यता—हिदुस्तानी, हिद फारसी, या इस्लामी? दूसरे शब्दो मे, शायर का घर ठीक ठीक कहा पर ह?

फ़ैज की शायरी का प्रतीकात्मक शब्दभडार क्लासिकी उर्दू गजल को हासिल पारपरिक फारसी-अरबी रिवा क खजाने से काफी कुछ लेता है—बरबत ओ नयी, लोह ओ कलम, तौक ओ सलासिल, काकुल ओ लब, दश्त ओ गुलजार—और उस 'सुबोध' भाषा को परे रखता है जो उनके कुछ समकालीनो म काफी चलन मे आ चुकी थी और शायरा की उस पीढी मे तो और ज्यादा जो उनक बाद आयी है। फ़ज की शायरी उस तटस्थ 'हिदुस्तानी' जबान के आदर्श की, जिसमे से अरबी-फारसी ओर सस्कृत क प्रभावो का निकाल बाहर किया गया हो, एक जीती-जागती भर्त्सना ह। ध्यान रह कि दक्षिण एशिया म धर्मनिरपेक्षतावादी, 'साम्प्रदायिकताविरोधी' कल्पना बार-बार इस आदर्श की ओर खिचती रही है। फ़ैज क अनुवादक ओर ताउम्र के साथी विक्टर किएर्नन न लिखा है कि वे 'सम्मिलित 'हिदुस्तानी भाषा, एक

हाय उस जिस्म के कमबख़्त दिलआवेज ख़ुतूत
आप ही कहिए कहीं ऐसे भी अफ्सू होंगे
अपना मौज़ूए'-सुखन इनके सिवा आर नहीं
तब्ए -शायर का वतन इनके सिवा आर नहीं।[8]

ये शुरुआती नज्मे प्राय एक युवा शायर के राजनीतिक तौर पर जागरूक होने की निशानी के तौर पर पढी गयी है, एक ऐसा राजनैतिकीकरण जो साहित्यिक भाषा की ईमानदारी के प्रति सरोकार को तिलांजलि देने की ओर नहीं ले जाता। खुद फ़ैज ने इस तरह के पठन के प्रामाणिक बनने मे योगदान दिया है।[9] मैं हालांकि इसे एक गलत व्याख्या नहीं मानता, पर इस नज्म के प्रकट द्वंद्व—आतरिकता और भाव बनाम बाहरी ससार, प्रगीत कविता बनाम समाज—को कुछ अलग तरीके से पढता हू, एक ऐसे द्वैध के रूप मे जो एक ओर प्रगीतात्मक आत्म और दूसरी ओर राष्ट्र व समुदाय के आशय के ऊपर अतर्विरोध एव सघर्ष की 'व्यापकतर' दुनिया के बीच के रिश्ते मे उर्दू शायरी की दिलचस्पी को प्रदर्शित करता है। मै कहना चाहूगा कि ये नज्मे, *एक साहित्यिक-ऐतिहासिक खाते मे*, भारतीय आधुनिकता मे एक 'मुस्लिम' आत्मत्व की दुविधाओ और जटिलताओ को पेश करती है। 'पहली सी महब्बत'—ये वाक्याश क्लासिकी उर्दू प्रगीतो वाले प्यार की समस्यात्मकता की ओर इशारा करता है, और नज्म क्लासिकी रवायत के साथ (औपनिवेशिक दौर के आखिरी दिनो के) भारत के राष्ट्रीय सास्कृतिक स्पेस मे स्थित आधुनिक शायर के रिश्ते पर टिप्पणी करती है। पाकिस्तान मे मुल्क की जिदगी के शुरुआती चालीस सालो के दौरान फ़ैज 'राष्ट्रकवि' के रूप मे जाने जाते रहे है। मेरा मत है कि इस बात का वह अर्थ है नही जो सामान्यत निकाला जाता है, कि अशत उनके कार्य की सिद्धि, उसकी भव्यता और महत्वाकाक्षा यही है कि वह इस बारे में गभीर संदेह व्यक्त करता है कि आधुनिक दक्षिण एशिया मे राष्ट्र-राज्य वाला फ़ॉर्म सस्कृति और अस्मिता की जटिलताओ की कोई व्याख्या कर सकता है।

मै अब फ़ैज की प्रेमकविता मे वियोग और सयोग की थीम पर आता हू। उनकी सबसे प्रसिद्ध प्रगीत कविता 'याद' पर विचार करते हुए इस थीम को समझे। यह उनके सकलन *दस्त ए सबा* मे है और गायिका इकबाल बानो के द्वारा 'दश्त-ए-तन्हाई' के रूप मे इसने जबर्दस्त लोकप्रियता पायी है

1 दश्ते-तनहाई मे, ऐ जाने-जहा, लरजा है
2 तेरी आवाज के साये, तेरे होंठो के सराब
3 दश्ते-तनहाई मे, दूरी के ख़सो-ख़ाक तले
4 खिल रहे हैं तेरे पहलू के समन और गुलाब
5 उठ रही है कहीं कुरबत से तेरी सास की आच
6 अपनी खुशबू मे सुलगती हुई मद्धम मद्धम
7 दूर—उफ़क पार, चमकती हुई, कतरा-कतरा
8 गिर रही है तेरी दिलदार नजर की शबनम
9 इस कदर प्यार से ए जाने-जहा, रक्खा है

दिल के रुख़सार पे इस वक्त तेरी याद ने हाय
यू गुमा होता है, गरच है अभी सुब्हे फ़िराक,
ढल गया हिज्र का दिन, आ भी गयी वस्ल की रात[10]

पहले अनुच्छेद मे उजाड़ या रेगिस्तान के विस्तार के रूप म तन्हाई का विम्व हावी है जो कि पहली आर तीसरी पंक्तिया की शुरुआत मे 'दश्त ए-तन्हाई' के दुहराव मे व्यक्त हुआ है। यह रूपक दूसरे अनुच्छेद को भी सचालित करता है, क्योंकि पाचवी पंक्ति—'उठ रही है कहीं क़ुरवत से तेरी सास की आच'—का स्थानसूचक भाषा सातवीं पंक्ति—'दूर उफ़क पार'—म एक भूगोलीय खाता (रेजिस्टर) हासिल कर लेती है। प्रेमपात्र के ट्रीटमेंट म, कम-से-कम पहले अनुच्छेद म, इस रेगिस्तान वाले रूपक के प्रभुत्व का निर्वाह हुआ है। यहा एकातवासी विषयी का सामना अपनी कामना की वस्तु की 'मृगमरीचिका' नुमा उपस्थिति से होता है—'तेरी आवाज के साये, तेरे होठो के सराव'। विषयी के लिए साये और सराव, दोना माशूक के सकेत है। लेकिन जहा सराव/मरीचिका एक अनुपस्थित, भ्रमजनित वस्तु की ओर इशारा करती है, वही किसी वस्तु का साया अपने-आप मे अभोतिक होते हुए भी वस्तु की भौतिक उपस्थिति का सकेत है। लेकिन, एक दूसरे के साथ रखे जाकर 'साये' ओर 'सराव' एक दूसरे मे नये अर्थ भर देते ह। मरीचिका एक भ्रम नही रहती, उससे आगे वढ कर कुछ ओर हो जाती है, किसी तीव्र अनुभूत इच्छा का महज वहिर्मुखी प्रक्षेपण, विल्कुल सूखी हुई जमीन पर पानी के एक नजारे की तरह, आर साया भोतिक उपस्थिति का सकेत नही रह जाता, उससे कुछ कमतर हो जाता है। भूगोलीय रूपक यहा एक दृश्य रूपक के साथ घुलमिल गया है, ओर मिल कर वे प्रेमपात्र के उपस्थित होते जाने के तरीके को सकेतित करते ह। यह तरीका ठीक-ठीक क्या हे, ये अगली दो पक्तियो (3 4) म ज्यादा स्पष्ट हो जाता हे, क्योंकि यहा 'तेरे पहलू के समन आर गुलाव' (तुम्हारी उपस्थिति के फूलों) को 'दूरी के ख़सो ख़ाक तल' (दूरी की झाडियो और गर्द के वीच) खिलता हुआ वताया गया हे। दूसरे शब्दा मे, माशूक की निकटता या उपस्थिति इसकी दूरी को ख़ारिज नही करती। और इससे उलट भी सच है माशूक की दूरी उसके निकट आने की पद्धति भी हे। यह थीम दूसरे अनुच्छेद मे आगे वढायी गयी है। पंक्ति 5 6 म माशूक की सासो की आच वक्ता विषयी (स्पीकिंग सब्जेक्ट) के कहीं नजदीक से उठती हुई बतायी गयी ह—'कहीं कुरवत से'—इसके वावजूद, साथ-के-साथ, माशूक की 'दिलदार नजर' को वक्ता ने 'दूर—उफ़क पार' पाया है।

तीसरे और आखिरी अनुच्छेद मे भूगोलीय रूपक को त्याग दिया गया है, ओर हम एक आतरिक, विशुद्ध रूप से आत्मनिष्ठ स्पेस के भीतर है। यह अतरग स्पेस यहा 'दिल' के द्वारा, और अधिक ठीक तरीके से उसके 'रुख़सार के द्वारा सकेतित हुआ हे जो कि पारपरिक तोर पर माशूक की खूबसूरती और उसके साथ (आशिक की) अतरगता का सकेत है, लेकिन यहा यह आशिक के अपने दिल की कामलता को अभिव्यक्त करने के लिए आया है (पक्ति 10)। किसी के हाथा का धडकते हुए दिल को वहुत प्यार से स्पर्श करना, जेसे किसी आशिक के गाला को माशूक स्पर्श करे—इस विव की अनिवर्चनीय सुदरता यातना को ख़त्म कर देने की कामना का, विषयी ओर विषय के मिलाप की कामना का निर्वचन हे। यह मिलाप की वैसी कामना की अभिव्यक्ति है जिसे अडोर्नो ने 'शांति' कहा है "शांति प्रभुत्व के विना विशिष्ट होने की स्थिति हे, जिसमे सभी विशिष्ट एक दूसरे म भागीदारी करते ह। " माशूक की उपस्थिति इस अनुच्छेद मे उसकी दूरी वन जाने तक भी जारी रहती हे। कारण कि माशूक इस अतरग प्रदेश म एक छवि या याद क रूप मे ही प्रवेश करती हे। आखिरी दो पंक्तियो (11-12) मे कविता याद के इस

प्रेमपूर्ण स्पर्श की तीव्रता की ओर, विषयी पर उसके *प्रभाव* की ओर मुड़ती है यह गुमान कि 'ढल गया हिज्र का दिन, आ भी गयी वस्ल की रात'।

इसीलिए, पहले दो अनुच्छेदो की तरह तीसरा अनुच्छेद भी वियोग और सयोग की द्वद्वात्मकता को सपादित करता है, जिसम वियोग अनिश्चित काल के लिए विस्तारित हो गया है, और सयोग, जो कि प्रबल रूप स इच्छित और अनुभूत है, कामना के विषयी और विषय के बीच की दूरी को ख़त्म नही करता। यह दोनो के बीच के फ़र्क़ को अस्थिर/अनिश्चित बना देता है, पर इसके लिए नही कि विषय क जीवन को विषयी क हित मे हथिया लिया जाये। विषय का विषयी होना भी, ओर (कामनायुक्त) विषयी का (किसी ओर की) कामना का विषय होना भी उद्घाटित होता है। एक ही समय मे माशूक दूर, ओर इसीलिए अन्य, है तथा स्वय के रूप में आत्म के सामने उपस्थित भी है। दूसरे शब्दो म, 'याद' की प्रक्रिया में जा आत्म उभरता है वह विभाजित है, अपने-आप के साथ सुकून स नहीं है, मिलाप ओर सपूर्णता की कामना करता है ओर इसके बावजूद यह जानता है कि अपने-आप से उसकी दूरी ही उसकी गति ओर जिदगी का स्रोत है। नजदीकी आर दूरी की यह अलोकिक अतरक्रीडा *सरे-वादिए-सीना* (1971) म सकलित चार पंक्तियो की कविता 'मसिया' मे बहुत ठीक तरीके से निरूपित हुइ है

दूर जाकर करीब हो जितने
हम से कब तुम करीब थे इतने
अब न आओगे तुम न जाओगे
वस्ल ओ हिज्रा बहम हुए कितने।[12]

इस प्रगीतात्मक आत्म के सामाजिक आशय को रेखांकित करने की शुरुआत हम 'याद' के आख़िरी अनुच्छेद में आये शब्द 'हिज्र' (ओर 'मर्सिया' म उसी से व्युत्पन्न 'हिज्रा') की अनुगूज पर गार फरमाते हुए कर सकने हे। अरबी के 'हज्र' का यह बदला हुआ रूप क्लासिकी उर्दू शायरी म 'वियोग' के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाला लफ्ज है। यह सुविदित है कि इस शब्द ओर इसके विलोम, 'विसाल', के अथ उर्दू काव्यशास्त्र की केंद्रीय और सबसे सुपरिचित समस्याओ म स एक की जड मे हैं। ये अर्थ न सिर्फ एक कवि स दूसरे कवि आर एक दोर से दूसरे दोर मे जाकर बदल जात ह, बल्कि एक ही कवि क यहा एक काव्यविधा से दूसरी मे जाकर भी बदल जाते है ओर कइ बार तो एक ही कविता के भीतर भी ऐसा होता हैं। इस तरह, मिसाल के लिए, काव्य के सदर्भ के अनुसार, ये शब्द रूमानी या शृगारिक प्रेम की गतिकी को सकेतित कर सकते हे, या फिर धार्मिक समर्पण को। ख़ास तार से, उर्दू (और फारसी) शायरी की सूफ़ी परपरा में विसाल' लोकोत्तर सत्ता के साथ रहस्यमूलक सयोग का, 'इश्क ए हकीकी' में फना हो जाने की आत्म की इच्छा का एक सकेत/प्रतीक हे। इश्क-ए हकीकी अल्ला के प्रति 'सच्चा' प्रेम है, और इससे भिन्न इश्क ए मजाजी एक बद का बदे के प्रति प्रम ह, अप्रामाणिक या 'रूपकात्मक' प्यार। यह बडी आम बात हे कि किसी छद का एक ही समय मे कइ अलग-अलग स्तरों पर, कई मुख़्तलिफ़ रजिस्टरों/खातों में व्याख्यायित किया जा सकता हे।[13] इस तरह 'प्रेम' की समस्या पारलौकिक और इहलौकिक सकेतों के बीच की दुविधा या उत्पादक तनाव के इर्द-गिर्द रची गयी है। याद के दौर में, यह काव्यभाषा निस्सदेह सूफ़ीवाद के किसी ठोस व्यवहार स काफी दूर है। यह विरोधाभास है कि फैज के यहा नये सिरे से लौकिकीकृत (सेक्यूलराइज) होने के क्रम मे यह मजहबी तत्त्व दुबारा उभारा गया है।

फ़ैज की शायरी मे 'हिज्र' का लौकिकीकरण, उनके और उनके समकालीनो के द्वारा किये जा रहे काव्यभाषा और काव्यप्रयोजन के लौकिकीकरण का हिस्सा है। इस लौकिकीकरण का एक पहलू ये रहा है कि पारपरिक काव्यविधाओ, और ख़ास तौर से गजल, की शब्दावली की सूफ़ीनुमा शृगारिकता ने राजनीतिक आशय ग्रहण कर लिये है। यह हबीब जालिब जैसे मिलिटेंट शायरो में, जो परिवर्तकामी छात्र-राजनीति की दुनिया से जुडे रहे है, सबसे मुखर रूप में हुआ है, लेकिन अधिक गभीर शायरों म भी हुआ है, जैसे कि खुद फैज मे। इस तरह, मिसाल के लिए, 'वफ़ा' और 'जुनून' क्रमश प्रतिबद्धत के विवेकवान और विवके-इतर घटको, राजनीतिक दृढ़ता और नि स्वार्थ त्याग का अर्थ देने लगते है। फ़ैज की कविता की इस लौकिकीकरण की प्रेरणा को सबसे स्पष्ट रूप मे साठ के दशक की एक कविता, 'दुआ' मे उद्घोषित किया गया है

आइये, हाथ उठायें हम भी
हम जिन्हें रस्मे दुआ याद नहीं
हम जिन्हे सोजे-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत कोई ख़ुदा याद नहीं।[14]

प्रगीतात्मक विषयी के लिए दुआ एक 'विस्मृत' रस्म हो सकती है, लेकिन इस तथ्य का उसका ज्ञान ही इसके साथ एक जीवत सबध की याद को झुठलाता है। सेक्यूलर विषयी अपने अदर 'बुत' और 'ख़ुदा' के द्वारा सकेतित जीवन-जगत की निशानियो का धारण करता हे। फैज की अनेक कविताओं मे लौकिकीकरण धार्मिक अनुभव की महज नामजूरी नही, बल्कि उसके साथ प्रतिद्वंद्विता है। यह ऐसे प्रत्यक्षवादी निरीश्वरवाद की अभिव्यक्ति नहीं है जो सीधे सघर्ष और कार्रवाई—राजनीतिक प्रतिबद्धता के अर्थ मे 'प्रेम'—की तर्कसगत सस्कृति मे धार्मिक प्रेरणा को उन्मूलित करना चाहता है। इससे उलट, फैज की शायरी मे जो प्रदर्शित किया गया है, वह आधुनिक विषयी के लिए धार्मिक विचार और अनुभव की अकूत ताकत की स्वीकृति हे। रहस्यवादी सूफी परपरा मे जो गैररूढिवादी और उल्लघनकारी शक्तिया सदैव कम-से-कम निहित रूप में माजूद है, उन्हे फेज क छदो मे धार्मिक रूढिवाद तथा उत्पीडक लौकिक सत्ता के साथ उस रूढिवाद के गठजोड के ख़िलाफ मोड दिया गया है। मार्क्सवादी और अतरराष्ट्रीयतावादी शायर होते हुए भी फैज रहस्यवादी भारतीय इस्लाम की धार्मिक भाषा मे मुब्तला हे, उर्दू की काव्यपरपरा मे इसके उच्च सास्कृतिक विस्तार मे भी और उत्तर भारत मे सास्कृतिक सपर्क भाषा क तौर पर भी। फैज की शायरी इस सस्कृति के प्रति एक गहरे आदर ओर *प्यार* को तथा इसके साथ शायर क बहुत जटिल सबधो की स्वीकृति को सामने लाती है। यह एक विशिष्ट धार्मिक परपरा—सूफी अभिव्यक्ति का उर्दू काव्य विस्तार—का विवादास्पद अगीकार है, इसमे से आधुनिकता के लिए ससाधन निकाल लाने की गरज से, इसीलिए साथ-के-साथ यह स्वय धार्मिक अनुभव के दुनियावी आधार की ओर भी इशारा करती है। लेकिन कभी भी यह समन्वयात्मक धार्मिक जीवन *समझी जाने वाली* चीज का महज अतीतव्यामोही अगीकार नहीं हे, और (काव्यात्मक) आधुनिकता धार्मिक तथा सेक्यूलर या लौकिक के एक प्रकार के द्वद्व की तरह सामने आती है।

फेज के लिए विभाजन का विराट विरोधाभास ये हे कि इसे उसी आत्म के पुनर्लेखन की जरूरत है जिसके सरक्षण के नाम पर इस (विभाजन) की माग की गयी थी। यह विरोधाभास ऐसा हे जिसे वे कभी-कभी आत्म की अलग-अलग, आतरिक और वाह्य भापा की टक्कर के रूप मे आकार देते हे, जैसे 1953 की एक गजल के इस मिसरे म

> दिल से तो हर मुआ'मला करके चले थे साफ हम
> कहने मे उनके सामने बात बदल बदल गयी[15]

मेरी सलाह है कि इस मिसरे की वेदना को, जो आप बताना चाहते है उसे कह पाने की अक्षमता के बोध को, आत्मत्व और अस्मिता की 'जन' भापा के प्रति एक प्रतिक्रिया की तरह पढना चाहिए। फैज यहा जिस चीज की ओर इशारा करते हे, वह हे वो अधिशेप जो राष्ट्र राज्य की उस सुनिर्धारित सरचना के भीतर धारण नहीं किया जा सकता, जिसके भीतर 'मुसलमान' एक घातक दुविधा की नोक पर टिका है या तो यह 'एक अलग राष्ट्र' को सकेतित करता हे या फिर 'एक भारतीय अल्पसख्यक' को। फेज का पूरा प्रगीतात्मक काव्यससार अस्मिता को यो तय कर देने की शर्तो को मानने से एक इकार हे और आत्म को गतिशील रखने की एक कोशिश। पापस्वीकृति की मशा के साथ किसी दूसरे स रू-ब-रू होने के लिए आत्म का आगे वढना लेकिन अपने ही शब्दो को पराया होते हुए पाना, जो चाहा था उससे अलग अर्थ पैदा करते हुए देखना—मिसरे के इस आख्यान तत्व को, एक सामूहिक और ऐतिहासिक खाते मे, राष्ट्र तथा साम्प्रदायिक अस्मिता के अर्थ को लेकर चलने वाले सघर्प क इतिहास की एक व्याख्या के तौर पर पढा जाना चाहिए, ओर खास तोर से मुस्लिम सास्कृतिक अलगाववाद के इतिहास की एक व्याख्या के तोर पर। फेज निस्संदेह नयी रोशनी के उन लेखको ओर बोद्धिको की वशपरपरा मे हे जिन्होने एक सदी पहले भारतीय आधुनिकता मे एक 'मुस्लिम' अनुभव की विशिष्टता को माना था। लेकिन ऐतिहासिक सिहावलोकन के साथ वे खुद उस मान्यता को कारुणिकता की मद रोशनी मे नहला देते हैं, ओर उस समय से हमारे अपने समय तक के दोर को चिह्नित करने वाले घुमावा और मोडो, मार्ग परिवर्तना ओर असफलताओ की ओर इशारा करते ह। 1953 म कही गयी ये गजल भारत विभाजन पर उस खूनी हादसे के इस तरफ से की गयी टिप्पणी है। भारतीय मुस्लिम 'राष्ट्रत्व' के, राज्यत्व ओर 'सम्प्रभुता' की ठडी रोशनी मे, अतत जो मायने निकल कर आते है, उसे लेकर असीम उदासी से भरी हुई है यह टिप्पणी। फैज इस ऐतिहासिक कारुणिकता का निचोड या सार गजल की आत्मनिष्ठ/विपयीनिष्ठ भापा मे रूपातरित कर देते है। वे उस कारुणिकता को आशिक की उदासी का रूप दे देते हे, वह उदासी जो माशूक के रू ब-रू अपनी अभिप्रेत बात कह पाने की अक्षमता को लेकर हे।

फैज की शायरी म वारवार आने वाला उस सदैव-दुष्प्राप्य सपूर्णता का बिब, जो कि अपनी दुष्प्राप्यता के चलते कम वास्तविक नही हो जाती, अडोर्नो की उस अतर्विरोधी सपूर्ण की अवधारणा से किसी हद तक मेल खाता ह जिसकी 'गतिशीलता सिर्फ खडो के 'वदलावों' मे ही दिखलायी पडती हे।'[16] द्वद्वात्मकता की यह सकल्पना उस परवर्ती (लेट) आधुनिकता के दौर मे सपूर्णता को समझने का एक प्रयास है जब, अडोर्नो के अनुसार, 'दुनिया को वदलने की कोशिशे नाकाम हो चुकी हे।'[17] इस तरह अडोर्नो के लिए समकालीन दुनिया की परवर्तिता (लेटनेस) इस तथ्य म निहित है कि यह एक हताशा का परिणाम है एक तरह का अंतिम परिणाम जो आधुनिक यूरोपीय इतिहास द्वारा प्रदत्त यूटोपियन उम्मीदों की अनर्थकारी

पराजय से निकला है। इसी से उपजी है समकालीन संस्कृति पर अडोर्नो द्वारा उठाये गये सवालों की श्रृंखला क्या आउश्वित्ज (कुख्यात नाजी यातनागृहों का झुंड) के बाद कविता लिखना संभव है? क्या एक बार जब दर्शन ने इंसानी वजूद को बदल डालने में कृतकार्य होने का मौका गवा दिया है तब दर्शन संभव है? क्या जब विषयी मास कल्चर और मास डेस्ट्रक्शन (जनसंहार) की तात्कता से चतुर्दिक घिरा है, ऐसे युग में उस विषयी का बचाव करना संभव, या काम्य भी, है? उत्तरऔपनिवेशिक संस्कृति अपने आप में यूरोपीय उन्नीसवीं सदी की सांस्कृतिक मानवनिर्मितियों के परिणाम के रूप में संघटित है और उनका देर से किया गया अर्जन इसकी विशेषता है। ये सांस्कृतिक मानवनिर्मितियां हैं राष्ट्रीय संप्रभुता, जनता की इच्छा, लोकतंत्र की मांग। उत्तरऔपनिवेशिक दक्षिण एशिया में यह वह क्षण भी है जो उत्तर भारतीय समाज के विभाजन के तुरत बाद आया है। फ्रांज फेनन ने काफी समय पहले यह स्थापना दी थी कि औपनिवेशिक परिस्थितियों में आरोपित करने के लिए 'मार्क्सवादी विश्लेषण की हमेशा थोड़ी खींच-तान करनी पड़ेगी'।[18] उत्तरऔपनिवेशिक संस्कृति की 'परवर्तिता' खुद परवर्ती आधुनिकता की अवधारणा की खींचतान की, आर्थिक अतिविकास और अतिउपभोग के आख्यान से इसके अलग किये जाने की ओर इसके बजाय विऔपनिवेशीकरण के परिणामों के बोध के लिए इसके तैयार होने की मांग करती है। फैज निस्संदेह उस अर्थ में 'अडोर्नियन' शायर नहीं हैं जिस अर्थ में सेलान, बैकेट, और यहां तक कि मान को अडोर्नियन लेखक कहा जा सकता है।[19] लेकिन इस चीज पर पुनर्विचार करना मेरा मकसद रहा है कि सईद एवं अन्य ने अडोर्नो के विचार पुंज में 'परवर्तिता' के जिस परिदृश्य की पहचान की है, उस में और उस पर लिखने के क्या मायने हैं।[20] फैज परवर्ती*उत्तरऔपनिवेशिक* आधुनिकता के कवि हैं, एक कवि जो नकारात्मक सोच की अपनी ऊर्जाओं को ठोस आकार लेते उन सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूपों की ओर मोड़ देता है जो उत्तरऔपनिवेशिक वर्तमान को संघटित करते हैं। अडोर्नो के लिए, प्रगीत काव्य की अवधारणा का एक ऐसा अर्थ है जो 'पूरी तरह आधुनिक' है और 'पहले के दौरों में विशेष्ट रूप प्रगीतात्मक मिजाज की वे अभिव्यक्तियां जो हमारे लिए सुपरिचित हैं, महज अलग-थलग पड़ी हुई झलकें हैं।[21] लेकिन फैज परंपरागत उर्दू प्रगीत की ओर ही मुड़ते हैं और दुनिया से आत्म के, संपूर्णता से व्यक्ति के संबंध की व्याख्या के लिए शब्दावली वहीं से निकालते हैं। वे ऐसे आधुनिक भारतीय आत्मत्व के अनुभव को विस्तार देते हैं जो विभाजन के समय आरंभ हुई राष्ट्र राज्य व्यवस्था के सांस्कृतिक तर्क से किनारा कर लेने का प्रयास करता है। सूफी विचार और व्यवहार के साथ अपने गहरे संबंधों वाली, तथा उपमहाद्वीप पर आये संस्कृति और अस्मिता के संकट में अपनी लंबी सहभागिता वाली हिंद-इस्लामी काव्य परंपरा में गहरे डूब कर वे इस काम को और आगे बढ़ाते हैं। यही फैज होने का मतलब है, एक ऐसे उर्दू शायर के रूप में, जिसे विभाजन द्वारा थोपी गयी राजनीतिक और सांस्कृतिक सरहदों के आरपार एक विराट पाठक-श्रोता समाज मिला हुआ है।

आमिर आर मुफ्ती | अनुवाद संजीव कुमार
mufti@ucla.edu

संदर्भ और टिप्पणियां

1 थ्योडोर डब्ल्यू अडोर्नो द फेटिश कैरेक्टर इन म्यूजिक ऐंड द रिग्रेशन ऑफ लिसनिंग *फ्रैंकफर्ट स्कूल रीडर* सं एंड्रिउ अरातो एवं एइक गेबहार्ट (न्यूयॉर्क कॉन्टीन्यूअम 1982) 275

2 देखें, आगा शाहिद अली 'इंट्रोडक्शन ट्रासलेटिंग फेज अहमद फैज द *रिबेल्स सिलुए'ट सेलेक्टेड पोएम्स* अनु आगा शाहिद अली (एम्हर्स्ट यूनिवर्सिटी ऑफ मैसाचुसेट्स प्रेस 1995) एव वी जी किएर्नन पोएम्स बाइ फैज की भूमिका, फैज अहमद फैज अनु वी जी किएर्नन (लाहोर वैनगार्ड बुक्स 1971) 40

3 थ्योडोर डब्ल्यू अडोर्नो, 'ऑन लिरिक पोएट्री एड सोसायटी *नोट्स टू लिटरेचर वॉल्यूम वन* स रॉल्फ टिएडमेन अनु शिएरी वेबर निकोल्सन (न्यूयॉर्क कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस 1991) 42 38

4 मिसाल के लिए देखें, सैयद सिब्ते हसन 'फैज का आदर्श , *फैज अहमद फैज तनकीदी जायजा* स खलीक अजुम (नयी दिल्ली, अजुमन ए तरक्की ए उर्दू, 1985) 119 121

5 देखें, किएर्नन पोएम्स बाइ फैज की भूमिका, 38 भाषा के सवाल पर गाधी के नजरिये के एक समकालीन सकलन के लिए देखे, मोहनदास करमचद गाधी *आवर लैंग्वेज प्रॉब्लम* स आनद टी हिगोरानी (कराची आनद टी हिगोरानी, 1942)

6 किएर्नन, पोएम्स बाइ फैज की भूमिका, 38

7 देखें 'फैज-अज फैज फेज अहमद फैज *नुस्खाहा ए वफा* (लाहौर मकतबा ए कारवा 1986) 308 11

8 देखे फैज अहमद फैज *सारे सुखन हमारे* स अब्दुल बिस्मिल्लाह (दिल्ली राजकमल प्रकाशन 2009) 158

9 देखे फैज *नुस्खाहा ए वफा* 308 11

10 फैज *सारे सुखन हमारे* 190

11 थ्योडोर अडोर्नो सब्जेक्ट ऐड ऑब्जेक्ट' *द एसेंशियल फ्रेंकफर्ट स्कूल रीडर* स एंड्रिउ अराती एव एइक गेबहार्ट (न्यूयॉर्क कॉन्टीन्यूअम 1988) 500

12 देखें फैज *नुस्खाहा ए वफा*, 438

13 क्लासिकी उर्दू गजल आर उसके प्रतीकात्मक एव विषयगत ससार के लिए देख रॉल्फ रसल *द पर्सुट ऑफ उर्दू लिटरेचर ए सेलेक्ट हिस्ट्री* (दिल्ली ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1992) अध्याय 2 तथा ऐनीमेरी स्कीमेल *ए टू कलर्ड ब्रॉकेड द इमेजरी ऑफ पर्शियन पोएट्री* (चेपल हिल एन सी यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलिना प्रेस 1992)

14 फैज *सारे सुखन हमारे* 240

15 फैज *सारे सुखन हमारे* 60

16 मिसाल के लिए देखे अडोर्नो द फेटिश कैरेक्टर इन म्यूजिक ऐड द रिग्रेशन ऑफ लिसनिग अलग किये हुए अर्द्धांशो को जोड कर सम्पूर्ण को एक साथ नही रखा जा सकता लेकिन दोनो मे चाहे जितने भी दूरस्थ रूप में सही उस सम्पूर्ण के बदलाव प्रकट होते है जो अतर्विरोधों में ही गतिशील होता है। (275)

17 थ्योडोर डब्ल्यू अडोर्नो *नेगेटिव डाइलेक्टिक्स* अनु ई बी ऐश्टन (न्यूयॉर्क सीबरी प्रेस 1973) अडोर्नो और परवर्तिता के लिए देखें फ्रेडरिक जेमसन *लेट मार्क्सिज्म अडोर्नो ऑर द पर्सिस्टेंस ऑफ द डाइलेक्टिक* (लदन, वर्सो 1990) और एडवर्ड डब्ल्यू सईद 'अडोर्नो ऐज लेटनेस इटसेल्फ *ऐपोकलिप्स थियरी ऐंड द एड्स ऑफ द वर्ल्ड* स मैलकॉम बुल (ऑक्सफर्ड ब्लेकवेल 1995) 264 81

18 देखें फ्राज फेनन *द रेचेड ऑफ द अर्थ* अनु कॉन्सटैंस फैरिंगटन (न्यूयॉर्क ग्रोव प्रेस 1963) 40

19 इस सफाई की जरूरत को बताने के लिए मै स्टेथिस गोरगुरिस और एडुआर्डो कैडावा का शुक्रगुजार हू

20 मिसाल के लिए देखें सईद अडोर्नो ऐज लेटनेस इटसेल्फ 264 81 और जेमसन *लेट मार्क्सिज्म*

21 अडोर्नो ऑन लिरिक पोएट्री एड सोसायटी , 40

शायरी है कि पैग़ाम है

जहूर सिद्दीकी

इस वक्तव्य म फैज के पेगाम का खुलासा करने के साथ साथ लेखक ने 1959 60 के दिनो मे उनके दिल्ली आगमन पर एक रिपोर्ट भी पेश की है। इससे पता चलता है कि फैज हिदुस्तान मे भी कितने लोकप्रिय हो गये थे और उन्हें चाहने वाले उनसे मिलने उन्हे सुनने के लिए किस तरह उमड पडते थे। —स

फैज की शायरी ने अपनी पहचान इसलिए बनायी क्योकि उनम दूर-दूर तक बनावट नही थी, जा दिल पर गुजरी उसको 'रकम कर' दिया[1]। हा यह भी ठीक है कि उनकी अक्ल ने उन्हे शायद कभी 'तन्हा' नहीं छोडा ओर इसी कारण उनकी शायरी सोच और भावनाआ की एक दिलनवाज[2] लय बन जाती है।

लोग कहते ह कि उन्होने कम लिखा, हम कहते है जितना उन्होने लिखा उसको पहले समझ तो लो और अगर समझ मे आ जाये तो फिर अपने कदमा को आगे बढाओ, कुछ कर बैठो। जहा तक हमारी बात है जब भी उनके कलाम पर हमने नजर डाली तो ऐसा लगा कि इस शेर को या उस शेर का अपने दिल मे हम वो जगह नहीं दे पाये जिसका वो मुस्तहक था।[3] कभी-कभी हम सोचते हे कि कोई शायर फैज जैसा या उससे ऊचा बन भी पायेगा? सवाल मुश्किल हे।

हमारा विचार हे कि यदि फेज कुछ नही लिखते केवल 'हम जो तारीक राहो मे मार गये' की तखलीक[4] कर जाते तो साहित्य की दुनिया मे जिदा रखने के लिए काफी था। हमे यह नज्म बहुत पसद है और बाद म मालूम हुआ कि फेज भी इसको अपनी सबसे प्रिय रचना मानते थे।

क्या किसी को गुमान होगा कि जो नज्म 'होठो के फूलो की चाहत से शुरू हो, जहा 'होठा की लाली लपकती' हो और ज़ुल्फ़ों से 'मस्ती बरस' रही हो लाखो दिलो को हिलाने वाली आवाज बन जायेगी। एक नजर पीछे की तरफ घुमाकर फिर सामने देखे तो ऐसा लगता है कि हुस्न कालिदास की शकुतला बनकर सदियो का सफर तै करके उनके शेरा मे नुमाया[5] हो गया हे आर क्या होठो की लाली को देखकर अनार का सुर्ख फल याद नही आ जाता है? लेकिन इतनी सहज सुदर भाषा का एक दर्दनाक लेकिन जरूरी पहलू भी नज़र आता है, जब फेज इस पंक्ति पर पहुचते हे

1 व्यक्त कर दिया
2 मार्मिक
3 अधिकारी
4 रचना
5 प्रदर्शित

देख क़ायम रहे इस गवाही पर हम अंतिम सास तक, जामें[6] शहादत पीते हुए।

इस जवावाज जोडे (इथल व ज्युलियस रोजनबर्ग) ने कैसी दृढता दिखायी? वेशक भावनाए उमडी हे, दिल को थामना पड जाता है और फिर जब हम इन शेरो को याद करते ह

नरसाई अगर अपनी तक़दीर थी
तेरी उल्फत तो अपनी ही तदवीर थी
किसको शिकवा है गर शोक़ के सिलसिले
हिज्र की कत्लगाहों से सब जा मिले

ये रोजनबर्ग जोडा अपनी 'उल्फत' पर मोहित है, 'शर्मसार नहीं'। भले ही इस राह ने उन्हे कत्लगाह तक पहुचा दिया। पर इथल व ज्युलियस रोजनबर्ग ने महिमा तथा मर्यादा की ज्याली मिसाल कायम की।

'दिल मे क़दील गम' होना स्वभाविक है। क्योंकि दिल फिर दिल है। 'सग व ख़िश्त'[7] नहीं लेकिन फ़ैज की शायरी की सबसे वडी विशेषता यह है कि उनके क़दम आगे वढने से डगमगाते नहीं और गिरे हुए परचमो को लेकर ज्याले आशिक़ों के काफिले निकल पडते है।

यह दर्दनाक हादसा सीमित बनकर नहीं रह जाता बल्कि गूज जाता है। दर्द के फसले को भी एक हद तक पाटने लगता है। दरअसल 'हम जो तारीक राहो मे मारे गये' फ़ेज का कम्युनिस्ट घोषणापत्र बन गया है।

फ़ैज ने अनेक ऐसी रचनाए पेश की हे जो अपनी गहराई, गभीरता तथा गहनता के कारण ससार के हर लोकप्रिय शायर को उनके सामने अपना सर झुकाने पर मजबूर कर देती है और आलोचक कितना भी सगदिल हो जव वह उनके शेरो को सजीदगी से पढता है तो वह भी फ़ेज की सन्नाई[8] का कायल हो जाता है।

वास्तव मे फैज का दौर कुछ ऐसा था जहा एक तरफ ज़ुल्म का लावा फूट रहा था तो दूसरी ओर सुर्ख किरने उभर आयी थी , एक तरफ़ दर्द की पीडा थी तो दूसरी ओर उसका मदावा भी था। फ़ैज ने दर्द को भी चूम लिया और उसके इलाज को भी।

वाजी है वहुत सख़्त म्याने[9] हक़[10] व बातिल[11]
वह ज़ुल्म में कामिल[12] है तो हम सब्र मे कामिल
बाजी हुई अजाम, मुबारक हो अजीजो[13]
बातिल हुआ नाकाम, मुबारक हो अजीजो

6 प्याला
7 पत्थर व ईंट
8 बनाने की कला
9 बीच में
10 सच्चाई
11 झूठ
12 पक्के दक्ष
13 प्यारो

फैज इस मरसिया मे रूलाते नही बल्कि जगाते ह और उनकी शायरी मे मुशाहिदा[14] तो ह ही साथ साथ एक अनोखा अदाज भी हे 'गुला मे रग' भरते हुए 'सूएदार'[15] तक पहुच जाते ह, रूमानियत को कभी लक्ष्य पर हावी नही होने देते।

अगस्त के महीने मे उनकी लिखी हुई 'यूमे[16] आजादी' के सदर्भ मे लिखी गयी नज्मा का जायजा भी लीजिये आजादी का वह दिन उनके लिए मायूसकुन था

यह दाग दाग उजाला यह शब गजीदह[17] सेहर[18]
वो इतिजार था जिसका यह वह सेहर तो नहीं

अगस्त 1952 मे कुछ हालात वेहतर हुए तो कह बैठे

अब भी खिजान का राज है लेकिन कहीं कहीं
गोशे राहे चमन मे गजल ख़्वान हुए तो हैं
इनमे लहू जला हो हमारा' कि जान व दिल
महफिल मे कुछ चिराग फरोजान[19] हुए तो हे

लेकिन फिर अगस्त 1955 के दौर मे उन्हे यह कहने मे देर नहीं लगी

चाद देखा तेरी आखो म, न होठो पे शफ़क़[20]
मिलती जुलती है शवे गम से तेरी दीद अब के

आजादी के उस दिन पर लिखी हुई फेज की 14 अगस्त 1967 की नज्म जिसका शीर्षक 'दुआ' हे, अपने सुवक अदाज लेकिन पुरमायने पैगाम के लिए उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओ मे गिनी जाती है। चद पंक्तिया

आइये हाथ उठाये हम भी
हम जि हे रस्मे दुआ याद नही
हम जिन्हे साजे मोहब्बत के सिवा
कोई बुत कोई ख़ुदा याद नही

जिनकी आखो को रुखे सुवह का यारा भी नही
उनकी रातो म कोई शमा मुनव्वर कर दे

जिनकी दी पेरवी ए कज्बे दरिया है उनको
हिम्मते कुफ़्र मिले जुराते तहक़ीक मिले

---

14 परख
15 फासी की ओर
16 दिन
17 विप भरी दंशित
18 सुवह
19 रोशन
20 लाल रौशनी जो सूरज निकलने से पहले और डूबने के बाद नमूदार होती है

(जिनका धर्म/ईमान झूठ का दरिया है, उनको कुफ्र की हिम्मत मिले यानी ऐसे दीं को उखाड फेकने की हिम्मत मिले ओर उनमे नये रास्ते की खोज की हिम्मत और दिलेरी हो।)

फेज को अपने वतन से बेपनाह मोहब्बत थी ओर इसीलिए 'रुखे सहर की लगन' उनके कदमो को आगे वढने के लिए प्रेरित करती रही 'चले चलो कि वो मजिल अभी नही आयी।' लेकिन फैज दूसरे मुल्क के लोगो को नीचा दिखाने को वतनपरस्ती नहीं समझते थे। चाहे कुर्सी पर बैठे हुए लोग कुछ भी तमाशे दिखाते रहे लेकिन उनका हिदुस्तान आना नहीं रुका ओर जब भी वे आये लोग सैकडो व हजारो की तादाद मे उनसे मिलने, उन्हे सुनने पहुच जाते थे। 1959 60 के दौरान उनका जब दिल्ली आना हुआ ता वे डा के एम अशरफ से मिलने करोडीमल कॉलेज आये। उनको यह पता नही था कि कॉलेज वालो ने उनको सुनने के लिए हाल मे मीटिग का प्रवध कर लिया था, वक्त से पहले ही हाल खचाखच भर गया था लेकिन जव वक्त ज्यादा हो गया तो डा अशरफ हाल से वाहर आकर खडे हो गये, उनके पीछे उनके शगिर्द अर्जुन देव और हरवस मुखिया भी चले आये ओर इस इतिजार की घडी मे हमने भी उनका साथ दिया।

खुदा-खुदा करके फेज की शक्ल नजर आयी और वे आते ही डॉ अशरफ के जुमले का शिकार हुए 'हमने तो अपने माशूक का भी कभी इतना इंतिजार नही किया।' फेज कुछ झेप से गये और डा अशरफ से बगलगीर होते हुए बोले 'वन्ने भाई (सज्जाद जहीर) उठने ही नहीं देते थे, वडी मुश्किल से आया हू।' फिर हम सब हाल के अदर दाखिल हुए। हम तो समझते थे कि हाल आधा हो चुका होगा लेकिन कोई बदा खिसका ही नहीं और जैसे ही वह मच पर पहुचे आवाजे लगने लगी

मुझ से पहली सी मोहब्वत मेरी महवूब न माग

इसके वाद अनेक बार उनका दिल्ली आना हुआ। और जे एन यू मे जो मीटिग सीताराम येचुरी ने करवायी, उसमे हजारो की तादाद मे उनके प्रेमी पहुचे। फैज ने अपने चाहने वालो से इंतिजार तो जरूर करवाया, लेकिन उनके कलाम ने उन्हे कभी मायूस नही किया। कितने भी जटिल हालात हो उनके शेरो की 'चादी दमकती' रही।

अगर पाकिस्तान फेज की पत्नी थी ता हिदुस्तान उनकी महबूवा। उनके दिल मे हर उस इनसान की इज्जत थी जो इसानियत का परचम लिए नेक राह पर चल रहा हो, और जव ऐसे इनसानो पर जुल्म होता तो उन पर अजीब कैफियत[21] तारी हो जाती और वह अपने दर्द के रिश्ते के इसरार पर कलम चलाना शुरू कर देते।

फेज का विश्वाध कोई थोपा हुआ लोहे का खाल नही था , वह उनकी बेलौस समझ का अग था, जुल्म से हर जगह टकराने के लिए तैयार।

उनकी 'दो नज्मे फिलिस्तीन के लिए' का जायजा लीजिए , जरा भी तो इनम दोहरापन प्रतीत नहीं होता , उनकी नज्म 'फिलिस्तीनी बच्चे के लिए लोरी एक दिलफिगार शाहकार हे। कोन सा दिल हे जो इन पंक्तियो को पढकर तडप न उठे

---

21 भावदशा

मत रो वच्चे
अम्मी, अव्वा, वाजी, भाई
चाद और सूरज
तू गर रोयेगा तो ये सव
और भी तुझको रुलवायेगे
तू मुस्कायेगा तो शायद
सारे एक दिन भेस वदल कर
तुझ से खेलने लौट आयेगे

'ईरानी तुल्वा के नाम' उनकी उन नज्मो मे से हे जो क्रांतिकारी साहित्य मे अपनी जगह रखती है, जब इन जियालो पर गोली चली ओर उनमे से अनेक मारे गये ता इस दर्द को जेल की सलाखो के पीछे इस केदी ने अपने दिल की गहराई म महसस् किया

यह कोन सखी हैं
जिनके लहू की
अशरफिया छन छन छन छन
धर्ती के पेहम प्यासे
कशकोल मे ढलती जाती हे
कशकोल को भरती हे

इस वक्तव्य के अत मे मै यह कहना चाहता हू कि

दिल से पहम[24] ख़याल कहता हे
इतनी शीरीन[25] हे जिदगी इस पल
जुल्म का जहर घोलने वाले
कामरां[26] हो सकेगे आज न कल
जलवागाहे विसाल[27] की शम्म
वो बुझा भी चुके अगर तो क्या
चाद को गुल करे तो हम जाने

हमारा चाद कभी गुल न होगा, हम कल चले जायेगे मगर फैज की क्रातिकारी शायरी आनेवाली पीढियो को पेगाम देती रहेगी— हक का, सघर्ष का और इनसानी दोस्ती का।

---

24 लगातार
25 मीठी।
26 कामयाव।
27 मिलन।

हर दौर मे तारीख़ का उन्वां

अर्जुमद आरा

फ़ैज का लहजा तो सूरज की तरह दुनिया म
कल भी ताबिदा था, और आज भी ताबिदा है
फ़ैज मर कर भी जमाने म अभी जिदा है।
मौत आ जायेगी जुल्मत के परस्तारो को
पूरी दुनिया मे जब इनसान फरोजा होगा
फ़ैज हर दौर में तारीख़ का उन्वा होगा।

—डॉ बेदिल हैदरी

गहरी अनुभूति और प्रगतिशील विचारधारा के सबसे मशहूर और मकबूल शायर फैज अहमद फ़ेज (जन्म 13, फरवरी 1911) के देहात (20 नववर 1948) के मोके पर कही गयी उक्त पंक्तियो से अदाजा होता है कि फ़ेज क समकालीन लेखक, रचनाकार और जागरूक पाठक किस तरह फ़ेज के साथ भावनात्मक रिश्ता मे वधे थे। फ़ेज को इतिहास के हर युग का उन्वान (शीर्षक) बताना इन अर्थो मे अतिशयोक्ति नहीं होगा कि फ़ेज सिर्फ़ प्रगतिशील लेखन के ही वेहतरीन शायर नहीं थे बल्कि उनकी शोहरत देश, भाषा, काल को पार कर चुकी थी और है। फ़ेज के देहात को 26 वर्ष गुजर चुके हैं, लकिन उनक प्रशसको के उक्त भाव और भावनात्मक रिश्ते उतने ही जोशो-जज्बे से भरे है।

फ़ेज की शायरी मे इनसानी दोस्ती और इक्लाबी विचारधारा और एक रूमानी स्वभाव के व्यक्ति का प्रेम और वेदना का सगम एक जल तरग मे परिवर्तित होकर जिस नाज से बहता हे उसका एतराफ़ तो वे लोग भी करते हैं जो आम तोर से प्रगतिशील लेखन से विदकत ह। फ़ेज के देहात के बाद उन पर लिख एक सस्मरण मे मुश्ताक अहमद यूसुफ़ी ने लिखा

> मने जहन पर बहुत जोर डाला कोई मिसाल ऐसी याद नही आयी जहा लोगो को शायर के सियासी रुझान या विचारधारा (विचारधारा) से ऐसा शदीद इख़्तलाफ़ रहा हो और उसकी शायरी स ऐसा टूट के प्यार। फ़ेज साहब का सियासी और वैचारिक रुझान हमेशा ही विवादास्पद रहा और शायरी हमेशा हर विवाद से दुर।
>
> (उर्दू मासिक *शविस्ता*, दिल्ली मार्च 1985 पृष्ठ 82)

फ़ैज की शायरी की महता को आकते वक्त बहुत से लोग उनके प्रगतिशील होने, रावलपिडी साजिश कस में लबे समय तक जेल मे रहने (1951-55) और गजल गायकों द्वारा उनके अधिकाश कलाम के गाये

का माहोल वड़ा मजहबी था। फ़ैज की वडी वहन गुल वीवी ने अपने एक इटरव्यू म अख्तर जमाल को वताया कि फैज को शुरू मे कुरान हिफ्ज (कटस्थ) कराया जा रहा था, दो *सीपारो* के वाद यह सिलसिला शुरू किया गया। फ़ेज का वचपन खेलकूद मे गुजरा। वे खुद लिखते हे कि 'ख्वातीन ने हम को निहायत शरीफ़ाना जिदगी गुजारने पर मजवूर किया, जिसकी वजह से कोई गर-मुहज्जव या उजड्ड किस्म की वात उस जमाने म हमारे मुह से नही निकलती थी। सुवह को अव्वा के साथ नमाज पढने जात। वहा मोलवी इव्राहीम सियालकोटी से घटा-डेढ़ घटा कुरान का सवक लेते, फिर स्कूल जाते। रात म अव्वा के लिए ख़त लिखते और अख़वार पढकर सुनाते। इस तरह अख़वार पढने ओर खत लिखने की ट्रेनिग वचपन म ही मिल गयी।

फ़ेज के घर के पास कितावो की एक दुकान थी। जहा किराये पर किताव मिलती थी। दुकानदार को सव लोग 'भाई साहव' कहते थे। भाई साहव की दुकान से दो दो पेसे किराये पर किताव लाकर फ़ेज ने *तिलिस्मे होशरुवा*, *फ़साना ए-आजाद*, शरर के नॉवेल, वगेरह पढ डाले। फिर मीर, गालिव दाग वगेरह की शायरी पढी। फ़ेज लिखते है कि गालिव उस वक्त ज्यादा समझ मे तो नहीं आय लेकिन उनको पढने से एक अजीव सा असर जरूर होता था। इस तरह धीरे-धीरे शायरी से लगाव पेदा हा गया। एक दिन अव्वा के मुशी ने उनके उपन्यास पढने की शिकायत अव्वा से कर दी। अव्वा ने डाटा तो नही लेकिन यह जरूर कहा कि नॉवेल ही पढने हे तो अग्रेजी के नॉवल पढा करो। उर्दू के नॉवेल अच्छे नही होते। इस तरह फ़ैज ने शहर की लायव्रेरी से लेकर अग्रेजी उपन्यास पढने शुरू कर दिये। फेज लिखते ह कि हार्डी, ओर डिकस वगेरह को पढने का फ़ायदा यह हुआ कि नॉवेल तो पूरी तरह समझ म नहीं आये लेकिन अग्रेजी अच्छी हो गयी। और नुकसान यह हुआ कि स्कूल मे वे अपने उस्तादो की अगेजी दुरुस्त करने लगे जिससे वे प्राय नाराज हो जाते थे।

> फ़ैज को वचपन ही से सगीत से भी लगाव था। उस्ताद तवक्कुल हुसेन ख़ा, उस्ताद आशिक अली ख़ा और छोटे गुलाम अली ख़ा आदि के साथ बैठते ओर उनको सुनते थे।
>
> —(शविस्ता, पृष्ठ 15 16)

एम ए के जमान की एक याद का दिलचस्प वर्णन फ़ैज ने अपने एक लेख म किया हे। वे लिखते है कि प्रो डिकिसन या प्रो हरीशचद कटपालिया का जव पढाने को दिल नहीं चाहता तो फ़ैज से कहते 'तुम लेक्चर दे दो, एक ही वात हे।' प्रो डिकिसन ने क्लास के दो तीन लायक लडको को यह जिम्मेदारी साप दी थी कि वे उन्नीसवी सदी के गद्य साहित्य पर दो दो, तीन-तीन लेक्चर तैयार करले। इस तरह के क्रियाकलापो से फेज 'नीम उस्ताद' तो वन ही गये थे लेकिन ये वात भी दिलचस्पी से ख़ाली नहीं कि अध्यापको की कामचोरी ओर न पढाने की रूस्वाइयो की परपरा भी अग्रेजो के जमाने की ही देन हे। (यूनिवर्सिटी अध्यापक विशेषकर इस घटना को अच्छी तरह याद रखे ताकि वक्त जरूरत सनद रहे।)

शुरू मे फ़ैज के सामने कई रास्ते थे। उन्हे क्रिकेट खेलने का शौक था और चाहते थे कि क्रिकेट के खिलाड़ी वन जाये। उन्होंन क्रिकेट की भाषा मे एक वडा मजेदार इटरव्यू भी दिया हे। मिसाल के तौर पर जव साक्षात्कार कर्त्ता अनवर मक़सूद ने पूछा कि आप की सबसे अच्छी इनिंग्स कोन सी हे, तो फैज का जवाव था 'एक इनिंग्स हमने वतन को हसीन वनाने के लिए खेली थी। इसमे हम मुसीवते झेलते रहे, खून के आसू पीते रहे, फिर भी कोई हमे आउट नहीं कर सका। हमारा दूसरा टेस्ट था—

दस्ते-सबा (दूसरा संकलन)। हमारे ख़याल मे सब से अच्छी इनिंग्स दस्ते सबा' थी।' अनवर मन्सूर ने पूछा आप किस साइड पर ज्यादा बार कैच हुए तो फ़ैज ने कहा 'हमेशा राइट साइट पर क्योंकि हमारी लेफ्ट साइड बहुत पॉवरफ़ुल थी। इस वजह से हम ज्यादातर राइट गेंद को भी लेफ़्ट पर खेलने की कोशिश करते थे और हमेशा स्लिप मे हम कोई न कोई पकड लेता था।') क्रिकेट के अलावा उनके दूसरे शौक थे—रिसर्च करना और अध्यापक बनना। रिसर्चर तो नहीं बने लेकिन अध्यापक बनकर अमृतसर के एम ए ओ कॉलेज जा पहुचे। अमृतसर मे वे खुद मे गुम रहने लगे थे। इस जमाने मे वे प्रेम कर बैठे जो नाकाम हो चुका था। उन्ही दिनो फैज की मुलाकात कामरेड महमूदुज्जफर, रशीद जहा, दीन मुहम्मद तासीर और हाजरा बेगम इत्यादि से हुई। इन लोगो की एक अलग ही दुनिया थी। रशीद जहा ने उनसे *कम्युनिस्ट मेनिफ़ेस्टो* पढने को दिया। फ़ैज बहुत प्रभावित हुए। शोषित सर्वहारा वर्ग के लिए उनकी हमदर्दी उस गहरी अनुभूति से जन्मी थी जो उनके पिता के बचपन के हालात जानकर उनके दिल में कही न कहीं छिपी बैठी थी। उन्होने अपने कामरेडो के साथ मिलकर मजदूरो मे काम लिया, सिविल लिबर्टीज की सस्था मे काम किया और अजुमन तरक्कीपसद मुसन्निफ़ीन मे बी बी सी टेलीविजन के लिए कृष्ण गोल्ड को दिये अपने आख़िरी इटरव्यू मे फ़ैज ने इस बात का एतराफ खुल कर स्वीकार किया है कि बेगम रशीद जहा ने हमे सिखाया कि 'निजी गम बहुत मामूली चीज है। दुनिया के जो दुख हैं वे ज्यादा सगीन किस्म के है, दुनिया भर के दुख देखो, अपने लिए अपनी कौम और अपने मुल्क के लिए सोचो। अगर अपने लिए सोचते रहोगे तो ये खुदगरजी होगी।' इस नयी सोच के साथ उन्होने अमली जिंदगी मे भी हिस्सा लिया और उसे अपनी शायरी का भी आधार बनाया।

उन्हीं दिनो रेडियो नया नया शुरू हुआ था। फैज और उनके दोस्त प्रोग्राम देने तो जाते ही थे, स्टेशन डायरेक्टर रशीद अहमद के लिए प्रोग्राम तरतीब भी देते थे। जब रशीद साहब दिल्ली ट्रासफर हो गये तो ये लोग भी दिल्ली आने जाने लगे। वहीं फ़ैज की मुलकात मजाज, अली सरदार जाफ़री, जा निसार अख़्तर, जज्बी और मख्दूम वगैरह से हुई।

गर्मियो की छुट्टियो मे फैज अक्सर अपनी बडी बहन के पास धर्मशाला चले जाते थे। वहा उनके बच्चो के साथ वक्त बिताते और घूमते। उन्होने बीबी गुल के बेटे और बेटी सआदत को मेज पर मुक्का मार कर कहना सिखाया, 'टोडी बच्चा हाय हाय' विलायती माल बायकाट!' यानी घर के बच्चो की तर्बियत भी वे उसी रास्ते पर करने लगे थे जो उन्होने अपने लिए चुन लिया था। लिखते है कि 'धर्मशाला मे कुदरती मजर देखने का बहुत मौका मिला, वे दिल पर अपनी छाप छोड जाते है लेकिन हमे इनसानो से जितना लगाव रहता है उतना कुदरत के मनाजिर और उसकी सुदरता को पढने से कभी नहीं रहा।' फिर उन्होने यह भी महसूस किया कि शहर के गली मुहल्ला मे भी एक हुस्न है जो दरिया और सहरा, पर्वतो और फूलो से कम नही है लेकिन उसको देखने के लिए दूसरी तरह की नजर चाहिए।' फ़ैज की शायरी मे गलियो और शहरो का जिक्र बडे पैमाने पर हुआ है। जेल के जमाने मे खास तौर से उन्होने अपने वतन के गली मुहल्लो को बडी शिद्दत से याद किया है। 'ऐ रोशनियो के शहर, निसार मे तेरी गलियो पे ' 'शाहराह 'एक रहगुजर पे' वगैरह नज्म इसकी मिसाल है। विशेषत निसार मे तेरी गलिया पे ' इन पंक्तियो मे जिस तरह अपनी गलियो को याद किया है, उसकी नजाकत किसी महबूब को याद करने जैसी गहरी अनुभूति के साथ बयान की है

बुझा जो रोजने जिंदा[1] तो दिल ये समझा है
कि तेरी माग सितारों से भर गयी होगी
चमक उठे है सलासिल[2] तो हमने जाना है
कि अब सहर[3] तेरे रुख़[4] पर बिखर गयी होगी
गरज तसव्वुरे शामो सहर मे जीते है
गिरफ़्ते साया ए-दीवारो-दर में जीते है।

रोजमर्रा की जिंदगी, इश्क़ो-मुहब्बत और सियासी समझ—ये सब फ़ेज के लिए अलग-अलग खाना मे बटे हुए नहीं थे। इसीलिए तो रूमानी शायरी मे भी गहरा समाजी ओर सियासी शऊर मिलता हे ओर अमली जिंदगी मे एक बेचैनी जो हालात को बदल देने के लिए की गयी उनकी कोशिशा म नजर आती है। कॉलेज में पढ़ाने का काम वे छ सात बरस से ज्यादा न कर सके। 1940 मे अमृतसर से लाहौर के कॉलेज चले गये और 1942 मे यह नोकरी छोड कर फौज मे भर्ती हो गये। फोज मे जाने का सीधा कारण यह था कि वे यह महसूस कर रहे थे कि पहली जरूरत फ़ासीवाद को खत्म करने की हे और कोई इकलाबी और तरक्क़ीपसद ताक़त इस बात को नजर अदाज नहीं कर सकती। फ़ोज की नौकरी से फेज ने 1947 मे इस्तीफ़ा दिया और लाहोर चले गये। और पत्रकारिता और सियासी काम साथ-साथ करते रहे। ट्रेड यूनियनों और मजदूर सगठनों को बनाने मे उन्हेने बडी सरगर्मी से हिस्सा लिया। डाक-तार विभाग ओर रेलवे कर्मचारी यूनियनों के सदर रहे और विभिन्न स्तरा पर मजदूरा की नुमाइदगी करते रहे। उसी दौरान मिया इफ्तख़ारुज्जमा के अख़बार *पाकिस्तान टाइम्स* ओर *इमरोज* के एडिटर बने। लेकिन जब अय्यूब ख़ा ने मार्शल लॉ लगाकर हुकूमत पर कब्जा कर लिया तो इन अखबारो को भी सरकार ने अपने कब्जे मे ले लिया। कुछ अर्से बाद ही रावलपिडी साजिश केस मे फैज सज्जाद जहीर और दूसरे बहुत से लोगो को जेल भेज दिया गया। फ़ैज ने चार साल एक महीना, ग्यारह दिन जेल में गुजारे जिन म से तीन महीने उन्हें कैदे-तन्हाई भी झेलनी पडी। वे सरगोधा, मटगोमरी, लायलपुर, ओर लाहोर इत्यादि की जेलो म रहे। ऐसा वक्त भी गुजरा जब उन्हे बीवी-बच्चो से मिलने तक की इजाजत नही थी। कागज क़लम भी अपने पास नहीं रख सकते थे। यह बडी कठिनाई का जमाना था। उनके दो सकलनों, *दस्ते-सबा* और *जिंदानामा* की ज्यादातर शायरी इसी दौर की यादगार है।

जेल की यादगार सिर्फ फ़ैज की नज्मे ओर गजले ही नहीं है, जेल के उनके अक्सर साथियो ने फैज के बारे मे अपनी याददाश्तें लिखी हे। उनमें मेजर इसहाक़ का मजमून *जिंदानामा* म छपा। केप्टन जफ़र-उल्लाह पोशनी ने जेल के शबो-रोज की बडी दिलचस्प रूदाद लिखी है जिसमे बिल्लिया पालने से लेकर कविता के हास्य सम्मेलनों तक का बडा सजीव बयान है। ये लोग रेडियो पर हिंदुस्तान का क्लासिकी सगीत सुनते, कव्वालिया गाते ओर तरही मुशायरे करते थे। पद्रह-सोलह कैदियो के इस ग्रुप मे सब के लिए शायरी करना जरूरी था ओर सब को नये-नये तख़ल्लुस भी दिये गये थे। किसी को

1 जेलख़ाने की खिडकी
2 बेड़िया जजीरें
3 सुबह
4 चेहरा

'सारस', कोई 'गडवड कोई 'जाहिल' और 'खबीस'। फैज का तखल्लुस 'कातिल' रख गया, कैप्टिन ख़िज्र हयात का 'पेटू' और मेजर इसहाक 'डेगा' (यानी टेढ़ा) कहलाए। इन्हीं महफिलो म फैज न अपना मशहूर गजल कही

रग पैराहन का खुश्बू, जुल्फ लहरान का नाम
मौसमे गुल है तुम्हार वाम पर अपने का नाम

यह गजल 19 अगस्त 1952 को पढी गयी। यह मुशायरा हैदराबाद सेंट्रल जेल के 'बी' क्लास वार्ड म जनरल नजीर अहमद 'सारस' की सदारत मे हुआ था। फज ने अपना मशहूर तराना भी यहीं लिखा जिसके बारे मे कैप्टिन पोशनी लिखते हे कि 'यह तराना हमे इस कदर पसद था कि हम इसे महफिल में कम से कम एक वार जरूर गाते, और कई वार तो आधा पोन घटे तक लगातार गाते। मुझ यकीन है कि यह तराना किसी रोज एक विशाल जन आदोलन का नारा वनकर हमारे वतन (पाकिस्तान) क चप्पे चप्पे पर फैल जायेगा।' (*शविस्ता, पृष्ठ 140*)

यह वात सच सावित हुई ओर तराने की ये पंक्तिया आज हिंदुस्तान म भी कॉलेजो ओर यूनिवर्सिटियो के छात्रो का प्रिय नारा है

कटते भी चलो वढ़ते भी चलो
वाजू भी यहुत हें सर भी वहुत

यह पूरा तराना ही जिन तेवरो के साथ लिखा गया है वे फैज के उस धीमे ओर रूमानी मिजाज मे मेल कम खाते हे जिसको कई रेडिकल कामरेड अदीवो ने जरा आलोचनात्मक विवेचन की नजर से देखा है। पूरा तराना इस तरह हे

दरवारे वतन मे जब इकदिन सब जाने वाले जायेगे
कुछ अपनी सजा को पहुचेगे, कुछ अपनी जज़ा[5] ले जायेगे
ऐ खाक नशीनो उठ वैठो, वो वक़्त करीव आ पहुचा है
जव तख़्त गिराये जायेगे, जव ताज उछाले जायेंगे।
अव टूट गिरेगी जजीरे अव जिदाना[6] की ख़ैर नहीं
जो दरिया झूम के उट्ठे है तिनको से न टाले जायेगे
कटते भी चलो वढते भी चलो वाजू भी वहुत है, सर भी वहुत
चलते भी चलो कि अव डेरे मजिल ही पे डाले जायेंगे।
ऐ-जुल्म के मातो उठ वैठो चुप रहने वालो चुप कव तक
कुछ हश्र[7] तो इनसे उट्ठेगा, कुछ दूर तो नाले[8] जायेंगे।

लेकिन इस ऊंच स्वर के वावजूद फैज अपनी पहचान कायम रखते है, उनकी काव्यशैली मजाज, साहिर ओर मख़्दूम से भिन्न ही रहती है। इसकी वजह है कि फैज शायरी मे न केवल गालिव और इकवाल

---

5 पुरस्कार
6 वदीगृहों
7 क्यामत
8 क्रदन विलाप

से प्रभावित है बल्कि उन्होंने मीर का दर्द और धीमे-धीमे जलने के एहसास को आत्मसात किया लेकिन उनकी मायूसी नही ली। इसके मुकाबले मे गलिब का आत्मविश्वास और रिजाईयत (आशा) और इक़बाल का कमिटमेट और दृढता उनकी सोच मे शामिल हुई। सिर्फ मिजाज ही नहीं, भाषा और प्रतीको, उपमाओ और बिबों के प्रयोग मे भी उन्होने क्लासिकी अदब की परपरा से गहरा असर लिया है। फैज के यहा 'मौसम' सियासी माहोल के मायनो मे बहुत इस्तेमाल हुआ है। मसलन एक नज्म की ये कुछ पंक्तिया, देखे

बजार फ़ज़ा, दरपथ आजार[9] सबा है
यू है कि हर इक हमदमे दैरीना खफ़ा है
हा बादाकशो[10] आया हे अब रग पे मोसम
अब सैर के काबिल रविशे[11] आबो हवा है
उमडी है हर इक सिम्त से इल्जाम की बरसात
छायी हुई हर दाग[12] मलामत की घटा हे

तो मोसम को सियासी अर्थ देने की यह परपरा उन्हे मीर से जोडती है

मोसम आया तो नख़्ले-दार[13] पे मीर
सरे मसूर[14] ही का बार[15] आया

या जब फ़ैज कहते है

मताए लौहो-कलम[16] छिन गयी तो क्या गम है
कि खूने दिल म डुबो ली है उगलिया मने
जबा पे महर लगी है तो क्या कि रख दी है
हरेक हल्क़ा ए-जजीर में जबा मैने

तो खून की सुर्खी से रौशनाई और उगलियो से कलम का काम गालिब ने भी लिया है

हाले दिल लिखू कब तक जाऊ उनको दिखलाऊ
उगलिया फिगार[17] अपनी, ख़ामा[18] खू चका[19] अपना।

---

9 कष्ट देने में लगी हुई।
10 शराब पीने वालो।
11 रास्ता।
12 दिशा।
13 सूली का पड़।
14 मसूर जिसको फासी पर लटकाया गया।
15 फल।
16 कलम और तख़्ती।
17 कटी-फटी जख़्मी।
18 कलम।
19 खून बरसाता हुआ।

या फिर गालिब ही का यह शेर

लिखते रहे जूनू की हिकायाते खू चका
हर चद इसमें हाथ हमारे कलम हुए

पढ़कर अदाजा होता है कि फैज ने कोई नया खयाल पेश नहीं किया हे लेकिन फेज ने इस खयान को अपनी विशेष शेली में जिस तरह नज्म का रूप दिया हे उसमे उनकी अमली जिदगी का तर्जुबा आर दुनिया को बदल देने का वह सकल्प भी शामिल हे जो उन्हें मार्क्सिज्म के वज्ञानिक दृष्टिकोण ने दिया है और तमामतर यूनिवरसिलिज्म और इनसान दोस्ती के बावजूद जिसकी उम्मीद हम गालिब से नहीं कर सकते क्योंकि गालिब एक अलग ही समय ओर वातावरण मे जन्मे थे। अपने दिल ओर अपने जुनून की कहानी लिखने मे हाथो को कलम बनाना या 'हाथ-कलम रखना' (काटना) एक बात हे ओर बडी बात है लेकिन यह बगावत कि अगर जबा पर ताले डाल दिये जाय तो अपनी बडियों की हर कडी मे एक जबान रख देना उस नाभिकीय रिएक्शन की ओर इशारा करता है जो परमाणु म निहित है और जो ऐसी प्रक्रिया हे जिसे रोका नही जा सकता। एतराज किया जा सकता हे कि गालिब ने भी तो अपनी बेडियो को जले हुए बाल की तरह कमजोर बताया हे

बस कि हू गालिब असीरी मे भी आतिश जेरे पा
मू ए-आतिश दीदा है हल्का मेरी जजीर का

तो इन पक्तियो से भी यह बात स्पष्ट हे कि गालिब अपने मिजाज की और जुनून की उस ताकत की ओर इशारा कर रहे हें जो बेडियो को जले बाल की तरह कमजोर समझता है। यह बेचैनी और दृढता आजादी तो दिला सकती है लेकिन उसे इकबाल मे परिवर्तित नहीं करतीं। यही से गालिब और फैज के मिजाज ओर माहौल का अतर सामने आता है।

फेज गालिब की महान परपरा से भाषा ओर विचार दोनो स्तरो पर फायदा तो उठाते हैं, लेकिन उसको अपनी विचारधारा का हिस्सा बनाकर। उसी तरह जैसे गालिब ने फारसी परपरा के अजीम शायरों से फायदा उठाया लेकिन उसको नया मोड देकर अपने एक लेख, 'फन का तकाजा म फेज ने स्पष्ट शब्दो मे अपना रास्ता गालिब से अलग बताया है। वे कहते हे कि शायर का काम सिर्फ मुशाहिदा (observation) ही नहीं, मुजाहिदा (सघर्ष) भी उस पर फर्ज हें। गिर्दोपेश के मुज्तरिब (बेचेन) कतारों मे जिदगी के दजले का (बूद मे समुद्र का) मुशाहिदा उसकी बीनाई (दृष्टि) पर हे, उसे दूसरो को दिखाना उसकी फन्नी दस्तरस (कला निपुणता) पर उसके बहाव मे दखल अदाज होना उसके शौक की सलाबत (दृढता) ओर लहू की हरारत पर ओर तीनो काम मुसलसल कशिश ओर जद्दोजहद (प्रयास ओर सघर्ष) चाहते हें। (दीवाचा', *दस्ते-सबा)*

पानी की बूद म समुद्र देखने, दिखाने ओर उस समुद्र मे उतर जाने के तीन मरहलो मे गालिब पहले दो मरहलो के शायर हे, तीसरे मरहले की बात मार्क्सवादी दृष्टिकोण रखने वाला लेखक ही कर सकता है क्योंकि वह द्वद्व और द्वद्वात्मक सबधो मे शायर को देश काल से अलग नहीं देखता बल्कि उसका हिस्सा समझता है। बल्कि उस द्वद्व का हिस्सा इस तरह बनता हे कि धारा के बहाव मे बदलाव लाने या मोडने का मुसलसल प्रयास करता है। फैज आगे कहते है कि कलाकारो के इस सघर्ष से कोई मुक्ति नहीं उसकी कला एक सतत ओर निरतर प्रयास हे।

यह निरतर और सतत प्रयास जिसकी तरफ फेज मार्क्सवादी चेतना के सहारे पहुचे, हमे इकबाल की भी याद दिलाता हे जो इनसान को निरतर गति और तलाश मे रहने का पेगाम देते हे। फर्क यह हे कि इकबाल मानव का उत्कर्ष मुसलसल हरकतो-अमल ओर तलाशो-जुस्तजू म देखते हे तो इसका कारण द्वद्व और सघर्ष को नही बल्कि प्रकृति मे क्षण-क्षण आते बदलाव को स्रोत मान कर इस नतीजे पर पहुचते है कि अगर इनसान ने बदलाव के प्राकृतिक नियम का पालन नही किया तो वह पतन का शिकार हो जायेगा। बदलाव ऐसा ध्येय है जो फेज ओर इकबाल दोनो जरूरी मानते हे लेकिन इस तक पहुचने के लिए जितने पहलुओ से और तर्क के साथ इकबाल ने अनथक लिखा है, फज नहीं लिख सके। इसके कारणा की खोज शायद ज्यादा मुश्किल न हो। दोनो शायरो के मिजाज मे जमीन आसमान का फर्क़ था। इकबाल अपनी शायरी के प्रारंभिक दोर से ही बडा स्पष्ट सियासी और सामाजिक दृष्टिकोण रखते ह, यह अलग बात है कि धीरे धीरे उसमे बदलाव आता जाता हे। लेकिन उनका दृष्टिकोण हर एतबार से स्पष्ट ही रहता हे। फेज का मामला यह था कि स्पष्ट सियासी नजरिये मे यकीन तो रखते लेकिन उनकी नजर बहुत दूर तक न जा सकती थी। उनके दिल मे तडप थी शोपितो के प्रति, गुस्सा था शोषक वर्ग के प्रति, उसको भरपूर अभिव्यक्त भी किया है लेकिन अपने इस बोध, दर्द ओर आक्रोश का केसे बदलाव मे परिवर्तित किया जाये। इसका उन्होने अपनी शायरी का हिस्सा बहुत ही कम बनाया हे। लाहोर साजिश केस मे उनके जेल के साथी मेजर मुहमद इस्हाक ने बहुत सटीक शब्दो म फ़ज की इस दुविधा ओर कमी की ओर इशारा किया हे और लिखा हे कि फेज का केस जरा कम व्यापक हे। वे कहते ह कि फ़ज ज्वालामुखी से निकलने वाले पहले धुए के बादल ही को सब कुछ समझ लेते हे, जब वह बादल छट जाता है तो उदास हो जाते हे। अगर वे ज्वालामुखी की गर्मी मे छिपी गरज के सुने, या कुछ ही क्षणा म उबलने वाले लावे की कल्पना करे तो फिर दर्द ओर वेदना की जगह सघर्ष की तडप पैदा हो जाये। (*जिदानामा*, पृष्ठ 43)

लेकिन जाहिर है कि शायर फेज से एक पूरा जीवन दर्शन देने की उम्मीद करना या किसी मार्क्सवादी से इकलाव की राह पर चलने के साथ विवेचन ओर विश्लेपण के माग की ओर फिर शायरी की आशा करना फेज के साथ ज्यादती होगी। फेज बुनियादी तौर पर एक ऐसे शायर थे जिनकी भावनाए लोगो के दुख दर्द के साथ जुडी थीं, वे उनके साथ खडे होते है, उनके दर्द म शरीक होते हे, आर अपने नर्म शब्दा ओर नगमा का फाहा रखकर वे उसके दर्द को कम तो करते ही है, दूसरे लोगो की भावनाओ को जगाकर शोपितो के हक मे ओर अन्याय के खिलाफ पाठको को लामबद भी करते ह। फज की शायरी का यह कमाल किसी भी तरह यह कहकर कम नही किया जा सकता कि उनके केनवस को आर व्यापक होना चाहिए था।

फेज की शायरी उनकी अजमत, उनकी विचारधारा ओर पेगाम पर बहुत लिखा गया है। मेरा मकसद उस पर व्यापक बात करना नही हे बल्कि वे जिस माहोल मे पले बढे, जिससे उनका एक विशेष मिजाज बना ओर उर्दू शायरी की परपरा म वे किन शायरा से प्रभावित नजर आते हे, इसकी ओर इशारा करना मेरा मकसद था। इस छोटे से लेख मे मेने यथासभव यही इंगित किया है कि फ़ेज को भली भांति समझने के लिए हमे गालिब ओर इकबाल से भी कुछ न कुछ वाकफियत रखनी चाहिए। इसके अलावा यह देखने की भी जरूरत है कि फज की शायरी अपने समकालीन शायरो, खास तोर से प्रगतिशील कवियो से किस तरह भिन्न थी या उनके साथ क्या समानताए रखती है। म सिर्फ मजरूह सुल्तानपुरी का जिक्र करना

चाहूगी। इसका कारण यह है कि मजरूह की गजल भी उसी परपरा को आगे बढ़ाती है जिसको उर्दू-फ़ारसी की साझी धरोहर कहा जाता है। मजरूह ने भी गुल, बुलबुल, कफ़स, मौसम, जिदा, सय्याद के पारिवारिक प्रतीकों और रूपको को नये सियासी अर्थो में प्रयुक्त किया है, बल्कि क्लासिकी रचाव के साथ सियासी विषयों पर गजल कहना उन्होंने फैज से भी पहले शुरू किया था। मजरूह को फैज जैसी शाहरत न मिलने का कारण यह है कि एक तो उन्होने सिर्फ़ गजलो तक स्वय को सीमित कर लिया, गजलें भी बहुत कम कहीं (उनका एक ही सकलन है, *गजल*), दूसरे वे सक्रिय राजनीतिक वामपथी आदोलन का उस तरह हिस्सा नहीं बने जैसे फैज।

नतीजा यह हुआ कि आज मजरूह के बहुत से अशआर और गजलें फैज के नाम से जानी जाती है। ख़ास तौर से ऐसे शेर

मै अकेला ही चला था जानिबे मंजिल मगर
लोग साथ आते गये और कारवा बनता गया

देख जिदा से परे रगे चमन, जोशे-बहार
रक़्स करना है तो फिर पाव की जजीर न देख

हमारे लब न सही, वो दहाने-जख़्म सही
वहीं पहुचती है यारो, कहीं से बात चले

सुतूने दार पे रखते चलो सरों के चराग
जहा तलक ये सितम की सियाह रात चले।

लेकिन जो लोग दोनो शायरो के मिजाज से वाकिफ़ है उन्हे दोनो का अलग-अलग रग पहचानते देर नहीं लगती। फैज की गजल और मजरूह की गजल का फ़र्क़ मुहम्मद अली सिद्दीक़ी ने बहुत व्यवस्थित ढग से मजरूह पर अपने लेख मे स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि मजरूह के यहा अपने कम्युनिस्ट नजरिये के प्रति ज्यादा स्पष्ट इजहार और यक़ीन मिलता है। फैज के यहा शायराना रमजियत (सकेत, भेद) ज्यादा है। दोनो की गजल का रग अलग है। बहरहाल, अहम बात यह है कि मजरूह और फैज ये दोनो ही ऐसे प्रगतिशील शायर है जिन्होने तरक्कीपसदी के दौर मे गजल की गिरती हुई साख को फिर से बहाल किया।

जो बात फैज की शायरी में सब से ज्यादा अपील करती है वह उनका मानवतावादी दृष्टिकोण, अर्थात इनसानी दोस्ती और यूनीवर्सलिज्म है। इन मामलो मे कि वे दुनिया भर मे जारी जन आदोलनो के साथ है। जहा-जहा साम्राज्यवादी ताक़ते विभिन्न राष्ट्रो को अपनी अत्याचारी नीतियो का निशाना बनाये हुए है फैज उन सब की हिमायत मे आवाज उठाते हे। जन आदोलनो की हिमायत मे खडे होने वाले लेखकों, कलाकारो के नग्मे गाते है और इस तरह उनके साथ अपनी एकजुटता व्यक्त करते है। वे ईरानी छात्रों से लेकर फ़िलस्तीनी अवाम अफ़्रीका, बेरूत इत्यादि पर दिल छूने वाली नज्मे लिखते है। आजादी और ख़ास तौर से अभिव्यक्ति की आजादी के लिए फैज ने जिस अनुभूति के साथ लिखा है उसकी वजह से मुश्ताक युसफी ने उनकी नज्म बोल' ('बोल कि लब आजाद हैं तेरे) को उनकी शायरी का अहदनामा'

और Testament of the Third World कहा है।

लेकिन फेज के इस तमाम मानवतावादी दृष्टिकोण के बावजूद जिसम वे कमजोरो, शोषितों और पराधीना की वेदना मे उनके साथ है। औरतो की स्थिति पर उनकी ख़ामोशी या उसको समझ न पाना हैरत म डालता है। अपनी मृत्यु से चार दिन पहले, अर्थात 16 नवबर 1984 को बेगम तासीर को दिये एक इटरव्यू म उन्होंने कहा कि 'औरते अपने अधिकारों को मर्दो के अधिकारो से अलग-अलग कोई चीज समझती है, और उसके लिए अलग से सघर्ष कर रही है, हालांकि औरतो और मर्दो की समस्याओ को अलग-अलग नहीं किया जा सकता   ओरतो की हालत उस व्यवस्था के अनुसार बेहतर या बदतर होती है, जिसम वे जीवन बिताती है   पाकिस्तान, के जिन इलाको मे औरतो को बेहतर हेसियत मिली है उसकी वजह यह है कि वहा के मर्द भी तरक्की कर चुके है।' (*शविस्ता,* पृष्ठ 195)

ये विचार एक आम आदमी के तो महसूस होते हे लेकिन सामाजिक विषमताओं का बाध रखने वाले व्यक्ति के बिल्कुल नहीं। क्योकि यह बात किसी को भी आसानी से समझ म आयेगी कि हर वर्ग में चाहे वह उच्च, सभ्रात या फिर भिन्न पिछडे तबके की ही ओरते क्यो न हो, उन्हे दोयम दर्जा मिला है। सामाजिक अधिकारो से लेकर वोट के अधिकार तक, राजनीति मे शरीक होने के अधिकार तक फ़ेज के दौर में बडी बहसे हो चुकी थी, नारी आदोलनो के फेशन मे आने से बहुत पहले लेनिन ने क्लारा जेटकिन को दिये अपने इटरव्यू में इन विषमताओं की ओर ध्यान दिलाया था और समाजी इकलाबी की राह में महिलाओं के रोल पर बात की थी। ऐसे मे फैज का सर सयेद अहमद खान ओर इकबाल की तरह यह सोच रखना कि मर्दो की तरक्की होगी तो ओरतो की स्वत ही तरक्की हे जायगी, ओरता के प्रति एक सकीर्ण दृष्टिकोण को दिखाता है। ऐसा नहीं है कि फैज औरतो को बराबरी का दर्जा देना नहीं चाहते थे, लेकिन यह विषमता क्या है, कसे जन्मी, और इसे कैसे दूर किया जा सकता है इस पर उनकी कोई स्पष्ट सोच नहीं थी। कहा जा सकता है कि वे उन्हीं पितृसत्तात्मक और जमींदारी व्यवस्था की रूढियों से ग्रसित रहे जिनमे वे पले वढे। उन्होने कभी औरत को ऐसे वर्ग के तार पर देखने की भी कोशिश नही कि जिसके अधिकार एक-एक करके छिनते चले गये ओर वह मूक तमाशाई बनी रही। फ़ज की शायरी में भी औरत महबूब के रूप में ही आती है लेकिन कहीं भी एक क्रांतिकारी, एक सहयोगी के रूप में नजर नहीं आती। वे बस उसके रूप, उसकी वफ़ा, उसके इश्क ओर हिज्र की वेदना का बयान भर करके रह जाते है और उसके व्यक्तित्व को इसी हद तक देखते है। समाज निर्माण और बदलाव लाने वाले एक कर्त्ता के रूप म उसके रोल के प्रति फेज उदासीन हे। लेकिन इतना जरूर मानते है कि 'ओरतो को जहनी और समाजी तौर पर मर्दो के बराबर लाने के लिए जरूरी है कि सियासी और समाजी व्यवस्था में इकलाबी तब्दीली लायी जाये।'

जिस विषय पर फ़ेज ने नही लिखा उसकी आशा करना उनके साथ ज्यादती हे क्योकि उनके विचारों और कला पर बात उसी हद तक होनी चाहिए जो उन्हाने लिखा, लेकिन फेज़ की रौशनख़याली और पसमादों के प्रति उनकी सहानुभूति, मानव मूल्यों और अधिकारो के लिए उनके मुखर स्वर के कारण एसी आशा करना अनुचित भी नहीं कि उन्होने समाज क अन्य पिछडे वर्गो (जाति और लिग के आधार पर) पर भी लिखा होता तो अच्छा होता।

मो 09810598859

हर क़दम हमने आशिकी की है

वेभव सिह

फेज अहमद फ़ेज के बारे मे जोश मलीहावादी ने कभी 1965 मे लिखा था

> मेरा साहिल अब सामने आ चुका है। मेरी कश्ती में अब बादबान लपेटे जा रहे है लेकिन डूब जाने से पेश्तर यह कह देना चाहता हू कि मै इत्मीनान से मरूगा और महज इस बिना पर कि उर्दू अदब के एक मल्लाह को पीछे छोडे जा रहा हू और उस मल्लाह का नाम है—फ़ैज।

जोश ने अपना भरोसा फेज पर जताया था, पर फ़ैज पर और उनकी शायरी पर भरोसा केवल शायरों ने नहीं किया बल्कि जनता ने सबसे ज्यादा किया है। उन लोगो ने जिन्होने अक्सर तानाशाहों, चरम उत्पीडन और पूजीवाद से लडते हुए सच्ची मानवता की स्थापना के ख़्वाब को अपने दिल म मरने नही दिया है। आज 2011 मे फैज की नज्मो और शायरी का पाठ किसी तरह का होगा, इसीलिए इसे लेकर अकादमिक उलझने सबसे कम ह, हालाकि बहुत सारे ऐसे धुरधर विद्वान जरूर ह जो कविता के क्रांतिकारी तेवरो से कविता को मुक्त करने के नाम पर उसे फिर पुराने रहस्यवाद अध्यात्म ओर आत्मकेंद्रित प्रेम की दुनिया की केद मे डाल देते है। ऊपर से तुर्रा यह कि ऐसा करते हुए वे किसी नयी और महान मोलिक साच के स्थापक के रूप मे भी खुद को पेश करने का दावा करते हैं। पर फैज की शायरी आशिकी, उदासी आर मुहब्बत की धारणाओ को नयी परिस्थितियो म रूपातरित करते हुए ही विकसित हुई थी ओर इसमें प्रगतिशील आदोलन का बडा प्रभाव था। इस आदोलन ने मुहब्बत, तन्हाई और आशिकी के वर्णन के शायर के अधिकार को छीना नही था, पर मुहब्बत को केवल माशूका तक सीमित न रखकर दुनिया की मानवता के साथ जोडने का काम किया था। दुनिया की सबसे तुच्छ ओर कमजोर चीजों के प्रति भावुकता को नयी ऊचाई प्रदान की थी। पुराने बदनाम विषयो को भी असाधारण रूप से भावपूर्ण बनाकर प्रस्तुत किया था ओर इस प्रकार कविता के सौदर्यशास्त्र को बदलकर रख दिया था। सौदर्य को भी देखने की नयी निगाह तेयार करने की बात उठायी थी। खुद फिराक ने फेज की इस खूबी को सराहा था और रकीब जैसे विपय पर लिखी उनकी नज्म के बारे मे लिखा था

> 'रक़ीब का विषय उर्दू शायरी का बहुत बदनाम विषय है आर रक़ीब अक्सर ही खलनायक के रूप में शायरो की गालिया पाता रहा है। लेकिन फेज ने उसे असाधारण रूप से भावबहुल ओर पाकीजा बना दिया। इश्क़ और इसानियत के कोमल ओर गभीर सबधा को समझना हो तो यह रचना देखिये।

रकीब से नामक़ नज्म 1941 के उनके पहले सग्रह *नक्शे-फरियादी* म प्रकाशित हुई थी। इसमे रकीब

यानी प्रेम के प्रतिद्वंद्वी से भी वह लडाई या नफरत नहीं करते है, वल्कि उससे कहते हे

तुझमें खेली हैं वो महबूब हवाएं जिनमे
उसके मलवूस[1] की अफ़सुर्दा[2] महक वाक़ी है
तुझ पे भी वरसा है उस वाम[3] से महताब[4] का नूर
जिसमें वीती हुई रातों की कसक वाक़ी है।

यह प्रेम की दुनिया की लोकतांत्रिकता है जिसमे ओरत सिर्फ़ निजी जायदाद नही वनी है कि जिस पर कोई नजर डाल दे तो ख़ूनख़रावा हो जाये। वल्कि इश्क, ओरत ओर रक़ीव, सव इस दुनिया म वरावरी की जगह रखते हैं, न किसी के साथ वदसलूकी ह और न किसी के साथ कोई प्रतिद्वंद्विता। यह प्रगतिशील आदोलन की विशेपता थी जिसने ओरत और मर्द को केवल जिस्मानी रिश्ता से ऊपर उठाकर जिदगी की वड़ी लडाइयों के साथ जुडने के लिए प्रेरित किया था ओर इसका लाभ यह हुआ था कि ओरत का अपने पति या प्रेमी के अलावा अन्य मर्दों से मिलने-जुलने को चाल चलन की अच्छाई या वुराई से जोडकर देखने की पुरानी तग सोच वेमानी हो गयी थी। ओरत की देह पर राष्ट्र ओर परपरा की भव्यता खडी करने को जिस तरह पोरुपपूर्ण प्रोजेक्ट के रूप मे देखा जाता था, उसका दकियानूसपन जाहिर हो गया था। इसी से 'रक़ीव से' जैसी नज्म भी सभव हुई थीं जिसमे रकीव अव मुहव्वत का दुश्मन नही वल्कि एक दोस्त की तरह पेश आता है। इसी नज्म मे इश्क़ से सीखी वातो को भी शायर ने वताया हे और जा वाते सीखी हे उनम एक हे गरीवो की हिमायत करना। इसलिए इश्क मे डूवा प्रेमी जेसे ससार को ओर तीखी साफ निगाहो से देखने लगता हे। न सिर्फ़ देखने लगता है वल्कि उसकी कुरूपता पर क्रोधित होने लगता है। इसी नज्म का अत इस प्रकार होता है

जव कभी विकता है वाजार म मजदूर का गोश्त
शाहराहों पे गरीवो का लहू वहता है
या कोई तोंद का वढ़ता हुआ सैलाव लिये
फाकामस्तों को डुवोने के लिए कहता है
आग सी सीने म रह रह के उवलती हे न पूछ
अपने दिल पर मुझे कावू ही नही रहता है

प्रेम को सकीर्णताओ, स्वार्थ से मुक्त करना ओर जीवन की व्यापक लडाइयो के वीच उसे सभव वनाना ही फैज की शायरी का मकसद था। इसलिए जव वह इश्क़ की वात करते है तो दुनिया को नहीं भुला देते ओर जव दुनिया के कठिन सघर्पो ओर आदोलनो की भापा का प्रयोग करते हे तो उसमे भी इश्क की वात वड स्वाभाविक ढग से चली आती हे। फेज की यह ख़ूवी भी है कि वे अपनी शायरी के माध्यम से इस वात को उठाते है कि इस दुनिया में इश्क के तभी मायने हे जव अन्यायकारी व्यवस्था को पलट दिया जाये। उनकी निगाह मे अन्यायकारी व्यवस्था हमेशा से प्रेमविरोधी रही हे ओर प्रेम के लिए सघर्प

1 कपडों
2 उदास
3 अटारी
4 चाद

इस विद्रूप व्यवस्था से लड़ाई से अलग नहीं हो सकता है। इसीलिए उनके यहा मनुष्य की भावभूमि को व्यापक बनाने की चिताए है और इसके लिए वह साहसिक सोच का रास्ता चुनते है। *नक्शे-फरियादी* की ही एक और नज्म 'चद रोज और मेरी जान' मे हुस्न, जवानी और सितम जैस शब्द, जो उर्दू शायरा मे बहुतायात मे प्रयोग किये जाते रहे है, को पूरी तरह अलग सदर्भों म प्रयोग किया है। इसमें हुस्न को किस तरह दर्द घेरे है, जवानिया शिकस्त की शिकार है और जज्बात पर जजीर चढ़ी हैं, इसका वर्णन है। यानी इश्किया शायरी की जो शब्दावली थी, वह मौजूद होते हुए भी इश्क और हुस्न के परपरागत रूपों से बाहर निकल गयी है। पुरानी शायरी म प्रेमी का दर्द बड़ा निजी मामला सा लगता था आर अक्सर ही माशूका का सताया हुआ होता था। वह अपने दर्द को बड़ी अनोखी चीज समझता था और उसके इजहार में भी अनोखापन देखता था। इश्क को वह कठिन कार्य अवश्य मानता था पर इस कठिनता से पार पाने के लिए ससार को बदलने के स्थान पर अपनी भावनाओं की शक्ति पर निर्भर रहना अधिक पसद करता था। पर अब यह दर्द निजी नहीं रह गया है और न ही सारे दर्दों की दवा माशूका के पास है। उसे समझ मे आ गया है कि माशूका दिल खोलकर सारी मोहब्बत लुटा देगी तो भी प्रेम का सकट समाप्त न होगा। प्रेमियो का ससार केवल उनकी इच्छाओं से बनता बिगडता नही है बल्कि बाहर के असर से वह सचालित होता है। इसीलिए फैज जैसा शायर इश्क की शायरी लिखते समय भी कभी उदासी तो कभी गुस्से स भरा नजर आता है। उसकी भाषा ललकारने वाली भाषा है, तेवरों मे तलख़ी है और हुस्न के प्रति दृष्टिकोण भी बदला हुआ है। वह लिखता है

> ये तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम[5] की गर्द
> अपनी दो रोजा जवानी की शिकस्तों का शुमार
> चादनी रात का बेकार दहकता हुआ दर्द
> दिल की बेसूद[6] तडप जिस्म की मायूस पुकार
> चद रोज और मेरी जान, फकत चद ही रोज

ललकार और सघर्ष की यह भाषा ही फैज की शायरी की जान कही जा सकती है। अपने जीवन के कटु से कटु अनुभवो के दोरान उन्हे उदासी का सामना तो करना पडा पर उनका मूल स्वभाव ज्यादा नहीं परिवर्तित हुआ। अनुभव, सघर्ष और शायरी का सबसे बेहतर समन्वय फैज के यहा मिलता ह और उनकी रचनाएं शायरी के फॉर्मेट के भीतर अपने समय की आलोचना का सबसे अचूक दस्तावेज जैसी ह। लाहौर मे जब वे पहली बार फौजी बगावत के आरोप मे गिरफ्तार हुए और उन्हे अकेले जेल म रखा गया जहा कलम, दवात, पेपर या अख़बार जेसा कुछ नहीं मिलता था, तब जैसे उनकी आत्मा स विद्रोह की तरह ये पक्तिया निकल पड़ीं

> मता ए-लौह-ओ-कलम छिन गयी तो क्या गम है
> कि ख़ूने दिल मे डुबो ली है उगलिया मैने
> जबा पे मुहर लगी है तो क्या, कि रख दी है
> हरेक हलकए-जजीर में जबा मैने

5 दुखों
6 व्यर्थ

फ़ेज़ की शायरी की ख़ूबसूरती का एक कारण जीवन के प्रति बडा दृष्टिकोण है। पूरी दुनिया मे जारी जनसघर्षो से वह लगाव को व्यक्त करते हे और इन सघर्षो के परिणामस्वरूप जो लोग जेल यातनाए, दमन ओर दुख को सहते हे, उनके प्रति अपने मन के सम्मान भाव को व्यक्त करते हैं। स्वदेश दीपक की कृति 'मेने माडू नहीं देखा' मे भी फैज का जिक्र आता है जहा फैज अबाला के किसी मुशायरे मे आये हुए हैं। स्वदेश दीपक उनसे कहते हैं, 'खुशवत सिह और कुछ औरो का कहना हे कि आपको नोवल प्राइज मिलना चाहिए।' इस पर फ़ेज का जवाव होता है 'वतन की ख़ातिर जेल की सजा काटना किसी भी ईनाम से वडा होता है।' पाकिस्तान में हुई दो वार की जेल, पहले 1953 ओर फिर 1959 मे इस वात को प्रमाणित करते है कि फ़ेज उन चद साहित्यकारो मे थे जिन्होने कविता ओर जीवन को कभी अलग-अलग नहीं माना तथा एक ही मूल्य का दोनों जगह निर्वाह किया। एडवर्ड सईद ने ठीक ही लिखा है कि 'फ़ेज की शायरी मे कीट्स जैसी गहन ऐंद्रिकता (सेंसुअसनेस) ओर पाब्लो नेरुदा की कविताओ जैसी विषयगत व्यापकता मोजूद है।'

फ़ेज ने शब्द को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं माना वल्कि उन्होंने उसे जीवन की तरह देखा। यानी शब्द जिंदा इनसान के लिए ही नहीं वने हे वल्कि खुद उनमे जिंदगी वसती है। इसीलिए वे एक एक शब्द से प्यार करते हे, उसे शायरी मे सम्मान देते है और उसकी गहराइयो को पहचानते हैं। उनकी एक वहुचर्चित नज्म की लाइन है 'ओर भी दुख है जमाने मे मुहव्वत के सिवा'। इस लाइन म दुख की जगह अक्सर गम का इस्तेमाल भी होता है। कौन सा शब्द सही हे, इस पर भी स्वदेश दीपक की उपर्युक्त कृति मे उनसे सवाल किया गया था। उनका वडा सजीदा जवाव यह था 'यह नज्म शायद 1936 मे मैने लिखी थी। सही याद नहीं। लेकिन दु ख ही लिखा होगा। गम मे इतनी गहराई ओर कसक कहा है।'

एक एक शब्द की कसक और गहराई पहचानने वाला रचनाकार ही शायद वडा कवि या शायर हो सकता है। जिसमें यह क्षमता नहीं है, उसे यकीनन कुछ और काम ढूढ लेना चाहिए। पर यह क्षमता आती कहा से है, यह भी समझना महत्वपूर्ण है। जो इनसानी दिमाग जिंदगी के व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने क कारण ही जिंदगी की सवसे सूक्ष्म और मामूली प्रतीत होने वाली चीजो को पेनी निगाहो से पकड पाता है ओर उनसे सवेदनात्मक लगाव का अनुभव करता है, वही दिमाग भाषा के हर शब्द, छोटे से छोटे या वडे से वडे शब्द से उतनी ही गहराई से जुडता है। यानी जिंदगी की सूक्ष्म व छोटी चीजो से उसकी वडी संवेदना जुडती है और यही प्रक्रिया भाषा के शब्दो पर लागू होती है। जो लोग जिंदगी के केवल तटस्थ भोक्ता और दर्शक हे, उनके रचनाकर्म मे वह गहराई नहीं होती जो जिंदगी और समाज के सघर्षो मे सक्रिय हिस्सेदारी करने वालो की रचनाओ मे होती है। इसीलिए फैज ने गालिव के हवाले से माना था कि 'कृतरों में दजला' देखना ही किसी रचनाकार की दृष्टि की शक्ति और क्षमता पर आधारित होता है। दजला इराक की नदी का नाम है और कृतरो मे दजला यानी छोटी-छोटी वूदो मे भी वडे जीवन-सागर को देख पाना। पर वह केवल देखने तक ही रचनाकार की विशेषता नहीं मानते वल्कि कहते हैं–'यों कहिए कि शायर का काम महज पर्यवेक्षण ही नहीं, पराक्रम करना भी उसका कर्तव्य है' और मानते हैं कि जिंदगी के 'वहाव में दख़लदाज होना–धारा को प्रभावित करना–उसके शोक़ की दृढ़ता और ख़ून की गर्मी पर आधारित होता है।'

फ़ैज का बचपन सियालकोट, लाहौर, लायलपुर, श्रीनगर और धर्मशाला में वीता और प्रकृति के

के समझौते पर भी टिका रहा है। धार्मिक जकडबंदिया भी उपन्यास लेखन को अवरुद्ध करती है क्योंकि उपन्यास जिस विद्रोह व स्वतन्त्रता की कामना से प्रेरित होता है, उसमे सबसे पहले उसका सामना धर्म व परिवार की निरकुशता से ही होता है। इसीलिए फारसी, अरबी इत्यादि भाषाओ मे कई उपन्यास लिखे जाने क बावजूद उपन्यास विधा पूरी तरह विकसित न हो सकी और प्राय पुराने ऐतिहासिक गोरव, रोमाच, वेश्यावृत्ति या कामेडी तक उनके विषय सीमित रहे है। आसपास की दुनिया के प्रति सजगता से पेदा तनाव वहा कम है। कारण यह भी हे कि मुस्लिम समाज मे अशिक्षितों की सख्या अधिक रही या फिर सामती व अग्रेजी शिक्षा प्राप्त भद्र वर्ग की जो मध्यवर्गीय मूल्यो से पूरी तरह जुड न सका। इसलिए मुशायरे की परपरा तो खूब फली फूली पर उपन्यासों का लेखन कोई व्यवस्थित रूप न ले सका।

फ़ेज की शायरी को पढते हुए बार-बार 'ख़्वाब' शब्द से मुलाकात होती हे। यह शब्द किसी दूर की गूज की तरह उनकी नज्मा, गजलो ओर शायरी मे हर तरफ जेसे छाया हुआ है। पुरानी कविता व शायरी में ख़्वाब अक्सर अपनी प्रेमिका स मुलाकात का देखा जाता था, या ख़्वाब जन्नत का था जहा हूरे ओर मौजमस्ती का हर सामान मोजूद रहता है। कभी-कभार ख़्वाबो में सुदर प्रकृति का भी चित्र उभर आता था। पर फेज के यहा ख्वाब आर सपने का मतलब ही बदल गया ओर वह नयी दुनिया की कल्पना से जुड गया। पहले दुनिया-जहान के बारे म जिक्र आता था तो लगता कि दुनिया ने सिर्फ गम ही गम दिये है ओर शायर को दुनिया से दूर चले जाना चाहिए। दुनिया का सताया शायर सिर्फ अपने दु खो म खो गया है। पर शायर का दिल भी अब 20वीं सदी का हे जहा लोग जुल्म के ख़िलाफ़ खडे हो गये ह ओर साम्राज्यवाद से लेकर सामतवाद ओर सैनिक तानाशाही के ख़िलाफ़ लडते हुए नयी दुनिया बनाने की कोशिश कर रहे ह। जिस शायर का दिल इन सघर्षो से अछूता रह जाये, वह शायर कभी अपनी रचना की प्रासंगिकता भी नहीं स्थापित कर सकता हे। ऐसे ही समय मे फ़ेज जेसा शायर 'शायर लोग' नज्म मे बड स्वाभिमान से कह सकता था 'दु ख भरी ख़ल्क (जनता) का दु ख भरा दिल है हम।' फ़ेज के यहा दुनिया के गमों स शिक़ायत की जगह दुनिया के गमो को ही अपना लेने की बात भी बार-बार उठती है आर अपने सुख के सपने पहले की तरह अहम नही रह जाते है। यानी दुनिया के गम अपने ही ख़्वाबो क साथ जुड जाते हे। यह अपनी 'सोच' नज्म मे कहते है

क्यू न जहा का गम अपना ले
बाद म सब तदबीर सोच
बाद में सुख के सपने देखें,
सपना की ताबीर सोचे।

फ़ैज की शायरी म राजनीतिक नज्मों का भी बडा हिस्सा है ओर इन नज्मो मे सुदूर फिलिस्तीन, बेरूत, अफ्रीका आर ईरान के जनसघर्षों के बारे मे लिखा गया है। रूसी क्राति की 50वीं सालगिरह पर उन्होने 'इक़लाब ए रूस' नामक नज्म मे लिखा 'दस्त ए-मजलूम' मे हथकडी की कडी/ऐसी चमकी कि तेग ए-कज़ा' बन गयी'। हथकडियो को तलवार मे बदलते देखने का रूपक पूरी उर्दू शायरी को नयी ऊचाई देता है ओर जिदगी क रगमच पर उसकी भूमिका को बदलकर रख देता है। खुद फेज का मानना

7 अत्याचार सहने वाले हाथ
8 मौत की तलवार

निकट रहने के बावजूद भरे-पूरे परिवार मे ही वह अधिक समय बिताते थे। अपने सस्मरणों मे उन्होंने लिखा भी हे

> हम इनसाना से जितना लगाव रहा, उतना कुदरत के मनाजर (सीन सीनरी) ओर नेचर के हुस्न देखने का नहीं रहा। फिर भी उन दिनों मने महसूस किया कि शहर के जो गली मोहल्ले ह उनमे भी अपना एक हुस्न हे जो दरिया व सहरा, कोहसार या सर्व-ओ-समन से कम नही। अलबत्ता इसको देखने के लिए बिल्कुल एक दूसरी नजर चाहिए। (फ़ेज—सपादन शमशेर बहादुर सिह व मुगीसुद्दीन फरीदी, पृष्ठ 139)

फेज की शायरी मे इसी कारण प्रकृति के इतने विविध रग नही है, बल्कि अलग तरह की रूमानियत हे जो मनुष्य से सबध या सामाजिक असतोष की अभिव्यक्ति के रूप मे मिलती है। उनकी राजनीतिक नज्म बहुत ही उच्च कोटि की ह, पर फेज की शायरी को केवल राजनीतिक स्तर की शायरी के रूप मे देखना फेज के मूल्याकन को सीमित करने जैसा होगा। उनकी शायरी का बडा हिस्सा उदासी एकात ओर दर्द से भरा हुआ हे। यहा ऐसे रचनाकार का अत लोक भी दिखता हे जो कविता पर आस्था रखकर ही खुद की जिदगी को जीने लायक बनाता ह। वह लिखता हे

सहल यू राह ए जिदगी की है
हर कदम हमने आशिकी की ह
हमने दिल मे सजा लिये गुलशन
जब बहारा ने बेरुखी की है।

फ़ज ने अपने बचपन व किशोरावस्था के अनुभवो को व्यक्त करते हुए बताया हे कि किस तरह घर की ओरतो की सोहबत ओर किस्सा दास्तान परपरा की किताबो व उर्दू नॉवेलो ने उनकी जिदगी को प्रभावित किया हे। घर मे ओरतो की सोहबत इसलिए ज्यादा रही क्योकि उनके दानो भाई घर की औरतो से बागी होकर खेलकूद म लगे रहते थे पर फैज 'अकेले इन खवातीन के हाथ आ गये'। इसका फ़ायदा उन्हें यह हुआ कि इंतिहाई शरीफाना जिदगी बसर करने पर उन्हे मजबूर होना पडा ओर असभ्य व उजड्ड किस्म की बात उनके मुह से नहीं निकलती थी। दूसरी ओर छठी-सातवी जमात मे किराये की किताबो की दुकान में दो पेसा किराया देकर जो किताबे उन्होने पढी, उन्होने उनके साहित्यिक सस्कारो को बनाने में बडा योगदान दिया। *तिलस्मे-होशरुबा* तथा *फ़साना-ए-आजाद* जैसे कृतिया ओर अब्दुल हलीम शरर के नॉवेल के बाद मीर, गालिब ओर दाग के कलाम उन्हाने पढे। हालांकि बाद मे फ़ैज के घर मे काम करने वाले मुशी ने फ़ेज के नॉवेल पढने की शिकायत उनके अब्बा से कर दी। अब्बा ने उर्दू नॉवेल पढने के लिए फ़ैज को डाटा फटकारा ओर कहा कि 'नॉवेल ही पढना हे तो अग्रेजी नॉवेल पढ़ो, उर्दू के नॉवेल अच्छे नहीं होते। शहर के क़िले म जो लायब्रेरी है, वहा से लाकर नॉवेल पढा करो।' (वही, पृ 137)। उर्दू के उपन्यास लेखन म जा अवराध आये ओर अच्छे उपन्यासो का अकाल सा दिखता है, उसके पीछे एक कारण यह भी है कि सर सय्यद अहमद खान के नेतृत्व मे मुस्लिम समाज के आधुनिकीकरण की जो मुहिम शुरू हुई और अग्रेजी मे शिक्षित भद्रवर्ग बनाने का जो सघर्ष हुआ, उसने एक ओर तो भद्र वर्ग को किस्सा-दास्तान के लेखन स दूर किया तो दूसरी ओर मुस्लिम समाज की भोतिक स्थितिया ने यथार्थवादी उपन्यास लेखन का विकास नहीं होन दिया। मुस्लिम समाज का मध्यवर्ग भी भिन्न किस्म का रहा है क्योकि सयुक्त परिवारों की टूटन, शिक्षा का विकास व व्यक्ति का उदय वहा अपेक्षाकृत देर से हुआ और परपराओं से तरह-तरह

के समझोते पर भी टिका रहा हे। धार्मिक जकडबदिया भी उपन्यास लेखन को अवरुद्ध करती हें क्योकि उपन्यास जिस विद्रोह व स्वतत्रता की कामना से प्रेरित होता है, उसमे सबसे पहले उसका सामना धर्म व परिवार की निरकुशता से ही होता हे। इसीलिए फारसी, अरबी इत्यादि भाषाआ म कई उपन्यास लिखे जाने के बावजूद उपन्यास विधा पूरी तरह विकसित न हो सकी ओर प्राय पुराने ऐतिहासिक गोरव, रोमाच, वेश्यावृत्ति या कामेडी तक उनके विषय सीमित रहे हे। आसपास की दुनिया के प्रति सजगता से पैदा तनाव वहा कम हे। कारण यह भी हे कि मुस्लिम समाज मे अशिक्षितो की सख्या अधिक रही या फिर सामती व अग्रेजी शिक्षा प्राप्त भद्र वर्ग की जो मध्यवर्गीय मूल्यो से पूरी तरह जुड न सका। इसलिए मुशायरे की परपरा तो खूब फली फूली पर उपन्यासो का लेखन कोई व्यवस्थित रूप न ले सका।

फ़ेज की शायरी को पढते हुए बार-बार 'ख्वाब' शब्द से मुलाकात होती है। यह शब्द किसी दूर की गूज की तरह उनकी नज्मो, गजलो और शायरी मे हर तरफ जैसे छाया हुआ हे। पुरानी कविता व शायरी म ख़्वाब अक्सर अपनी प्रेमिका से मुलाकात का देखा जाता था, या ख़्वाब जन्नत का था जहा हूरे ओर मोजमस्ती का हर सामान मोजूद रहता है। कभी-कभार ख्वाबा मे सुदर प्रकृति का भी चित्र उभर आता था। पर फेज के यहा ख्वाब और सपने का मतलब ही बदल गया और वह नयी दुनिया की कल्पना से जुड गया। पहले दुनिया-जहान के बारे म जिक्र आता था तो लगता कि दुनिया ने सिर्फ गम ही गम दिये हे ओर शायर को दुनिया से दूर चले जाना चाहिए। दुनिया का सताया शायर सिर्फ अपने दु खो मे खो गया है। पर *शायर का दिल भी अब 20वी सदी का है जहा लोग जुल्म के* खिलाफ खडे हो गये हें ओर साम्राज्यवाद से लेकर सामतवाद आर सेनिक तानाशाही के ख़िलाफ़ लडते हुए नयी दुनिया बनाने की कोशिश कर रहे ह। जिस शायर का दिल इन सघर्षो से अछूता रह जाये, वह शायर कभी अपनी रचना की प्रासगिकता भी नही स्थापित कर सकता है। ऐसे ही समय मे फज जैसा शायर 'शायर लोग नज्म मे बडे स्वाभिमान से कह सकता था 'दु ख भरी खल्क (जनता) का दु ख भरा दिल है हम।' फेज के यहा दुनिया के गमो से शिकायत की जगह दुनिया के गमों को ही अपना लेने की बात भी बार बार उठती हे ओर अपने सुख के सपने पहले की तरह अहम नही रह जाते ह। यानी दुनिया के गम अपने ही ख़्वाबा के साथ जुड जाते हे। वह अपनी 'सोच' नज्म मे कहते है

क्यू न जहा का गम अपना ले
बाद म सब तदवीरे सोच
बाद म सुख के सपने देखें
सपनों की तावीरे सोचे।

फेज की शायरी म राजनीतिक नज्मो का भी बडा हिस्सा है ओर इन नज्मो मे सुदूर फिलिस्तीन, बैरूत, अफ्रीका ओर ईरान के जनसघर्षो के बारे मे लिखा गया हे। रूसी क्राति की 50वी सालगिरह पर उन्होने 'इकलाब ए रूस' नामक नज्म मे लिखा 'दस्त ए मजलूम'[7] म हथकडी की कडी/ऐसी चमकी कि तेग ए-कजा[8] बन गयी। हथकडियो को तलवार मे बदलते देखने का रूपक पूरी उर्दू शायरी को नयी ऊचाई देता हे और जिदगी के रगमच पर उसकी भूमिका को बदलकर रख देता है। खुद फ़ेज का मानना

7 अत्याचार सहने वाले हाथ
8 मोत की तलवार

था कि वह जिस दौर के शायर है उस दोर को व्यक्त करने लिए केवल शायरी का प्रचलित रूप ही काफ़ी नहीं है। वल्कि वर्तमान सघर्षो को व्यक्त करने के लिए शायरी का ज्यादा वडा कोई रूप अपनाना पडेगा। कोई ऐसी चीज लिखनी होगी जो महान सघर्षो को बया कर सके। पत्नी एलिस फेज को 27 जुलाई 1954 को जेल से लिखे पत्र मे वे लिखते हैं

> 'छोटी मोटी चीजे लिखने को जी नही चाहता। कुछ एत्माद (आत्मविश्वास) पेदा हो जाये तो इरादा है कि पुरानी रज़्मिया (एपिक) नज़्मों के पेमाने पर कोई बडी चीज लिखू जिसमे अपने दौर की अजीमुश्शान (महान) कश्मकशे हयात (जीवन-सघर्ष) का बयान हो सके। इसलिए कि हमारा दोर शायद तारीख़ (इतिहास) का सबसे शुजाआना (शोर्यपूर्ण) ओर वलवला-अगेज (उमग भरा) दोर है। न जाने कभी लिख पाऊगा या नहीं लेकिन इरादा जरूर है।'

यह वही दोर था जब दुनिया मे चीन की क्राति हुए अभी पाच साल ही हुए थे और उपनिवेशवाद अपने अतर्विरोधो व मुक्ति सघर्षो के सयुक्त कारणो से कई देशो से विदा होने लगा था। भारत जेसे देशो म साम्यवाद की स्थिति निरतर मजबूत हो रही थी और खुद उर्दू मे तरक्कीपसद लोगो की तुलना म अदब-वराय-अदव यानी 'कला कला के लिए' जेसे सिद्धात पर शायरी करने वालो की सख्या कम हो रही थी। उनकी शायरी मे इगलैड या अमेरिका का नाम कहीं नहीं आता ह पर पढने वाले समझ जाते हैं कि किस तरह उपनिवेशवाद का विरोध उनकी शायरी का सवसे प्रिय मकसद है। फेज को दो बार पाकिस्तान मे कम्युनिस्ट पार्टी से सबध रखने के कारण जेल जाना पडा और उन्होंन जजीर, दर्द, केद ओर सितम जेसे शब्दो को इस दोरान बार-बार इस्तेमाल किया। उनकी शायरी मे ख़्वाब के साथ साथ तरवेय्युल (कल्पना शक्ति) शब्द का भी गहरा प्रयोग मिलता है। वह जीवन के यथार्थ स पलायन को वुरा समझते थे पर यह भी जानते थे कि उपनिवेशवाद व सामती मूल्यो मे जकडे भारतीय उपमहाद्वीप के इनसान को जिस यथार्थ का सामना करना पडता हे, उसमे फेटेसी, कल्पना व सपनो के रूप म यथार्थ से कुछ दूर जाकर ही खुद को बचा भी पाता हे। उसका पलायन करना कल्पना मे प्रति ससार खडा करने जेसा होता हे, जहा वह उस यथार्थ को जीना चाहता है जिसका वास्तविक जीवन मे निरतर दमन किया जाता ह। इस प्रति ससार मे वह सामाजिक ससरशिप को भी समाप्त कर देता है। उसकी चेतना तत्कालीन दवावो से मुक्त कर स्वय को न केवल नष्ट होन से बचाती है वल्कि अपना उदात्तीकरण भी करती हे। जेल हो या तग परिवेश, दोनो की सलाख़े उसके लिए छोटी हो जाती ह। जेल के दौर की उनकी नज़्मा मे उदासी का रग अगर कल्पना मे गहराई तक घुल मिल जाता हे तो इसका कारण भी यही है। 1953 में जव वह जेल मे थे तो अपनी शादी की सालगिरह पर जो पत्र उन्होने पत्नी को लिखा, उसमें जैसे साहित्य व लेखक की इसी नियति को उन्होने शब्द प्रदान कर दिये। उन्होंने लिखा

> आदमी तखय्युल के बल पर गिर्दो पेश (चारों ओर) की दल दल से पाव छुडा सकता है। फ़रारियत (पलायन) वुरी वात है। लेकिन जब हाथ पाव जकड़े हुए हों तो आजादी का वाहिद (एकमात्र) सुख यही रह जाता है। इसी नुस्खे के तुफ़ैल (वहाने) मुझे जेल की सलाख़ बहुत ही हकीर (तुच्छ) और बेहकीक़त दिखायी देन लगी है और वेश्तर औकात उनकी तरफ ध्यान ही नहीं जाता है।

फ़ैज की शायरी वहुस्तरीय है और व्यापक सवेदना वाली है। भारतीय उपमहाद्वीप मे मनुष्यता की रक्षा के लिए जो सघर्ष हुए है और चल रहे है उन्हें किसी ठोस दस्तावेज की तरह उनकी रचनाए व्यक्त करती

है। तरह-तरह के काले कानून, पुलिस आतक, फौजी दमन, तानाशाही, चुनावी धाधलिया और भष्ट हुकूमतो के खिलाफ सघर्षो का रक्तरंजित इतिहास उसमे झलकता है। इसलिए फैज की शायरी मे बेहद निजी प्रतीत होने वाले सवाल भी जैसे पूरी मानवता के सवाल चन गये ह। मे और हम के बीच जैसे भेद ही खत्म हो गया है। अवाम का सघर्ष ही फैज की शायरी का सघर्ष है ओर फैज के सवाला मे अवाम की ही आवाज सुनायी देती हे। कत्लेआम के शिकार सारे अवाम फेज की कलम के जरिये यह सवाल पूछते लगते है

लाओ तो कत्लनामा मेरा, मे भी देख लू
किस किस की मुहर है सर ए महजर लगी हुई

मो 09711312374

---

9 आदेशपत्र

सुर्ख़ चिराग़ की लौ

मोहम्मद जफ़र इकबाल

यह छोटा सा निबध हिंदी-उर्दू–दोनो की काव्य परपरा के रसज्ञ एक युवा आलोचक ने लिखा है। फ़ैज की शायरी के हर मोड पर सुर्ख़ चिराग किस तरह मौजूद है और वह किस तरह आशा की लौ से रौशन हो रहा है यह इस टिप्पणी मे बख़ूबी उजागर किया गया है। –स

ऐसे समय मे जब इधर की दुनिया उधर हो जाती है और एक पत्ता तक नहीं हिलता तो फैज की याद आती है। प्रतिबद्धता को प्रश्नचिह्न के भीतर देखते ह तो फ़ज की याद आती है। 'बोल कि लब आजाद हे तेरे/बोल जहा अब तक तेरी है' का तावीज बनाकर गले म लटका लेने से प्रतिबद्धता नहीं आती। एक सजग कवि के लिए प्रतिबद्धता कोई प्रोपगेडा नहीं होता बल्कि जीवन का एक सहज भाव हाता हे। फैज *दस्ते-सबा* सग्रह की भूमिका मे कवि की प्रतिबद्धता पर विस्तार से चर्चा करते है

यू कहिए कि शायर का काम केवल देखना ही नहीं आत्मसघर्ष भी उसका फ़र्ज है। आसपास के बेचैन पानी की बूदों मे जिदगी के दजला (इराक की एक नदी) को देखना उसकी दृष्टि पर हे उसे दूसरा को दिखाना उसकी कला क्षमता पर, उसके बहाव में हस्तक्षेप करना उसकी इच्छाशक्ति ओर ख़ून की गर्मी पर।

ओर ये तीनो काम निरतर सधान और सघर्ष चाहते है।

जिस दृष्टि ने मानवीय इतिहास के जीवन समुद्र के चिह्न और चरण नही देखे उसने दजला को क्या देखा है। फिर शायर की दृष्टि अतीत तक पहुच भी गयी। परतु उनके चित्रण मे कथ्य की वृद्धि न थी या अगले गतव्य तक पहुचने के लिए अगर वे तन ओर मन तथा प्रयास और इच्छा पर राजी न हुए तो जाहिर है कि शायर अपनी विधा से पूरी तरह न्याय नहीं करता।

शायद इस लबे ओर विस्तृत उद्धरण को सरल शब्दों मे बताना अनावश्यक है। मुझे केवल यह कहना था कि मानव जीवन के सामूहिक सघर्ष तक पहुचना और उस सघर्ष मे इच्छानुसार वृद्धि, जीवन का उद्देश्य ही नही कला का भी उद्देश्य है।

कला इसी जीवन का एक भाग हे और कला के लिए सघर्ष इसी सघर्ष का एक पहलू है। यह तक़ाजा अनवरत जारी रहता है। इसलिए कला के विद्यार्थियों के सघर्ष में कोई मुक्ति नहीं। उसकी कला एक निरतर प्रयास है ओर स्थायी सरचना भी।

इस प्रयास में सफलता या असफलता तो अपनी-अपनी इच्छा ओर क्षमता पर है। लेकिन प्रयासरत रहना सभव भी हे ओर आवश्यक भी।[1]

---

1 *नुस्खहाए वफ़ा* फैज अहमद फ़ैज एजुकेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली सस्करण 2001 पृ 103-04

इस लबे उद्धरण म फ़ेज ने कवि के रोल आर कविता की रचना प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला है। फ़ेज की कविता पर ये सभी बाते लागू होती ह।

फ़ेज की रचनात्मकता के कइ आयाम ह आर फ़लक़ भी काफी विस्तृत है। विविधता विषय वस्तु ओर शिल्प दोनो स्तरो पर हे। वे केवल नारेबाजी मे गुम होकर नही रह गय बल्कि क्लासिकी ढग की शायरी पर भी उनकी अच्छी पकड है। परतु सोच का दायरा तो नया है ही। 'उनकी आवाज मे पुराने शायरो के वजन ओर कलाकारी का कमाल भी मिलता ह ओर नयी जिदगी की बेचैनी ओर इकलाबी होसला उन्हाने परपरा से केवल उतना ही हटने का प्रयास किया हे जितना अपने विचारा को प्रकट करने के लिए जरूरी समझा हे।'[2]

जेसा प्राय सभी कवियो के साथ होता है। फैज ने भी आरभ मे रूमानी ढग की कविताए लिखी परतु जल्दी ही उन्होने अपना मिजाज बदल लिया ओर उनकी वे कविताए सामने आयी जिनके लिए हम फेज को याद करते हे। शायर को अतत यह अनुभव हो गया कि 'आर भी दुख ह जमाने म मुहब्बत के सिवा'। 'चूकि प्रेमिका का दु ख और दुनिया का दुख ता एक ही अनुभव के दो पहलू ह। इस नये अनुभव का आरभ *नक्शे-फ़रियादी* (पहला सग्रह) क दूसरे हिस्से की पहली नज्म से होता हे। उस नज्म का शीर्षक हे 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग'। उसके बाद तरह-चोदह बरस तक 'क्या न जहा का गम अपना ल' म गुजरे।'[3]

फेज की कविता के कई रग ह

'फूल भी, शूल भी'

फैज की कविता मे फूल भी ह आर शूल भी। उर्दू कविता की परपरा म प्रेम का अत्यधिक ओर समाज का अपेक्षाकृत कम चित्रण होता रहा ह परतु अलग अलग सदर्भो म। फेज के यहा आकर दोना एक दूसरे म घुल मिल जाते ह। समाज के लिए लडन की प्रेरणा प्रेम से ग्रहण करते ह आर समाज के लिए लडते हुए थक जाने पर प्रेम की छाव म विश्राति पाते ह। दोना कही एक दूसरे के लिए बाधक नही ह। एक ही कविता मे जहा एक ओर महबूबा ओर उसकी मुहब्बत का वणन करत ह तो दूसरी ओर 'जा बजा बिकते हुए कूचओ बाजार म जिस्म/ खाक मे लुथडे हुए खून म नहाये हुए भी याद आते हे। वे अपनी प्रेमिका के इश्क मे पडकर खो नही गय बल्कि इस माध्यम से बहुत कुछ सीखा

आजिजी[4] सीखी गरीबा की हिमायत सीखी
यास व हिरमा[5] क दुख दर्द के मानी सीखे
जेरदस्ता[6] के मसाइब[7] का समझना सीखा
सर्द आहो के, रुखे जर्द[8] के मानी सीखे

('नुसख़हाए वफा पृ 62)

2 उर्दू अदब की तनक़ीदी तारीख़ एहतेशाम हुसन एन सी पी यू एल आर के पुरम नयी दिल्ली सस्करण 2009 पृ 276
3 नुसख़हाए वफ़ा पृ 310 11
4 दीनता
5 यास व हिरमा निराशा
6 पिछडे हुए दबे हुए
7 समस्या
8 पीला चेहरा

सन् 1951 से 1955 तक फ़ेज जेल म रहे ओर इस दोरान भी उनका लेखन लगातार जारी रहा। *दस्ते सबा* ओर *जिदानामा* सग्रह की रचनाए इसी दोरान की है। ये दोनो सग्रह फेज की रचनात्मकता का श्रेष्ठ उदाहरण ह। सोना आग मे तपने के वाद कुदन वन जाता है। *दस्ते-सवा* सग्रह की शुरुआत कुछ इस ढग से होती है।

'मताए लौह-ओ-कलम'[9] छिन गयी तो क्या गम है,
कि खूने दिल में डुवो ली हैं उगलिया मैने
जवा पे मुहर लगी है तो क्या कि रख दी है
हर एक हलकुए-जजीर[10] मे जवा मने।'

('नुस्ख़हाए वफ़ा , पृ 107)

फ़ैज के यहा 'लोह-ओ-कलम' वार-वार आता है जो उनकी रचनात्मकता की अभिव्यक्ति का माध्यम है। शरीर को कैद किया जा सकता है मगर विचारो की अभिव्यक्ति को प्रतिवंधित करना इतना आसान नहीं। अभिव्यक्ति का खतरा उठाना आसान नही है वल्कि उसके लिए अपना लहू भी देना पडता है। पर यह शक्ति कहा से आती है? अपने सकुचित 'मे से 'हम' तक पहुचने की प्रक्रिया के माध्यम से आती है। तब 'मे' मे हम ओर हम मे म' की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है। फ़ैज 'म की शेली मे नहीं वल्कि 'हम' की शेली मे कविता लिखने को अच्छा मानते हे। 'वल्कि म तो शेर मे भी जहा तक सभव हो व्यक्ति वाचक सज्ञा का प्रयोग नहीं करता, ओर 'मे' के वजाय हमेशा से 'हम' लिखता आया हू।[11]

ये जहा, वो जहा

फैज स्थान विशेप पर टिककर लिखने वाले कवि नहीं हें। वे एक समय मे अतीत से भविष्य तक की यात्रा करते हे। वर्तमान को हम देखते हे, पर अतीत बोलता हे। उनके यहा हाफ़िज, अमीर खुसरो, गालिव, इकबाल सभी आते है। ऐसा लगता है कि फेज की कविता मे ये सभी बोल रहे है। साथ ही साथ तत्कालीन समय समाज की वैश्विक अनुभूति ओर अभिव्यक्ति फैज के यहा वहुत है। सिकियाग, पीकिग लेनिनग्राड, Come on Africa, इरानी तुल्वा के नाम, फिलिस्तीन पर दो नज्मे शीर्षक कविता के माध्यम से इसे देखा जा सकता हे। फिलिस्तीन पर इजराइल के आक्रमण ओर अतिक्रमण का उन्होने विरोध किया था जिसको वे अपनी रचनात्मक प्रतिवद्धता का अग मानते हे, इसी का उल्लेख *पाकिस्तान टाइम्स* मे छपे 'किस्सागो फेज' शीर्षक आपवीती मे मिलता हे।

दुनिया भर के दुख दर्द को अपनाना, दमन शोषण का विरोध करना फेज ने जीवन भर नही छोडा। पर उनके भीतर एक नाजुक दिल था ओर उसमे दर्द भी था जिसे वे दवाये हुए थे। उनके वडे भाई की मृत्यु ने उन्हे भीतर तक तोड दिया था। शायद यही से दुख दर्द भी 'म से 'हम' मे वदल गया ओर फेज ने पूरी मानवता के दर्द को अपना लिया। 'नोहा' (प्रकाशन-18 जुलाई 1952) नाम से एक कविता फेज ने अपने भाई के निधन पर लिखी थी जो वहुत सरल भापा मे दर्द को पूरी तरह समेटे हुए है

9 कलम ओर तख़्ती रूपी सपत्ति
10 जजीर के घेरे मे
11 *नुस्ख़हाए वफ़ा* पृ 307

मुझको शिकवा है मेरे भाई कि तुम जाते हुए
ले गये साथ मरी उम्र गुजश्ता[12] की क़िताब
इसमे तो मेरी बहुत कीमती तस्वीर थी
इसम बचपन था मरा आर मेरा अह्द शबाब[13]

('नुस्ख़हाए वफा', पृ 153)

'उम्मीदे सहर की बात सुनो'

फ़ैज आशा ओर उत्साह के कवि है, अगर निराशा आती भी है तो थोडी देर के लिए। उनका स्थायी भाव आशा है। हर दोर की रचनाओ म आशा का स्वर मुखर है। पहले सग्रह *नक्शे फ़रियादी* म भी स्थान स्थान पर आशा का स्वर है ऐसा लगता है कि जल्द ही सब कुछ ठीक हो जायेगा।

चद रोज ओर मिरी जा' फ़कत चद ही रोज
जुल्म की छाव मे दम लेने को मजबूर ह हम

लेकिन अब जुल्म की मियाद के दिन थोडे है
इक जरा सब्र की फरियाद के दिन थोडे है।

(नुस्खहाए वफा पृ 75)

फ़ैज की एक प्रसिद्ध कविता है 'सुब्हे आजादी अगस्त'47' जिसमे वे देश की आजादी से खुश नही ह। उन्ह लगता है कि देश के लोगो को छला गया है। 'वह इतजार था जिसका यह वह सहर तो नहीं' ओर लोगा से आह्वान करते ह कि 'चले, चलो कि वह मजिल अभी नही आयी । फ़ैज लोगो को जगाते हे और क्राति का आह्वान करते ह

ऐ खाक नशीना उठ बेठा, वह वक्त करीब आ पहुचा हे
जब तख्त गिराए जायेगे जब ताज उछाले जायग

(नुस्ख़हाए वफा, पृ 138)

पर धीरे धीरे उनकी यह शैली कुछ सयमित होती जाती हे ओर क्राति की बात दब सी जाती हे। पर दुनिया को बदलने का प्रयास जारी रहता हे। पर यह प्रयास सामूहिक स वयक्तिक होता जान पडता हे। पाकिस्तान के स्वतनता दिवस पर 1952, 1955 ओर 1967 मे भी फैज ने कविता लिखी हे जिसे सन् 47 वाली कविता से जोडकर देखा जा सकता हे। 'अगस्त सन् 52 शीर्षक से जा कविता ह उसकी अंतिम पक्ति इस प्रकार हे

हे दश्त[14] अब भी दश्त मगर खूने पा से फ़ैज
सराब[15] *ख़ार मुगीला[16]* हुए ता हे

(नुस्ख़हाए वफा पृ 160)

---

12 बीते हुए दिन
13 युवावस्था
14 जगल
15 सिचिन
16 बबूल का काटा

इस तरह 'अगस्त सन् 55' शीर्षक कविता में भी कुछ इसी तरह का भाव है कि अब भी परिवर्तन की उम्मीद है पर आशा नही छोडनी चाहिए और प्रयास करते रहना चाहिए

फिर से बुझ जायेगी शम्मे जो हवा तेज चली
ला के रखो सरे-महफिल[17] कोई खुर्शीद[18] अब के

('नुस्ख़हाए वफ़ा', पृ 288)

फेज मार्शल लॉ के दौर मे सरकार द्वारा बहुत सताये गये और उसका वर्णन भी उनकी कविता मे मिलता हे

यहा से शहर को देखो तो हल्का दर-हल्का[19]
खिची है जेल की सूरत हर सिम्त[20] फसील[21]

('नुस्ख़हाए वफा , पृ 405)

पर सब कुछ के बाद अतत कवि के पास आशा हे। 14 अगस्त 1967 के दिन कविता के माध्यम से दुआ मागते है

आइए हाथ उठाये, हम भी
हम जिन्हे रस्मे दुआ याद नहीं
हम जिन्हे सोजे मुहब्बत के सिवा
कोई बुत कोई खुदा याद नहीं।

('नुस्ख़हाए वफा , पृ 429)

अत मे फेज के उस भाषण के अश को देखते है जो उन्होने 1964 ई में 'अतर्राष्ट्रीय लेनिन शांति पुरस्कार' लेते समय दिया था।

> वैसे तो मानसिक रूप से दिवालिया और अपराधी लोगों के अतिरिक्त सभी मानते है कि शांति ओर आजादी बहुत सुदर और चमकदार चीज है ओर सभी विचार कर सकते है कि शाति गेहू के खेत ह ओर सफेदे के वृक्ष, दुल्हन का आचल है ओर बच्चो के हसते हुए हाथ, शायर का कलम है ओर चित्रकार के लिए तूलिका और आजादी उन सभी कारको के लिए उत्तरदायी है और गुलामी इन सब ख़ूबिया की कातिन है जो इनसान और हेवान म फर्क करती है। अब मानव की बुद्धि विज्ञान ओर उद्योग के फलस्वरूप उस स्थिति तक पहुच चुकी है कि जिसम सब पोपित हो सकते है और सभी झोलिया भर सकती है। परतु शर्त यह है कि यह अनमोल धरोहर पेदावार के ये असीमित खाद्यान्न भडार, कुछ व्यापारियो और विशेष वर्ग के लालच को पूरा करने के लिए नही बल्कि सभी इनसानो की भलाई के लिए काम में लाये जायें।

17 महफिल के किनारे
18 सूरज
19 जगह-जगह
20 ओर दिशा
21 चारदीवारी

मुझे विश्वास है कि मानवता जिसने अपने दुश्मनो से कभी हार नही खायी अब भी जीतकर रहगी। और अतत युद्ध ओर घृणा तथा अत्याचार ओर छल-कपट के बजाय हमारी आपसी जिदगी की निर्मिति ही स्थायी ठहरेगी।[22]

इस उद्धरण को पढने के बाद दिखता हे कि फ़ैज की दृष्टि कितनी व्यापक थी, यह व्यापकता उनकी कविताओ मे भी स्पष्ट रूप से परिलाक्षित होती है। विश्व के सामने तब जो सकट थे वे आज भी विद्यमान ह। आइए हम सब मिलकर दुआ के लिए हाथ उठायें ताकि फ़ैज की जन्मशताब्दी पर शायद उनकी इच्छा किसी हद तक पूरी हो सके।

मो 09868584878

22 नुस्ख़हाए वफ़ा पृ 304 305 306

पंजावी कविता

सतिंदर सिंह नूर

फेज अहमद फेज ने लगभग सारी शायरी उर्दू म लिखी। परतु वे पजावी थे। उनका जन्म सियालकोट म हुआ था। सियालकाट ठेठ पजावी क्षेत्र है जो कि अव पाकिस्तान म है। उन्हाने अपनी प्राथमिक शिक्षा उर्दू, फारसी तथा अरवी भाषा म ली। 1928 म उन्हान अपनी पहली गजल कही। 1933 म उन्हान अंग्रेजी म एम ए पास किया और अग्रेजी क प्राध्यापक भी पहल-पहल अमृतसर (पजाव) म ही लगे। परतु शायरी उन्हान लगातार उर्दू म ही की। व अक्सर इस वात का जिक्र करत रह कि पजावी म भी उन्हान कविता लिखनी ह, क्योंकि वारिस शाह, सूफी कविता व पजावी लोकगीतो क साथ उनकी मुहब्बत अथाह थी। फिर उन्हान कुछ कविताए पजावी म लिखीं।

तमाम उम्र उनका सवध प्रगतिशील कविता स रहा। या तो उन्होंने वहुत प्रभावशाली रूमानी कविता लिखी, क्याकि यह समय व दार रूमानी प्रगतिशील कविता का था। पजावी मे जा उन्होंने प्रगतिशील कविता लिखी, उसका सवध आम लागा से है। उन्हान किसान को जागृत होने का कहा, क्योंकि किसान सारे समाज को राटी दता ह, परतु स्वय सामाजिक व आर्थिक तौर पर कमजोर ह। फेज अहमद फैज किसान को मुर्दा हालत म नहीं दखना चाहत थे। ऐसी शायरी उन्हाने वहुत साधारण और ठेठ पजावी म कही। इस शायरी को उन्हाने पजावी किसान के लिए तराना कहा

उठ उत्ता नू जट्टा
मुरदा क्या जान
भुलिया तू जग दा अनदाता
तेरी वादी धरती माता
तू जग दा पालनहारा
ते मुरदा क्यो जाने
उठ उत्ता नू जट्टा
मुरदा क्यो जानें
जनरल करनल सूबेदार
डिप्टी डी सी थानेदार
सारे तेरा दित्ता खावन
तू जे न बेचे तु जे न धावे
भुक्खे मा‍ने सव मरजावन

एइ चाकर तू सरकार
मुरदा क्यो जान
जिच कचहरी, चौकी, थाने
कीह इव भूल, ते कीह स्याने
कीह अशराफ ते कीह न माने
सारे खज्जल ख़्वार
मुरदा क्या जाने
उठ उत्ता नू जट्टा
एका कर लो, हो जाओ इकट्ठे
भूल जाआ रागड, चीम चट्ठ
सभ्भे दा एक परिवार
मुरदा क्यो जान
जे चढ़ आवन फोजा वाले
तो वी छोया लव कराले
तेरा हक तरी तलवार
ते मुरदा क्या जान
दे अल्लाह हु दी मार
ते मुरदा क्या जानें
उठ उत्ता नू जट्टा

पाकिस्तान म उस समय जो पजाबी कविता लिखी जा रही थी, उस मे अधिकतर बौद्धिक जटिलता नही थी क्योंकि वह कविता अधिक से अधिक सामान्यजन के नजदीक रहकर उनके यथार्थ की बात करना चाहती थी। इसीलिए इस कविता पर लोक सस्कृति का बहुत प्रभाव था तथा काव्य भाषा भी लोकभाषा के ज्यादा से ज्यादा करीब रहती थी। परतु इस कविता पर प्रगतिवादी लहर या समाजवादी विचारधारा का बहुत प्रभाव था। इसीलिए फैज अहमद फैज ने समस्त किसाना को इकट्ठा होने को कहा तथा सामाजिक दीवारा तथा जात-पात को भूल कर एक परिवार बनने को कहा। ऐसी कविता चाहे किसान को सबोधित हे परतु यह केवल किसान के लिए नहीं हे। किसान महज इसमे एक प्रतीक बन जाता ह। इस कविता की आवाज समूची लोकसत्ता की है।

फैज अहमद फज ने जा अन्य पजाबी कविताए लिखी, उनका स्वर व विधि कुछ अलग हे। पाकिस्तान की पजाबी कविता मे प्रगीतात्मक काव्य छाया हुआ है। समकालीन पजाबी कविता म बहुत सुदर प्रगीत लिखे गये, क्योकि पाकिस्तान की पजाबी सस्कृति लोक सस्कृति के अभी भी बहुत नजदीक है। इसलिए वहा पजाबी की प्रगीतात्मक कविता लोगा मे बहुत मकबूल हे। यह कविता ठेठ पजाबी मे भी लिखी जाती है। ऐसी कविता मे बेहिसाब बलूची शब्द भी ह। पजाबी किस्सो मे हीर-राझा, सोहनी-महीवाल या अन्य प्रेमी नायको का जिक्र होता है, उनके प्रतीक ऐसी कविताओं मे आम होते हे। केवल यही नही अपितु इन प्रगीतो पर सूफी शायरी का भी बहुत गहरा असर होता है। कई बार तो शाह हुसेन तथा बुल्ले शाह के अदाज मे ही वे प्रगीत लिखे मालूम होते हे। जैसे बुल्ले शाह ने अपनी काफी लिखी थी—'इल्मो बस करी ओ यार', फैज अहमद फैज ने भी एक नगमा इन काफिया की भाति ही लिखा

वतने दिया ठढ़िया छाई ओ यार
टिक रो थाई ओ यार
रोजी देवेगा साई ओ यार
टिक रो थाई ओ यार
हीर नृ छढ टुर गयी क्यो रझीठे
खेडिया दे घर पे गये दासे
पिड विच कढ़्ढी होर शरीका
यारा दे ढेह मुडासे
वीरा दिया दुर गय्या वाई आ यार
टिक रो थाई ओ यार।

उनकी ऐसी प्रगीतात्मक कविता मे रूमानी रग घुला मिला है क्योंकि फेज अहमद फ़ैज मूल तौर पर प्रगतिशील कवि है। इसलिए ऐसे रूमानी प्रगीत मे भी जब वह अपने आगन तथा झाक के सब खैर की बात करते है तथा गैरो के महल छोडने को कहते है, तब वे लौकिक अदाज मे एक विचारधारात्मक अवचेतन से जुडे हुए है तथा इस प्रगीत मे बडी सरलता से उसका सचार भी कर देते ह। साथ ही उनकी काव्य पक्तिया निराले लोकगीत की शैली मे ढल जाती है—

रोजी देवेगा साई
काग उडावन मा वो बहना
तिरले पावन लक्ख हजारा
खेर मनावन सगी साथी
चरखे आल रावन मट्यारा
हाडा कर दिया सुजिया राई ओ यार
टिक रो थाई ओ यार
वतने दिया ठडिया छाई
छड गैरा दे महल चोमहले
अपने वेहडे दी रीस न काई
अपनी झोक दिया सत्ते खेग
चीवा तुस ने कद्र न पाई
मोड महारा
ते आ घर वारा
मुड आके मोल न जाई ओ यार
टिक रो थाई ओ यार

पाकिस्तान म पजाव के ज्यादातर कविया ने उर्दू के साथ साथ पजाबी म भी कविता कही है। मुनीर नियाजी जफ़र इकवाल तथा आर बहुत सारे कविया का पजावी शायरी म नाम लिया जा सकता है। उनके अनेक पजावी काव्य सग्रह भी ह परतु फेज अहमद फेज ने पजावी मे केवल कुछ ही कविताए लिखीं। इसलिए मूल तौर पर वह उर्दू के ही शायर माने जाते ह। पजावी म उन्हाने जो कविताए लिखीं उनम पजावी कविता की परपरा को वे पूरी तरह निभाते है तथा पजावी कविया ने उनकी चद एक कविताआ की चर्चा भी की है।

मो 09811305661

कथा-साहित्य के संदर्भ मे आलोचना-दृष्टि

अली अहमद फातमी

मुम्ताज हुसेन ने फेज के बारे मे एक जगह लिखा था

'फैज जव भी महफिल में आये, एक छोटी सी किताव
एक कता किसी नामुकम्मल गजल के चद अश्आर
कुछ मश्के सुखन ओर कुछ माजरत लेकर आये
और हर बार कामयाव आये।

(फैज नवर—फन और शख्सियत)

अहले इल्म वाकिफ ह कि फेज का शेरी सरमाया कम है ओर नस्र का सरमाया इससे भी कम कुछ भूमिकाए, कुछ लेख, कुछ खत या कुछ खुतवात वगेरह। यह सव कुछ अपनी कमियत के एतवार से ज्यादा न सही लेकिन फिक्र व खयाल, नजर व नजरिया के एतवार से बेहद अहम ह। इनके बगेर फेज की शायराना व दानिशवराना शख्सियत को समझ पाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन भी हे।

उनके निवध-सग्रह 'मीजान' म वेसे तो नजरिया, मसायक, मोतकद्दमीन, मोआसरीन के शीर्षक से तकरीबन तीस लेख शामिल ह। जिनमे कुछ ऐसे भी है जिन्हे लेख नही कहा जा सकता। चूकि वह लेख फेज के ह इसलिए किताबो मे शामिल है। इसके विपरीत कुछ लेख –मसलन, अदब का तरक्की पसद नजरिया, शायरी की कद्रें, खयालात की शायरी, उर्दू शायरी की पुरानी परपराए, नये अनुभव गालिब ओर जिदगी का फलसफा, इकवाल और जोश पर लेख—ऐसे हे जिनसे वहस ओर फिक्र के सोते फूटते ह ओर जिन पर लबी बातचीत की जा सकती हे। वक्त की तगी की वजह से मेने उनके फिक्शन से सबंधित लेख को ही बहस का विषय वनाने की कोशिश की हे। यह कोशिश इसलिए भी कि उर्दू की साहित्यिक व सास्कृतिक परपरा अजीवोगरीव रही है। यहा एक जमाने तक आम तो' पर साहित्य का मतलव शायरी ओर शायरी का मतलव गजलगोई समझा जाता रहा हे। गद्य ओर दुनिया की चीज समझी जाती रही। हालाकि उन्नीसवी सदी म ही कुछ शायरो ओर साहित्यकारा ने इस खयाल को तोडने की कोशिश की। हाली, शिवली, आजाद वगेरह की इन कोशिशो को बीसवी सदी म फेज, फिराक, सरदार जाफरी वगैरह ने आगे बढाया। इसलिए कि ये सवके सव सिर्फ ओर सिर्फ शायर न थ वल्कि विचारक ओर चितक थे आर शेरो शायरी को सिर्फ व्याकरण ओर छद मे उलझाए रखने के वजाय जिदगी ओर दुनिया के हवाले से दखत थे।

फ़ज न सिर्फ तरक्कीपसद तहरीक के, बल्कि इकबाल, जोश के बाद उस दौर के सबसे प्रिय, हरदिल अजीज ओर अहम शायर थे जिन्होंने कम उम्र से ही अपनी शायरी का लोहा मनवाया। भरी जवानी में, बल्कि भरे इश्क मे वह महबूब की जुल्फो से निकल कर जिदगी की जुल्फो को सुलझाने मे व्यस्त हो गये आर इस कमउमी के दोर म साहित्य के तमाम विषया पर कइ लेख लिखे जिनम फिक्शन से सबंधित उनके चार लेख ह–'उर्दू नॉवेल', 'रतन नाथ सरशार की नोवल निगारी', 'शरर' ओर 'प्रेमचद'–ये चार लेख 1939 ई आर 1945 ई के दरमियान लिखे गये हैं। उस वक्त फ़ैज की उम्र आर इसके साथ साथ उस दोर की जिदगी, वेश्विक उथल-पुथल ओर विश्वयुद्ध, हिंदुस्तान की जगे-आजादी ओर अजुमने तरक्की पसद लेखको के कयाम वगैरह से अलग करके इन लेखा को समझना मुमकिन नही। यह वह दोर था जब साहित्य को समाज से अलग करके देख पाना मुमकिन ही न था, खास तार से कथात्मक साहित्य को। इसलिए 'उर्दू नॉवेल' लेख इस वाक्य से शुरू होता हे 'अदब की तारीख़ हमारी समाजी तारीख ही का एक हिस्सा है।' ओर आगे लिखते हैं 'अदब समाज के इज्तेमाई (सामूहिक) फिक्र की पैदावार होता ह। इसके फिक्र की सूरत बदलती हे तो अदब का रग भी दूसरा हो जाता है'

उन्नीसवी सदी के आखिर ओर बीसवी सदी की शुरुआती दहाइया मे शायद उर्दू अदब म पहली बार ऐसा हुआ था कि इनसान वर्गो म ही नही बोद्धिक वर्गो मे बट गया। इनकी अपनी-अपनी भावुक ओर समाजी समस्याए थी जिन्हे बड पमाने पर समझने का ज्ञान पहली बार हुआ। जाहिर है कि इनके अदर का यह एहसास दुनिया के इनसानी आर चारित्रिक उथल पुथल की वजह से पेदा हुआ था। विचार व सम्मान की बरबादी, इनसानी जिदगी के खतरात, इनसान की इनसान से जग, जोर-जबरदस्ती, कमजोर ओर बलवान के आसार आर आजार (तकलीफें) ने इन्हे ऐसा सोचने पर मजबूर किया। इन तमाम सूरतेहाल की बेहतरीन झलक जिस कदर फिक्शन म हुई, शायरी मे इस शक्ल मे न हो सकी। ऐसा इसलिए भी हुआ कि शायरी के मुकाबले मे नॉवेल जिदगी को ज्यादा विस्तृत, पारदर्शी आर शायद खुरदुर अदाज मे देखता ओर दिखाता है। इसीलिए फैज साफ तार पर कहते है कि नॉवेल की सबसे बडी देन मध्यम वर्ग की खोज है आर यह खोज समाजी फिक्र की सबसे बडी खोज हे। जिन नावलो मे यह वर्ग आया है आर पूरे फिक्र व शऊर के साथ नहीं आया है, फ़ज इसकी आलोचना करने म हिचकिचाते नहीं। वह सस्ते रूमानी जासूसी नावलो की खूब खूब खबर लेते ह ओर कहते ह कि इस दोर के नॉवेल नये दोर की नुमाइदगी नही करते। नये दोर के बदल हुए समाजी एहसास की तर्जुमानी ने सबसे पहले हकीकत के समाजी मतलब को इतना विस्तार दिया कि उसे सही मायने म हकीकत कहा जा सके। फिक्शन म वाकयानिगारी की बडी अहमियत हे जिसन आगे बढ कर अपनी तरक्कीयाफ्ता शक्ल म हकीकत का शब्द कायम कर लिया। लेकिन यह हकीकत भी एक जमाने तक एक खास मायने मे सीमित रही। मसलन, नजीर अहमद के यहा हकीकत किरदारी हे। सिर्फ किरदार आता ह। इसकी कमजार पेशकश के कारण पाठक वर्ग की भिन्नता को समझने से वचित रह जाता है। इसके विपरीत उमराव जान अदा या प्रेमचद के नॉवेल क किरदार सिर्फ किरदार नहीं होते बल्कि पूरे वर्ग की अलामत (निशानी) होते ह। फ़ैज की समाजी फिक्र इससे भी दो कदम आगे बढ कर यह ऐलान करती ह

किसी एक तबके की तर्जुमानी, खास तोर स जब वह तबका सोसाइटी या समाज का बहुत ही छोटा तबका हो सही माना म वाकीयत नही। वाकीयत का सही मफहूम (मतलब) उस वक्त तक अदा नहीं हो सकता

जब तक लिखने वाला समाज के कोने छिदरे खगालने में समाज को मजमूई हैसियत से न देखे। इस नो (किस्म) की वाकीयत सही आवामी या जमहूरी (प्रजातन्त्रात्मक) शऊर के बगैर पैदा नही हो सकती।
(उर्दू नॉवेल)

जुज (हिस्सा) में कुल देखने का यह सूफियाना मिजाज तो फैज के यहा शुरू से ही था, लेकिन समाज को एक पूरी इकाई के तौर पर देखने का विजन उनके समाजी दृष्टिकोण की देन का जो एक फिक्र, एक फलसफा बनकर सिर्फ फैज को ही नहीं बल्कि उस दौर के ज्यादातर रचनाकारो को प्रभावित कर रहा था और जिदगी की व्याख्या—विस्तार आलोचना म, जिदगी की मुश्किले जिदगी के फलसफे मे, मावराईयत अरजियत (वास्तविकता) मे, वैयक्तिकता सामूहिकता मे बदल जाने के लिए बेचैन हो रही थी। यही वजह है कि प्रेमचद के वक्त से उर्दू नॉवेल का मिजाज ही नही कैनवस भी बदल जाता है, इसलिए कि उन्होंने ज्यादा हकीकत्त से काम लिया था लेकिन फेज प्रेमचद की हकीकत से भी सतुष्ट न थे और उनका जोशीला समाजी नजरिया प्रेमचद पर भी एतराज करने से उन्हे रोक नही पाता। वह यह तो स्वीकार करते हे कि प्रेमचद उर्दू नॉवेल को सफेदपोश शरीफो की बैठको से निकालकर देहात के चौपालो मे ले गये, लेकिन जब वह अलग से प्रेमचद पर बाते करते हं तो खास तोर पर कहते हं—

हकीकत एक जामे चीज हे और उसकी वजाहत (व्याख्या) वही शख्स कर सकता है जिसके जेहन मे समाज का मजमूई तसव्वुर (पूरी कल्पना) मोजूद हो और प्रेमचद के जेहन मे यह तसव्वुर मौजूद न था। इसके अलावा जिदगी के बहुत से ऐसे पहलू हैं जिनके मुताल्लिक न सिर्फ प्रेमचद खामोश रहते है बल्कि दानिस्ता तौर पर उनसे चश्मपोशी कर लेते है। मै समझता हू कि वह ओर जो कुछ भी हों हकीकत निगार हरगिज नहीं कहला सकते।

प्रेमचद 1936 ई मे इतकाल कर गये। 1941 ई मे आगा अब्दुल हमीद से यह बातचीत की गयी। सच यह है कि उस वक्त तरक्कीपसद हलका मे प्रेमचद का तूती बोल रहा था। ऐसे मे प्रेमचद जेस शोहरतयाफ्ता नॉवेलनिगार पर इस किस्म की नुकताचीनी करना, वह भी एक नोजवान शायर क लिए, हेरत और हिम्मत की बात हे। वह उसी हिम्मत से आगे यह कहते है—

फन्नी तोर पर इनसानी जिस्म और उसकी अजली ख्वाहिशात के मुताल्लिक प्रेमचद को या तो कुछ मालूम नहीं है या वह इसके मुताल्लिक कुछ कहने की जुर्रत नहीं करत, हालांकि खाने के बाद जिन्सियात का मसला इनसानी जिदगी मे सबसे अहम मसला है। मिसाल के तौर पर 'चोगाने हस्ती' ल लो। सूफिया ओर विनय सिह की मुहब्बत बिल्कुल बच्चो की सी मुहब्बत है लेकिन वह दोनो बाकी मामलात मे काफी पोख्ताकार है। एक ओर चीज प्रेमचद मजहब ओर समाज के बाज उसूलो को बगैर सोच विचार के दुरुस्त मान लेते है। बाज रिवाज ऐसे होते है जो किसी समाजी जरूरत की वजह से पैदा होते है। कुछ अरसा के बाद समाजी हालात के बदलने से उनका अस्ल मकसद फोत (बरबाद) हो जाता है। लेकिन समाज मे इतनी सलाहियत (योग्यता) नहीं होती कि उन्हे तर्क कर दे ओर लोग उन्हे एक बेकार बोझ की तरह अपने कधो पर उठाये फिरत है। मसलन, ओरत के मुताल्लिक प्रेमचद का नजरिया यह कि उनके नजदीक मिसाली ओरत वह है जो किसी उसूल के लिए अपनी जान तक कुर्बान कर दे ख्वाह वह उसूल गलत ही क्यो न हा। कुर्बानी पर प्रेमचद बहुत जोर देते हे। जिदगी की खुशिया छोड कर दुनिया को त्याग देना उनके नजदीक काबिले एहतेराम बात है हालांकि मौजूदा हालात मे यह कुर्बानी बहादुराना नहीं बुजदिलाना बात हे।

आर फिर आखिर म यह भी कहते ह—

'बात यह हे कि प्रेमचद बेचारे निहायत शरीफ़ आदमी थे आर समाजी तनक़ीद शुरफ़ा (शरीफो) का काम नहीं।

इन वाक्या म नाजवान समाजवादी के बागियाना तत्व छलक पड रह ह। जहा समझात का दूर-दूर तक नाम नही, जहा नोजवान उमग सब कुछ उलट-पलट कर देना चाहती ह। जाहिर हे कि यह सब कुछ मार्क्सिज्म के जरिय हासिल हुआ था जो उस युग क नोजवाना की रगा म खून बन कर दोड रहा था। यह तो नही कहा जा सकता कि प्रेमचद ने मार्क्सिज्म नही पढ़ा था या वह इससे प्रभावित नही हुए थ, लेकिन यह जरूर हे कि वह अपनी उम्र के आखिरी हिस्स मे इस फलसफ के करीब आय। यही वजह हे कि उनके आखिरी दोर के लेखन मे मार्क्सिज्म या मार्क्सी सादय नजर तो आता ह लकिन वह भी सजीदा और ठहरे हुए अदाज मे। इसके विपरीत फेज जवान होते ही मार्क्सवादी हो गय। महमूदुज्जफर ओर रशीद जहा ने नाजवानी मे ही मार्क्स की किताबे पकडा दीं आर ललकार कर कहा कि दुनिया से इश्क करो, दुनिया भर के सताये इनसाना के लिए सघर्ष करो। जाहिर हे कि यह सघर्ष सिर्फ व्यावहारिक न था बल्कि इसके पीछे एक इल्म था, इनसानी फलसफा था जिसने एक आदोलन बन कर उस युग के तकरीबन तमाम शायरो, फनकारो को एक खास किस्म के विजन ओर जोश व जज्बे से भरपूर कर रखा था। जिसमे फेज भी सराबोर थे। प्रेमचद ने आधी से ज्यादा जिदगी गाधीवादी प्रभाव मे गुजारी, अहिसा के फलसफे पर यकीन रखा। यही वजह है 'होरी' सारे जुल्म बरदाश्त करता ह लेकिन अपने सस्कारो से अपने आपको अलग नहीं कर पाता बल्कि उस पर कुर्बान हो जाता है। प्रेमचद के यहा औरत बागी कम, सती सावित्री ज्यादा हे। जाहिर हे कि प्रेमचद का यह शरीफाना या कही-कही समझोतापूर्ण रवेया फ़ैज को पसद नही आता ओर इसीलिए वह इन पर एतराज करते ह आर उन्हीं हवालो से वह उनकी वाकयानिगारी और किरदारनिगारी पर खुलकर बहस करते हे। यह बहस सिर्फ फिक्री और नजरियाती नही है बल्कि नॉवेल की शक्ल ओर फन के हवाले से भी अहम हे। प्रेमचद की जबान के बारे म वह कहते ह—

उनकी देहाती जबान सिर्फ इतनी है कि हुजूर को हुजूर ओर मुश्किल को मुस्किल लिख दिया जाये और मजे की बात तो यह है कि एक ही देहाती एक तक़रीर (बात) मे एक फ़िकरा देहाती जबान में बोलता है तो दूसरा फ़िकरा अच्छी ख़ासी लखनवी जबान मे।

इस बात को फेज कोई बडा एतराज तो नही मानते, लेकिन प्रेमचद पर उनका अस्ल एतराज यू सामने आता हे—

वह कभी-कभी अपने अफ़सानो म खुल्लमखुल्ला वाज (उपदेश) शुरू कर देते है। यू तो काइ आर्ट प्रोपेगेडा से खाली नही होता लेकिन इसके ये मायने नहीं है कि एक नॉवेल नवीस के अफ़साने पर दहात सुधार के पम्फ़लिट का शुब्ह होने लगे।

आगे यह भी कहते हे—

महज कहानी बयान कर लेना तो कोई ऐसा कमाल नहीं है जब तक उसम एक इरादी सिफत एक जचा-तुला डिजाइन या नक्शा मोजूद न हो।

प्रेमचद के बारे मे फ़ैज के इन ख़यालात से विरोध किया जा सकता है लेकिन यह बात बहरहाल दरमियान से निकलती है कि फेज फ़िक्र के साथ-साथ फन के कायल थे। उनका ख़याल था कि फ़िक्र की पोख़्तगी के बगैर फ़न और फ़न के ज्ञान के बगर फ़िक्र पूर्ण किरदार अदा नही कर सकते। साहित्य कोई भी हो वह प्रोपेगेंडा से अलग नहीं लेकिन हर प्रोपेगैन्डा साहित्य नही हो सकता। यह बात उन्होने अपनी ओर दूसरो की शायरी के हवाले से भी बार-बार कही हे ओर इसीलिए उन्हे प्रेमचद की ख़ारजियत मे फन का बिखराव नजर आता है, जो जरूरी नहीं कि ठीक ही हो। फ़िक्शन की तमाम अहमियत के बावजूद उनका ख़याल हे कि उसमे प्लाट, उसकी बनावट मे बिखराव, गेर जरूरी वार्तालाप ओर प्रापेगन्डे के दाख़िल हो जाने की सभावनाए बनी रहती ह लेकिन इन सब बहसा के बावजूद वह प्रमचद को एक समाजी और प्रजातत्रात्मक नॉवेलनिगार मानते हे आर एतराज करते ह कि उन्हाने अफ़सानवी अदब का सफेदपोशा से निकाल कर चोपाल तक पहुचाने का ऐतिहासिक काम अजाम दिया ह।

सरशार आर शरर के अध्ययन मे अगरचे ये समस्याए नही हे, इसलिए उनके विश्लेषण भी दिलचस्प ओर अर्थपूर्ण है। फ़ैज, सरशार की नॉवेल निगारी का विश्लेषण शुरू मे एक पाठक की हैसियत से करते ह लेकिन धीरे-धीरे उनके अदर का तारीख़ी ओर समाजी शऊर उन्हे उस युग के अवध म ले जाता ह जो पतनशील है, जो एक परेशान ओर बेमकसद जिदगी के चोराहे पर खडा हे, जहा से उनको कोई रास्ता सूझ नहीं रहा है। फ़ैज किस कदर मजे से लिखते ह–

> इस अफरात ओ तफ़रीत के बावजूद सरशार की तस्वीर में नवाबी के आख़री अहद के बाद वो ख़ाल नुमाया और जिदगी के मुताबिक़ हैं। पहली नजर मे यह दुनिया शोर ओ हगामा रोनक़ और गहमागहमी राग रग रक्स ओ सुरूद, इश्क़ व मुहब्बत रिंदी आर बेफ़िक्री की दुनिया हे। कहीं बेटरा पर शर्ते बद रही हे, पालिया है कि मैदाने जग को मात करती हे। कहीं मेलों ठेला का हुजूम हे। कही शेर ओ शायरी की महफिल गर्म है। कही चाइ पिया जा रहा है। कहीं शादी बयाह म तवायफ़ आ रही हे। मेहमाना मे चुहल हो रही है नवाब, ओमरा (अमीर) शहसवार, बटेर बाज, भटियारिने, भाड ठिठोल चोर गठकतरे ओलमा, सूफ़ी अफ़ीमची, कुमारबाज, सब एक हमागीर बेमकसद धकापेल म मसरूफ़ ओ मुनहमिक ह।

लेकिन जल्द ही फेज का तारीख़ी शऊर उस नाजुक मोड की तरफ ले जाता है जहा से तस्वीर का दूसरा रुख नजर आने लगता है ओर वह यह कहने पर मजबूर होते ह–

> सरशार ख़ूब जानते थे कि यह जगमग बुझती हुई शमा का आख़िरी सभाला हे। यह रक़्से महफिल मौत का रक्स है। ऐश ओ तरब महज यास और ख़ौफ़ से फरार का बहाना हे। सरशार ने इसका इजहार यू किया है कि 'फसानए आजाद' के तमाम किरदार ओर उन किरदारो की तमाम सरगर्मिया महसूस ओर मोजूद होने के बावजूद कतई गेर हक़ीक़ी और गैर वाक़ई मालूम होती है।

ओर फिर उनके अदर का मार्क्सिस्ट आपने आपसे सवाल करता है–

> किसी समाज या समाज के किसी तबक़ा में तनज्जुल (पतन) क्या आता है और क्या सूरत अख़्तियार करता है। गालेबन सबसे सीधी बात यह है कि जब माद्दी जराय में तरक्क़ी हो जाने की वजह से दुनिया के एक्तेसादी (आर्थिक) हालात बदलते ह तो समाज को भी उनके साथ बदलना पडता है। लेकिन अगर कोई समाज या समाज का कोई तबका बदलने से इनकार कर दे या उस इकलाब का अह्ल न हो तो जिदगी की रौ उसे छोड़ कर आग बढ जाती है इस साकिन समाज के इर्द गिर्द दुनिया का नक़्शा बदल जाता है।

मोआशरत और तहजीब के साचे नये ढाले जाते ह लेकिन पसमादा तवक़ा अपनी डढ़ ईंट की मस्जिद अलग चुनने मे लगा रहता हे इस बेताल्लुक़ी का नतीजा यह होता है कि इस समाज मे उस तवक़ा की सरगर्मिया ब तदरीज ज्यादा माहमल, ज्यादा बेमक़सद और ज्यादा मोजहकाखेज होती चली जाती ह।

इस खयाल की बुनियाद पर वह लखनऊ के उन सारे तफरीही काम को एक साचे म ढाल लेते ह जहा एक गहरी बेइत्मीनानी, मायूसी और कभी-कभी करार के अलावा कुछ नजर नहीं आता। सरशार के फसाना के साथ-साथ अवध की पतनशील सभ्यता का यह नक्शा फ़ेज क समाजी, सियासी ओर इश्तेराकी विचार का आईनादार हे जहा तारीख़ आर सभ्यता की अपनी आथिक हालात एक नयी तहजीब को जन्म दे रही हे लेकिन पुराने मोत के परदे के पीछे चालाकी से सिफ डुगडुगी बजा रहे ह। फेज ने सरशार के इस जेहन को अपनी गिरफ्त म ले लिया हे जो कशमकश आर शक का शिकार हे आर यह सब कुछ 'फसानए आजाद' मे कही खोजी, कहीं आजाद आर कहीं पूरे समाज के जरिये जलवागर होता हे। सरशार को भी पुरानी दुनिया के जाने का गम हे लेकिन उनकी ख़ूबी यह ह कि नयी दुनिया का स्वागत भी करते चलते ह। अगर एक तरफ बटेरबाजी हे तो अख़बारात भी ह। हुस्नआरा आर सरवत हे तो अंग्रेजी मिस भी हैं। रेले ओर मोटरे भी ह। खोजी के बारे मे उनका कहना ह कि यह मजाकिया शख़्सियत पतनशील दरबारी तबके की आखिरी मजिल हे। इसी तरह वह आजाद को नये तबके का नुमाइदा करार देते ह और यह कहते ह कि सरशार ने आजाद के जरिये यह कहना चाहा हे कि यही वह तबका हे जो कुछ कर सकने का अहल है।

इसी तरह से शरर के नॉवेलो मे भी उनकी राय तारीख के हवालो से दिलचस्प अदाज मे सामने आती हे। शरर के यहा तारीख History ह। Historicity वही जो जमाने के साथ सफ़र करती है। लेकिन उनकी यह हिस्ट्री भी फेज की निगाह मे किसी एक बिंदु पर नहीं ठहरती। इसलिए कि शरर अपने नॉवेलो मे जो तारीख़ी माहोल बनाते ह वह उनकी जबान मे न किसी दोर को समझने मे मदद करती हे और न ही किसी तारीखी शख्सियत की कल्पना जेहन म उठती हे। अलबत्ता एक दिलकश रूमानी फ़जा जरूर क़ायम हो जाती हे और यह फजा अरब की हो सकती है ओर अफ़्रीका की भी, लेकिन वह शरर के नॉवेलो मे उस दौर की समाजी तहजीबी जिदगी और उसके बदलते हुए नक्शे तलाश करना चाहते हे जिसमे उनको मायूसी होती है ओर उसकी वजह से यह समझते हे कि शरर समाजी फिक्र न रखते थे और न ही समाजी सरोकार रखते थे। वह अपने नॉवेलो म दो बादशाहो के दरमियान जग तो दिखाते ह लेकिन जहा तक अवाम और बाकी समाज का ताल्लुक हे, शरर उनसे कोई वास्ता नही रखते। वह लिखते हैं—

> ख़ालिस (शुद्ध) नॉवेलनवीसी के एतबार से शरर का रुतबा क्या हे, इसका जवाब दिया जा चुका हे। नॉवेल जिदगी का चरबा होता ह ओर शरर के नोवलो को जिदगी से कुछ ज्यादा ताल्लुक नही। इसकी बडी वजह यह है कि जिदगी बहुत सी छोटी-मोटी चीजो से मिलकर बनती हे। इन सबका मुतालिबा करना, उनके बाहमी ताल्लुक़ात मालूम करना अपनी-अपनी जगह पर बैठाना है, यह काफी बारीक काम ह ओर शरर बारीकियों से भागते ह। म समझता हू कि इनकी तहरीरों म सबसे बडा नुक्स (ऐब) एक ख़ास क़िस्म की जेहनी काहिली और सहल अगारी हे

हालांकि खुद फ़ेज इसको माफ कर देने की वजह भी निकाल लेते ह कि शरर व्यस्त इनसान थे। वह एक साथ कई विभागो म काम करते थे। पत्रकारिता सामाजिकता, मजहब, साहित्य तारीख़ सभी पर बराबर लिखते रहते थे ओर इन सब पर हावी सामाजिक सुधार, जिसके शिकार नजीर अहमद शरर,

राशिदुलख़ेरी सभी थे ही। शरर को जहा भी अपनी काविलियत दिखान का मौका मिला अपने असरात (प्रभाव) छोडने मे कामयाव हुए। नॉवेलो म 'अय्यामे अरब', 'फ़िरदोस वरीं', 'जवाले वगदाद' उनके अच्छे और कामयाव नॉवेल हे। 'गुजश्ता लखनऊ' भी एक यादगार किताव हे। कुछ ओर चीजे भी हे लेकिन फैज इनका जिक्र नही करते। अपने पूरे लेख म 'फिरदोस वरीं' का नाम तक नही लाते जिसम शेख अली वजूदी उस दोर के मजहबी व्यवस्था ओर हुसेन उस दोर के नोजवाना की दीवानगी ओर पस्तहिम्मती की निशानी वनकर आते हे। हुसेन तो 'जहरे इश्क़' के हीरो का विस्तार है जो खुद कुछ नही सोच पाता ओर दीवानगी की हालत मे उसका शोषण होता रहता है। यह अमल उस पूरी पतनशील व्यवस्था आर मरदाना समाज की तरफ़ तलख़ ओर तीख़ा इशारा है जिससे उस दौर का समाज गुजर रहा था। फैज ने शरर के वारे मे यह वात भी साफ तोर पर कही--

शरर नॉवेलनवीस नही क़िस्सागो हें ओर क़िस्सागोई मे उन्ह काफ़ी महारत हासिल हे।

फैज ने किस्सागोई और नॉवेलनवीसी के फर्क को अच्छी तरह से पेश किया हे आर इससे इनकार कर पाना मुश्किल है कि शरर वाकई किस्सागो ज्यादा हे, लेकिन वह नॉवेलनवीस थे ही नही, मजवूती के साथ यह वात कहना शरर के साथ ज्यादती ह। कम लोग जानते ह, ओर शायद फ़ज के जेहन मे भी न होगा, कि शरर उर्दू के ऐसे नॉवेलनिगार ह जिन्होने पहली वार लफ्ज नॉवल का इस्तेमाल किया, अपनी किस्सानवीसी को वाकायदा नॉवेलनवीसी का नाम दिया, वरना उससे पहले नजीर अहमद वगेरह ने अपने नॉवेलो को नये तर्ज की क़िस्सानिगारी कहा हे। शरर ने अपने रिसाले 'दिलगुदाज मे नॉवेल विधा पर कई अच्छे लेख लिखे जिनमे नॉवेल विधा की अहमियत, मकवूलियत ओर मक़सदियत पर अच्छी वहसे की है। यह वहसे उर्दू फ़िक्शन की आलोचना मे अपनी क़िस्म की पहली मानीख़ेज आर कारआमद वहसे हें। उन्होने अग्रेजी के नॉवेल और तारीखी नॉवेल पढे थे। स्कॉट ओर ड्यूमा के तारीख़ी नॉवेला को पढने क वाद ही उन्हे उर्दू मे तारीखी नॉवेल लिखने का खयाल आया, वरना वह नजीर अहमद की तर्ज पर 'दिलचस्प' ओर 'दिलकश जेसे समाजी नवल लिख चुके थे जो ज्यादा कामयाव न हुए थे। यह सच हे कि उनके तारीख़ी नॉवेल रूमानी ज्यादा हे ओर उस रूमान पर भी एक खास किस्म की मकसदियत और खारजियत हावी रहती हे जिससे नॉवेल की वनावट ओर उसका वरवाद नजर आता हे लेकिन यह भी न भूलना चाहिए कि शरर के सामने उर्दू मे अच्छे नॉवेलो की मिसाले कम ओर समाजी जरूरते ज्यादा थीं। यह क्या कम वडी वात हे कि जहा 'हुज्जते इस्लाम' जेसे पात्र समाज मे ह, वहा 'वदरुन्निसा की मुसीवत' जेसे नॉवेल म शरर परदे की सख्त मुख़ालिफत (विरोध) करते ह। 'ताहिरा' मे मालवी के पात्र की फज्फडी उडा कर मजहवी व्यवस्था पर चोट करते ह ओर 'जवाले वगदाद' जसा नॉवेल लिख कर लखनऊ के शिया-सुन्ने झगडे पर गहरी चोट लगाते ह। शरर फ़ौरन लिखने वाले थे ओर वहुत लिखते थे। उनकी लेखनी की भीड के वारे मे फ़िराक ने दिलचस्प वात कही हे--

शरर के नॉवेल आज जरा पुरानी चीजे मालूम होते है और उनक़ी तहरीर ज्यादातर कल की वात मालूम होती है। हम प्रेमचद के नॉवेलों और अफ़सानों आर शरर क अफ़साना स ज्यादा मुतास्सिर हैं। लेकिन जरा यह तो साचिए कि सरशार को छाड़कर शरर के हमउम्र और हम अस्र सेकड़ा नॉवलनिगारा में आज किसक़ा नाम जिदा हे। क़िरदार और मजर निगारी और तारीख़ी तख़य्युल की कुछ अहम ख़ामियों के वाज्जूद भी शरर के कई नॉवेल दिलफ़रेव दिलकश और जानदार हैं। इसके अलावा सरशार के मुक़ावले में शरर

के नॉवलो का मजर कहीं ज्यादा वसीअ है। एक सरशार पे क्या मौकूफ़ है उर्दू के किसी दूसरे नस्रनिगार ने इतने मोजूआत और इतनी चीजो को हाथ नहीं लगाया जिन पर शरर ने हजार सफहात लिख कर कलम हाथ से डाल दिया '

(अदाज, पृ 329)

ऐन मुमकिन है कि फ़िराक की यह मिसाले गेर जरूरी सी लग, लेकिन इनको पेश करने के दो मकसद हे—पहला यह कि फ़िराक के लेख भी तकरीबन उसी दोर म लिखे गये जब फेज ने लिखे। फ़िराक फ़ैज से उम्र मे बडे जरूर थे लेकिन हालात ओर जमाने के पेशे नजर दोना को समकालीन ही कहा जायेगा। दोना अग्रेजी के विद्यार्थी ओर अध्यापक थे। दोना की आलोचना को व्यक्तिगत आलोचना के ख़ाने में लिया जाता हे। फिर प्रेमचद ओर शरर से सबधित दोनो की राया मे इस कदर दूरी ओर विरोध क्या ? इस सवाल के जवाब की तलाश मे फ़ेज ओर फ़िराक की बुनियादी फ़िक्र ओर तहजीब (सभ्यता) को समझना होगा। फ़िराक हिदू थे ओर कायस्थ थे। कमउम्री म वालिद की मोत ने उन्हे तरह तरह से बीमारियो ओर जिम्मेदारियो ने घेर लिया। वह हिदू सभ्यता ओर सस्कृति क रसिया थे जिसने आगे चलकर उनकी रचनाओ को एक राह दी। ऐसा न था कि फ़िराक ने समाजवाद को पढा ओर समझा न था, उनकी कविताआ और ख़तो म इसके प्रभाव बतोरे ख़ास दिखाई देते हे, लेकिन वह समाजवाद की तरफ दिल से मायल न थे। इसके उल्टा फेज मुस्लिम घराने की वजह से नहीं बल्कि खुद अपने घर क विशेष मजहबी माहौल की वजह से शुरू म तसव्वुफ से परिचित हुए। कहते है कि फेज ने बचपन म ही आधे से ज्यादा कुरआन याद कर लिया था ओर एक बार अल्लामा इकबाल की अध्यक्षता मे अजुमने इस्लामिया सियालकोट के सालाना जलसे म कुरआन पाक पढने का वाकया उन्हे हमेशा याद रहा। खुद लिखते ह—

> म इतना छोटा था कि मुझे एक ऊची मेज पर खडा कर दिया गया। जब म तिलावत (पढ़ना) कर चुका तो इकबाल ने बडे प्यार से सर पर हाथ फेरा ओर कहा कि तुम कितने जहीन बच्चे हो।
>
> (हम कि ठहरे अजनबी)

कनाडा के एक इटरव्यू मे उन्होने साफ कह दिया कि—

> म अपने आपको अदना तरीके से तसव्वुफ़ का पेरो समझता हू। इस मस्लक पर थोडा बहुत इख़्तेलाफ हो सकता हे हमारी तो सारी की सारी तरबियत ख़ालिस दीनी माहोल मे हुई ओर मेरी शायरी का मेरे जहनी अकायद से कोई तजाद नहीं है।
>
> (अदबे लतीफ—फ़ैज नबर)

सूफ़ीवाद की दूसरी विशेषताओ के साथ-साथ एक बडी विशेषता यह भी हे कि वह दुनिया के कामों से ऊपर उठ कर अपनी बात हिम्मत के साथ कहना सिखाता हे। मुमकिन हे कि सादगी ओर निडरता से कहने का हुनर फ़ेज ने इसी माहोल से लिया हो।

फ़ेज जवान हुए। अग्रेजी पढी और अग्रेजी के उस्ताद हो गये और फिर इश्क मे गिरफ्तार हुए। ठीक इन्हीं दिनो तरक्कीपसदी और समाजवाद का शोर बुलद हुआ। महमूदुज्जफ़र और रशीद जहा ने इस आरजी इश्क पर शर्म दिलाई और मार्क्स की किताबे पढने को दी। फ़ैज के अनुसार—

यह किताब मेने एक नशिस्त मे पढ डाली वल्कि दा तीन वार पढी। इनसान और फितरत, फ़र्द आर मुआशरा, मुआशरा ओर तवकात ओर जराए पदावार की तक़सीम इनसाना की दुनिया के पेच दर पव तह दर तह रिश्ते नाते, कद्रे, अकीद, फिक्र वो अमल वगरह वगरह क बारे म यू महसूस हुआ कि किसी ने इस पूरे ख़जीनए असरार को कुजी हाथ मे थमा दी।

इस तरह सूफी फैज के पेट से समाजवादी फेज का जन्म हुआ। सूफीवाद से लेकर मार्क्सवाद का यह सफ़र इन्हे अच्छा लगा ओर वह अपने आपको कामरड समझन लगे, लेकिन उनका खयाल अब भी था कि यह सूफ़ी लोग ही अस्ल कामरेड है। यह 1935-1936 ई का वह जमाना था जब इस्लामी चितक कहे जाने वाले उर्दू के महान शायर अल्लामा इकबाल भी समाजवाद के रद्‌द व कबूल के रास्ते गुजर चुके थे और इस तरफ मुव्वत ओर उम्मीद की निगाह से देख रहे थे। जोश इकलाव के नारे बुलद कर रहे थे। हसरत मोहानी अपने आपको सूफी मोमिन और समाजी मुस्लिम कहन पर फख्र महसूस कर रहे थे। ओर फिर इन सबके सामने नयी नस्ल, तरक्कीपसद नस्ल के तार पर उभर कर आयी जो मगरिब के तमाम सियासी ओर समाजी विचार ओर नजरिया से बाखबर थी, बाअमल थी। समाजी शऊर, सास्कृतिक समझ, सामाजिक हवालो से अपन तमामत्तर जोश व जज्बए हरकत वो हरारत क साथ सैलाब की तरह वह निकले थे। पूरे निजाम को हिला देने ओर आसमान से तारे नोच लेने की बाते सोची जाने लगी थीं ओर दुनिया से इस तरह से लडा जाने लगा था जेसे रावर्ट फ्रास्ट ने कहा था 'मेरा आर दुनिया का झगडा दो प्रेमियो का झगडा ह। दुनियावी आर मुल्की हालात, नित नये नजरियात और तजुर्बात नयी विधाए एव कलाए ओर समाजी व इकलाबी रुझानात न हयात वो कायनात को समझने समझाने के तोर-तरीके ही बदल दिये थे। बकोल आले अहमद सुरूर—

> शायर जिदगी से मुहब्बत करता हे ओर कभी-कभी जिदगी के एक बुलद तसव्वुर की खातिर इसके सस्ते ओर कारोबारी तसव्वुर से लडता हे। शायर के ख्वाव महज खयाली दुनिया की परछाइया नही होते। इनम गहरी ओर ताविदा हकीकत की किरन होती है। इस किरन की खातिर जुलमात से ही नही सूरज स भी लडने को तेयार होता है। जिदगी की बसीरत ओर एक दर्दमद दिल यही शायर की दोलत है। यह बसीरत फितरत से मिलती है, मगर इसम जिला जिदगी के सोज वो साज दर्द के दाग से होती है।

मीर ने कहा था—

> ऐ आहूवाने काबा न एडो हरम के गिर्द
> खाओ किसी का तीर, किसी की शिकार हो।

इस पूरे पसमजर को पेश करने का मकसद सिर्फ यह हे कि फेज के इन लेखो को, ख़ास तोर पर फिक्शन से मुताल्लिक लेखो को, इस माहोल, मिजाज, उम्र, जेहन ओर जोश व जज्बा से अलग करके नही देखा जा सकता। प्रेमचद पर इनके ऐतराजात रोशनी के सूरज पर ऐतराज के बराबर ह। इन लेखो म कबूल कम, रद्‌द ज्यादा है। स्थानीयता कम, वेश्विकता ज्यादा हे। अशराफियत कम, अवामियत ज्यादा हे। खुद फैज ने भी भूमिका मे कहा है—

> इनमें सुख़न ओलमा (विद्वानों) से नहीं, आम पढ़ने वालो से है जो अदब के बारे में कुछ जानना चाहते हैं।

फिक्शन के इन लेखो मे आप फ़ेज के नापोख़्ता फसला से मतभेद कर सकते हे लकिन उनके शाके मोतालआ (अध्ययन), इल्म की प्यास, निजामे दुनिया को समझने की जो ललक हे, इनसानी व दुनियागा कद्र व फिक्र मे घुलने मिलने का जो फिक्री व फित्तरी जज्बा हे, उससे इकार नहीं कर सकत। यह क्या कम है कि उर्दू का एक शायर जिसकी परवरिश शायराना व सूफियाना माहाल म हुई, दास्तान, नॉवेल, सरशार, शरर, प्रेमचद जेसे बुजुर्गो के लेखनी से रचे गये साहित्य का पढ रहा हे, इस दुनिया के पच आ खम और केफ ओ कम को समझने की कोशिश कर रहा ह। इसके विषय, पात्रा, शेली—सबके सब उसक पढने का ही नही उसके चितन का हिस्सा बनते ह। यह बिल्कुल मुमकिन ह फेज की इनकी क्लासिकी रूमानियत, नयी मकसदियत को नया रूप देने मे ओर उसके नफ्स (आत्मा) को सभ्य करने म य कृतिया मददगार साबित हुई हो।

एहतेशाम हुसैन ने फेज पर ही लेख लिखते हुए कहा था कि फिक्र की यह रियाजत मश्के सोखन से कम तहजीबे नफ्स से ज्यादा पेदा होती हे आर फ़ेज के मोहज्जब, मुनज्जिम, मुरत्तिब हान से किस इकार हो सकता है। इसीलिए कुछ लोग इन्ह सूफी मुस्लिम ओर कुछ इन्ह समाजवादी मुस्लिम कहते है।

फ़ैज़ के गायक

सुहैल हाशमी

फ़ैज अहमद फज की लोकप्रियता ओर उनकी शायरी के चाहने वालो की लगातार वढती हुई तादाद का राज समझना कोई वहुत मुश्किल नहीं हे। फ़ेज के वचपन का माहोल, उनके उस्ताद फेज के ख़यालात, उनके नजरिये पर आजादी की तहरीक ओर बाये वाजू के ख़यालात का गहरा असर फ़ेज की शायरी म समाज की वुनियादी सच्चाइयो का प्रतिविवन और मकवूल सगीतकारा ओर गायका का इस शायर को हाथाहाथ लेना, वे वुनियादी चीजे हे जिन्होने मिल कर फेज को वीसवी सदी के सवस लोकप्रिय शायरो आर अदीवो की पहली कतार म खडा किया हे।

फेज के परिवार मे साहित्य को पढना ओर उसके वारे म वातचीत करना इतना ही जरूरी था जितना जिदगी के दूसरे अहम काम करना। उर्दू, फारसी, अरवी ओर अग्रेजी अदव से दिलचस्पी जो वचपन स घुट्टी मे मिली थी, फ़ेज के साथ हमेशा रही। उन्होने इन जवाना को कॉलेज आर यूनिवर्सिटी के स्तर तक पढा, और यही वजह हे कि फेज की शायरी की जवान इतनी समृद्ध हे कि जितनी गालिव आर इकबाल के वाद वहुत कम शायरा की हे। अदव और शायरी का शौक, घर के अदवी माहोल आर वहुत से अच्छे उस्तादा की सरपरस्ती म जल्द ही उन्ह शायरी की तरफ ले गया।

शायद फज भी अपने काल के कई दूसरे शायरा की तरह, शमा, परवाना, गुलोवुलवुल सेयाद इश्क़ विसाल और हिज्र के शायर ही रह जाते अगर जवानी के दिनो म उनकी मुलाकात तहरीके आजादी स जुडे हुए उन अदीवो ओर दानिश्वरा से न हो जाती जिनका ताल्लुक या तो सीधा सीधा कम्युनिम्ट तहरीक़ से था, या उन लोगो से जो वाय वाजू के ख़यालात रखते थे।

इस ताल्लुक की वजह से, रोज होने वाली वहसा के कारण, दुनिया को एक नये नजरिय स देखन की शुरुआत ने फेज की शायरी पर वहुत असर डाला। फेज की शायरी ने जो अभी अपने शुरुआती दार मे ही थी, वडी तेजी स अपनी शक्ल वदली आर वह अव व्यक्तिगत सरोकारा के वजाय सामूहिक या सामाजिक सरोकारा की शायरी म तब्दील होन लगी। वह नया नजरिया आ अव फेज की शायरी का नजरिया वन चुका था उसन फ़ेज को समाज मे फनकार के मक़ाम ओर उसके फराइज क वार म साचने की तरफ प्रेरित किया । 1936 मे अजुमन तरक्कीपसद मुसन्निफीन की वुनियाद पडी आर फज उसकी पजाव सूवाई कमेटी के सेक्रेटरी चुने गये।

फेज की शायरी का पहला सकलन *नक्शे फरियादी* 1941 म छपा, आर नूरजहा न जो उस वक्त की सवस मशहूर गायिका थी, फज साहव से इजाजत मार्गी कि व सकलन की एक नज्म 'मुझ स पहली

सी मुहब्बत मेरे महबूब न माग' गाना चाहती ह। कहा जाता है कि वे इस नज्म को सवसे पहले गाना चाहती थी, फेज साहब से इजाजत मिलने के वाद उन्होने जल्द ही इसे गाया ओर जल्द ही फ़ेज साहव को सुनाया भी, किस्सा मशहूर है कि फ़ेज साहव ने कहा कि आज से यह गजल हमारी नहीं आपकी हो गयी। अव अगर इस कहानी मे वक्त का जो पेमाना दिया गया हे उसके मुताविक ये वाक़या 1943 मे या हद से हद 1944 मे हुआ होगा, उस रिकार्डिंग की सही तारीख़ तो पता नहीं, पर क़िस्सा दिलचस्प है ओर उस खलबली की तरफ़ इशारा भी करता हे जो, *नक्शे फरियादी* के छपने के साथ, उर्दू शायरी को समझने वालो के दिलोदिमाग म चल रही थी।

नूरजहा की अवाज मे जब ये नज्म अवाम तक पहुची तो सव ने सुनी। नूरजहा जो मल्लिका ए तरन्नुम कहलाती थी '40 के दशक मे आर उसके वाद भी लवे अरसे तक गजल ओर गीत गाने वालियो म सुपरस्टार थी।

फ़ेज की शायरी एक नयी तर्ज की शायरी थी, एक ऐसी शायरी जो उर्दू शायरी की रवायती जवान का इस्तेमाल करते हुए एक नयी वात कह रही थी, कुछ इस अदाज से कि उस रवायती जवान ओर शायरी के रवायती मुहावरे को नये अर्थ मिल रहे थे। अजुमन तरक्कीपसद मुसन्निफीन से जुडे हुए वहुत से दूसरे शायर जो गजल के मैदान को सीमित ओर नये ख़यालो के इजहार के लिए नाकाफी समझ रहे थे, उन्हे यह एहसास होने लगा कि गजल मे अभी गुजाइश हे। यह एहसास वहुत हद तक फ़ेज की शायरी की देन हे। गजल के मेदान मे जो काम फ़ैज ने किया है वह काफ़ी हद तक तरक्कीपसद शायरी मे गजल को दोबारा इज्जत का मुकाम दिलाने के लिए जिम्मेदार है ओर फ़ेज को गेरमामूली हर-दिल-अजीज वनाने म भी।

नूरजहा की गायी हुई इस नज्म मे जो वात कही गयी थी वह शायद उर्दू शायरी मे पहले नहीं कही गायी थी, कम से कम इतने साफ अदाज मे तो नहीं कही गयी होगी। प्यार करने वाला अपनी महवूबा से कहता है

ओर भी दुख है जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहते ओर भी ह, वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहले सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग।

सुनने वालो मे ओर सुनने की ख़्वाहिश जागी, फैज की सियासी जिदगी के लगातार उतार चढाव, अपने ख़याला, अपने नजरियात पर कायम रहने की उनकी तर्ज, मद्धम मद्धम सुरो मे मगर साफ आवाज मे विना लाग लपेट के अपनी वात कहना, वार वार लवी लवी सजाए काटना और हर वार जेल से निकलते ही अपनी शायरी का एक और मजमुआ अवाम के सामने ले आना, ऐसी वाते थीं जिनकी वजह से अवाम म उनकी मकवूलियत लगातार वढ रही थी।

हिंदोपाक मे अवाम के जो हालात थे एक तरफ़ जिदा रहने की रोज की जद्दोजहद ओर दूसरी तरफ़ अवाम की तकलीफो से हुक्मरानो की वेनियाजी उनम फेज की शायरी अवाम के गुस्से ओर वेचेनी का आईना वन कर उभर रही थी। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के गाने वालो ने फेज की शायरी को अवाम तक, ख़ासतोर पर उन लोगो तक पहुचाया जो या तो उर्दू पढ नही सकते थे या जिनकी यह ओकात ही नहीं थी कि किताबे ख़रीद सके।

बेगम अख्तर ने बहुत खूबसूरत ढग से 'शाम ए फिराक़ अब न पूछ' गायी और मेहदी हसन ने 'गुलो मे रग भरे' को इस तरह गाया कि फैज साहब ने एक बार दिल्ली मे उस गजल को सुनाने की फरमाइश पर कहा, 'भई वो तो हमने मेहदी हसन को दे दी है, अब उन से ही सुन लीजिएगा।' फैज की कई गजले मेहदी हसन ने गायी। मगर वे लोग जिन्हे फैज के हर शेर के सियासी सदेश मे उनकी शायरी के जाहिरी मतलब से ज्यादा दिलचस्पी होती थी, और फैज के चाहने वाला मे ऐसे लोगो की तादाद बहुत बडी होती थी, उन्हे मेहदी हसन के गाने का अदाज ज्यादा मीठा लगता था। इतने मीठे ढग से फैज को गाना कि उनकी शायरी का असल मकसद ही धुधला हो जाये, जाहिर है उनके कुछ खास काम का नही था, जो फैज की शायरी को अवाम की जद्दोजहद मे, नुक्कड नाटको मे, सियासी जलसा म, मजदूरो के जुलूसो मे, वियतनाम के लडाकू अवाम की हमदर्दी म किये जाने वाले धरनो मे गाते थे, और मौको पर, विनोद नागपाल ने, सफदर ने, काजल घोष ने, इप्टा न, जन नाट्य मच ने और बहुत सारे अन्य लोगो ने फैज की शायरी को अपनी जरूरतो के मुताबिक नयी धुनो म ढाला और गाया।

यही वह दौर था जिसमे पाकिस्तान म गाने वालो की एक नयी पीढी ने फैज को गाना शुरू किया और इनमे इकबाल बानो, फरीदा खानम, टीना सानी, नायरा नूर के नाम सब से आगे आते है। फैज को गाने वाला की यह वह पीढी है जिसने फैज की शायरी को गाने की शुरुआत की जिसके सियासी तेवर सब से तीखे ह, जैसे 'हम देखेगे', 'इरानी तुल्बा के नाम', 'इतेसाब' वगैरह इसी दौर मे फैज की आजाद शायरी जैसे 'तुम मेरे पास रहो' को गाने की शुरुआत हुई।

इस पीढी के गाने वाले वालो मे नायरा नूर की आवाज सबसे ज्यादा सुरीली और मीठी है, ओर शायद यही वजह है कि मेहदी हसन की तरह नायरा नूर की आवाज भी उस तेवर की शायरी को रास नही आती जिस तेवर की शायरी फैज साहब करते थे। इसके बावजूद कि फरीदा ख़ानम ने फैज साहब की चद गजले, खास तौर पर, 'न गवाओ नाविके नीमकश' बहुत खूबसूरत ढग से अदा की है, इस दौर के गाने वालो मे इकबाल बानो का नाम सबसे ऊपर आता है, जिस वक्त पाकिस्तान पर जियाउल हक की तानाशाही थी। फैज साहब पाकिस्तान आ नही सकते थे और उनकी शायरी गाना ख़तरे से खाली नही था। ऐसे वक्त फैज के जन्मदिन पर लाहौर म एक आम मीटिग मे इकबाल बानो ने जो नज्म गायी, उस वक्त जो समा था उसका अदाजा उस मीटिग की वीडियो रिकार्डिंग सुन कर ही लगाया जा सकता है। हर शेर पर इकलाब जिदाबाद के नारे लग रहे थे, हजारो लोग तालिया बजा रह थ और इकबाल बानो के साथ गा रहे थे।

अच्छी शायरी, ऐसी शायरी जो अवाम की ख्वाहिशो का आईना हो, कितना जादुई हो सकती है अगर उसे उस ढग से गाया जाये जिस ढग की अदायगी की उसे जरूरत ह। इसकी बेहतरीन मिसाल फैज मेले मे इकबाल बानो की गायी हुई वह नज्म है।

अभी फैज की बहुत सारी शायरी को गाया जाना बाकी है और फैज की बहुत सी शायरी को दोबारा बदलते हुए वक्त की जरूरतो के मुताबिक गाया जाना भी जरूरी है। फैज की शायरी, गालिब की शायरी की तरह हर अच्छी शायरी की तरह, हर वक्त के लिए नये अर्थ लेकर आती है। फैज की शायरी तो कई सो साल तक गायी जायेगी, उसके बारे मे लिखने के वक्त की तो अभी शुरुआत हुई है।

फैज़ की गज़लो-नज़्मो की गायिकाएं







रोशनी की आवाज़

(1988 के दिसबर मे कराची मे पढी गयी कविता)

देवी प्रसाद त्रिपाठी

लोग कहते हे कि प्रकाश मे आवाज नही होती
लेकिन फेज की आवाज मे एक अद्‌भुत रोशनी हे
फेज का जीवन एक प्रकाशपर्व है
फेज आकाश की तरह उदार
समुद्र की तरह चेतन
धरती की तरह सुदर ह

वे हमेशा प्रेम से क्राति की तरफ जाते ह
कूए-यार से सूए-दार की तरफ
क्राति असल म इसान की मुहब्बत है
फेज हमेशा यही कहते हे।

फ़ैज़ को समर्पित एक ग़ज़ल

नसीम अजमल

गुलो की वात करो जिक्र-ए-जुल्फ़-ए-यार चले।
खिजा के दोर मे अफसाना ए वहार चले।

खिले जो रोजन-ए जिदा मे याद की कलिया।
तो रग भरती हुई वाद-ए-इत्र वार चले।

हजार पेकर-ए-गुल थे मियान-ए-सहन ए-चमन।
तेरी अदा पे मगर जिस्म-ओ-जान वार चले।

तेरे फ़िराक मे जोश-ए-जुनू से दीवाने
रिवायतो की क़बा कर के तार-तार चले।

तुम्ही से मोसम ए-गुल है तुम्ही से रग-ए-चमन
न तुम हो साथ तो क्या मोसम-ए वहार चले।

दहान ए-जख़्म से अबतक लहू टपकता हे
जमाना बीता हे वायदो की जुलफिकार चले।

फिर आज होना हे उनको कतील-ए गमजाओ नाज
दिलो मे लेके जो सरमस्ति ए वहार चले।

तरे वदन की महक से फजाए-रग ए-गजल
वहुत हसीन वहुत करके खुशगवार चले।

मरे खयाल को खूशवू चुरा नहीं सकती
नसीम गुलशन ए-हस्ती मे लाख वार चले।

अजीव ख़्वाहिश ए दीद ए वहार थी 'अजमल
वहार आते ही दीवाना ए-वहार चले।

फोन 011-42773635

फ़ैज़ : जीवन-वृत्त

1911 जन्म, 13 फरवरी, गाव काला कादर, सियालकोट (पजाब, पाकिस्तान में)
1914 कुरान कठस्थ किया (पहले दो पारे)
1916 उर्दू-फारसी-अरबी की प्रारंभिक शिक्षा
1921 स्कूल मे भर्ती
1927 मैट्रिक पास किया (फर्स्ट डिवीजन)
1928 पहली गजल कही
1929 इटरमीडिएट पास किया
1929 पहली नज़्म कही
1931 बी ए , बी ए ऑनर्स (अरबी) किया
1933 एम ए पास किया (अग्रेजी में)
1934 पहला लेख प्रकाशित
1934 अरबी मे एम ए (फर्स्ट डिवीजन)
1935 अग्रेजी के प्राध्यापक हुए (एम ए ओ कॉलेज, अमृतसर)
1936 पजाब प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना
1938 अदबे-लतीफ़ (लाहोर) का सपादन, रेडियो के लिए नाटक लिखे
1940 प्राध्यापक, हेली कॉलेज, लाहौर
1941 शादी, एलिस जॉर्ज से (नया नाम कुल्सूम)
1941 *नक्शे-फ़रियादी* (कविता-सग्रह) प्रकाशित
1942 ब्रिटिश इडियन आर्मी मे कैप्टेन
1942 पहली बेटी सलीमा का जन्म
1943 मेजर के पद पर पदोन्नत
1944 कर्नल के पद पर पदोन्नत
1945 दूसरी बेटी मुनीजा का जन्म
1946 एम बी ई
1947 आर्मी से इस्तीफा दिया
1947 *पाकिस्तान टाइम्स* और दैनिक *इमरोज* और साप्ताहिक *लैला निहार* का सपादन
1948 सैन्फ्रांसिस्को की यात्रा

1949 जिनेवा की यात्रा
1951 रावलपिंडी षड्यंत्र केस मे गिरफ्तारी और जेल
1952 *दस्ते-सबा* (कविता-संग्रह) प्रकाशित
1953 मार्च 1955 तक सरगोधा, लायलपुर और मटगोमरी जेल म
1955 जेल से रिहाई
1956 चीन की यात्रा
1956 *जिंदानामा* (कविता-संग्रह) प्रकाशित
1957 बंबई की यात्रा
1958 सेफ्टी एक्ट के तहत दुबारा गिरफ्तारी और जेल
1958 पहली बार फिल्मी गाने लिखे
1958 अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन के लिए ताश्कंद की यात्रा
1962 ब्रिटेन, सोवियत सघ, हगरी, क्यूबा, लेबनान, अल्जीरिया, मिस्र की यात्रा
1962 लेनिन शांति पुरस्कार से सम्मानित
1962 *मीजान* (लेखो का सग्रह) प्रकाशित
1964 प्रिंसिपल, अब्दुल्ला हारून कॉलेज, कराची
1964 *दस्ते-तहे-सग* (कविता सग्रह) प्रकाशित
1968 इदारए यादगारे-गालिब कायम किया
1968 *नक्शे फरियादी* का दसवा सस्करण
1968 *दस्ते सबा* का दसवा सस्करण
1968 सोवियत सघ की यात्रा
1969 गालिब शती समारोह का सफल आयोजन किया
1971 फैज की साठवी सालगिरह मनायी गयी
1971 *सरे-वादिए-सीना* (कविता-सग्रह) प्रकाशित
1971 *सलीबे मेरे दरीचे मे* (जेल से एलिस फेज के नाम लिखे पत्रों का सग्रह) प्रकाशित
1972 *सरे-वादिए-सीना* का दूसरा सस्करण
1972 अध्यक्ष, राष्ट्रीय कला-परिषद, पाकिस्तान
1973 अल्मा-अता (सोवियत सघ) म अफ्रो एशियाई लेखक सम्मेलन मे शामिल हुए
1973 फिलिपाइन की यात्रा
1973 इडोनेशिया की यात्रा
1973 *मताए-लौहो-कलम** प्रकाशित
1974 *सफरनाम-ए-क्यूबा*
1976 *हमारी कौमी सकाफत* प्रकाशित

---

* इसमें फैज के चुने हुए भाषण लेख इटरव्यू, भूमिकाए, पत्र आदि रेडियो और टेलीविजन से प्रसारित सामग्री और चार नाटक सकलित हैं अत में फैज से सबंधित चार विशिष्ट लेख है

1978 *शामे-शहरे-यारा* (कविता सग्रह) प्रकाशित

1978 कनाडा, हवाई आर मास्को की यात्रा

1978 *लुआडा (अगोला) म अफ्रो एशियाई लेखक सम्मेलन म भाग लिया*

1978 अफ्रो-एशियाइ लेखक सघ क मुखपत्र *लोटस* (वगदाद) का सपादन दायित्व सभाला।

1980 पाकिस्तान मे 'जश्न फेज'

1979 फेज नाम से शमशेर वहादुर सिह न फज पर पुस्तक का सकलन सपादन किया।

1980 *महो साले आशनाई* (लखा का सग्रह) प्रकाशित

1980 नयी दिल्ली मे 'जश्न फेज

1981 *मरे दिल मेरे मुसाफिर* (कविना-सग्रह) प्रकाशित

1982 *कलाम ए फेज* प्रकाशित

1984 *सारे सुखन हमारे* (फज समग्र) लदन से प्रकाशित

1984 *नुस्खहा-ए-वफा* (फज समग्र) पाकिस्तान से प्रकाशित

1984 20 नववर को लाहार म निधन

1986 *नुस्खा-ए-वफा* देहली से प्रकाशित

1987 1987 म *सारे सुखन हमार* हिंदी म अब्दुल विस्मिल्लाह के सपादन म प्रकाशित

1990 द एविसेना एवाड (मरणापरात)

1990 निशाने-इम्तियान (पाकिस्तान सर्वोच्च नागरिक सम्मान) (मरणोपरात)

2002 *फेज अहमद फेज* की शायरी पुस्तक मे प्रकाशित, सपादन शमीम हनफी

विचार न्यास
FOUNDATION FOR IDEAS

VICHAR NYAS

Vichar Nyas is administered by a board of trustees comprising eminent personalities drawn from various fields It strives to fulfil its aims and objectives through the following measures

- Organise debates, workshops, seminars discussions and conferences
- Undertake research on its own or to facilitate research on relevant issues by providing grants and fellowships to appropriate institutions and individuals
- Publish journals, magazines reports and books
- Encourage, sponsor and facilitate production of multi media material on relevant issues
- Collaborate with national and international organisations governmental or non governmental, working for similar objectives
- Accept donations, cash or kind, subscriptions, presents and grants
- Take over and manage any trust, society or institution with similar objectives
- Invest, dispose off, put in fixed deposits in securities in mutual funds or in companies funds not immediately required for short or medium terms

Vichar Nyas publishes **Think India Quarterly** focusing on similar objectives as stated It solicits support of all those who find its objectives relevant for creation of new India in the new millennium

Donors are requested to send cheques/drafts in favour of Vichar Nyas to the following address

Post Box No 7504 New Delhi 110 070

Email vichar@vicharnyas com

Website www vicharnyas com


साहित्य


ALBERT PINTO
KYON MUSKURA
RAHA HAI?


IFFCO TOKIO
Muskurate Raho



VEER PLASTICS PRIVATE LIMITED
AN ISO 9001 2000 COMPANY

WITH BEST COMPLIMENTS

FROM

VEER PLASTICS PVT LTD

HDPE/PP WOVEN SACKS & FABRICS

REGD OFFICE

104 SARDAR PATEL COLONY
STADIUM ROAD
PO NAVJIVAN
AHMEDABAD-380 014

PHONE (079) 2768 2100 / 2768 1159
FAX 91 79 2768 0550

E MAIL veerplasad1@sancharnet in

WORKS

1 BLOCK NO 327
SANTEJ VADSAR ROAD
SANTEJ TAL KALOL
DIST GANDHINAGAR
PHONE (02764) 286393

2 SURVEY NO 90/1 PLOT NO 4
SURYA GLOBAL COMPOUND
KUMBHAR WADI
NEAR RELIANCE NAROLI
SILVASSA (U T OF D & N H)